Published by

DALSUKH MALVANIA
Secretary
PRAKRIT TEXT SOCIETY
L D Institute of Indology
Ahmedabad-9

Price Rs 30

Available from

1 MOTILAL BANARASIDAS, VARANASI
2 MUNSHIRAM MANOHARLAL, DELHI
3 SARASWATI PUSTAK BHANDAR, Ratanpole, AHMEDABAD
4 ORIENTAL BOOK CENTRE, Manekchowk, AHMEDABAD

Printed by

TEXT
Nirnayasagar Press Bombay

TITLE AND FIRST PAGES
V P Bhagwat
Mouj Printing Bureau
Khatau Wadi Bombay 4

प्राकृतग्रन्थ परिषद् ग्रन्थाङ्क १९

पंचमगणहरसिरिसुहम्मसामिवायणाणुगयं बिइयमंगं

सूयगडंगसुत्तं

सिरिभद्दबाहुसामिविरइयाए निज्जुत्तीए पाईणथेरभदंतविरइयाए चुण्णीए य संजुयं

प्रथमो भागः

संशोधकः सम्पादकश्च

मुनिपुण्यविजयः

जिनागमरहस्यवेदिजैनाचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिवर(प्रसिद्धनाम–आत्मारामजीमहाराज)शिष्यरत्न–प्राचीनजैनभाण्डागारोद्धारकप्रवर्तक-श्रीमत्कान्तिविजयान्तेवासिनां श्रीजैनआत्मानन्दग्रन्थमालासम्पादकानां मुनिप्रवरचतुरविजयाना विनेयः

प्रकाशिका

प्राकृत ग्रन्थ परिषद्,

अहमदावाद–९ : वाराणसी–५

वीरसंवत् २५०१ विक्रमसंवत २०३१ इस्वीसन् १९७५

प्रकाशक

दलसुख मालवणिया
सेक्रेटरी, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी,
ला द भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर
अहमदाबाद ९

मूल्य रु० ३०/–

मुद्रक

मूलग्रन्थ
निर्णयसागर प्रेस
बम्बई

और
मुखपृष्ठ आदिके पृष्ठ
वि पु भागवत
मौज प्रिंटिंग ब्यूरो
खटाववाडी, बम्बई ४

ग्रन्थानुक्रमः

प्रतिपरिचय

इस ग्रन्थ के सम्पादन में कुल तेरह प्रतियों का उपयोग किया गया है। वह इस प्रकार है—सूत्रकृतागसूत्र की पाच प्रतियाँ, सूत्रकृतागसूत्र की निर्युक्ति की तीन प्रतिया और सूत्रकृतागचूर्णि की पाच प्रतिया। इन तेरह प्रतियों मे सूत्रकृतागसूत्र मूल की एक प्रति और सूत्रकृतागसूत्र की चूर्णि की एक प्रति—ये दो प्रतिया मुद्रित आवृत्ति की हैं। एक प्रति का निर्णय नहीं हो सका। शेष दस प्रतिय हस्तलिखित हैं। इन प्रतियों का परिचय इस तरह है—

सूत्रकृतांगमूलसूत्र तथा निर्युक्ति की प्रतियाँ

१–२. 'खं १' प्रति—ताडपत्र पर लिखी हुई यह प्रति, श्री शान्तिनाथजी जैन ज्ञानभडार–खमात–में सुरक्षित है। बड़ौदा–प्राच्य विद्यामन्दिर द्वारा प्रकाशित इस भडार की सूचि में इस प्रति का क्रमाक–६ है। इस प्रति में अनुक्रम से तीन ग्रन्थ लिखे हुए हैं। वे इस तरह हैं— १–श्री शीलाकाचार्यकृत सूत्रकृतागसूत्रवृत्ति, २–श्री भद्रबाहुस्वामिकृत सूत्रकृतागसूत्रनिर्युक्ति, और ३–सूत्रकृतागसूत्र मूल। इस प्रति की लम्बाई-चौडाई ३१ ७×२ २ इच प्रमाण है। कुल पत्र ४२९ है। वि सं १३२७ में यह लिखी गई है। इस प्रति में उपरोक्त तीन ग्रन्थों की समाप्ति का स्थान और अन्तपुष्पिका इस प्रकार है— १–पत्र १ से ३६३ तक में सूत्रकृतागसूत्रवृत्ति लिखी हुई है। इसके अन्त में लेखक ने "सर्वग्र० १३०००" लिखा है। २–पत्र ३६४ से ३७१ वें की पहिली पृष्ठि तक मे सूत्रकृतागसूत्रनिर्युक्ति लिखी हुई है। इसके अन्त मे "ग्रथत' श्लोक २६५ ॥ छ॥" इस तरह लेखक ने लिखा है। ३–पत्र ३७१ वें की द्वितीय पृष्ठि से ४२९ पत्र तक में सूत्रकृतागसूत्र मूल लिखा हुआ है। इसके अन्त में इस प्रकार की पुष्पिका है— "सम्मत्त सूयगड सूत्र गाहाए एकवीससयाणि ॥ छ॥ छ॥ सर्वजातसूत्रे श्लोकाः २६२५ ॥ सर्वसंख्याजात श्लोक १६६०० ॥ छ॥ छ॥ स० १३२७ वर्षे भाद्रपद वदि २ खावग्रेह वीजापुरे"। इस समस्त ग्रन्थ के पूर्ण होने के बाद प्रस्तुत ६ क्रमांकवाली पोथी में सूत्रकृतागसूत्र की निर्युक्ति की सात पन्ने में लिखी हुई एक ताडपत्रीय प्रति भी है। संभव है कि 'ख १' संज्ञक प्रति के निर्युक्ति के पाठ का उपयोग करने के साथ-साथ इस निर्युक्ति की अधिक प्रति का भी पूज्यपाद सम्पादकजी ने उपयोग किया हो।

३–४ 'खं २' प्रति—ताडपत्र पर लिखी हुई यह प्रति भी उपर बताये गये ज्ञानभण्डार की है। सूचि में इसका क्रमाक ७ है। इसकी लंबाई-चौडाई ३०·७×२·२ इंच प्रमाण है। कुल ४६३ पत्र में लिखी हुई इस प्रति में तीन ग्रन्थ लिखे हुए हैं। वे इस प्रकार हैं— १–पत्र १ से ६४ तक में सूत्रकृतागसूत्र मूल, २–पत्र ६५ से ७२ तक में श्री भद्रबाहुस्वामिकृत सूत्रकृतागनिर्युक्ति और ३-पत्र ७३ से ४६३ तक में श्री शीलाकाचार्यकृत सूत्रकृतागसूत्रवृत्ति है। सूत्रकृताङ्गसूत्रवृत्ति के पूर्ण होने पर लेखक की प्रशस्ति इस प्रकार है—

शिवमस्तु सर्वजगत परहितनिरता भवतु भूतगणा ।
दोषा प्रयातु नाश सर्वत्र सुखी भवतु लोक ॥ छ॥

नम श्रीवर्द्धमानाय वर्द्धमानाय वेदसा।
वेदसार पर ब्रह्म ब्रह्मबद्धस्थितिश्च य ॥ १ ॥

स्वबीजमुप्त कृतिभि कृपीवलै क्षेत्रे सुसिक्त शुभभाववारिणा।
क्रियेत यस्मिन् सफल शिवश्रिया पुर तदत्रास्ति दयावटाभिधम् ॥ २ ॥

ख्यातस्तत्रास्ति वस्तुप्रगुणगुणगण. प्राणिरक्षैकदक्ष
सज्ज्ञाने लब्धलक्ष्यो जिनवचनरुचिश्चचटुच्चैश्चरित्र ।
पात्र पात्रैकचूडामणिजिनसुगुरूपासनावासनाया
सघ सुश्रावकाणा सुकृतमतिरमी सति तत्रापि मुख्या ॥ ३ ॥

होनाकः सज्जनश्रेष्ठ श्रेष्ठी कुमरसिंहकः।
सोमाकः श्रावकश्रेष्ठ शिष्टधीररिसिंहकः ॥ ४ ॥

कडुयाकश्च सुश्रेष्ठी सांगाक इति सत्तम ।
खीम्वाकः सुहडाकश्च धर्मकर्मैककर्मठ ॥ ५ ॥

एतन्मुख श्रावकसघ एषोऽन्यदा वदान्यो जिनशासनज्ञ ।
सदा सदाचारविचारचारुक्रियासमाचारशुचिव्रताना॥ ६ ॥

श्रीमज्जगच्चंद्रमुनीन्द्रशिष्यश्रीपूज्यदेवेद्रसूरीश्वराणा।
तदाद्यशिष्यत्वभृता च विद्यानंदाख्यविख्यातमुनिप्रभूणा ॥ ७ ॥

तथा गुरूणा सुगुणैर्गुरूणा श्रीधर्मघोषाभिधसूरिराजां।
सद्देशनामेवमपापभावा शुश्राव भावावनतोत्तमाग ॥ ८॥

विषयसुखपिपासोर्देहिन क्वास्ति शील
करणवशगतस्य स्यात् तपो वाऽपि कीदृक्।
अनवरतमदभ्रारभिणो भावना का-
स्तदिह नियतमेक दानमेवास्य धर्म ॥ ९॥

किंच—

धर्म. स्फूर्जति दानमेव गृहिणां ज्ञानाभयोपग्रहै-
स्त्रेधा तद्वरमाद्यमत्र यदितो नि शेषदानोदय ।
ज्ञान चाद्य न पुस्तकैर्विरहित दातु च लातु च वा
शक्य पुस्तकलेखनेन कृतिभि कार्यस्तदर्थोऽर्थवान् ॥ १०॥

श्रुत्वेति संघसमवायविधीयमानज्ञानार्चनोद्भवधनेन मिथ प्रवृद्धि।
नीतेन पुस्तकमिद श्रुतकोशवृद्धयै बद्धादरश्चिरमलेखयदेष हृष्ट ॥ ११॥

यावज्जिनमतभानु प्रकाशिताशेषवस्तुविस्तार ।
जगति जयतीह पुस्तकमिद बुधैर्वाच्यता तावत् ॥ १२॥ छ॥

सवत् १३४९ वर्षे मार्गशुदि .अद्येह दयावटे श्रे० होना श्रे० कुमरसीह श्रे० सोमाप्रभृति-संघसमवायसमारब्धपुस्तकभाडागारे ले० सीहाकेन लिखित ॥ छ॥

इस प्रशस्ति का सार इस प्रकार है—

दयावट नामक गाव में श्री जैनसंघ में **होनाक, कुमरसिंह, सोमाक, अरिसिंह, कडुयाक, सांगाक, खिवाक, सुहडाक** आदि धार्मिष्ठ श्रेष्ठी रहते थे। इन श्रेष्ठियों ने श्री **विद्यानंदसूरि** तथा श्री **धर्मघोषसूरि** के उपदेश से ज्ञानपूजा के द्रव्य से तथा परस्पर में दान में दिये गये द्रव्य से ज्ञानभडार की वृद्धि के लिए इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् १३४९ की मार्गशीर्ष शुक्ला (यहाँ तिथि का और बार का नाम नष्ट हो गया है) के दिन लिखवाया है। इस ग्रन्थ के लिपिक का नाम **सीहाक** है।

इस प्रशस्ति में बताया हुआ गाव **दयावट** वह इस समय गुजरात के साबरकाठा जिले में आया हुआ **दावड** गाव होना चाहिए।

उपर की प्रशस्ति के आधार से यह कल्पना की जा सकती है कि प्राचीन समय में अनेक गावों के श्री जैनसंघों ने अनेकानेक ग्रन्थों को लिखाकर अनेक ज्ञानभण्डारों का निर्माण किया होगा।

५. 'पु १' प्रति—श्री लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर–अहमदाबाद में सुरक्षित अनेक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहों में के पूज्यपाद आगमप्रभाकर मुनिवर्य श्री पुण्यविजयजी महाराज के संग्रह की सूत्रकृतागसूत्रमूलपाठ की कागज़ पर लिखी गई यह प्रति है। ला. द. विद्यामदिर की ग्रन्थसूचि में इसका क्रमांक ८४०२ है। प्रति की स्थिति अच्छी है और लिपि सुन्दर है। लम्बाई-चौडाई २७.५×११ सें मी. है। कुल पत्र ४८ है। प्रत्येक पन्ने की प्रत्येक पृष्ठि में तेरह पक्तिया है। प्रत्येक पक्ति में कम से कम बावन और अधिक से अधिक सत्तावन अक्षर है। प्रत्येक पत्र की प्रत्येक पृष्ठि के मध्य मे कोरा भाग-रिक्ताक्षर रख कर शोभन किया हुआ है और उस के बीच हिंगुल से गोल चन्द्राकार लाल शोभन बनाया हुआ है। प्रत्येक पत्र की द्वितीय पृष्ठि के दोनों ओर कोरे भाग में—मार्जिन में भी हिंगुल से वर्तुलाकार शोभन बनाया हुआ है। प्रथम पत्र की प्रथम पृष्ठि कोरी है। ४८ वें पत्र की द्वितीय पृष्ठि की छठी पक्ति में सूत्रकृतागसूत्र पूण होता है। उसके बाद लेखक की पुष्पिका छठी पक्ति से नौवीं पक्ति तक में है। वह इस प्रकार है—"संवत् १७१४ वर्षे श्री नवानगरे अचलगच्छे वा० श्रीविवेकशेखरगणिशिष्य वा० श्रीभावशेखरगणि लिखित माह शुदि ६ दिने। साधवी विमला सष्यणी साधवी कपूरा सष्यणी साधवी देमा सष्यणी साधवी पद्मलक्ष्मीवाचनाय॥ श्री शातिनाथप्रसादात् वाच्यमानो चिर॥ श्री ग्रथाग्र २१०००॥ श्रीः॥ श्री हालारदेशे॥ श्रीकल्याणसागरसूरीश्वरविजयराजे ॥ श्रीरस्तु॥ ॥ श्री गुरुभ्यो नमः॥ श्री जैन भारते नमः॥ श्रीः"

उपर की पुष्पिका में ग्रन्थ का श्लोकप्रमाण २१००० है उसे इक्कीससौ समझा जाय। यहाँ इक्कीस लिख कर सौ (१००) की संख्या बताने के लिए तीन शून्य ००० लगाये गये हैं। इस प्रकार का अक लेखन कई प्राचीन प्रतियों में देखने में आता है।

६-७. 'पु २' प्रति—यह प्रति भी उपर्युक्त ग्रन्थसंग्रह की है। ला द विद्यामदिर की ग्रन्थसूचि में इसका क्रमाक ८३६३ है। स्थिति जीर्ण है। लिपि सुन्दर है। लम्बाई–चौडाई ३४×१३ सें मी है। कागज उपर लिखि हुई इस प्रति में सूत्रकृतागसूत्र मूल तथा

सूत्रकृतागसूत्रनिर्युक्ति लिखी हुई है। उसके अन्त में लेखकने पुष्पिका लेखन संवत आदि कुछ भी नहीं लिखा है। फिर भी आकार-प्रकार और लिपि के मरोड के आधार से कहा जा सकता है कि यह प्रति विक्रम की सोलहवीं सदी में लिखाई गई हो। कुल पत्र ४४ है। प्रथम पत्र की प्रथम पृष्ठी कोरी है और उसकी दूसरी पृष्ठि से सूत्रकृतागसूत्र का मूल प्रारंभ होता है। इस द्वितीय पृष्ठिका को देखनेवाले के दक्षिणी भाग में समवसरण का चित्र है। सुनहरी आदि रगों से आलेखित इस चित्र की लम्बाई-चौडाई-१२.५×७.३ सें. मी. है। प्रत्येक पत्र की प्रत्येक पृष्ठि में पद्रह पंक्तिया है। सामान्यतः प्रत्येक पक्ति में छप्पन अथवा सत्तावन अक्षर हैं। किसी पक्ति में बावन अक्षर भी है। प्रत्येक पत्र की प्रत्येक पृष्ठि के वीच और द्वितीय पृष्ठिका की दोनों ओर के हासिये में 'पु १' प्रति की तरह शोभन किया है। विशेष इतना ही है कि 'पु १' प्रति में लाल रग है उसके स्थान पर यहाँ पीला रग भर कर दोनों और आसमानी कलर में कंगूरे का शोभन बनाया गया है। ३९ वें पत्र की दूसरी पृष्ठि की चौदहवीं पक्ति में सूत्रकृतागसूत्र पूर्ण होता है। उसके वाद लेखक ने इस प्रकार शुभकामना लिखी है।—"पद्मोपमं पत्रपरम्परान्वितं वर्णोज्ज्वल सूक्तमरन्दसुन्दरम्। मुमुक्षुभृङ्गप्रकरस्य वल्लभ जीयाच्चिर सूत्रकृदङ्गपुस्तकम्॥ ॥ छ ॥ शुभं भवतु ॥ छ ॥ छ ॥" ४० वें पत्र की प्रथम पृष्ठि से ४४ वें पत्र की द्वितीय पृष्ठि की सातवी पक्ति तक में सूत्रकृतागसूत्र-निर्युक्ति लिखी हुई है। उसके वाद यहाँ वनाई गई (पत्र ३९ वें के अंत में लिखी हुई) शुभकामना लेखक ने पुन: लिखी है।

८ 'सा०' प्रति—आगमोदय समिति द्वारा वि० सं. १९७३ में प्रकाशित 'श्री शीलाकाचार्यविहितविवरणयुत सूत्रकृतागसूत्रम्' ग्रन्थ मे मुद्रित सूत्रकृताङ्गसूत्र की मूलवाचना।

सूत्रकृतांगसूत्रचूर्णि की प्रतियां

प्रस्तुत चूर्णि की पाच प्रतियों में तीन प्रतिया हस्तलिखित हैं। ये तीनों प्रतिया पाटण में श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर के विविध भडारों की है। पूज्यपाद आगमप्रभाकरजी महाराज के स्वर्गवास के वाद तुरत ही इन तीनों प्रतियों को पाटण भेज कर उन उन भंडारों में जमा करा दी थी, अत: श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर की मुद्रित ग्रन्थसूचि में से ही इन तीनों प्रतियों का परिचय यहाँ दिया गया है।

९ 'वा०' प्रति—श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमदिर-पाटण (उ० गु०)—में सुरक्षित अनेक प्राचीनतम ज्ञानभडारों में से श्री वाडी-पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार की कागज़ पर लिखी गई यह प्रति है। ज्ञानमंदिर की सूचि में इसका क्रमाक ६५४८ है। पत्र १४९' है किन्तु चालीस के अकवाले दो पत्र होने से कुल पत्र की सख्या १५० है। इसकी लंबाई-चौडाई १२×४॥ इच प्रमाण है। इसके अन्त में लेखक की पुष्पिका आदि कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। फिर भी आकार-प्रकार से एवं लिपि के आधार से जाना जा सकता है कि यह प्रति विक्रम की पद्रहवी सदी में लिखाई गई होनी चाहिए। इसकी स्थिति अच्छी है, लिपि सुन्दर है।

इस भंडार की क्रमाक ६५३४ वाली विक्रम संवत १४९४ में लिखाई हुई सूत्रकृतागसूत्रचूर्णि की प्रति भी पूज्यपाद सम्पादकजी के स्वर्गवासी होने तक उनके पास ही में थी अत उसका भी यहा उपयोग हुआ ही होगा ऐसा मेरा अनुमान है।

१०. 'मो०' प्रति—कागज़ पर लिखाई गई यह प्रति भी उपर्युक्त ज्ञानमदिर में सुरक्षित श्री मोदी जैन ज्ञानभंडार की है। सूचि में इसका क्रमाक ९९९१ है। पत्रसंख्या १९१ है। लंबाई-चौडाई १३॥×५। इंच प्रमाण है। स्थिति जीर्ण है और लिपि सुन्दर है। अत में लेखक ने सवत नहीं लिखा है फिर भी तदुचित अनुमान से जाना जा सकता है कि यह प्रति विक्रम की सोलहवी सदी में लिखाई गई हो।

११ 'सं०' प्रति—कागज उपर लिखाई गई यह प्रति उपर्युक्त ज्ञानमन्दिर में सुरक्षित श्री सघ जैन ज्ञानभडार की है। सूचि में इसका क्रमाक ८४३ है। पत्रसख्या १२५ है। लंबाई-चौडाई १३॥×५.१ इच प्रमाण है। स्थिति अच्छी और लिपि सुन्दर है। अन्त में लेखक की पुष्पिका आदि कुछ भी नहीं होने पर भी तदुचित अनुमानत इसका लेखन सवत विक्रम का पद्रहवाँ शतक होना चाहिए।

१२ 'मु०' प्रति—श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी रतलाम द्वारा वि० स० १९९८ में प्रकाशित हुई सूत्रकृतागसूत्रचूर्णि की मुद्रित प्रति।

१८. 'पु०' प्रति—इस प्रति का सही निर्णय नहीं हो पाया है।

कार्तिक शुक्ला १२
सवत २०३१

विद्वज्जनविनेय
अमृतलाल मोहनलाल भोजक

सङ्केतसूचिः

अ०
अध्य० } —अध्ययनम्

अनु०
अनुयो० } —अनुयोगद्वारसूत्रम्

आचा० —आचाराङ्गसूत्रम्

आव० —आवश्यकसूत्रम्

आव० नि० —आवश्यकसूत्रनिर्युक्तिः

आव० हारि०
आव० हारि० वृ०
आहावृ० } —आवश्यकसूत्रहरिभद्रसूरिकृतवृत्ति.

आसं० —आगमप्रभाकरमुनिवर्यश्रीपुण्यविजयशोधिते आवश्यकसूत्रनिर्युक्तेः सशोधिते मुद्रितादर्शे

उ० —उद्देशक.

उत्त०
उत्तरा० } —उत्तराध्ययनसूत्रम्

उत्तचू० —उत्तराध्ययनसूत्रचूर्णिः

उत्तनि० —उत्तराध्ययनसूत्रनिर्युक्तिः

उत्त० पाइ० —उत्तराध्ययनसूत्रपाइयटीका—आचार्यश्रीशान्तिसूरिकृतटीका

ओघनि० —ओघनिर्युक्ति

औपपा० —औपपातिकसूत्रम्

कल्पभा० —बृहत्कल्पसूत्रभाष्यम्

का० —काव्यम्

खं १ —'ख १' सञ्ज्ञकप्रति

खं २ —'ख २' सञ्ज्ञकप्रति

गणि० प्र० —गणिविद्याप्रकीर्णकम्

चूपा० —सूत्रकृताङ्गसूत्रचूर्णौ निर्दिष्ट पाठान्तरम्

चूसप्र० —सूत्रकृताङ्गसूत्रचूर्णे. समग्रप्रतिषु

जीवा० —जीवाभिगमसूत्रम्

जीवा० प्रति०
जीवाभि० प्रति० } —जीवाभिगमसूत्रस्य प्रतिपत्ति

ज्ञाता० —ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रम्

तत्त्वा० —तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्

दश० नि० —दशवैकालिकसूत्रनिर्युक्तिः

दशवै० —दशवैकालिकसूत्रम्

दशा०
दशाश्रु० } —दशाश्रुतस्कन्ध

दी० —सूत्रकृताङ्गसूत्रदीपिका

दीपा० —सूत्रकृताङ्गसूत्रदीपिकाया निर्दिष्ट पाठान्तरम्

नन्दी० — नन्दीसूत्रम्
नि० — निर्युक्तिः
पु० — 'पु०' संज्ञकप्रतिः
पु १ — 'पु १' संज्ञकप्रति
पु २ — 'पु २' संज्ञकप्रतिः
पुसूपा० — पु० संज्ञकप्रतौ पाठभेदः
प्रज्ञा० — प्रज्ञापनासूत्रम्
प्रशम० आ० — प्रशमरतिप्रकरणस्य आह्निकम्
बृहत्कल्प० मलय० वृत्तौ — बृहत्कल्पसूत्रस्य मलयगिरिसूरिकृतवृत्तौ
भग० श० / भगवतीश० } — भगवतीसूत्रस्य शतकम्
मु० — 'मु०' संज्ञकप्रति.
मो० — 'मो०' संज्ञकप्रति
वक्ष० — वक्षस्कार.
वसु० प्र० खं० लं० — वसुदेवहिंडीप्रथमखण्डस्य लम्भकः
वा० — 'वा०' संज्ञकप्रतिः
विआ० — विशेषावश्यकमहाभाष्यम्
वि० प० — सूत्रकृताङ्गसूत्रस्य विषमपदपर्यायः
विशेषप० — (?)
विशेषा० — विशेषावश्यकमहाभाष्यम्
विस्वो० — विशेषावश्यकमहाभाष्यस्य स्वोपज्ञा टीका
वृ० — सूत्रकृताङ्गसूत्रस्य श्रीशीलाङ्काचार्यकृता वृत्तिः
वृपा० — श्रीशीलाङ्काचार्यकृतसूत्रकृताङ्गसूत्रवृत्तौ निर्दिष्टं पाठान्तरम्
वृप्र० — श्रीशीलाङ्काचार्यकृतसूत्रकृताङ्गसूत्रवृत्तेः प्रत्यन्तरे
श्रमणप्रति० — श्रमणप्रतिक्रमणसूत्रम्
श्रु० — श्रुतस्कन्ध
श्लो० — श्लोक
सन्मति० का० — सन्मतितर्कस्य काण्ड
समवा० — समवायाङ्गसूत्रम्
सं० — 'सं०' संज्ञकप्रतिः
संस्ता० पौ० — संस्तारकपौरुषी
संस्तारकप्र० — संस्तारकप्रकीर्णकम्
सा० — 'सा०' संज्ञकप्रति
सिद्ध० द्वा० — श्रीसिद्धसेनाचार्यकृता द्वात्रिंशिका
सू० — सूत्रम्
स्थाना० स्था० / स्थाना० स्था० } — स्थानाङ्गसूत्रस्य स्थानम्



॥ णमो त्थु णं समणस्स भगवओ महइमहावीरवद्धमाणसामिस्स ॥

पंचमगणहरसिरिसुहम्मसामिवायणाणुगतं

विइयमंगं

सूयगडंगसुत्तं ।

णिज्जुत्ति-चुण्णिसमलंकियं ।

॥ पढमो सुयक्खंधो ॥

पढमं समयज्झयणं । पढमो उद्देसओ ।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

णमो अरहंताणं[1] । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं । णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ।

मंगलादीणि सत्थाणि मंगलमज्झाणि मंगलअवसाणाणि । मंगलपरिग्गहिआ सिस्सा अवग्गहेहा-ऽवाय-धारणासमत्था सत्थाण पारगा भवंति, ताणि य सत्थाणि लोगे विरायंति वित्थारं च गच्छंति । तत्थाऽऽदिमंगलेण सिस्सा आरंभप्पभिति णिव्विसाता सत्थं पडिवज्जिऊणं अविग्घेण सत्थस्स पारं गच्छंति, मज्झमंगलेण तदेव सत्थं परिजितं भवति, अवसाणमंगलेण सिस्स-पसिस्ससंताणे पडिवाएन्ति ।

☞ आह[2]—आचार्याः ! मङ्गलकरणाच्छास्त्रं न मङ्गलमापद्यते, अथ चेह मङ्गलात्मकस्यापि शास्त्रस्यान्यन्मङ्गलमुच्यते अतस्तस्याप्यन्यत् तस्याप्यन्यन्मङ्गलमादेयमित्यतोऽनवस्था, न चेदनवस्था प्रतिपद्यते ततो यथा मङ्गलमपि शास्त्रमन्यमङ्गलशून्यत्वान्न मङ्गलं तथा मङ्गलमपि अन्यमङ्गलशून्यत्वादमङ्गलमिति मङ्गलाभावः, उच्यते—यस्य शास्त्रादर्थान्तरभूतं मङ्गलं तं प्रत्येषा कल्पना भवेत्, इह त्वस्माकं शास्त्रमेव[3] मङ्गलम्, यद् मङ्गलमुपादीयते किमत्रामङ्गलम् ? का वाऽनवस्था ? इति, नायमसत्पक्षः, किन्तु यस्यापि शास्त्रादर्थान्तरभूतं मङ्गलं तस्यापि नामङ्गलप्रसङ्गो न चानवस्था, कुतः ?, स्व-परानुग्रहकारित्वान्मङ्गलस्य, प्रदीपवद् लवणादिवद्वा । आह—मङ्गलत्रयान्तरालद्वयं[4] न मङ्गलमापद्यतेऽर्थापत्तितः, यदि वा इह सर्वमेव शास्त्रं मङ्गलमिति प्रतिपद्यते मङ्गलत्रयग्रहणमनर्थकम् ?, उच्यते—समस्तमेव शास्त्रं त्रिधा विभज्यते, कुतोऽन्तरालद्वयपरिकल्पनं यदमङ्गलं भवेत् ? । कथं पुनः सर्वमेव शास्त्रं मङ्गलम् ? इति चेत्, उच्यते—निर्जरार्थत्वात्, तपोवत् । आह—यदि स्वयमेव शास्त्रं मङ्गलमित्यतः किमिह मङ्गलग्रहणं क्रियते ?, उच्यते—ननूक्तं 'नैवेह शास्त्रादर्थान्तरभूतं मङ्गलमुपादीयते, किन्तु मङ्गलमिदं शास्त्रमिति केवलमुच्चार्यते' । आह—तदुच्चारणं किंफलम् ? यदि मङ्गलमिति न[5] सम्बध्यते किं तदमङ्गलं भवति ?, उच्यते—शिष्यमतिमङ्गलपरिग्रहार्थं तदभिधानम्, इह शिष्यः कथं शास्त्रं मङ्गलमित्येवं[6] मङ्गलबुद्ध्या परिगृह्णीयात् ? इति, यस्मादिह मङ्गलमपि मङ्गलबुद्ध्या परिगृह्यमाणं मङ्गलं भवति, साधुवत् । आह—ततः सर्वमेवेदं मङ्गलमित्येतावदस्तु नार्थो मङ्गलत्रयं

---

१ अरिहं° वा० मो० ॥ २ हस्तचिह्नमध्यवर्त्ययं समग्रोऽपि चूर्णिग्रन्थसन्दर्भश्चूर्णिकृता विशेषावश्यकमहाभाष्यस्वोपज्ञटीकातोऽक्षरश आहृतोऽस्ति ॥ ३ शास्त्रमेव मङ्गलात्मकत्वाद् मङ्गलमयमुपादीयते किम[त्रा]मङ्गलम् ? का वाऽनवस्था ? इति इति विशेषावश्यकस्वोपज्ञटीकाया पाठ ॥ ४ °द्वयममङ्गल° विस्वो० ॥ ५ न संशब्द्यते किं विस्वो० ॥ ६ °लमित्येव परि° विस्वो० ॥

बुद्धिपरिग्रहेण, उच्यते—ननु तत्रापि कारणमुक्तम्, यथैव हि शास्त्रं मङ्गलमपि सद् न मङ्गलबुद्धिपरिग्रहमन्तरेण मङ्गलं भवति, साधुवत्, तथा मङ्गलत्रयकारणमपि अविघ्नपारगमनादि न मङ्गलत्रयबुद्ध्या विना सिध्यतीत्यतस्तदभिधानमिति ।

मगेर्गत्यर्थस्य अलप्रत्ययान्तस्य मङ्गलमिति रूपं भवति । मङ्ग्यतेऽनेन हितमिति मङ्गलम्, मङ्ग्यते [अधिगम्यते] साध्यत इति यावत् । अथवा मङ्गः-धर्मः, "ला आदाने" मङ्गं लातीति मङ्गलम्, धर्मोपादानहेतुरित्यर्थः । अथवा निपातनादिष्टार्थ-प्रकृति-प्रत्ययोपादानाद् मङ्गलम् । इष्टार्थाश्च प्रकृतयः—"मकि मण्डने, मन् ज्ञाने, मदी हर्षे, मदि मोद-स्वप्न-गतिषु, मह पूजायाम्" इति, एवमादीनामलप्रत्ययान्ताना मङ्गलमित्येतन्निपात्यते । मङ्क्यते अनेन मन्यते वाऽनेनेति मङ्गलमित्यादि लक्षणशास्त्रानुवृत्त्या योजनीयमिति । अथवा मां गालयति भवादिति मङ्गलम्, संसारादपनयतीत्यर्थः । अथवा शास्त्रस्य मा गलो भूदिति मङ्गलम्, गलः—विघ्नम् । मा गालो वा भूदिति मङ्गलम्, गलनं गालः, नाश इत्यर्थः । सम्यग्दर्शनादि-मार्गलयनाद्वा मङ्गलमित्यादि नैरुक्ता भाषन्त इति । [विशेषा० गा० १५ व २४ पर्यन्तगाथाना स्वोपज्ञटीका]

तं च नामादि चतुर्विधं पि जधा आवस्सए [चूर्णी भाग १ पत्र ५] तधा परूवेतव्वं जाव जाणगसरीरभवियसरीरव-इरित्तं दव्वमंगलं दध्यक्षत-सुवर्ण-सिद्धार्थकादि । भावमंगलं पि तहेव ॥ अथवा भावमंगलं णिज्जुत्तिकारेणं चेव वुत्तं—

❀ तित्थगरे य जिणवरे सुत्तगरे गणधरे य णमिऊणं ।
सूतकडस्स भगवतो णिज्जुत्तिं कित्तयिस्सामि ॥ १ ॥

इह तीर्थकरणात् तीर्थकरा वक्ष्यन्ते । तत्र "तॄ प्लवन-तरणयोः" इत्यस्य तीर्थमिति । तं च नामादि चतुर्विधम् । तत्थ दव्वतित्थं मागहादि, अहवा सरिआदीणं जो अवगासो समो णिरुपायो य । तिज्जति जं तेण तहिं वा तरिज्जइ त्ति तित्थं । एवं दव्वतित्थे पसिद्धे तरिता तरणं तरियव्वं च पसिद्धाणि चेव । तत्थ तारओ पुरिसो, तरणं बाहोडुवादि, तरियव्व णदी समुद्दो वा । तं च देहादितरितव्वतारणतो दाहोवसमणतो तण्हाछेदणओ वज्झमलपवाहणतो अणेगंतियं अणच्चंतियं फलतो य, स्वयं च द्रव्यात्मकत्वाद् द्रव्यतीर्थमुच्यते । अपि च—

दाहोवसमं तण्हाए छेदणं मलपवाहणं चेव । तिसु अत्थेसु णियुत्तं तम्हा त दव्वतो तित्थं ॥ १ ॥

[आव० नि० गा० १०६६ पत्र ४९८–१]

भावतित्थं चउवण्णो सघो । जतो सुत्ते भणियं—"तित्थं भंते ! तित्थं ? तित्थकरे तित्थं ?, गोतमा ! अरहा ताव णियमा तित्थकरे, तित्थं पुण चाउव्वण्णाइण्णो सघो ।" [भग० श० २० उ० ८ सू० ६८१ पत्र ७९२–२] । तम्मि य पसिद्धे तरिता तरणं तरियव्वं च पसिद्धाणि चेव । तत्थ तरिता साधू, तरणं सम्मद्दसण-णाण-चरित्ताणि, तरितव्वं भवसमुद्दो । जतो णाणादिभावतो मिच्छत्त-ऽण्णाणा-ऽविरतिभवभावेहिंतो त्तारयति तेण भावतित्थ ति । अधवा कोध-लोभ-कम्मरय दाह-तण्हाछेद-कम्ममलावणयणमेगंतिअमच्चंतियं च तेण कज्जति त्ति अतो भावतित्थं । अपि च—

कोहम्मि उ णिग्गहिते अतुलोवसमो भवे मणूसाणं । लोभम्मि उ णिग्गहिते तण्हावोच्छेदणं होति ॥ १ ॥
अट्ठविहो कम्मरओ बहुएहिं भवेहिं संचितो जम्हा । तव-संजमेणं धोव्वति तम्हा तं भावतो तित्थं ॥ २ ॥

अधवा—

दंसण-णाण-चरित्तेहिं णिउत्तं जिणवरेहिं सव्वेहिं । तिहि अत्थेहिं णिउत्तं तम्हा तं भावतो तित्थ ॥ ३ ॥

[आव० नि० गा० १०६७–६९ पत्र ४९८–२]

तं भावतित्थ जेहि कत ते तित्थकरे । तित्थकरग्रहणेन अतीता-ऽणागत-वट्टमाणा सव्वतित्थकरा गहिता । जिणे त्ति दव्वजिणा भावजिणा य । दव्वजिणा जेण जं दव्वं जितं, यथा जितमनेनौषधमिति, सङ्ग्रामे वा शत्रुजयाद् द्रव्य-

---

१ °करण° पु० स० ॥ २ मङ्ग्यते अधिगम्यते साध्यते° विशे० ॥ ३ मदि मोद-मद-स्वप्न-गतिषु विशे० । "मदि स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु" इति पाणिनिधातुपाठे, माधवीयधातुवृत्तौ च पत्र ८२ ॥ ४ °शास्त्रयाऽनु° वा० मो० । °शास्त्री-ययाऽनु° मु० ॥ ५ विघ्न० विशे० ॥ ६–७ °करे ख १ ख २ पु २ ॥ ८ सुत्तगडस्स ख १ । सूयगडस्स पु २ ॥ ९ °ण वोच्चति चूसप्र० ॥

जिना भवन्ति। भावजिणा जेहिं कोध-माण-माया-लोभा जिता। जिणगहणेण उवसामग-वेदग-सजोगिजिणा तिण्णि वि गहिता। तदणंतरं [जेहिं] सुत्तं सुत्तकतं ते गणधरा एक्कारस वि। चग्गहणेण सेसगणधरवंसो वि। सूतकडस्स त्ति उवरिं भणिहिति।

अत्थ-जस-धम्म-लच्छी-पयत्त-विभवाण छण्हमेतेसिं। भग इति सण्णा सो जस्स अत्थि सो भण्णती भगव ॥ १ ॥

[ ]

अतो सूतकडस्स भगवतो णिज्जुत्तिं ति निश्चयेन-आधिक्येन सार्थादितो वा युक्ता निर्युक्ताः, सम्यगवस्थिताः श्रुताभिधेयविशेषा जीवादयः। तथाहि—सूत्रे त एव निर्युक्ताः, यत् पुनः रचनयोपनिबद्धास्तेनेयं निर्युक्तानां युक्तिः निर्युक्तयुक्तिः, युक्तशब्दलोपाद् निर्युक्तिः। आह—यदि सूत्र एव निर्युक्ताः सम्यगवस्थानात् सुखबोधा एव ते अर्थाः किमिह तेऽर्था निर्युक्ताः?, उच्यते—निर्युक्ता अपि सन्तः सूत्रेऽर्थाः निर्युक्त्या पुनरव्याख्यानान्न सर्वेऽवबुध्यन्ते, अतो णिज्जुत्तिं कित्तयिस्सामि परूवेस्सामि ॥ १ ॥

अधवा भावमंगलं णंदी। सा वि णामादि चतुर्विधा। दव्वे संखवारस्सगतूरसंघातो। भावणंदी पंचविधं णाणं। "णादंसणिस्स णाणं" [उत्त० अ० २८ गा० ३०] मिति काऊणं दंसणमवि तदन्तर्गतं चेव, दंसणपुव्वगं च चरित्तमवि गहितं। णदिं वण्णेऊणं सुतणाणेण अधिगारो। उक्तं च—

एत्थं पुण अधिकारो सुतणाणेण जतो सुतेणं तु। सेसाणमप्पणो वि य अणुओग पदीव दिट्ठंतो ॥ १ ॥

[आव० नि० गा० ७९ पत्र ५०]

जतो य सुतणाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुयोगो य पवत्तति, तत्थ वि उद्देस-समुद्देस-अणुण्णातो गतातो, इह तु अणुयोगेण अहियारो। सो चतुर्विधो। तं जधा—चरणकरणाणुयोगो १ धम्माणु० २ गणिताणु० ३ दव्वाणुयोगो ४। तत्थ कालियसुयं चरणकरणाणुयोगो १ इसिभासिओत्तरज्झयणाणि धम्माणुयोगो २ सूरपण्णत्तादि गणिताणुयोगो ३ दिट्ठिवातो दव्वाणुजोगो त्ति ४। अधवा दुविधो अणुयोगो—पुधत्ताणुयोगो अपुधत्ताणुयोगो य। पुधत्ताणुयोगो जत्थ एते चत्तारि अणुयोगा पिहप्पिहं वक्खाणिज्जंति। अपुहत्ताणुजोगो पुण जं एक्केकं सुत्तं एतेहिं चतुहिं वि अणुयोगेहिं सत्तहि य णयसतेहिं वक्खाणिज्जति। केच्चिरं पुण कालं अपुधत्तं आसि?, उच्यते—

जावंति अज्जवइरा अपुधत्तं कालियाणुयोगस्स। तेणाऽऽरेण पुधत्तं कालियसुत दिट्ठिवाते य ॥ १ ॥

[आव० नि० गा० ७६३ पत्र २८५-२]

केण पुण पुधत्तं कतं?, उच्यते—

देविंदवंदितेहिं महाणुभागेहिं रक्खितअज्जेहिं। जुगमासज्ज विभत्तो अणुयोगो तो कतो चतुधा ॥ १ ॥

[आव० नि० गा० ७७४ पत्र २९६-१]

अज्जरक्खितउट्ठाण-पारियाणियं परिकधेऊण पूसमित्ततियं विंझं च विसेसेऊणं जहा य पुधत्ती कता तधा भाणिऊण इह चरणाणुयोगेण अधिकारो। सो पुण इमेहिं दारेहिं अणुगंतव्वो। तं जधा—

णिक्खेवे १ गट्ठ २ णिरुत्त ३ विधि ४ पवत्ती ५ य केण वा ६ कस्स ७।
तद्दार ८ भेद ९ लक्खण १० तदरिहपरिसा ११ य सुत्तत्थो १२ ॥ १ ॥

[कल्पभाष्ये गा० १४९ पत्र ४६]

तत्थ णिक्खेवो णासो णामादि। एगट्ठियाणि सक्क-पुरंदरवत्, ताणि पुण सुत्तेगट्ठियाणि अत्थेगट्ठिताणि य। णिच्छितमुत्तं णिरुत्तं, णिव्वयणं वा णिरुत्तं, तं पुण अत्थणिरुत्त सुत्तणिरुत्तं च। विधी काए विधीए सुणेतव्व?। पवत्ती कधं अणुयोगो पवत्तति?। केवंविधेण आचार्येण अत्थो वत्तव्वो?। एताणि दाराणि जधा आयारे कप्पे [भाष्य गा० १४९ त ८०५]

---

१ °भग-खवग-सजो° मु०॥ २ सुत्तं सुत्तं कतं चूसप्र०॥ ३ सूत्रत एव पु० विना॥ ४ आर्यरक्षितस्थविराणां पुष्यमित्रत्रिकस्य विन्ध्यस्य च चरित आवश्यकचूर्णि भाग १ पत्र ४०१, आव० हारि० वृत्ति पत्र ३०० मध्ये द्रष्टव्यम्॥ ५ दुर्बलिकापुष्यमित्र घृतपुष्यमित्र वस्त्रपुष्यमित्रश्चेतिनामानस्त्रय स्थविरा पुष्यमित्रत्रिकत्वेन ख्यातिं प्राप्ता ॥

वा परूविताणि तधा परूवेतव्वाणि । जाव एवविवेण आयरिएण कस्स अत्थो वत्तव्वो? त्ति, उच्यते—सव्वस्सेव सुतणाणस्स, वित्थरेण पुण सुत्तकडस्स, जेणेत्थ परसमयदिट्ठीओ परूविज्जंति । कस्स त्ति वत्तव्वे जति सूतकडस्सा अणुयोगो सूतकड णं किं अंगं अंगाइं ? सुतक्खन्धो सुतक्खन्धा ? अज्झयणं अज्झयणा ? उद्देसो उद्देसा ?, उच्यते—सूयगडं णं अंगं णो अंगाइं, णो सुयक्खधो सुयक्खंधा, णो अज्झयणं अज्झयणा, णो उद्देसो उद्देसा, तम्हा सुत्तं णिक्खिविस्सामि, कडं णिक्खिविस्सामि, सुतं णिक्खिविस्सामि, खंध णिक्खिविस्सामि, अज्झयणं णिक्खिविस्सामि, उद्देसं णिक्खिविस्सामि ॥

॥ [1]सुत्तकडं अंगाणं [2]वितियं तस्स य इमाणि णामाणि ।
[3]सूतकडं सुत्तकडं [4]सूयगडं चेव [5]गोण्णाइं ॥ २ ॥

सुअपुरुसस्स वारसंगाणि मूलत्थाणीयाणि । सेससुतक्खंधा उवगाणि, कलाच्यङ्गुष्ठादिवत् । तेसिं वारसण्हं अंगाणं एतं **वितियं** अंगं । **णामाणि** एगट्ठियाणि इन्द्र-शक्र-पुरन्दरवत् । त जधा—**सूतकडं** ति वा **सुत्तकडं** ति वा **सूयकडं** ति वा । णामं पुण दुविधं—गोण्णं इतर च । गुणेभ्यो जाय गौणम्, जधा तवतीति तवणो, जलतीति जलणो एवमादि, तत्थेताणि एगट्ठियणामाणि **गोण्णाति** । तत्थ **सूतकडं**—"पूङ् प्राणिप्रसवे" सो पसवो दुविधो—दव्वे भावे य, द्रव्यपसवो स्त्रीगर्भप्रसववत्, भावप्रसवो गणधरेभ्य इद प्रसूतम्, अधवा "अत्थ भासति अरहा०" [आव० नि० गा० ९२ पत्र ६८-२] ततः सूत्रं प्रसवति । **सुत्तकड** त्ति यथा—गृहवास्तुसूत्रवत् तदनुसारेण कुड्यं क्रियते, कट्ठं वा सुत्ताणुसारेण करवत्तिज्जत्ति, भावसूत्रेण तु सूत्रानुसारेण निर्वाणपथं गम्यते । **सूतकडं** णामादि चतुर्विधम्, वइरित्ता दव्वसूयणा जधा लोए सूयग-णेलग-वरूवगा, लोहसूयगादी वा दव्वसूयगा । भावे इम चेव खयोवसमिए भावे ससमय-परसमयसूयणामेत्तं ॥ २ ॥

अधवा सुत्त णामादि चतुर्विधम् । तत्थ दव्वसुत्ते इमा णिज्जुत्तिअद्धगाथा—

॥ दव्वं तु [6]पोंडगादी भावे [7]सुत्तमह सूयगं णाणं ।

दव्वसुत्त अंडजं १ पोंडजं २ कीडजं ३ वागज ४ वालज ५ । से किं तं अंडजं ? हंसगब्भादि १ पोंडजं कप्पासादी २ कीडजं कोसियादि ३ वागजं सण-अयसिमाती ४ वालजं [8]उण्हियादि ५ । भावे इम चेव भवति । **सूयगं** णाम **णाणं**, णाण णाणेण चेव सूइज्जइ । अधवा इमेण णाणेणं णाणाणि य अण्णाणाणि य सूइज्जंति, तं पुण जधा—"बुज्झिज्ज तिउट्टिज्ज" [सू० गा० १] त्ति ॥ तं सूत्र चतुर्विधम्—

॥ सण्णा संगह [9]वित्ते जातिणिवद्धे य कत्थादि ॥ ३ ॥

तत्थ **सण्णासुत्त** तिविध—ससमए परसमए उभये त्ति । ससमए ताव—विगिती[10] पढमिया, "जे छेए सागारियं ण से सेवे" [आचा० श्रु० १ अ० ५ उ० १ सू० १] "सव्वामगधं परिण्णाय णिरामगधो परिव्वए ।" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ५ सू० २] एवमादीणि । परसमए यथा—पुद्गलो संस्काराः क्षेत्रज्ञः सत्ता । उभये—जं ससमए परसमए य सभवति । **सङ्ग्रहसूत्रमपि** यथा—द्रव्यमित्याकारिते सर्वद्रव्याणि सङ्गृहीतानि, तद्यथा—जीवा-ऽजीवद्रव्याणीति, जीव त्ति ससारत्था असंसारत्था य सव्वे संगहिता, अजीव त्ति सव्वे धम्मत्थिकायादयो । [11]**वित्ते जातिणिवद्धं** सुत्तं जाव वृत्तवद्धं सिलोगादिवद्ध वा । त चउव्विधं, त जधा—गद्यं पद्यं कथ्यं गेयम् । **गद्यं** चूर्णिग्रन्थः [12]ब्रह्मचर्यादि [वा] । **पद्यं** [13]गाथासोलसगादि । कथनीयं **कथ्यम्**, जधा **उत्तरज्झयणाणि इसिभासिताणि णायाणि** य । **गेयं** णाम यद् गीयते सरसचारेण, जधा **काविलिज्जे** ।

"अधुवे असासयम्मी ससारम्मि दुक्खपउराए ।"

[उत्त० अ० ८ गा० १] ॥ ३ ॥

---

१ सूयगडं ख १ ख २ पु २ ॥ २ वीयं खं १ ॥ ३ सूयगडं सुत्तगडं सूयगडं ख १ ख २ पु २ ॥ ४ सूयाकडं इति वाच्ये सूयकडं इति ह्रस्वता वन्धानुलोम्यात्, "नीया लोवमभूया य आणिया वीह-विंदु-दुब्भावा ।" इत्यादिवचनात्, तथा च न पर्यायैक्यम् ॥ ५ गुण्णाणि खं १ ॥ ६ पुंडगाई ख १ । वोंड्यादी पु २ ॥ ७ सुत्तमिह ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ८ उट्टियादि मु० ॥ ९ वित्ती जातिणिवंधे य कच्छादि चूसप्र० ॥ १० विगती वा० मो० ॥ ११ वित्तिजा० चूमप्र० ॥ १२ आचाराङ्गप्रथमश्रुतस्कन्ध, उत्तराध्ययनसूत्रसत्क षोडश ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानाख्यमध्ययनपूर्वार्धं वा ॥ १३ सूत्रकृताङ्गसूत्रप्रथमश्रुतस्कन्धादीत्यर्थ ॥

एवं सुयं गतं भवति। इदाणिं वितियं पयं कडे त्ति। तत्थ गाधा—

करणं च कारगो याँ कडं च तिण्हं पि छक्क णिक्खेवो।
दव्वे खेत्ते काले भावेण उ कारगो जीवो॥ ४॥

करणं च कारगो या कडं च० गाधा। तत्र कट इत्याकारिते कर्त्ता करणं कार्यमित्येतत् त्रितयमपि गृह्यते। तत्थ कारगो कडं च अच्छंतु, करणं ताव भणामि। तं करणं णामादि छव्विधं। णामकरणं जस्स करणमिति णामं, अधवा णामस्स णामतो वा ज करणं तं णामकरणं भण्णति। ठवणाकरण करणणासादिअक्खणिक्खेवो, जो वा जस्स करणस्स आकारविसेसो त्ति। दव्वस्स दव्वेण वा दव्वम्मि वा जं करणं तं दव्वकरणं ति। तं दुविहं—आगमओ य णोआगमओ य। आगमओ जाणए अणुवउत्ते। णोआगमओ जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्तं दुविधं—सण्णाकरणं नोसण्णाकरण च। तत्थ सण्णाकरणं अणेगविधं, जम्मि जम्मि दव्वे करणसण्णा भवति तं सण्णाकरणं, तं जधा—कडकरणं अद्धाकरणं पेलुकरणादि। सण्णा णाममेव तव मती होज्ज त ण भवति, जम्हा णामं ज वत्थुणोऽभिधाणं ति, जं वा तदत्थविगले णामं कीरति, यथा भृतकस्य इन्द्र इति णामं, दव्वलक्खणं तु द्रवति द्रूयते वा द्रव्यम्, द्रवति—स्वपर्यायान् प्राप्नोति क्षरति चेत्यर्थः, द्रूयते—गम्यते तैस्तैः पर्यायविशेषैः। अधवा गच्छति ताँस्तान् पर्यायविशेषानिति द्रव्यम्। पेलुकरणादीति पुण ण तदत्थविहूणं, ण सद्दमेत्त ति भणितं होति। आह—

जइ ण तदत्थविहीणं तो किं दव्वकरणं? जतो तेण। दव्वं कीरति सण्णाकरण ति य करणरूढीतो॥ १॥

[विशेषा० गा० ३३०६]

आह—जति तदत्थविरहितं ण भवति तो किं दव्वकरणं भण्णति? भावकरणमेव भवतु, उच्यते—जतो तेण दव्वं कीरति, जहा पेलुओ णाणियाओताओ कीरंति, एवमादि सण्णाकरणं ति य करणरूढीतो॥ ४॥

इदाणिं णोसण्णाकरणं, तत्थ णिज्जुत्तिगाधा—

*** दव्वे पओग वीसस पयोगसा मूल उत्तरे चेव।**
उत्तरकरणं वंजण अत्थो उ उवक्खरो सव्वो॥ ५॥

णोसण्णादव्वकरणं दुविधं—पयोगकरणं विस्ससाकरणं च। पयोगकरणं दुविधं—जीवपयोगकरणं अजीवपयोगकरणं च।

होति पयोगो जीवव्वावारो तेण ज विणिम्माणं। सज्जीवमजीवं वा पयोगकरणं तयं वहुहा॥ १॥

[ ]

तत्थ जीवप्पयोगकरण दुविधं—मूलप्पयोगकरण उत्तरप्पयोगकरणं च। मूले करणं मूलकरणं, आद्यमित्यर्थः। उत्तरओ करणं उत्तरकरणं, संस्करणादित्यर्थः। अधवा उत्तरकरणस्स अत्थो णिज्जुत्तिगाधाचतुत्थपादेण भण्णति—**अत्थो उ उवक्खरो सव्वो**, उवकारीत्यर्थः, येन वा कृतेन तद् मूलकरणं अभिव्यज्यते, उवकारसमर्थं भवतीत्यर्थः, यथा हस्त इति कलाचि-अङ्गुल-तलोपतलसमुदयः, तस्य उक्खेवणादि उत्तरकरणं, अधवा संडासयं करेति मुट्ठिं वा। अधवा सर्वा एव शरीरगर्भता मूलकरणम्, उत्तरकरण तु चङ्क्रमणादि॥ ५॥ अथवा—

मूलकरणं सरीराणि पंच तिसु कण्ण-खंधमादीयं।
दव्विंदियाणि परिणामियाणि विसं-ओसधादीहिं॥ ६॥

मूलकरणं सरीराणि पंच० गाधा। ओरालियादीणि पंच सरीराणि मूलकरण। उत्तरकरण जं णिप्फण्णातो

१ वा ख १॥ २ अत्र व्यावर्ण्यमानकरणस्वरूपातिवहुसमान करणस्वरूपव्याख्यान आवश्यकसूत्रचूर्णौ भाग १ पत्र ५९५ त ६०१ मध्ये तथा उत्तराध्ययनसूत्रचूर्णौ पत्र १०३ त १०८ मध्ये द्रष्टव्यम्॥ ३ द्रवते पु० स०॥ ४ "पेलुकरणादि लाटविषये रूतप्राणिका, महाराष्ट्रविषये सैव पेलुरित्युच्यते" विखो०॥ ५ अत्थो तदुवक्खरो ख १॥ ६ °अङ्गुष्ठतलो° पु० विना॥ ७ विविहोसहाईसु ख १॥

णिप्फज्जति। तं च एतेसिं चेव ओरालिय-वेउव्विया-ऽऽहारयाणं तिण्हं उत्तरकरणं, सेसाणं णत्थि। ओरालियादीणं तिण्हं मूलकरणं अट्ठगाणि, अंगोवंगाणि उवंगाणि य उत्तरकरणं। ताणि य तं जधा—

[1]सीसं उरो य उदरं पट्ठी बाहा य दो य ऊरूओ। एते अट्ठंगा खलु सेसाणि भवे उवंगाणि ॥ १ ॥
[2]होंति उवंगा अंगुलि कण्णा णासा य [3]पंजणणं चेव। णह केस दंत मंसू अंगोवंगेवमादीणि ॥ २ ॥

अधवा ओरालियस्सेवेगस्स इम उत्तरकरणं—दंतरागो कण्णवड्ढणं णह-केसरागो खंधं वायामादीहिं पीणितं करेति, एतं ओरालियस्स। वेउव्विए उत्तरकरणं उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वति। [4]आधारए णत्थि एताणि, इमं वा—आहारगस्स गमणादीणि। अधवा पंचेंदियाणि (दव्विंदियाणि) सोइंदियादीणि मूलकरण, सोइंदियं कलंबुगापुप्फसठितं एयं मूलकरणं, उत्तरकरणं तु कण्णवेह-वालाईकरणादि। अथवा यद्गुमहतस्योपकरणस्य तदुपकारित्वाद् य उपक्रमः क्रियते विसेण ओसधेण वा। एव सेसाणं पि। यावन्तीन्द्रियाणि [5]सन्ताणि शोभानिमित्त अर्थोपलब्धिनिमित्त वा उत्तरगुणतो निर्वर्त्तयति। शोभा वर्ण-स्कन्धादि, अर्थोपलब्धिस्तु बाधिर्य-तिमिर-प्रसुप्त्यादीनामुपक्रमतः पुनः स्वस्थकरणम्। अथवा दव्विन्दियाणि परिणामियाणि विसेण अगदेण वा वर्ण-उपयोगघाताय भवन्ति, अथवा विसमेव विधिणा उपजुज्जमाणं रसायणीभवति। औषधग्रामाश्च ये शरीरोपकारिणः पथ्यभोजनक्रियाविशेषाः सर्व एव वाऽऽहारः, अथवा स्वरभेद-वर्णभेदकरणानि ॥ ६ ॥

इदानीं एतेसिं चेव पंचण्हं सरीराणं तिविधं करणं भवति। तं जधा—सघायणाकरणं परिसाडणाकरणं सघायपरिसाडणाकरणं। तेया-कम्माण संघातणवज्ज दुविध करणं। एताणि तिण्णि वि करणाणि कालतो मग्गिज्जंति—तत्थोरालियसघातकरणं एगसमयियं ज पढमसमयोववण्णगस्स, जधा तेल्ले ओगाहिमओ छूढो तप्पढमताए आदियति, सेससमएसु सिणेहं गिण्हइ वि मुचइ वि, एवं जीवो वि उववज्जंतो पढमे समए एगंतसो गेण्हति ओरालियसरीरपाउग्गाणि दव्वाणि, ण पुण किंचि वि मुयति। परिसाडणा वि समओ चेव, सो मरणकालसमए एगतसो चेव मुचति। मज्झिमे काले किंचि गेण्हति किंचि मुचति, सो जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूण, उक्कोसेणं तिण्णि पलितोवमाणि समयूणाणि। किह पुण खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं भवति ?, उच्यते—

दो विग्गहम्मि समया समयो सघातणाए तेहूणं। खुड्डागभवग्गहणं सव्वजह[6]ण्णो ठितीकालो ॥ १ ॥
उक्कोसो समयूणो जो सो सघातणासमयहीणो। किह ण दुसमयविहीणो साडणसमएऽवणीतम्मि ? ॥ २ ॥
भण्णति भवचरिमम्मि वि समए सघाय-साडणा चेव। परभवपढमे साडणमतो तदूणो ण कालो त्ति ॥ ३ ॥
जदि परपढमे साडो णिव्विग्गहतो य तम्मि सघातो। णणु सव्वसाड-सघातणाओ समए विरुद्धाओ ॥ ४ ॥
उच्यते—
जम्हा विगच्छमाणं विगतं उप्पज्जमाणमुप्पण्णं। तो परभवादिसमए मोक्खा-ऽऽदाणाण ण विरोधो ॥ ५ ॥
चुतिसमए णेहभवो इह देहविमोक्खतो जहाऽतीते। जइ ण परभवो वि तहिं तो सो को होउ संसारी ? ॥ ६ ॥
णणु जध विग्गहकाले देहाभावे वि परभवग्गहणं। तह देहाभावम्मि वि होज्जेहभवो वि को दोसो ? ॥ ७ ॥
[8]जं चिय विग्गहकाले देहाभावे वि तो परभवो सो। चुतिसमए उ ण देहो ण विग्गहो जइ स को [9]धोतु ? ॥ ८ ॥
इदाणिं अंतरं—
संघातंतरकालो जहण्णओ खुड्डयं तिसमयूणं। दो विग्गहम्मि समया ततिओ संघातणासमयो ॥ ९ ॥
तेहूणं खुड्डुभवं धरितुं परभवमविग्गहेणेव। गंतूण पढमसमए सघातयतो स विण्णेयो ॥ १० ॥

---

१ इय गाथा अगोवंगाइं सेसाइं इति चतुर्थचरणपाठमेदेन उत्तराध्ययननिर्युक्तौ १५२ तमी १८९ तमी च वर्त्तते ॥ २ "होंति उवगा कण्णा णासऽच्छी हत्थ जघ पाया य। णह केम मसु अगुलि ओट्ठा खलु अगुवगाइ ॥" उत्त० पाइ० पत्र १४३–२ ॥ ३ पयथण चूसप्र० ॥ ४ आहारके इत्यर्थ ॥ ५ सतानि शोभा° पु० स० ॥ ६ °ण्णा ठिती कालो पु० स० ॥ ७ समयं उत्तचू० ॥ ८ जइ विह विग्ग° वा० मो० ॥ ९ भोतु मु० । घोतु चूसप्र० । 'धोतु' भवतु इत्यर्थ , होतु इत्यत्र हस्य धविधानाद् रूपनिष्पत्ति. ॥

उक्कोसो तेत्तीसं समयाहियपुव्वकोडिअहियाइं। सो सागरोवमाइं अविग्गहेणेध संघातं ॥ ११ ॥
काऊण पुव्वकोडिं धरिउं सुरजेट्ठसायुगं तत्तो। भोत्तूण इहं ततिए समए संघातयंतस्स ॥ १२ ॥
[विशेषा० गा० ३३१८-२९]

इदाणिं वेउव्वियस्स—

वेउव्वियसंघायो समओ सो पुण विउव्वणादीए। ओरालियाणमधवा देवादीणाऽऽदिगहणम्मि ॥ १ ॥
उक्कोसो समयदुगं जो समयविउव्विओ मतो वितिए। समए सुरेसु वच्चति णिव्विग्गहे[1]तो य तं तस्स ॥ २ ॥
उभयं जहण्ण समयो सो पुण दुसमयविउव्वियमतस्स। परमतराइं संघातसमयहीणाइं तेत्तीसं ॥ ३ ॥
[विशेषा० गा० ३३३३-३५]

वेउव्वियपरिसाडणकालो वि समय एव। इदाणि अंतरं—वेउव्वियसरीरसंघातंतरं जहण्णेणं एगसमयं, सो पढमसमयविउव्वियमयस्स विग्गहेण ततिए समए वेउव्विएसु देवेसु सघातेंतस्स भवति, अधवा ततियसमयवेउव्वियमतस्स अविग्गहेणं देवेसु [संघातेंतस्स]। सघात-परिसाडणंतर जहण्णेणं समय एव, सो पुण चिरविउव्वितमतस्स देवेसु अविग्गहेणं संघातेंतस्स भवति। साडस्स अंतर जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं। तिण्ह वि एतेसिं अंतर उक्कोसेणं अणंतकालं वणस्सतिकालो।

इदाणिं आहारगस्स—

आहारे संघातो परिसाडग य समयं समं होति। उभयं जहण्णमुक्कोसयं च अंतोमुहुत्तस्स ॥ १ ॥
बंधण-साडुभयाणं जहण्णमंतोमुहुत्तमंतरणं। उक्कोसेण अवड्ढं पोग्गलपरियट्ट देसूणं ॥ २ ॥
तेया-कम्माणं पुण संताणाणादितो ण संघातो। भव्वाण होज्ज साडो[2] सेलेसीचरिमसमयम्मि ॥ ३ ॥
उभय अणादिणिहणं संतं भव्वाण होज्ज केसिंच। अंतरमणादिभावादच्चन्तविओगतो णेसिं ॥ ४ ॥
[आव० भाष्ये० गा० १७०-१७३ पत्र ४६१-६२ विशेषा० गा० ३३३९-४०] ॥ ६ ॥

जीवमूलप्रयोगकरणं गतं। इदाणिं जीवउत्तरप्पयोगकरणं। तत्थ गाधा—

❀ संघातणा य परिसाडणा य[3] मीसे तधेव पडिसेहो।
पड संख सगड थूणाउड्ढ-तिरिच्छाण[4] करणं तु ॥ ७ ॥

तत्थ संघायणाकरणं जधा पडो तंतुसघातेण णिव्वत्तिज्जति। परिसाडणाकरणं जधा संखगं परिसाडणाए णिव्वत्तिज्जति। संघातपरिसाडणाकरणं जधा सगडं संघातणाए पडिसाडणाए य णिव्वत्तिज्जति। णेव संघातो णेव परिसाडो जधा थूणा उड्ढा तिरिच्छा कीरति ॥ ७ ॥ जीवउत्तरकरण गतं। जीवपयोगकरणं सम्मत्तं। इदाणिमजीवप्पयोगकरणं—

जं जं णिज्जीवाणं कीरति जीवप्पयोगतो तं तं। वण्णाति रूवकम्मादि वा वि तमजीवकरणं ति ॥ १ ॥
[विशेषा० गा० ३३४२]

वण्णकरणादि जहा वत्थाणं कुसुंभरागादि कज्जंति। रूवकम्माति व त्ति कट्ठकम्मादिरूवा कज्जंति। अजीवप्पयोगकरणं गतं। पयोगकरणं परिसमाप्तम्। इदाणिं विस्ससाकरणं—विस्ससेति कोऽर्थः?, वि-विपर्यये अन्यथाभाव इत्यर्थः, अथवा "सृ गतौ" विविधा गतिर्विस्रसा। एत्थ णिज्जुत्तिगाथा—

❀ [5]खंधेसु अ दुपदेसादिएसु अ[6]ब्भेसु विज्जमातीसु।
णि[7]प्फावगाणि दव्वाणि जाणि तं वीससाकरणं ॥ ८ ॥

---

१ °हतो तय तस्स विआ०। °हतो य जं तस्स उत्तचू० ॥ २ साडो य आव० भाष्ये ॥ ३ संघायणे य परिसाडणे य ख १ ॥ ४ °च्छादिकरणं च ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ५ गाथेय उत्तराध्ययननिर्युक्तौ १८७ तमी पत्र १९६-२ ॥ ६ अब्भेसु अब्भरुक्खेसु उत्तनि०। अब्भेसु विज्जुमातीसु इति पाठभेदोऽपि उत्त० पाइयवृत्तौ निर्दिष्टोऽस्ति ॥ ७ निप्फण्णगाणि ख १ ख २ पु २ उत्तनि० ॥

तं विस्ससाकरणं दुविधं—सादीयं अणादीयं च । अणादीयं जधा धम्मा-ऽधम्मा-ऽऽगासाणं अण्णोण्णसमाहाणं ति । णणु करणमणादीयं च विरुद्धं भण्णती ण दोसोऽयं । अण्णोण्णसमाधाणं जमिधं करणं ण णिव्वत्ती ॥ १ ॥

[विशेषा० गा० ३३०९]

अधवा परपच्चयादुपचारमात्रं करणम्, यथा—गृहमाकाशीकृतम्, उत्पन्नमाकाशं विनष्टं गृहम्, गृहे उत्पन्ने विनष्टमाकाशम् । इदाणिं सादीयं विस्ससाकरणं, तं दुविधं—चक्खुफासियं अचक्खुफासियं च । जं चक्खुसा दीसति तं चक्खुफासियं, तं०—अब्भा अब्भरुक्खा एवमादि । चक्खुसा जं ण दीसति तं अचक्खुफासियं, जधा दुपदेसियाणं परमाणुपोग्गलाणं एवमादीणं ज संघातेणं भेदेणं वा करणं उप्पज्जति तं ण दीसति छउमत्थेणं ति तेण अचक्खुफासियं । बादरपरिणतस्स अणंतपदेसियस्स चक्खुफासियं भवति । तेसिं दसविधो परिणामो, त जधा—

बंधण १ गति २ संठाणे ३ भेदे ४ गंध ५ रस ६ वण्ण ७ फासे य ८ ।
अगुरुअलहुपरिणामे ९ दसमे वि य सद्दपरिणामे १० ॥ १ ॥

[ ]

बंधणपरिणामे दुविधे पण्णत्ते—णिद्धबंधणपरिणामे य लुक्खबंधणपरिणामे य ।

णिद्धस्स णिद्धेण दुआहिएणं लुक्खस्स लुक्खेण दुआहिएणं ।
णिद्धस्स लुक्खेण उवेति बंधो जधण्णवज्जो विसमो समो वा ॥ १ ॥

समणिद्धताए बंधो ण होति समलुक्खताए वि ण होइ । वेमायणिद्ध-लुक्खत्तणेण बंधो तु खंधाणं [1] ॥ २ ॥

[प्रज्ञा० पद १३ सू० १८५ पत्र २८८]

गतिपरिणामो तिविहो उक्कोस जहण्ण मज्झिमो चेव । लोगंता लोगंतं गमणं एगेण समएणं ॥ ३ ॥
तध य पदेसि पदेसा जहण्ण समएण होति संकंती । अजहण्णमणुक्कोसो तेण पर खेत्त काले[2] य ॥ ४ ॥
एमेव य गंधाणं (खधाणं) गतिपरिणामो जहण्णमुक्कोसो । कालो जहण्ण तुल्लो उक्कोसेण असखेज्जो ॥ ५ ॥
समयादी सखेज्जो कालो उक्कोसएण उ असखो । परमाणू-खधाण य ठितीय एवं परीणामो २ ॥ ६ ॥
परिमडले १ य वट्टे २ तंसे ३ चउरस ४ आयते ५ चेव । संठाणे परिणामो सहऽणित्थत्थेण ६ छ ब्भेदा ॥ ७ ॥
पयर-घणा सव्वेसी सेढी सूदी य आयतविसेसो । सव्वेते [खलु] दुविहा पदेसउक्कोसग-जहण्णा ॥ ८ ॥
माणु[3] परिमंडलस्स उ सव्वेसि जहण्णमोय-जुम्मगमा । उक्कोस जहण्णं पुण पदेसओगाहणक्कमेणं ॥ ९ ॥
णंतपदेसुक्कोसं तह य मसंखप्पदेसमोगाढं[4] । वीसा चत्तालीसा परिमडले दो जहण्णगमा ॥ १० ॥
पचग बारसग खलु सत्त य बत्तीसगं च वट्टम्मि । तिय छक्कग पणतीसा चत्तारि य होहि (होंति) तंसम्मि ॥ ११ ॥
णव चेव तहा चउरो सत्तावीसा य अट्ठ चउरसे । तिग दुग पण्णर छक्कं पणयाला बार चरिमस्स ॥ १२ ॥
एसो सठाणगमो पएसओगाधणापडिद्दिट्ठो[5] । दुगमादीसयोगे हवति अणित्थत्थसठाण[6] ३ ॥ १३ ॥
भेदस्स तु परिणामो सघात-वियोयणेण दव्वाणं । सघातेणं बधो होदि वियोगेण भेदो त्ति ॥ १४ ॥
भेदेण सुहम खंधो सघातेण च बादरो खधो । सुहमपरिणामसीसक्कमेण भेदेण परमाणू ॥ १५ ॥
अध बादरो उ खधो चक्खुदेसे य णतगपदेसो । सघात-भेद-मीसग पड-सखय-सगडओवम्मा ॥ १६ ॥
खडग पयरग चुण्णिय अणुतडि उक्कारिया य तध चेव । भेदपरिणामो पंचध णायव्वो सव्वखंधाण ॥ १७ ॥

---

१ एतद् बन्धस्वरूप किञ्चित् समानरूपेण किञ्चिच्च रूपान्तरेण व्यावर्णित उत्तराध्ययनचूर्णौ वर्तते, पत्र १७-१८ ॥ २ कालो पु० ॥ ३ मानु परि° पु० स० ॥ ४ मकारोऽत्र उभयत्र अलाक्षणिक, असङ्ख्यप्रदेशावगाढमित्यर्थ ॥ ५ ओगाधणा अवगाहना इत्यर्थ ॥ ६ अनित्थस्थसम्थानम् ॥

खंडेहिं खंडभेदं [1]पतरसभेदं जधऽब्भपडलस्स। चुण्णं चुण्णियभेदं अणुतडितं [2]वंससकलं तं (व) ॥ १८ ॥
[3]वुंदंसि सयारोहे भेदे उक्कारियाए उक्कार। वीसस पयोग मीसग संघात वियोग विविधगमो ४ ॥ १९ ॥
[4]जति कालगमेगगुणं सुक्किलयं पि य हवेज्ज वहुयगुणं। परिणामिज्जति कालं सुक्केण गुणाधियगुणेण ॥ २० ॥
जति सुक्किलमेगगुणं कालगदव्वं तु वहुगुणं जति य। परिणामिज्जति सुक्कं कालेण गुणाहियगुणेणं ॥ २१ ॥
जति सुक्कं एगगुणं कालयदव्वं पि एगगुणमेव। कावोयं परिणामं तुल्लगुणं तेण संभवति ॥ २२ ॥
एवं पंच वि वण्णा संजोएणं तु वण्ण परिणामे। एगत्तीसं भंगा सव्वे वि य वण्णपरिणामे ५ ॥ २३ ॥
एमेव य परिणामो गंधाण रसाण तध य फासाणं। संठाणाण य भणिओ संजोएणं वहुविकप्पो ६-७-८ ॥ २४ ॥
अगरुलहुपरिणामो [5]परमाणूदारब्भ जाव असंखेज्जपदेसिया खंधा। सुहुमपरिणया वि खंधा अगरुलहुगा चेव ९।
तत वितते घण सुसिरे भासाए मंद-घोर-मिस्सा य। सहस्स वि परिणामा एवमणेगा मुणेयव्वा १० ॥ २५ ॥
छाया य आतवो या उज्जोतो तध य अंधगारो य। एसो वि पोग्गलाणं परिणामो फंदणा जा य ॥ २६ ॥
सीता [6]णादिपगासा छाया णायव्विया, वहुविकप्पो। उण्हो पुण प्पगासो णायव्वो आयवो णामं ॥ २७ ॥
ण वि सीतो ण वि उण्हो समो पगासो य होति उज्जोतो। कालमइलं तमं पि य वियाण तं अंधयारं ति ॥ २८ ॥
[7]दव्वस्स [य] चलण-प्फंदणाउ सा पुण गति त्ति णिद्दिट्ठा। वीसस पयोग मीसा अत्त परेणं उभयतो वि ॥ २९ ॥
अभ्रेन्द्रधन्वादीनां च परिणामकरणं ॥ ८ ॥ दव्वकरणं गतं। इदाणिं खेत्तकरणं—

ण विणा आगासेणं कीरति जं किंचि खेत्तमागासं।
वंजणपरियावण्णं उच्छुकरणमादियं वहुहा ॥ ९ ॥

ण विणा आगासेणं० गाधा। **यत् किञ्चिदिति** उत्क्षेपणा-ऽपक्षेपणादि घटादिकरणा-ऽकरणादि च न क्षेत्रमन्तरेण क्रियते। **क्षेत्रं आकाशम्** तस्स करणं नत्थि तधावि **वंजणपरियावण्णं उच्छुकरणं** सालिकरणं, जधा वा साधूहिं अच्छमाणेहिं खेत्तीकतो गामो णगरं वा, जम्मि वा खेत्ते करणं कीरति भणिज्जति वा ॥ ९ ॥ कालकरणं ति—

कालो जो जावतियो जं कीरइ जम्मि जम्मि कालम्मि।
ओहेण णामतो पुण [8]करणे एक्कारस भवंति ॥ १० ॥[9]

कालो जो जावतियो० गाधा। जावता कालेणं क्रियते, **यस्मिन् वा काले** क्रियते, एवं **ओहेण। णामतो पुण** इमे **एक्कारस करणे**—

ववं च वालवं चेव [10]कोडवं थीविलोयणं। गराइ वणियं विट्ठी सुद्धपडिवए णिसादीया ॥ १ ॥
पक्खतिधयो दुगुणिता जोण्हे दो सोधये ण पुण काले। सत्तहिए देवसियं तं चिय रूवाहियं रत्तिं ॥ २ ॥
"[11]सुचराऽष्टदिवैकर पूर्णदिवा, कृतरा सदिवा दर भूतदिवा।" एतेसु विट्ठी।

---

१ पयरब्भेयं पु० ॥ २ वंसवकलियं पु० ॥ ३ दुंदुम्मि समारोहे पु०। 'दुदुम्मि' शुष्कतडागे इति सागरानन्दा। "बुदसि' इति काष्ठघटनो बुन्द" इति सूत्रकृताङ्ग वि० प० ॥ ४ इत आरभ्य गाथापञ्चक उत्तराध्ययनचूर्णावपि वर्त्तते पत्र १८ ॥ ५ परमाणुत आरभ्य इत्यर्थ ॥ ६ नातिप्रकाशा छाया ज्ञातव्या ॥ ७ दव्वस्स चलण-पप्फंदणाउ पु० ॥ ८ करणा एक्कारस ख २ पु २। करणाणेक्कारस ख १ ॥ ९ दशमगाथानन्तर चूर्णिकृताऽनङ्गीकृत वृत्तिकृता शीलाङ्केन च व्याख्यात निर्युक्तिगाथात्रिकमधिक निर्युक्त्यादर्शेपूपलभ्यते। तच्चेदम्—

ववं च वालवं चेव कोलवं थीविलोयणं। गरादि वणियं चेव विट्ठी हवति सत्तमा ॥
सउणि चउप्पय नागं किंच्छुग्घं च करणं भवे एयं। एते चत्तारि धुवा करणा सेसा चला सत्त ॥
चाउद्दसिरत्तीए सउणी पडिवज्जए सया करणं। तत्तो अहक्कमं खलु चउप्पया नाग किंच्छुग्घं ॥
सा० कोलवं थीविलोयणं स्थाने कोलवं तेत्तिलं तहा इति पाठो वर्त्तते ॥

१० कोढिवं वा० मो० ॥ ११ अस्यायमर्थ —सु शुक्लपक्षे च चतुर्थ्यां रा रात्रौ, अष्ट अष्टम्यां दिवा दिने, एक एकादश्यां र रात्रौ, पूर्ण पूर्णमास्यां दिवा दिने। कृ कृष्णपक्षे त तृतीयायां रा रात्रौ, स सप्तम्यां दिवा दिने, द दशम्यां र रात्रौ, भूत चतुर्दश्यां दिवा दिने ॥

सुद्धे पडिवयरत्तिं दिवसस्स य पंचमऽट्ठमीरत्तिं । दिवसस्स वारसी पोण्णिमाए रत्तिं वयं होति ॥ १ ॥
वहुलचतुत्थीए दिवा वहुलस्स य सत्तमी हवति रत्तिं । एक्कारसिं च वहुले दिवा वयं होति करणं तु ॥ २ ॥
सउणि चतुप्पय णागं किंत्थुगं च चतुरो धुवा करणा । किण्हचउद्दसिरत्तिं सउणी सेस तियं कमसो ॥ ३ ॥
[ ] ॥ १० ॥

कालकरणं गतं । इदाणिं भावकरणं—भावस्स भावेण भावे वा करणं । तत्थ निज्जुत्तिगाथा—

❀ भावे पयोग वीसस पयोगसा मूल उत्तरं चेव ।
उत्तर कम-सुत-जोव्वण-वण्णादी भोयणादीसु ॥ ११ ॥

भावकरणं दुविधं—पयोगसा वीससा य । पयोगकरणं दुविधं—मूलपयोगकरणं उत्तरपयोगकरणं च । [मूलपयोगकरणं] पंच शरीराणि, ताणि पुण उदइयभावणिप्फण्णाणि । का तर्हि भावणा ?, उदइयो हि भावो दुविधो—जीवोदइओ अजीवोदइओ य । तत्थ जीवोदइओ पंचण्हं सरीराण अण्णतरेणोदितो जीवः स तथाभूत इति जीवोदयभावो, अथ पुण जीवोदयोदितानि शरीरारम्भकाणि द्रव्याणि तथासमुदितानि तत्थ शरीरे भवन्तीत्यर्थः । अजीवोदयिको हि भावः यथा च तत्र द्रव्यकरणोपदिष्टं "दव्वेंदियाइं परिणामिताइं विस-ओसधादीहिं" [नि० गा० ६] तथेहापि, तेसु परिणामस्तु भावोऽभिसम्बध्यते, तानि हि द्रव्येन्द्रियाणि विषौषधादिद्रव्यविशेषैः परिणाम्यमानानि औदयिकमेव भावं परिणमन्ति । तेसु सरीरेसु इंदिएसु वा किं मूलकरणं ? उच्यते—सरीरपज्जत्ती मूलकरणं, सेस तु मूलकरणस्सेव उत्तरकरण भवति । जधा—उत्तर कम-सुत-जोव्वण-वण्णादी भोयणादीसु, गब्भवक्कंतिएसु ओरालिएसु ताव जोणीजम्मणणिक्खंतस्स कल्प-कौमार-यौवन-मध्यम-स्थाविर्याणि क्रमशः प्रजायन्ते, निषेकादिक्रमो वा यथा भवति, तथा वृक्षेष्वपि अङ्कुर-पत्र-कन्द-नाल-गर्भ-तुष-शूक-कणपाकक्रमाः क्रमशो निष्पद्यन्ते । सुते त्ति कलाधिगमो व्याकरणादिभाषापाटवं वा सौस्वर्यं वा यतो भवति, तिर्यग्योनिजातीनामपि शुकादीना भवति । उक्तं च—"तेण परं सिक्खापुव्वगं वा उत्तरगुणलद्धिं वा पडुच्च भासाविसेसो भवति" [ ] जोव्वणे त्ति पुनर्नव यौवनं भवति औषधादिभिः कस्यचित् । वर्णकरणं च भोजनादिभिः क्रियते, यथा स्नेहं पिबतो वर्णप्रसादो भवति, आदिग्रहणाद् अभ्यङ्गोद्वर्तनादिभिर्वा वर्णविशेषो भवति । वेउव्वियस्स वि उत्तरकरणं भिण्णमुहुत्तो णरएसु भवति । उक्त हि—"उत्तरवेउव्विय रूवं विउव्वति" [दशा० अध्य० ८ सू०२७] त्ति ॥ ११ ॥

वुत्तं पयोगभावकरण । इदाणिं विस्ससाभावकरणं । तत्थ गाथा—

वण्णादिगा य वण्णादिगेसु [2]जो कोइ वीससामेलो ।
ते होंति थिरा अथिरा छाया-ऽऽतव-दुद्धमादीसु ॥ १२ ॥

वण्णादिगा य वण्णादिगेसु० गाधा । वर्णादिगा णाम वण्ण-गंध-रस-फासा । द्वितीयवर्णादिग्रहण वर्णादिगेसु दव्वेसु यथा परमाणुद्रव्यस्य कृष्णादिभिर्वर्णविशेषैः परिणामतः यः परिणामविश्रसाभावः, गंध-रस-फरिसेसु वि । विस्ससामेलो णाम दोण्हं तिण्ह चतुण्ह पंचण्ह वा वण्णाण सयोगविसेसेणं उप्पज्जते, जहा अब्भाण अब्भरुक्खाणं संझाणं गधव्वणगराण इंदधणुमादीणं ति । ते पुण थिरा अथिरा वा । थिर त्ति ते केच्चिरं कालं भवंति ?, जधण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेण जच्चिरं कालं । अथिरा उत्पत्त्यनन्तरविनाशिनः कालान्तरावस्थायिनश्च सन्ध्यारागादयः । ये तु परमाण्वादिषु स्थिरास्ते असङ्ख्येयमपि काल भवन्ति । तथा च छाया प्राप्य छायात्वेन परिणमन्ति पुद्गलाण विस्ससापरिणामादेव । एवमुष्णमपि तथैव विश्रसापरिणामादेव । [3]प्रायोगिकमपि स्थिरं (क्षीर) भूत्वा दधि-मस्तु-किलाटा-ऽनिष्ट-नवनीत-घृतत्वेन परिणमति ॥ १२ ॥

भणित भावकरण । एत्थ भावकरणेण अधियारो । तत्थ णिज्जुत्तिगाथा—

❀ मूलकरणं पुण सुते तिविधे जोगे सुभा-ऽसुभे झाणे ।
ससमयसुतेण पगयं अज्झवसाणेण य सुभेणं ॥ १३ ॥

---

१ °नालतुषगर्भशूक° पु० ॥ २ जे केइ वीससामेला ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ३ "सामान्यपूर्वका हि लोके विशेषा दृष्टा, तद्यथा—क्षीरपूर्वका दधि-मस्तु-द्रप्स-नवनीत-घृता-ऽरिष्ट-किलाट-कूर्चिकाभावा ।" इति नयचक्रवृत्तौ पत्र ३२१ पं० १४ ॥

सुते मूलकरणं दुविधं—लोइयसुतकरणं लोउत्तरियसुतकरणं च। तत्थ लोए ताव जो जस्स सत्थस्स कत्ता, यथा सुलसा यज्ञवल्कश्च तन्तुग्रीवश्च, अस्माकमपि गणधरैर्दृब्धम्। तत् कतरेण योगेन कृतम्?, उच्यते—**त्रिविधेनापि** मनसा तावदुपयुक्तः, वाचा भाषते, कायेन प्रगृहीताञ्जलिः तीर्थकराभिमुख उत्कुटुकः। भङ्गिकश्रुतोपयुक्तस्य वा त्रिविध उपयोगो भवति। एवमीर्यासमितस्यापि त्रियोगतैर्क्काले भवति, मनसा तावत् पथ्युपयुक्तः, वाचा किञ्चित् पृष्टो व्याकरोति, कायेन गच्छत्येव, एवं त्रिविधमपि तस्य भवति। **सुभा-ऽसुभे ज्झाणे** त्ति जं सम्मदिट्ठी करेति। एत्थ वि सुतकरणे **ससमयसुतेण पगतं**, णो परसमयेण सुतेणं। **अज्झवसायेणं सुभेण** गणधरेहिं कतं। एवं ताव गणधराणं मूलकरणं, तस्सिस्साणं तु उत्तरकरणं। अथवा तेसिमवि मूलकरण घडेति, यदुत अपूर्वमेव पठन्ति। वक्तारोऽपि च भवन्ति—अनेन साधुना **आचारः** कृत इति। यत्तु विस्मृतं पुनः सत्क्रियते तदुत्तरकरणमस्य ॥ १३ ॥

उक्तं करणम्। इदानीं कारकः—ज्ञान-दर्शन-चारित्रसयुक्ता गणधरा एव कारकाः। तदेव च क्रियमाणं सूत्रं "कज्जमाणे कडे" [भग० श० ९ उ० ३३ सू० ३८६ पत्र ४८५-१] त्ति काऊणं कड भवति। तं पुण गणधरेहिं किं उक्कोसकालट्ठितीएहिं कम्मेहिं वट्टमाणेहिं कतं? जधण्णट्ठितीएहिं०? अजहण्णमणुकोसट्ठितीएहिं०? एत्थ गाधा—

*** ठिति अणुभावे वंधण णिकायण णिधत्त दीह हुस्से[2] य।**
संकम उदीरणाए उदए वेदे उवसमे य ॥ १४ ॥

[3]**ठिति** त्ति अजहण्णमणुकोसट्ठितीएहिं कम्मेहिं वट्टमाणेहिं कतं। तेहिं पुण किं तिव्वाणुभावेसु मंदाणुभावेसु? [मंदाणुभावेसु कत]। **वंधणे** त्ति कि वंधंतेहिं कत णिज्जरतेहिं कतं?, तदावरणिज्जाइं पडुच्च णो वंधतेहिं कतं। णो णिधत्तंतेहिं, [णो] णिकायंतेहिं अणिकायंतेहिं, णो दीघीकरेंतेहिं हुस्सीकरेंतेहिं, उत्तरपगडीसंकमं करेंतेहि वि अकरेंतेहि वि कतं। तदावरणिज्जाइ कम्माइं अणुदीरेंतेहिं सेसाइ उदीरेंतेहि वि अणुदीरेंतेहि वि कय। **उदए** त्ति केसिंच उदए वट्टंतेहि केसिंच अणुदए, पुरिसवेदे वट्टंतेहिं कत। **उपसमे** त्ति केसिंच उपसमे केसिंच अणुवसमे, अथवा **उवसमे** त्ति खयोवसमिए भावे वट्टंतेहिं कतं। कर्त्तार एव तस्योपदिश्यन्ते ॥ १४ ॥ कथं पुण तेहिं कतं?—

सोतूण जिणवरमतं गणधारी कातु तक्खओवसमं।
अज्झवसाणेण कतं सुत्तमिणं तेण सुत्तगडं[4] ॥ १५ ॥

सोतूण जिणवरमतं० गाधा।

तव-णियम-णाणरुक्ख आरूढो केवली अमितणाणी। तो मुअइ णाणवुट्ठिं भवियजणविबोधणट्ठाए ॥ १ ॥

तं बुद्धिमएण पडेण गणधरा गेण्हिउं णिरवसेस। तित्थकरभासिताइं गंथंति ततो पवयणट्ठा ॥ २ ॥

[आव० नि० गा० ८९-९०]

एय गणधरसलद्धिएहिं कृतं, सेसाणं गणधरवज्जाणं पुव्वकतं अधिज्जतेहिं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खयोवसमं काऊण कतं ति। एवं गणधरेहिं कृते को गुणः?, उच्यते—

घेत्तु च सुहं सुहगुणण-धारणा दातु पुच्छिउं चेव। एतेण कारणेणं जीतं ति कतं गणधरेहिं ॥ १ ॥

[आव० नि० गा० ९१]

---

१ °तैव कालो भ° चूसप्र० ॥ २ **हुस्सेसु** खं १। **हस्सेसु** ख २ पु २ ॥ ३ "तत्र कर्मस्थितिं प्रति अजघन्योत्कृष्टकर्मस्थितिभिर्गणधरैः सूत्रमिदं कृतमिति। तथा 'अनुभाव' विपाकस्तदपेक्षया मन्दानुभावैः। तथा बन्धमङ्गीकृत्य ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीर्मन्दानुभावा बध्नद्भिः। तथाऽनिकाचयद्भिः, एव निधत्तावस्थामकुर्वद्भिः। तथा दीर्घस्थितिका कर्मप्रकृतीर्हसीयसीर्जनयद्भिः। तथा उत्तरप्रकृतीर्वध्यमानासु सङ्क्रमयद्भिः, तथा उदयवतां कर्मणामुदीरणा विदधानैः, अप्रमत्तगुणस्थैस्तु साता-ऽसाता-ऽऽयूष्यनुदीरयद्भिः। तथा मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकशरीर-तदङ्गोपाङ्गादिकर्मणामुदये वर्तमानैः। तथा वेदमङ्गीकृत्य पुंवेदे सति। तथा 'उवसमे' त्ति सूचनात् सूत्रमिति क्षायोपशमिके भावे वर्त्तमानैर्गणधारिभिरिदं सूत्रकृताङ्गं दृब्धमिति ॥" इति शीलाङ्कटीका ॥ ४ **सूयगडं** ख २ पु २ ॥

अज्झवसाणेण कतं ति पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं कतं, ण पूया-सक्कार-वित्तिहेतुं वा। उक्तं हि—"पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं अधिज्जेज्ज, तं जहा—[1]णाणट्ठताए०" [स्थानाङ्गसूत्र सू० ४६८ पत्र ३५०-२] ॥ १५ ॥

वइजोगेण पभासितमणेगजोग[2]करणाण साधूणं।
तो वइजोगेण कतं जीवस्स सभावियगु[3]णेहिं ॥ १६ ॥

वइँ[4]जोगेण पभासित० गाधा। यद् भगवान् भाषते स वाग्योग एव, [न] श्रुतम्, श्रुतस्य क्षायोपशमिकत्वादित्युक्तम्, वाग्योगस्तु नामप्रत्ययत्वाद् औदयिकः, विज्ञानमप्यस्य क्षायिकत्वात् केवलम्, शब्दस्तु पुद्गलात्मकत्वाद् द्रव्यश्रुतमात्रम्, अतो न भावश्रुतमिति, अतो **वइजोगेण** अरहता अत्थो पगारेहिं भासितो **पभासिओ**। केसिं? **अणेगजोगकरणाण साधूणं**। ते य के?, गणधरा। कधं पुणेते अणेगजोगकरणा?, उच्यते—जतो अणेगविधलद्धिसंपण्णा, तं जधा—कोट्ठबुद्धी बीयबुद्धी पयाणुसारी खीर-सप्पि-मधुआसवा। **तो वइजोगेण कतं** ति, तित्थगरेहिं वइजोगपभासितेहि गणधरेहिं वइजोगेण चेव सुत्तीकतं। तं पुण **जीवस्स सभावियगुणेहिं** ति पागतभासा, एस स्वभावगुणः, वैकृतस्तु संस्कृतभाषा, आगन्तुक इत्यर्थः ॥ १६ ॥ त च पुण एव गहितं—

अक्खरगुण-[5]मतिसंघातणाए कम्मप[6]रिसाडणाए य।
तदुभयजोगेण कयं सुत्तमिणं तेण सुत्तकडं ॥ १७ ॥

अक्[7]खरगुणमतिसंघातणाए० गाथा। **अक्खरगुणो** णाम एकैकमनन्तपर्यायमक्षरम्, अक्षराभिलापो वा अक्षरगुणः, असौ ह्यभिलाप्योऽर्थो न शक्यते अक्षरमन्तरेण प्रकाशयितुम्, प्रदीपमन्तरेणेव तमसि घट इत्यतोऽभिलाप्य एवाक्षरगुणः। **मति** त्ति मतिणाणविसुद्धताए सव्वे वि समा, अक्षरसघातणाए लद्धितो वि सव्वे समा, सुत्तकरणं कम्मणिज्जरं च पडुच्च सव्वे समा। अधवा जधा जधा अक्षराणि मतिविसुद्धताए सघाएति तधा तधा णिज्जरा भवति। **तदुभययोगे[8]णं** ति मतिणाणेणं वाइएण य जोगेणं ति कृत सूत्रकृत सूत्रकडं ॥ १७ ॥ सूचनाद्वा सूत्रम्—

सुत्तेण सूइं[9]त त्ति य अत्था तह सूइता य जुत्ता य।
तो वहुवि[10]धप्पजु[11]त्ता ससमयजुत्ता अणादीया ॥ १८ ॥ सूयगडं ति गयं।

सुत्तेण सूइत त्ति य० गाधा। 'सूइता' प्रोता इत्यर्थः। उपलब्धव्या वा ते सुत्तपदेण अत्थपदा सूइता सूत्राणुसारेण ज्ञायन्त इति, नासूत्रोऽर्थो वै वि[12]धते, तेन पुनर्युज्यमाना योजिताः नायुज्यमा[13]नाः, यो हि येनार्थेन सह घटते स तथैव पूर्वापर्यसम्बन्धेन योजितः, अयुज्यमानास्तु अपार्थक-निरर्थकादयो न योजिताः। **तो बहुविधप्पगारा जुत्त** त्ति गद्यं पद्यं कथ्यं गेयं चउव्विहेण जातिविधेण पयुत्ता, अथवा प्रतिज्ञादिपञ्चावयवविशेषेण प्रयुक्ताः। ते पुण **ससमयजुत्ता अणादीया**, सम्प्रतिकालं तावत् प्रतीत्य सङ्ख्येयानि पदानि। कधं पुण ते अणंता गमा अणंता पज्जवा?, अतीता-ऽणागतं कालं पडुच्च अणंता गमा अणंता पज्जवा, पण्णवगं वा पडुच्च अणंता गमा अणंता पज्जवा, जेण चोद्दसपुव्वी चोद्दसपुव्विस्स छट्ठाणपडिओ। गम्यते अनेनार्थ इति गमकः। गणधरा पुणो सव्वे अक्खरलद्धितो मतिलद्धिओ य तुल्ला, यथा तुल्यवर्त्ति-स्नेहाः प्रदीपाः प्रकाशेन तुल्या आदित्या वा तथाऽक्षर-मतिलाभाभ्यां तुल्याः। अथवा यथा आदित्यः स्वभावतः प्रकाशयति एवं गणधरा अपि गणनिर्वर्त्तकस्य कर्मण उदयाद् गणधारित्वं कुर्वन्ति ॥ १८ ॥

---

१ "णाणट्ठयाते १ दसणट्ठयाते २ चरित्तट्ठयाते ३ विग्गहविमोतणट्ठयाते ४ अहत्थे वा भावे जाणिस्सामीति कट्टु ५।" इति पूर्णः पाठः ॥ २ °जोगंधराण सा° खं १ ख २ पु २ वृ० ॥ ३ °गुणेणं ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ४ वइजोगो पभातिसति० चूसप्र० ॥ ५ °मइसंघाडणाए ख २। °मइसंजोगणाय खं १ ॥ ६ °पडिसा° ख १ ॥ ७ अक्षरमतिगुणसं° चूसप्र० ॥ ८ °योगेणं ति वाइएण माणसेण य जोगेणं ति कृतं सूत्रकृतं सूत्रकृतं सूत्रं सूत्रकृतं सूचनाद्वा मु० ॥ ९ सुत्तिय च्चिय ख २ पु २ वृ० ॥ १० °विहं पउत्ता ख १ वृ० ॥ ११ °त्ता पया पसिद्धा अणा° ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ १२ विपद्यते पु० स० ॥ १३ °माना उपलब्धव्याः, यो हि वा० मो० ॥

एत्थ पुण इमाओ वि गाधाओ भाणितव्वाओ—

'कताकतं १ केण कतं २ केसु य दव्वेसु कीरती वा वि ३। काहे व कारओ ४ णयतो ५ करणं कतिविधं ६ कधं ७॥१॥

[आव० नि० गा० १०२७ पत्र ४६७-१। विशेषा० गा० ३३६३]

ए[1]ताणि सत्त पयाइं। तथा (तत्थ) सुत्तकडं किं कतं कज्जति अकयं कज्जति ?, जं भणियं किं उप्पण्णं कज्जति अणुप्पण्णं कज्जति ?। एत्थ णएहिं मग्गणं—केइ उप्पण्णं इच्छंति, केइ अणुप्पण्णं ति। ते य णेगमादी सत्त मूलणया। तत्थ णेगमो—तत्थाऽऽदिणेगमस्स अणुप्पण्णं कीरति, णो उप्पण्णं कीरति। कम्हा ?, जधा पचत्थिकाया णिच्चा एवं सूतकडं पि ण कयादि णाऽऽसी ण कदाइ ण भवइ ण कयाइ ण भविस्सति, भूवं च भवइ य भविस्सति य, धुवे णितिए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, ण एस भावो केणइ उप्पायिते त्ति कट्टु। जया वि भरघेरवतेसु वासेसु वोच्छिज्जति तया वि महाविदेहे वासे अवोच्छिण्णमेव। सेसाणं णेगमाण छण्ह य संगहादीणं णयाणं उप्पण्णं कीरति, जेण पण्णरससु वि कम्मभूमीसु पुरिसं पडुच्च उप्पज्जति। जति उप्पण्णं तिविधेणं सामित्तेण उप्पण्णं—समुट्ठाणसामित्तेण १ वायणासा० २ लद्धीसा० ३। एत्थ को णयो कं समुप्पत्तिं इच्छति ?, तत्थ जे पढमवज्जा णेगमा संगह-ववहारा [य] ते तिविधं पि उप्पत्तिं इच्छंति—समुट्ठाणं जधा तित्थकरस्स सएणं उट्ठाणेणं १ वायणाए वायणायरियस्स णिस्साए, जधा भगवता गोतमस्सामी वाइतो २ लद्धीए जधा भवियस्स किंचि निमित्तं दट्ठूणं जातिस्सरणादिगं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खयोवसमेणं उप्पज्जति ३। उज्जुसुतो समुट्ठाणं णेच्छति, किं कारणं ? भगवं चेव उट्ठाणं स एव वायणायरिओ गोतमप्पभितीणं तेण दुविधं, वायणासामित्तं [लद्धिसामित्तं] च। तिण्णि सद्दणया लद्धिमिच्छति, जेण उट्ठाणे वायणायरिए य विज्जमाणे वि अभवियस्स ण उप्पज्जति, अभावात्। कताकतं ति गतं १।

केण कयं ति य ववहारतो जिणिंदेण गणधरेहिं च। तस्सामिणा तु णिच्छयणतस्स तत्तो जतो णऽण्णं ॥ १ ॥ २।

[विशेषा० गा० ३३८२]

'केसु दव्वेसु कीरति' त्ति णेगमस्स मणुण्णेणु दव्वेसु कीरति। जधा—

मणुण्णं भोयणं भोच्चा मणुण्णं सयणा-ऽऽसणं। मणुण्णंसि अगारंसि मणुण्णं झायते मुणी॥ १ ॥

[ ]

णेगंतेण मणुण्णं[2] हवइ हु परिणामकारगं दव्वं। वभिचारातो सेसा विंति ततो सव्वदव्वेसु ॥ १ ॥

[विशेषा० गा० ३३८६]

ण सव्वपज्जवेसु, जेण "सुते ण सव्वपज्जवा" [ ] इति वचनात्। केसु दव्वेसु त्ति गतं ३।

काहे य कारओ भवति—

उद्दिट्ठे च्चिय णेगमणयस्स कत्ताऽणधिज्जमाणो वि। जं कारणमुद्देसो तम्मि य कज्जोवतारो त्ति ॥ १ ॥

संगह-ववहाराणं पच्चासण्णतरकारणत्तणतो। उद्दिट्ठंसि तदत्थं गुरुपयमूले समासीणो ॥ २ ॥

[विशेषा० गा० ३३९१-९२]

उज्जुसुतस्स पढंतो अपुव्वसुतपज्जवे समये [समये] अक्कममाणो उवयुत्तस्स वा अणुवयुत्तस्स वा णो सुतं भवति, सँमत्ते[3] अज्झयणे सुयं भवति। तिण्हं सद्दणयाणं अपुव्वे सुतपज्जवे समये समये अक्कममाणस्स णियमा सम्मद्दिट्ठिस्स उवयुत्तस्स णो सुयं भवति, सँमत्ते[4] कारओ सुतं भवति। एत्थ गाधा—

अंगसुँतोवयुत्तो[5] कत्ता सँद्द-किरियाविउत्तो[6] वि। सद्दादीण मणुण्णो परिणामो जेण सुतमतिओ ॥ १ ॥ ४।

---

१ एतत्सप्तपदव्याख्यासमानार्थका आवस्यकचूर्णिरवश्यमवलोकनीया, भाग १ पत्र ५०२ तथा ६०१-४॥ २ °ण्णं **मणुण्णपरिणामकारणं दव्वं** विशेषा०॥ ३-४ **सम्मत्ते** पु०॥ ५ **अगेसु ताव युक्तो कत्ता** चूसप्र०। विशेषावश्यकमहाभाष्ये **सामायिकसूत्रस्या**धिकारात् **सामाइयोवउत्तो** इति पाठो वर्त्तते, किञ्चात्र **सूत्रकृताङ्गसूत्रस्या**धिकारात् **अगस्सुतोवयुत्तो** इति पाठो निर्दिष्टोऽस्ति॥ ६ **सद्दकिरियोवउत्तो वि। सद्दादीणमणण्णा परि°** चूसप्र०। किञ्च नायं पाठो विशेषावश्यकवृत्तिकृतां कोट्टार्य-कोट्याचार्य-हेमचन्द्रसूरीणां सम्मतोऽस्ति॥

कत्ता णयतोऽभिहितो अथवा णयतो त्ति णीतियो णेयो। सामाइयहेतुपयोज्जकारओ सो णयो य इमो ॥ २ ॥

आलोयणा इ १ विणये २ खेत्त ३ दिसाभिग्गहे य ४ काले य ५।
रिक्ख ६ गुणसंपया वि य ७ अभिवाहारे य अट्ठमये ८ ॥ ३ ॥

[विशेषा० गा० ३३९४-९६]

नयतीति नैयायिकः, गमयति एभिः प्रकारैः, एवंगुणसंपण्णाय जो सूत[क]ंडं देति सो णायकारी णायवादी य भवति। आलोयणा च सुतोवसपयाय दायव्वा, पडिच्छगेणं सिस्सेणावि जति मूलगुण-उत्तरगुणा वा विराधिता ताधे उद्देसा-विन्तेण णिस्सल्लेण होतव्वं १।

आलोयणसुद्धस्स वि देज्ज विणीयस्स णाविणीयस्स। ण हि दिज्जति आभरणं पलियत्तियकण्ण-हत्थस्स ॥ १ ॥

[विशेषा० गा० ३४०१]

सो विणीतो केरिसो ?,

अणुरत्तो भत्तिगतो अमुयी अणुअत्तओ विसेसण्णू। उज्जुत्त अपरितंतो इच्छितमत्थं लभति साधू ॥ १ ॥ २।
विणयवतो वि य कयमगलस्स तयविग्घपारगमणाय। देज्ज सुकतोवयोगो दव्वादिसु सुप्पसत्थेसुं ॥ २ ॥

[विशेषा० गा० ३४०२-३]

तत्थ दव्वे सालि-वीधिय-गोधुम-जवादिधण्णसमीपे, ण तु तिल-चणगादिसमीवे। खेत्तं पसत्थमपसत्थं च—

उच्छुवणे सालिवणे पउमसरे कुसुमिए व वणसडे। गमीर साणुणाए पदाहिणजले जिणघरे वा ॥ १ ॥
दिज्ज ण उ भग्ग-झामित-सुसाण-सुण्णा-ऽमणुण्णगेहेसुं। छारंगार-कयारा-ऽमेज्झादीदव्वदुट्ठेसु ॥ २ ॥

[विशेषा० गा० ३४०४-५]

अधवा अत्थि काणीयि खेत्ताणि जेसु सज्झायो चेव ण कीरति, जधा वैदेसे पण्णत्ती सिंधुविसए य ण पढिज्जति मसाणादिसु वा, एवं जो जहिं ३। इदाणिं तिण्णि दिसाओ अभिगिज्झ उद्दिसितव्वं—

पुव्वाभिमुहो उत्तरमुहो व देज्जाऽहवा पडिच्छेज्जा। जाए जिणादयो वा दिसाए जिणचेइआइ वा ॥ १ ॥ ४।

[विशेषा० गा० ३४०६]

काले त्ति—इमं अंगं कालेण पढिजति राति-दिणाण पढम-चरिमासु पोरिसीसु। अधवा उद्दिसतो—

चाउद्दसि पण्णरसिं वज्जेज्जा अट्ठमीं च णवमीं च। छट्ठिं च चउत्थिं वारसिं च दोण्हं पि पक्खाणं ॥ १ ॥ ५।

[विशेषा० गा० ३४०७]

पसत्थेसु वट्टति रिक्खेसु—

मयसिरमद्दा पुस्सो तिण्णि य पुव्वाइं मूलमस्सेसा। हत्थो चित्ता य तधा दस विद्धिकराइं णाणस्स ॥ १ ॥

[गणि० प्र० गा० ७। विशेषा० गा० ३४०८]

जस्स वा जं अणुकूल। अधवा—

संझागयं रविगतं विड्डेरं सग्गहं विलंबिं च। राहुहतं गहभिण्णं च वज्जए सत्त णक्खत्ते ॥ १ ॥

[विशेषा० गा० ३४०९। गणि० प्र० गा० १५]

संझागतम्मि कलहो होति कुभत्तं विलंविणक्खत्ते। विड्डेरे परविजयो आइच्चगते अणिव्वाणी ॥ १ ॥
ज सग्गहम्मि कीरइ णक्खत्ते तत्थ वुग्गहो होइ। राहुहयम्मि य मरण गहभिण्णे लोहिओगालो ॥ २ ॥

[गणि० प्र० गा० १८-१९]

१ सूतदंडं वा० मो० ॥ २ खेत्तादिसु विशेषा० ॥ ३ पयुमसरे वा० मो० ॥ ४ °सरे पुप्फफलितवणसंडे। गंभीर साणुणादे पदाहिणावत्तउदगादी ॥ आव० चूर्णी भाग १ पत्र ६०३ ॥ ५ च सेसासु देज्जाहि विशेषावश्यके ॥

पण्णत्ती दिट्ठीवातो य दिवड्ढखेत्तेसु उद्दिसंति ६। गुणसंपया णाम पुव्विं विणेयो जइ विणीतो इमे य से गुणा जइ अत्थि तो उद्दिस्सति—

पियधम्मो दढधम्मो सविग्गोऽवज्जभीरु असढो य। खंतो दंतो मुत्तो थिरव्वत जितिन्दिओ उज्जू ॥ १ ॥
असढो तुलासमाणो समितो तह सा[1]धुसंगधरयो य। गुणसंपदोववेदो जोग्गो सेसो अजोग्गो तु ॥ २ ॥
णेयोऽभिव्वाहारोऽभिव्वाहरणमहमस्स साधुस्स। इदमुद्दिसामि सुत्तत्थोभयतो कालिअसुतम्मि ॥ ३ ॥
दव्व-गुण-पज्जवेहि य भूतावायम्मि गुरुसमादिट्ठे। वेदुद्दिट्ठमिणं मे इच्छामऽणुसासणं सिस्सो ॥ ४ ॥ ७।
[विशेषा० गा० ३४१०-१३]

साउ[2]णो वा पसत्थो वा अभिवाहरति ८। ५।
करणं तव्वावारो गुरु-सीसाणं चतुव्विधं तं च। उद्देसो वायणता तधा समुद्देसणमणुण्णा ॥ १ ॥ ६।
[विशेषा० गा० ३४१४]

कधं लब्भति त्ति जधा **णमोकारो**, णाणावरणिज्जस्स दुविधाणि फड्डगाणि—सव्वघातीणि देसघातीणि य, तत्थ सव्वघातीहिं उग्घातितेहिं देसघातीहिं उदिण्णेहिं उग्घातितेहिं अणुदिण्णेहिं उवसामिएहिं कमसो विसुज्झमाणस्स लभति। कधं लभति त्ति गयं ७॥ भणितं सूतकडं ति णामं अंगस्स। तस्स पुण सूतकडस्स—

*** दो चेव[3] य सुतखंधा अज्झयणाइं हवंति तेवीसं।**
तेत्तीसं उद्देसं आयारातो दुगुणमेतं ॥ १९ ॥

[4][………………… …………………………………॥ १९ ॥
…………………………………………।
…………………………………… ॥ २० ॥]

गाधा सोलसगम्मी जेसिं अज्झयणाणं ते इमे **गाधासोलसगा**। महन्ति अज्झयणाणि अधवा महंति च ताणि अज्झयणाणि च **महज्झयणाणि**। तत्थ पढमो सुतखंधो [गाधा]सोलसगा, ताइं ताव भण्णंति त्ति कातूणं तेण गाधा णिक्खिवितव्वा सोलस णिक्खिवितव्वा सुतं णिक्खिवितव्वं खंधो णिक्खिवितव्वो ॥ २० ॥

णिक्खेवो गाधाए चउव्विहो छव्विहो य सोलससु।
निक्खेवो य[5] सुयम्मि य खंधे य चउव्विहो होइ ॥ २१ ॥

णिक्खेवो गाधाए० गाथा। **[गाधा]** णामादि चतुर्विधा। णाम-ट्ठवणाओ गताओ। दव्वे जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता पत्तय-पोत्थयलिहिता। भावगाधा दुविधा—आगमतो णोआगमतो य। आगमतो जाणए उवयुत्ते। णोआगमतो एयं चेव। सोलसयं णामादि छव्विधं। णाम-ठवणाओ तह चेव। वइरित्तं सोलसं सचित्त-अचित्त-मीसगाणि दव्वाणि। खेत्तसोलसगं सोलस आगासपदेसा। कालसोलसयं सोलस समया सोलससमयट्ठितीयं वा दव्वं। भावसोलसयं इमाणि चेव सोलस अज्झयणाणि खयोवसमिए भावे। सुते खंधे य चतुक्को णिक्खेवो पूर्ववत् जाव भावखंधो। एतेसिं चेव सोलसण्हं अज्झयणाणं समुदयसमितिसमागमेणं गाधासोलसयसुतखंधो त्ति लब्भति॥ २१ ॥गाधासोलसयाणं इमे अत्थधिकारा भवंति—

ससमय-परसमयपरूवणा य १ णाऊण बुज्झणा चेव २।
संबुद्धस्सुवसग्गा ३ थीदोसविवज्जणा चेव ४ ॥ २२ ॥

---

१ साधुसङ्ग्रहरत ॥ २ शकुन इत्यर्थ ॥ ३ **दो चेव सुतक्खंधा** अज्झयणाइं च होंति तेवीसं। तेत्तीसं उद्देसा **आयारातो दुगुणमंगं** ॥ खं १ ख २ पु २ वृ०। अत्र गाथाया **तेत्तिसुदेसणकाला आया** इति पाठभेद पु २ ॥ ४ अत्र **दो चेव य सुतखंधा**० इति गाथायाश्चूर्णि अग्रेतनचूर्ण्युक्तार्थसंवादिनी निर्युक्तिगाथा तत्प्रतीकादिकं च चिरन्तनकालादेव त्रुटितमिति सम्भाव्यते, निर्युक्त्यादर्शेष्वप्येतदर्थसंवादिनी गाथा नोपलभ्यते, नापि वृत्तिकृता **शीलाङ्केन** व्याख्याता दृश्यते, तदत्रार्थे तज्ज्ञा एव प्रमाणम् ॥ ५ उ **सुयम्मी खंधे** ख १॥

ससमय-परसमयपरूवणा य० गाधा। पढमज्झयणे ससमय-परसमयपरूवणाए अधियारो १। वितियज्झयणाधियारो पुण ते ससमयगुणे परसमयदोसे य णाऊणं ससमए संबुज्झितव्वं २। ततियज्झयणाधिगारो संबुद्धो संतो जधा उवसग्गेहिं ण चालिज्जइ ३। चउत्थज्झयणाओ इत्थिदोसविवज्जणा, ते वि अणुलोमउवसग्गा चेव ४ ॥ २२ ॥

उवसग्गभीरुणो थीवसस्स णरएसु होज्ज उववाओ ५।
एव महप्पा वीरो जयमाह तहा जएज्जोह ६ ॥ २३ ॥

उवसग्गभीरुणो थीवसस्स० गाधा। पंचमअज्झयणाधियारो जो **उवसग्गभीरू** इत्थीवसमोगओ य पावं अज्जिऊण **णरएसु** उववज्जति ५। छट्ठस्स एवं जाणिऊणं महप्पा **महावीरो** उवसग्गाणि जिणित्तु इत्थीपसंगदोसा य दोसे जाणित्तु इत्थिगाओ वज्जेत्ता णेव्वाणं गतो भगवान् जतो अतो आयरिओ वि एवं चेव सीसस्स उवदिसन्तो वक्खाति—जधा ससमए जतिअव्वं उवसग्गा य णिज्जिणितव्वा इत्थिगाओ वज्जेतव्वाओ, एवं सीलवं बंभवं च भवति ६ ॥ २३ ॥

णिस्सील-कुसीलजढो सुसीलसेवी य सीलवं चेव ७।
णाऊण वीरियदुगं पंडितविरिए पयतितव्वं ८ ॥ २४ ॥

णिस्सीलकुसील० गाधा। सत्तमए **णिस्सीला** गिहत्था, दुस्सीला अण्णउत्थिया, ससमए वि पासत्थादयो **कुसीला** वज्जेतव्वा, सयं च शीलवता भवितव्वं ७। अट्ठमस्स सयं सीलवता **णाऊण वीरियदुगं पंडितवीरिए पयतितव्वं** ८॥२४॥

सेसाणं पुण इमो अहियारो—

धम्मो ९ समाहि १० मग्गो ११ समोसढा चउसु १२ सव्ववादीसु १३।
सीसगुण-दोसकहणा गंथम्मि सदा गुरुनिवासो १४ ॥ २५ ॥

आयाणिय संकलिया आयाणिज्जम्मि आयतचरित्तं १५।
अप्पग्गंथे पिंडवयणे गाधाए अहिगारो १६ ॥ २६ ॥

धम्मो समाधि मग्गो० गाधा। वितिया वि **आयाणिय संकलिया०** गाधा। एवं पंडितवीरियअभिगमणट्ठताए धम्मो कहिज्जइ, पंडियवीरियट्ठितो वा धम्मं कधेति ९। दसमस्स समाधिवासो उवदिस्सति, समाधी वा से उवदिस्सति १०। णाणादिसजुत्तो वा से मग्गो उवदिस्सइ, सो वा परेसिं उवदिसति एक्कारसमस्स ११। बारसमस्स एवं मग्गपढिवण्णो गामातगं वा उवस्सए वा भिक्खायरियगयं वा दूइज्जमाणं वा परउत्थिगा परउत्थिगभाविता वि गिही चोदेज्जं, तेसिं पडिसेधणट्ठा समोसरणज्झयणे तिण्ह वि तिसट्ठाणं पासडियसताणं असब्भावकुदिट्ठीओ पडिसेधिज्जंति १२। तेरसमस्स जधा पडिसेधेन्ता अधवा मग्गो परिकधिज्जति सव्वे वि ते धम्मं समाधिमग्गं वा ण याणति १३। चोद्दसमस्स समाधिमग्गट्ठितस्स वि सीसगुण-दोसा परिकधिज्जंति, सीसगुणसपण्णेण य गुरुकुलवासो वसितव्वो १४ ॥ २५ ॥

पण्णरसमस्स **आयाणिज्जे** आत्मार्थिकेन **आयतचरित्तेणं** भवितव्वं, सुत्तत्थो य पायेण **संकलियाणिबद्धो** १५। एतेसिं पण्णरसण्ह वि अज्झयणाणं **गाधाए पिंडकवयणेणं** अत्थोऽभिव्वज्जति, दरिसिज्जति विभाष्यत इत्यर्थः १६ ॥ २६ ॥

गाधासोलसगाणं पिंडत्थो वण्णितो समासेण। एत्तो एक्केक्कं पुण अज्झयणं कित्तयिस्सामि ॥ १ ॥

तत्थ पढमज्झयणं समयो त्ति। तस्स इमे अणुयोगदारा भवंति। तं जधा—उवक्कमो १ णिक्खेवो २ अणुगमो ३

---

१ नरगेसु ख १ ॥ २ °ज्जाहि ख २ ॥ ३ परिचत्तनिसील-कुसील सुसील संविग्ग सीलवं चेव ७ सा० वृ०। परिचत्तनिसील-कुसील सुसीलसेवी य सीलवं होइ ७ ख २ पु २। णिस्सील-कुसीलजढो इत्यादिकश्चूर्णिकृत्सम्मत पाठ ख १ प्रतौ वर्तते ॥ ४ पयइयव्वं ख २ पु २। य जइयव्वं ख १। पयट्टेइ सा० ॥ ५ आदाणिय संकलिया आदाणिज्जम्मि ख २ पु २ ॥ ६ पिंडियवयणेणं होइ अहि° सा० ॥ ७ चोदेज्जेतेसिं वा० मो० ॥

णयो ४। उपक्रम्यते अनेनेत्युपक्रमः, "क्रमु पादविक्षेपे" उप–सामीप्ये, सत्थसामीवीकरणं, सत्थस्स णामदेसमाणयणमिति भणितं होति १ । तथा निक्षिप्यतेऽनेनेति निक्षेपः, "क्षिप प्रेरणे" इति, नियतो निश्चितो क्षेपो निक्षेपः, न्यासः स्थापनेति यावत् २ । अनुगम्यतेऽनेनेत्यनुगमः, अणुनो वा सूत्रस्य गमो अनुगमः, अनुरूपार्थगमनं वा अनुगमः, सूत्रानुसरणमित्यर्थः ३ । "णीञ् प्रापणे" तस्य नय इति भवति, सूत्रप्रापणव्यापारोपायान् नयतीति नयः, नीयते वा अनेनेति नयः, वस्तुनः पर्यायाणां सम्भवतोऽभिगमनमित्यर्थः ४ ।

एतेसिं च उवक्कमादिदाराणं एसेव कमो, यतो नानुपक्रान्तं असमीपीभूतं सद् निक्षिप्यते, न च नामादिभिरनिक्षिप्तमर्थतोऽनुगम्यते, न च नयमतविकलो अनुगम इति । जतो सत्थं सम्बन्धात्मकेन उपक्रमेण स्थापनासमीपमानीयते, नामादिन्यस्तनिक्षेपमर्थतोऽनुगम्यते नानानयैः, अतोऽयमेवानुयोगद्वारक्रम इति ।

सो उवक्कमो छव्विधो—णामोवक्कमो ठवणो० दव्व० खेत्त० काल० भावउवक्कमो । छव्विहो वि जधा **आवस्सए** [आव० चूर्णी भाग १ पत्र ८०] तधा परूवेतव्वो । अधवा उवक्कमो छव्विधो—आणुपुव्वी १ णामं २ पमाणं ३ वत्तव्वया ४ अत्थाधियारो ५ समोतारो ६ । एते वि जधा **अणुयोगद्दारे** [सू० ७० पत्र ५१-१] तधा भासितव्वा जाव समोतारो सम्मत्तो । एवं समयज्झयणं आणुपुव्वादिएहिं दारेहिं जत्थ जत्थ समोतरति तत्थ तत्थ समोतारेयव्वं ।

आणुपुव्वीए उक्कित्तणाणुपुव्वीए गणणाणुपुव्वीए य समोतरति । सा तिविहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। समयज्झयणं पुव्वाणुपुव्वीए पढमं, पच्छाणुपुव्वीए सोलसमं, अणाणुपुव्वीए एताए चेव एगादियाए एगुत्तरिआए सोलसगच्छगताए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो । एत्थ पत्थारविहीकरणं इमं—

एकाद्या गच्छपर्यन्ताः परस्परसमाहताः । राशयस्तद्धि विज्ञेयं, विकल्पगणिते फलम् ॥ १ ॥
गणितेऽन्त्यविभक्ते तु, लब्धं शेषैर्विभाजयेत् । आदावन्ते च तत् स्थाप्यं, विकल्पगणिते क्रमात् ॥ २ ॥ १ ।

[ ]

णामे छव्विधणामे समोतरति, तत्थ छव्विधो भावो वण्णिज्जति, तत्थ वि खयोवसमिए भावे समोतरति, जतो सव्वमेव सुय खयोवसमिए भावे वट्टति २ ।

पमाणं चउव्विधं—दव्वप्पमाणं खेत्तप्पमाण कालप्पमाणं भावप्पमाणं च । प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम् । तत्थ समयो भावात्मकत्वाद् भावप्रमाणगोचरम् । तं भावप्पमाणं तिविधं—गुणप्पमाणं णयप्पमाणं संखप्पमाणं । गुणप्पमाणं दुविधं—जीवगुणप्पमाणं अजीवगुणप्पमाणं च । तत्थ जीवाणण्णत्तणओ समयस्स जीवगुणप्पमाणे समोतारो । जीवगुणप्पमाणं तिविधं—णाणगुणप्पमाणं दंसणगुणप्पमाणं चरित्त० । तत्र बोधात्मकत्वात् समयस्स णाणगुणप्पमाणे समोतारो । णाणप्पमाणं चतुर्विधम्—पच्चक्खं अणुमाणं ओवम्मं आगमो । तत्थ समयस्स पायं परोवदेसत्तणतो आगमप्पमाणे समोतरति । आगमो दुविधो—लोइओ लोगुत्तरो य, लोगुत्तरिए समोतरति । सो तिविधो—सुत्ते अत्थे तदुभते त्ति, तिसु वि समोतरति । अधवा आगमो तिविधो—अत्तागमो अणंतरागमो परपरागमो य । तत्थ समयस्स अत्थतो तित्थकरस्स अत्तागमो गणधराणं अणंतरागमो गणधरसिस्साणं परपरागमो, [1]सुत्ततो गणधराणं अत्तागमो गणहरसीसाणं अणतरागमो, तेण पर सुत्त-ऽत्था वि णो अत्तागमो णो अणंतरागमो परंपरागमो । गुणप्पमाणं गतं । इदाणिं णयप्पमाणं, तत्थ—

मूढणेयियं सुतं कालियं तु ण णया समोतरंति इधं । आसज्ज तु सोतारं णए णयविसारतो बूया ॥ १ ॥
[आव० नि० गा० ७६२]

ण इदाणिं णयप्पमाणे समोतरति, पुरा पुण जाव चतुण्ह अणुयोगाण अपुहत्तं आसि ताव सुत्ते णया अवतारिज्जंता, इयाणिं पुहत्ताणुयोगे णावतारिज्जति ।

---

१ सुत्तत्थो गण° चूसप्र० ॥ २ °णययं वा० मो० ॥

इदाणिं संखप्पमाणं, तं अट्ठविधं, तं जधा—णामसंखा ठवणसंखा दव्व० खेत्त० कालसंखा परिमाण० पज्जव० भावसंखा चेव, तत्थ परिमाणसंखाए समोतरति। परिमाणसंखा दुविधा—कालियसुतपरिमाणसंखा य दिट्ठिवायसुतपरिमाणसंखा य, कालियसुयपरिमाणसंखाए समोतरति। कालियसुतपरिमाणसंखा दुविधा—अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च, अंगपविट्ठे समोतरति। पज्जवसंखाए अणंता पज्जवा, जतो भणितं—"सव्वागासपदेसग्गं सव्वागासपदेसेहिं अणंतगुणितं [1]पज्जवग्गं अक्खरं लब्भति" [नन्दी० सू० ४२] "संखेज्जा अक्खरा संखेज्जा संघाता संखेज्जा पदा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ गाधाओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा अणुयोगदारा" [अर्थत समवा० सू० १३७। नन्दी० सू० ४६] ३।

इदाणिं वत्तव्वया, सा तिविधा—ससमयवत्तव्वया परसमयवत्तव्वया ससमयपरसमयवत्तव्वया, तत्थ ससमयवत्तव्वयाए समोतरति।

परसमए उभय वा सम्मदिट्ठिस्स ससमयो जेण। तो सव्वज्झयणाइं ससमयवत्तव्वणियताइं ॥ १ ॥

मिच्छत्तसमूहमय सम्मत्तं जं च तदुवकारम्मि। वट्टइ परसिद्धंतो तो तस्स तओ ससिद्धंतो ॥ २ ॥ ४।

[विशेषा० गा० ९५३-५४]

अत्थाहिकारो दुविधो—अज्झयणत्थाधिकारो य उद्देसत्थाधिकारो य। तत्थ अज्झयणत्थाहिगारो ससमय-परसमयपरूवणाए। उद्देसत्थाधिकारो इमो—पढमुद्देसए ताव इमे छ अत्थाधिकारा भवति। तं जधा—

[2]मधपंचभूत १ एकप्पए य २ तज्जीवतस्स[3]रीरी य ३।
तध य [4]अकारगवादी ४ [5]आतच्छट्ठो ५ अफलवादी ६ ॥ २७ ॥

॥ २७ ॥ वितियए चत्तारि अत्थाधिकारा। त जधा—

[6][7]वितिए णियतीवायो १ अण्णाणी २ तह य णाणवादी [7]यं ३।
कम्मं चयं ण गच्छति चतुव्विधं भिक्खुसमयम्मि ४ ॥ २८ ॥
तइए आहाकम्मं १ [8]कडवादी जध य ते [9]पवादी तु २।
किच्चुवमा य चउत्थे परप्पवादी [10]अविरतेसु ॥ २९ ॥

ततिएऽत्थ अत्थाधिकारो आहाकम्म परवादिका य। चउत्थे एगो चेव अधिगारो किच्चुवमा परप्पवादिगाणं ५ ॥ २९ ॥

एव समोतारेण जत्थ जत्थ समोतरति तत्थ तत्थावतारित ६। उवक्कमो गतो। इदाणिं णिक्खेवो। सो तिविहो—ओघणिप्फण्णो णामणि० सुत्तालावयणिप्फण्णो त्ति। ओहो णाम—जं सामण्णं सत्थस्स णाम, तं चउव्विधं—अज्झयण अज्झीणं आयो ज्झवणा। अज्झयण णामादि चतुर्विधम्, दव्वज्झयण पत्तय-पोत्थयलिहित, भावज्झयण इदमेव समयं ति। अज्झीण णामादि चतुव्विधं, दव्वज्झीणं सव्वागाससेढी, भावज्झीण इदमेव समयज्झयणं, ण खीयति दिज्जतं अण्णेसिं। तत्थ गाधा—

जध दीवा दीवसत पदिप्पदी सो य दिप्पती दीवो। दीवसमा आयरिया दीप्पंति परं च दीवेंति ॥ १ ॥

[अनुयोगद्वारे पत्र २५२-२]

इदाणिं आयो—सो वि नामादि चतुव्विधो, दव्वओ सचित्तादि, सचित्ते दुपयादि ३, मिस्से स एव साभरणाणं दुपदादीण, अचित्ते हिरण्णादी ४, भावओ इदमेव समयज्झयण। इदाणिं झवणा—सा वि णामादि चतुव्विधा, दव्वज्झवणा

१ नन्दीसूत्रे तु पज्जवग्गक्खरं इति पाठ ॥ २ णामं १ ठवणा २ दविए ३ इति त्रिंशत्तमी गाथा वृत्तिकृता मधपंचभूत० इति गाथाया प्राग् व्याख्याताऽस्ति, निर्युक्त्यादर्शेष्वपि च तथैव वर्त्तते ॥ ३ °स्सरीरे य ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ४ अगारगवाती ख २ पु २ ॥ ५ अत्तच्छट्ठो सा० ॥ ६ एतद्गाथाचूर्णि प्रथमाध्ययनद्वितीयोद्देशकोत्थानिकायां द्रष्टव्या। वीए णियतीवायो १ अन्नाणिय २ तह खं २ पु २ ॥ ७ उ ख १ ख २ पु २ ॥ ८ कडवाय जध ख १ ॥ ९ पवादीआ ख १ वृ० ॥ १० य विर° चूसप्र० ॥

"[1]पल्हत्थियाए पोत्ती झविज्जति घोडओ विव[2]ज्झाए।" [　　　] एवमादि। भावज्झवणा दुविधा—पसत्थभावज्झवणा य अपसत्थभावज्झवणा य। पसत्थभावज्झवणा णाणस्स ३ झवणा, अपसत्थभावज्झवणा कोधस्स ४। चउसु वि एतेसु समयज्झयणं भावे समोतरति। इदाणिं एतेसिं चउण्ह वि णिरुत्तेण विहिणा वक्खाणं भण्णति। तत्थ णिरुत्तगाधाओ—

जेण सुहज्झप्पयणं अज्झप्पाऽऽणयणमधिअमयणं वा। वोधस्स संजमस्स व मोक्खस्स व तो तमज्झयणं॥ १॥
[विशेषा० गा० ९६०]

जेण सुहज्झप्पं जणेति अतो अज्झप्पजणं, [प्पगारलोवाओ अज्झयणं। अहवा अज्झप्पस्स आणयणं,] प्पगार-[आकार-]णकारलोवाओ अज्झयणं ति। अधवा वोधादीणं आधिक्केण णज्झयणं (अयणं) अज्झयणं, अयनं गमनमित्यर्थः॥

अज्झीणं दिज्जंतं अव्वोच्छित्तिणययो अलोगो व्व। आयो णाणादीणं झवणा पावाण खवण त्ति॥ १॥
[विशेषा० गा० ९६१]

गतो ओहणिप्फण्णो णिक्खेवो। [णामणिप्फण्णे] समयो त्ति। सो बारसविधो—

※ णामं १ ठवणा २ दविए ३ खेत्ते ४ काले ५ कुतित्थि ६ संगारे ७।
कुल ८ गण ९ संक[3]रसमए १० गंडी ११ तध भावसमए य १२॥ ३०॥

णाम-ठवणाओ तवेव २। वतिरित्तो दव्वसमओ जो जस्स सचित्तस्स अचित्तस्स वा सभावो। तं जधा—सचित्तस्सोवयोगो, सेसाणं गति-ठिति-[4]अवगाह-गहणाणि। [5]अधिपिधत्तेण दव्वाणं सभावा भवंति वण्ण-गंध-रस-फासेहिं—वण्णतो कालतो भमरो, णीलं उप्पल, रत्तो कंवलसाडो, पीतिया हरिद्दा, सुकिलो ससी। [गंधेण] सुगंधं चंदणादि, [6]दुग्गंधो वच्छो (वच्चो)। रसेण कडुआ सुंठी, तित्तो णिंवो, कसायं—तूविरं कविट्ठ, अम्बं अम्बयं, महुरो गुलो। [फासतो] कक्खडो पासाणो, स एव गुरु, लहुगं उलूगपत्तं, सीतं हिमं, उण्हो अग्गी, णिद्धं घतं, लुक्खा छारिया एवमादि। अधवा जो जस्स दव्वस्सोवयोगकालो सो तस्स समयो, तं जधा—खीरस्स ताव उण्हमणुण्हं सीतमसीतं वा, एवमण्णेसिं पि पुप्फ-फलादीणं विभासितव्वं। अथवा—

वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमन्ते। शिशिरे चाऽऽमलकरसो घृतं वसन्ते गुडो वसन्तस्यान्ते॥ १॥ ३।
[　　　　　]

खेत्तसमयो आगासस्स धम्मता,

एगेण वि से पुण्णे दोहि वि पुण्णे सतं पि माएज्जा। [लक्खसएण वि पुण्णे कोडिसहस्सं पि माएज्जा॥ १॥]
[　　　　　]

अधवा जो जेसिं गामातीणं खेत्ताणं [7]सभावो, जधा—गामे गामधम्मो णगरे णगरधम्म इति, देवकुरादीणं वा खेत्ताणं पि जो सभावो, अधवा जधा परिपक्कस्स सालिखेत्तस्स लुणितव्वसमये, अधवा उड्ढलोग-अधोलोग-तिरियलोगस्स वा जो सभावो ४। कालसमयो जो जस्स कालस्स सभावो—उस्सप्पिणी अवसप्पिणी, उस्सप्पिणी उस्सप्पति, [अवसप्पिणी अवसप्पति]। तथा—"सुभाणुभावा मुदिता एगंता सुसमा सुभा।" [　　　] एवं छव्विहो वि कालो वण्णेतव्वो जधा जंबुद्दीवपण्णत्तीए [वक्ष० २ सू० १९ तः पत्र ९२] ५। पासंडसमयो जो जस्स पासंडस्स सभावो धम्मतेत्यर्थः, तं जधा—केती आरंभेण धम्म ववसिता, केसिंचि णाणाण (णाणेण) धम्मो, केसिंच अभिषेचनोपवास-गुरुकुलवासादिभिः ६। संगारसमयो हि यस्य येन यस्मिन् कालः—अवधिर्दत्तः संगारसमयो, जधा पुव्वकयसंगारेण सिद्धत्थसारधिणा बलदेवो सम्बोधितो, पुट्टिलाए तेयलिपुत्तो [ज्ञाता० श्रु० १ अ० १४ सूत्र १०२ पत्र १८९-२] पभावतीए उद्दायणो एवमादि [आव० चूर्णी भाग १ पत्र ३९९, आव० हारि० वृत्ति पत्र २९८] ७। कुलसमयो जो जस्स कुलस्स धम्मो आचार इत्यर्थः, तद्यथा—[8]शकानां आवपितृशुद्धिः

---

१ अत्रार्थे उत्तराध्ययननिर्युक्तिसत्का पल्लत्थिया अपत्था० इति दशमी गाथा द्रष्टव्या॥ २ °वज्झाए मु०॥ ३ संकर १० गंडी ११ वोधव्वे भाव° ख १ ख २ पु २॥ ४ अवगाहणाणि पु०॥ ५ अधपिध° मु०॥ ६ दुग्गंधो लहसुणादी, कडुआ मु०॥ ७ ससभाव॥ ८ "शकानां पितृशुद्धि, आभीरकाणां मन्थनिकाशुद्धि" इति शीलाङ्कवृत्तौ॥

खण्डशुद्धिः, आभीराणां असातृमन्थनीशुद्धिः मन्थनीशुद्धी ८। गणसमयो जो जस्स गणस्स समयो, तं जधा—मल्लगणस्स जो मल्लो अणाहो मरति स मल्लैः संस्कार्यते पतितं चैनमुद्धरन्ति ९। गण्ढिसमयो जहा—भिक्खूणं गोसे पेज्जागंडी, मज्झण्हे भावणगंडी, अवरण्हे धम्मकधागंडी, संझाए समितिगंडी १०। भावसमयो इमं चेव अज्झयणं खयोवसमिए भावे ११। एतेण चेव एत्थऽधिगारो, सेसाणि मतिविकोवणत्थं परूविताणि ॥ ३० ॥

णामणिप्फण्णो णिक्खेवो गतो। इदाणिं सुत्तालावगणिप्फण्णो णिक्खेवो, सो पत्तलक्खणो वि ण णिक्खिप्पति, कम्हा?, लाघवत्थं, जम्हा अत्थि इतो ततियं अणुयोगदारं अणुगमो त्ति, तहिं वा णिक्खित्तं इहं णिक्खित्त, इहं वा णिक्खित्तं तहिं णिक्खित्तं भवति, तम्हा तहिं चेव णिक्खिविस्सामीति। अह यदि प्राप्तावसरोऽप्यसौ न सन्यस्यते किमिहोच्यते? इति, उच्यते, निक्षेपमात्रसामान्यादसौ केवलमिहोपदर्श्यते, न तु न्यस्यते, गुरुता मा भूदिति। उक्तो निक्षेपः ॥

इदाणिं ततियमणुयोगद्वार अणुगमो त्ति। सो दुविधो—सुत्ताणुगमो निज्जुत्तिअणुगमो। णिज्जुत्तिअणुगमो तिविधो—णिक्खेवणिज्जुत्तिअणुगमो उवघातणिज्जुत्तिअणुगमो सुत्तफासियणिज्जुत्तिअणुगमो। तत्थ णिक्खेवणिज्जुत्ती अणुगता, जं एय हेट्ठा णिक्खेववक्खाण भणितं। इदाणिं उवघातणिज्जुत्तिअणुगमो—उवघातो णाम प्रभवः प्रसूतिः निर्गम इत्यर्थः।

मेघच्छन्नो[1] यथा चन्द्रो न राजति नभस्तले। उपोद्घातं विना शास्त्रं तथा न भ्राजते विधौ[2] ॥ १ ॥

यथा हि दृष्टसर्वाङ्गो संवीतवदनो नरः। अभिव्यक्तिं न यात्येव शास्त्रमुद्घातवर्जितम् ॥ २ ॥

[ ]

सो य उवघातो इमेहिं छव्वीसाए दारेहिं अणुगंतव्वो। तं जधा—

उद्देसे १ णिद्देसे य २ णिग्गमे ३ खेत्त ४ काल ५ पुरिसे य ६।
कारण ७ पच्चय ८ लक्खण ९ णये १० समोतारणा ११ ऽणुमते १२ ॥ १ ॥
किं १३ कतिविधं १४ कस्स १५ कहिं १६ केसु १७ कधं १८ केचिरं हवति कालं १९।
कति २० सतर २१ मविरहियं २२ भवा २३ ऽऽगरिस २४ फासण २५ णिरुत्ती २६ ॥ २ ॥

[आव० नि० गा० १४०–४१ पत्र १०४]

एताणि जधा सामाइयणिज्जुत्तीए तधा भाणियव्वाणि। उवग्घायणिज्जुत्ती गता ॥

संपति सुत्तप्फासियणिज्जुत्ती जं सुतस्स वक्खाणं। तीसेऽवसरो सा पुण पत्ता वि ण भण्णते इधतिं ॥ १ ॥
किं? जेणाऽसति सुत्ते कस्स तई?, तं जदा कमप्पत्ते। सुत्ताणुगमे वोच्छिति होहिति तीसे तदाऽवसरो ॥ २ ॥
अत्थाणमिदं तीसे जइ तो सा कीस भण्णए इधइं?। इध सा भण्णति णिज्जुत्तिमेत्तसामण्णतो णवरं ॥ ३ ॥

[विशेषा० गा० ९९५–९९७]

अतो एतेण सवंवेण। इदाणिं निज्जुत्तिअणुगमाणंतर सुत्ताणुगमं भणामि, सुत्तस्स अणुगमो सुत्ताणुगमो, सुत्ताणुसरणमित्यर्थः। किमिह ऊणा-ऽधिक-विपज्जत्थादिदोसदुट्ठस्स उआहु णिद्दोसस्स य वक्खाणं आरब्भति?, [ण] सदोसस्स, अवणीतदोसस्स, अतो सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेयव्वं।

सुत्तेऽणुगते सुद्धे त्ति णिच्छिते तध कते पदच्छेदे। सुत्तालावण्णासे णिक्खित्ते सुत्तफासो तु ॥ १ ॥
एवं सुत्ताणुगमो सुत्तालावयकयो य णिक्खेवो। सुत्तप्फासियनिज्जुत्ती णया य वच्चंति समगं तु ॥ २ ॥

[विशेषा० गा० १०००–१]

"तत्थ सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चरितव्वं अहीणक्खर अणच्चक्खर अवाइद्धक्खरं अक्खलितं अमिलिय अविच्चामेलितं पडिपुण्ण पडिपुण्णघोस कट्ठोट्ठविप्पमुक्कं, तो तत्थ णज्जिहिहि ससमयपद वा बंधपदं वा मोक्खपद वा [3]ससमयपदं वा णोससमयपदं

---

१ मेघच्छन्ने यथा सं० वा० मो० ॥ २ शास्त्रं न राजति तथाविधम् इति पाठभेदो बृहत्कल्प० मलय० वृत्तौ पत्र २ ॥
३ "सामाइयपय वा नोसामाइयपय वा" इति अनुयोगद्वारसूत्रे पाठ सू० १५५ पत्र २६० ॥

वा, तो तम्मि उच्चारिते समाणे केसिच भगवंताणं केइ अत्थाधिकारा अधिगता भवंति, केइ अणधिगता, तो तेसिं अणभिगताणं अत्थाणं अभिगमणट्ठताए पएण पयं वत्तइस्सामि। तत्थ—

संहिता य पदं चेव पयत्थो पदविग्गहो। चालणा पच्चवत्थाणं छव्विधं विद्धि लक्खणं ॥ १ ॥"

[अनुयोगद्वारसूत्रे सू० १५५ पत्र २६१]

तत्थ संहितासुत्तं इमं—

※ १. बुज्झिज्ज तिउट्टिज्जा[1] बंधणं परिजाणिया।
किमाहु[2] बंधणं धीरे[3]? किं वा जाणं तिउट्टति? ॥ १ ॥

बुज्झति। कुत्र बुध्येत? धर्मे बुध्येत इति, बुज्झितं वा बुज्झेज। बुज्झेज्जा त्रिकालग्रहणम्, बुद्धो तमेवार्थं पुनः पुनर्बुध्यते, बुध्यमानो वा बुध्येत। किं पुनः तं? बुज्झेज्ज वा उवलभेज्ज वा भिंदेज्ज वा। एवमन्येऽपि ज्ञानार्था धातवो वक्तव्याः, तद्यथा—जहेज्ज वा आगमेज्ज वा। समयो त्ति अधियारो प्रस्तुतः, स च त्रिविधः, तद्यथा—स्वं[4] १ पर २ तदुभयश्च ३। समयः स्वभाव इति कृत्वा तेषां स्वभावं बुध्येत, 'के नु सम्यक्प्रतिपन्नाः? के मिथ्याप्रतिपन्नाः?' इत्येवं सर्वाध्ययनाधिकारं बुध्यते। अथवा बन्धं बन्धहेतुं वा बुध्येत। अत्राह—अविशिष्टमेवापदिष्टं 'बुध्येत' इति, न त्वपदिष्टम् 'इत्थं नाम बुध्येत बन्धं बन्धहेतुं वा?,' उच्यते—नन्वपदिष्टमत्रैव[5] द्वितीयपादेन '**बंधणं परिजाणिया**' इति, तेनानुक्तमपि ज्ञायते यथा 'बन्धं बन्धहेतूंश्च बुध्येत'। तत्र बन्धहेतुः प्रमादः साम्परायिकस्य कर्मणः, राग-द्वेष-मोहा वा पाणातिवातमातिगाणि वा मिच्छादंसणसल्लपज्जवसाणाणि आरभ-परिग्गहा वा, एवं बंधहेतू बुज्झेज्ज। एत एव विवरीता मोक्खहेतवो भवंति ते वि बुज्झितव्वा भवंति। उक्तो बन्धहेतुः। बन्धस्तु प्रकृति-स्थित्यनुभाव-प्रदेशा वक्तव्याः। **तिउट्टेज्ज** त्ति त्रोडेज्ज। सा दुविधा—दव्वत्रोडणा य भावत्रोडणा य। दव्वे देसे सव्वे य। देसे एगतंतुणा एगगुणेण वा छिण्णेण दोरो त्रुट्टो बुज्झति, सव्वेण वि[6] त्रुटो त्रुटो चेव भण्णति। भावतोट्टणा भावेणैव भावो त्रोटेतव्वो, णाण-दसण-चरित्ताणि अत्रोडयित्ता तेहिं चेव करणभूतेहिं अण्णाण-अविरति-मिच्छादरिसणाणि त्रोडितव्वाणि, जधुद्दिट्ठा वा पमातादिबंधहेतू त्रोडेज्ज, बंधं च अट्ठकम्मणियलाणि त्रोडेज्ज। [कहं?] उच्यते—**बंधणं परिजाणिया**, बन्धस्तद्धेतवश्चोक्ताः, तं णु जाणणापरिण्णाए णाऊण पच्चक्खाणपरिण्णाए **तिउट्टेज्ज**। एतद् बन्धानुलोम्यात् सूत्रं गतम्, इतरथा हि बुज्झेज्ज त्ति वा परिजाणेज्ज त्ति वा एकट्ठमिति कातुं तेन शुद्धः सन् बन्धनं परिज्ञाय तत् त्रोडेज्ज। अथवा **बुज्झेज्ज** त्ति जाणणापरिण्णा गहिता, **बंधणं परिजाणेज्ज** त्ति पच्चक्खाणपरिण्णा। **किमाहु बंधणं धीरो**, किमिति परिप्रश्ने, आहुरिति एकान्तपरोक्षे, भगवति सिद्धिं गते **जम्बूस्वामी अज्जसुधम्मं** पुच्छति—**किमाहु बंधणं धीरे?**। तत्थ बंधो अट्ठप्पगार कम्मं। चतुव्विधो बन्धहेतू। अत्राह—इह सूत्रे नोक्ता बन्धहेतवो न चानुक्तमुक्तं स्यात्, एवमुक्तमपि अनुक्तमस्तु, उच्यते—बन्धने उक्ते बन्धो बन्धहेतुश्च अपदिष्टो भवति। **धीरो** इति बुद्ध्यादीन् गुणान् दधातीति धीरः। पुनराह—**किं वा जाणं तिउट्टति?**, उच्यते—अथातः इहैव व्याकरणे तमेव बन्धं बन्धहेतूंश्च जाणणापरिण्णाए णातु पच्चक्खाणपरिण्णाए पडिसेहेतु पच्छा तिउट्टति। **तिउट्टइ** ति बंधणाइं तोडेइ, सो वा बधणेहिं भिन्नो त्रटति। अधवा पुव्वद्धेण उद्देसो, पच्छद्धेण पुच्छा, वितियसिलोगेण वागरणं, तेन कारणे कार्यवदुपचार कृत्वा बन्धनमपदिश्यते ॥ १ ॥

२. चित्तमंन्तमचित्तं[7] वा परिगिज्झ किसामवि[8]।
अण्णं वा अणुजाणाति[9] एवं दुक्खा ण मुंचति[10] ॥ २ ॥

चित्तमन्तमचित्तं वा० सिलोगो। उक्त हि—"आरम्भ-परिग्रहौ बन्धहेतू" [ ] येऽपि च रागादयः तेऽपि

---

१ तिउट्टेज्जा ख १ ख २ तितुट्टेजा पु १। तिकुट्टेज्जा पु २॥ २ किमाह ख १ ख २ पु २॥ ३ वीरे ख १ ख २ पु २ वृ० दी०॥ ४ स्वः परः तदु° मु०॥ ५ तत्तूपदिट्ट° पु०॥ ६ वि त्रुटो चेव वा० मो०॥ ७ °मत्तम° ख १॥ ८ कसामवि ख १॥ ९ °णाए एवं ख २ पु १ पु २॥ १० मुचती खं १ पु १॥

नाऽऽरम्भ-परिग्रहावन्तरेण भवन्तीति, तेन तावेव वा गरीयांसाविति कृत्वा सूत्रेणैवोपनिबद्धौ, तत्रापि परिग्रहनिमित्तं आरम्भः क्रियत इति कृत्वा स एव गरीयस्त्वात् पूर्वमपदिश्यते, पंचण्ह वा पाणातिवातादिआसवाणं परिग्गहो गुरुअतरो त्ति कातुं तेण पुव्वं परिग्गहो वुच्चति। तत्थ चित्तमंतं तिविधं—दुपदं चतुप्पद अपदं। अचित्तमंतं हिरण्ण-सुवण्णादि। वा विभाषायाम्, मिश्रं चेति। परिगिज्झ किसामवि, किसामवीति कृशं तनु तुच्छमित्यनर्थान्तरम्, तृणतुषमात्रमपि। अथवा कषायमपीति इच्छामात्रं प्रार्थना, अथवा कषायतः असत्यपि विभवे कषायतः परिगृह्यमाणानि वस्त्र-पात्राणि परिग्रहो भवति। [1]तमेव सइं परिगिण्हइ, अण्णेण परिगिण्हावेति, परिगृण्हंतं च त्ति सुत्तेण चेव भणियं, अण्णं वाऽणुजाणाति। सूचनामात्रं सूत्रं इति कृत्वा स्वयङ्करण-कारवणानि अणुमतीए गिहिताइं, णवगो वा भेदो। एवं दुक्खा ण मुच्चति, एवं सो णवएण भेदेण परिग्गहे वट्टमाणो दुक्खातो न मुच्चति। तत्र दुक्खं कर्म तद्विपाकश्च। एवं बुज्झेज्ज—सपरिग्गहस्स णियमा पाणादिवायादयो भवंति, तेण पुव्वं परिग्गहो भणिओ, मेथुणं परिग्गहे चेव पडति, समज्जिणण-णासे य परिग्गहदोसा भाणितव्वा। उक्तं हि—"परिग्रहेष्वप्राप्त-नष्टेषु काङ्क्षा-[2]मोहौ, प्राप्तेषु च रक्षणं, उपभोगे चातृप्तिः" [ ]॥ २॥

इदाणीमारंभो, सो य परिग्गहमेव, तत्थ सिलोगो—

३. सयं तिवातए पाणे अदुवा अण्णेहिं घातये।
हणंतं वाऽणुजाणाति वेरं वड्ढेति अप्पणो॥ ३॥

सयं तिवातए पाणे० [सिलोगो]। सयमिति स्वतः तिवायए त्ति आयुर्बल-शरीरप्राणेभ्यो त्रिभ्यः पातयतीति त्रिपातयति, त्रिभ्यो वा मनो-वाक्-काययोगेभ्यः पातयति, करणभूतैर्वा मनो-वाक्-काययोगैः पातयतीति त्रिपातयति। अतिपातयतीति वा वक्तव्यम्, अकारलोपं कृत्वाऽपदिश्यते तिपातयति। अदुवा अण्णेहिं घातये, अदुवा अन्यैर्घातयति यथा राजादयः। हणंतं वा अणुजाणाति, जधा उद्दिट्ठभोयिणो पासंडा। अस्मिंस्त्रितये कश्चित् स्वयं त्रिविधेऽपि करणे वर्त्तते, कश्चिद् द्विविधे, कश्चिदेकविधे। सर्वथाऽपि वर्त्तमानो वेरं वड्ढेति अप्पणो, विरज्यते येन तद् वैरम्, [3]सुणगवधिति (सुणगवधे वि) ताव परपरं वट्टमाणे महासंगामे हवेज्ज, किमंग पुण पुरिसवधे गोणादिवधे वा? । एत्थोदाहरणं वारत्तएणं "महुबिंदुम्मि पसंगो" [ ]। अथवा 'वेर'मिति अट्ठप्पगारं कम्मं। उक्तं हि—"पावे वेरे वज्जेति ता वर" [ ]। प्राणातिपाताद्यैरारम्भैर्वर्द्धयन्ति, मृषावादा-ऽदत्तादाने अपि आरम्भान्तर्गते एव, एवं बुज्झेज्ज ॥ ३॥

तत् किमर्थमारभते प्रतिगृह्णाति वा? उच्यते—

४. जंसी[4] कुले समुप्पण्णो [5]जेहिं वा संवसे णरे।
ममाती लुप्पती बाले अण्णमण्णेहिं मुच्छिते॥ ४॥

जंसी कुले समुप्पण्णो० सिलोगो। परिग्रहावशेषमेवाभिधीयते—जंसी कुले समुप्पन्नो, यस्मिन्निति अनिर्दिष्टे कुले इति मातृ-पितृपक्षे। जेहिं वा संवसे णरे भज्जा-ससुर-सहवास-मित्तातिएहि। ममाती लुप्पती बालो, ममाती णाम ममैते बान्धवा इति, ममीकारदोसेण य [6]लुप्पति उच्यते तिउट्टणधम्मातो त्ति, द्वाभ्यामाकलितो बालः। अण्णमण्णेहि मुच्छिते त्ति तेसु पुव्वसथुतेसु पच्छासंथुतेसु वा। एत्थ चउभंगो—सो तेसु मुच्छितो ण ते तत्थ मुच्छिता १ [ते तत्थ मुच्छिता] ण सो तेसु २। सूत्राभिहितस्तु अण्णमण्णेहिं मुच्छिते त्ति सो वि तेसु ते वि तम्मि त्ति ३ चतुर्थः शून्यः ४। एवं बुज्झेज्ज॥ ४॥

किञ्चान्यत्, न केवलं स्वजनमूर्च्छिता लुप्यन्ते अन्यत्रापि मूर्च्छिता लुप्यन्ते। तं जधा—

---

१ तमेव नो सइं परिगिण्हइ, नो अण्णेण चूसप्र०॥ २ काङ्क्षा-मोक्षौ, प्रा° चूसप्र०॥ ३ शुनकवध-वारत्तकामाल-धर्मघोष-साधुसम्बद्धं मधुबिन्दूदाहरणं पिण्डनिर्युक्तौ छर्दितदोषाधिकारे ६२८ गाथायां तट्टीकायां च वर्त्तते, पत्र १६९-२। आव० नि० गा० १३०३ हारि० वृत्ति पत्र ७०९, आव० चूर्णि विभाग २ पत्र १९७॥ ४ जंसिस ख १ ख २ पु १ पु २॥ ५ "जेहिं वा सद्धिं संवसइ" आचा० श्रु० १ अ० २ उ० १ सूत्र २॥ ६ लुप्पति उवत्तेति उद्दूहं धम्मातो मु०॥

५. वित्तं सोदरिया चेव सव्वमेतं न ताणए[1]।
[2]संधाति जीवितं चेव कम्मणा[3] उ तिउट्टति ॥ ५ ॥

वित्तं सोदरिया चेव० सिलोगो। अथवा जं वुत्तं "अण्णमण्णेहि मुच्छिते" [सू० गा० ४] त्ति एषा मूर्च्छा **न त्राणाय** भवतीत्यपदिश्यते **'वित्तं सोदरिया चेव'**। विद्यत इति वित्तं, तं तिविधं सचित्तादी। सचित्तं त्रिविधं दुपयादि १ अचित्तं हिरण्णादि २ मीसय तिविधं तदेव दुपदादि वक्तव्यम् ३। **सोदरिया** णाम भाता भगिणी णालवद्धा वा समाणोदरिका सहोदरिका मनुष्यजातयो गृह्यन्ते, तत्रापि ये तं[4]माश्रिता अपरि[5]चयंतो य कथं त्रोटयति(न्ति)?, इहापि ताव भवे ज्ञातयो परिग्रहश्च न त्राणाय, किमङ्ग पुण प्रेत्येति २, पा[6]लकपादच्छेदोदाहरणं [आव० हारि० वृत्ति पत्र ६८१, आव० चूर्णी भाग २ पत्र १६९] वक्तव्यम्। किञ्च—यन्निमित्तमसौ परिग्रहः परिगृह्यते तदप्यसञ्ज्ञातानां **संधाति जीवितं चेव**, समस्तं धाति **संधाति** मरणाय धावति, जीवनवत् कामभोगाऽपि हि अग्नि-चौरादिविनाशाय बाधंति (धावंति)। एवं जीवितं कामभोगाश्चानित्यात्मकं जानीहि। मू[7]र्च्छानामस्य कर्माणि वध्यन्ते, तेभ्यः स्वयं **तिउट्टेज्ज** ताणि वा तोडेज्ज। अथवा न केवलं मनसा कर्माणि त्रोडेज्ज, इतरथाऽपि हि कर्माणि चेव त्रोडिज्जंति। **पठ्यते च—"संखाए जीवितं चेव कम्मणा उ तिउट्टति"**। **संखाए** त्ति ज्ञात्वा जाणणासंखाए 'अणिच्चं जीवित' ति, तेण कम्माइं कम्महेतू य त्रोडेज्ज ॥ ५ ॥

६. एते गंथे विउक्कम्म एगे समण-माहणा।
अयाणंता वियोसिया[8] सत्ता कामेसु[9] माणवा ॥ ६ ॥

एते गंथे विउक्कम्म० सिलोगो। तत्राऽऽरम्भग्रहणेन तिण्णि आसवा पाणातिवातादयो गहिता, परिग्गहग्गहणेण मेहुण-परिग्गहा गहिता भवंति। अथवा समयः प्रस्तुतः, ते सामयिकाः **एते गंथे विउक्कम्म, एते** इति ये प्रागुद्दिष्टाः **"चित्तमंतमचित्तं वा"** [सू० गा० २] अथवा **"वित्तं सोदरिया"** [सू० गा० ५]। आरंभ-परिग्गहो वा ग्रथ्यते येन स ग्रन्थः, ग्रन्थमात्र वा ग्रन्थः, तं ग्रन्थं ग्रन्थहेतूंश्च विविधमुक्रान्ता विउक्कता, अथवा विविधैः प्रकारैः उक्कामंति विउक्कमंति, विउक्कमित्ता पुणरवि तेसु चेव वट्टति, यथा शाक्यादयो, **एगे** त्ति नासदीयाः, **श्रमणाः** शा[10]क्यादयः, **माहणाः परिव्राजकादयः**। **अयाणंता वियोसिया, अयाणंता** विरति-अविरतिदोसे य, विविधं ओसिता **विओसिता**, वद्धा इत्यर्थः, वीभत्स वा उत्सृता **"विउस्सिता"**। **कामाः** शब्दादयः। मनोरपत्यानि **मानवाः**। अथवा **एतान्** सचित्तादीन् **ग्रन्थान्** अतिक्रम्य असन्मतका अपि **एके** न सर्वे **समणा** लिंगत्था **माहणा** समणोवासगा, तत्पुरुषो वा समासः, श्रमणा एव माहणा श्रमणमाहणाः, नैश्चयिकनयं प्रतीत्य ते हि अयाणका एव, ये ये ज्ञानोपदेशे न तिष्ठन्ति पासत्थादयो ते वि परतित्थिया इव अपारगा, किमंग पुण कामभोगपवित्ता गृहस्था अप्पसत्थिच्छा **कामेसु** इच्छाकामेसु मयणकामेसु वा **सत्ता**? ॥ ६ ॥

वुत्ता ओहतो समयपरिक्खा। इदाणिं विभागेण परतित्थियाण तिण्णि तिसट्ठाणि पा[11]वादियसदाणि परिक्खिज्जंति। तत्थ पु[12]व्वं **पंचमहब्भूतवादिणो** भवति, उद्देसत्थाधिकारे य भणित—**"महपंचभूत एकप्पये अ तज्जीवतस्सरीरी य।"** [नि० गा० २७] तत्थ **पंचमहाभूतियाण** समयं परूवेति भगव—

७. संति पंच महब्भूता इहमेगेसि[13] आहिता।
पुढवी आऊ तेऊ वाऊ आगासपंचमा ॥ ७ ॥

संति पंचमहब्भूता० सिलोगो। **संतीति** विद्यन्ते, पञ्चमहग्ग्रहण तन्मात्रज्ञापनार्थम्, **भूतानि** पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशमिति, **इहेति** इह मनुष्यलोके **एगेसिं** ण सव्वेसिं, जे पचमहब्भूतवाइया तेसिं एवं **आहिता** आख्याताः। तत्र यो

---

१ ताणते ख १ ॥ २ संखाए जीवितं ख १ ख २ पु १ पु २ चूपा० वृ० दी० ॥ ३ कम्मुणा ख १ ॥ ४ तमात्रिता पु० विना ॥ ५ °रिवयं° वा० मो० ॥ ६ आवश्यकचूर्णिकृता पालकस्थाने सुलस इति नाम निर्दिष्टमस्ति, तन् किल पालकस्य नामान्तर सम्भावनीयम् ॥ ७ मूर्च्छेतामस्य मु० ॥ ८ विउस्सित्ता ख १ चूपा० वृ० दी०। विओसित्ता ख २ ॥ ९ कामेहिं मा° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० शाक्यादयो चूसप्र० ॥ ११ प्रावादुकशतानि ॥ १२ पुव्वमेव पंच° मु० ॥ १३ °सिमाहिया ख २ पु १ पु २ ॥

ह्यस्मिन् शरीरके कठिनभावो तं पुढविभूतं, [1]यावत् किञ्चिद् रूपं तं आउभूतं, उसिणस्वभावो कायाग्निश्च तेउभूतं, चलस्वभावं उच्छ्वासनिःश्वासश्च वातभूतं, वदनादिशुषिरस्वभावमाकाशम् ॥ ७ ॥

८. एते पंच महब्भूता ते[2]ब्भो एगो त्ति आहिता ।
[3]अध तेसिं विसंयोगे विणासो होति देहि[4]णं ॥ ८ ॥

एते पंच महब्भूता० सिलोगो । **एते** इति ये उद्दिष्टाः, तेभ्य एक आत्मा भवति, पिष्ट-कण्वो(किण्वो)दकनिमित्ताया सुराया मदवत् । अथवा—"**ते भो! एगो**" त्ति सिस्सामन्त्रणं । एवमाख्याति—भौतिकोऽयं लोकः, चेतनमचेतनद्रव्यं सर्वं भौतिकम् । **अध तेसिं [वि]संयोगे,** अथ इति अव्ययं निपातः, **तेषामिति** तेषां भूतमयानां प्राणिनां विगतः सयोगो विसंयोगो, **विणासो होति देहिणं, विणासो** नाम पञ्चस्वेव गमनम्, पृथिवी पृथिवीमेव गच्छति, एवं शेषाण्यपि गच्छन्ति । उक्तं हि—

जध मज्जंगेसु मओ वीसुमदिट्ठो वि समुदये होउं । कालंतरे विणस्सति तध भूतगणम्मि चेतण्णं ॥ १ ॥

अस्योत्तरम्—

पत्तेयमभावातो ण रेणुतेल्लं व समुदये चेता । मज्जंगेसुं तु मदो वीस पि ण सव्वसो णत्थि ॥ २ ॥

भमि-धणि-वितण्हयादी पत्तेयं पि हु जधा मदंगेसु । तध जइ भूतेसु [5]भवे ता तेसिं समुदये होज्ज ॥ ३ ॥

जइ वा सव्वाभावो वीसुं तो किं तदंगणियमोऽयं? । तस्समुदयणियमो वा? अण्णेसु वि तो हविज्जाहि ॥ ४ ॥

[6]तस्सा(भस्स-)गोमयादिसु ।

भूताणं पत्तेयं पि चेतणा समुदए दरिसणातो । जध मज्जगेसु मयो मति त्ति हेऊ ण सिद्धोऽयं ॥ ५ ॥

[विशेषा० गा० १६५१–५५]

☞[7]स्यान्मतिः—साधूक्तम्, यत् पृथगपि मद्याङ्गेषु मदसामर्थ्यमस्ति, एतदेव हि व्यस्तभूतचेतनायामुदाहरणम् । इह व्यस्तेष्वपि भूतेषु चैतन्यमस्ति, तत्समुदये [8]दरिसणा, मद्याङ्गे मदवत्, यथा मद्याङ्गेषु मदः पृथगणुत्वान्नातिस्पष्टः, तत्समुदये तु व्यक्तिमेति, तथा पृथग् भूतेष्वणीयसी [चेतना तत्समुदाये भूयसी] भवतीति, उच्यते—यथाऽऽत्थ त्वं भूतसमुदयगुणाभिप्रायतो 'चेतनायाः तत्समुदये दर्शनात्' इत्ययमसिद्धः, न हि भूतसमुदयस्येयं चेतना, यदि भूतसमुदयस्येयं भवेद् व्यस्तभूतचैतन्यमपि प्रतिपद्येमहि । आह—ननु प्रत्यक्षविरुद्धमिदम्, यत् स[9]मुदयोपलभ्या चेतना न समुदायस्येति, यद्वद् घटोपलभ्या रूपादयो न घटस्येति, [उच्यते—] न हि समुदयदर्शनादवश्यं तद्गुणत्वम्, अनुमानसद्भावात्, घटरूपादयस्त्वर्थान्तरस्येति नानुमानमस्ति, भवत एव हि प्रत्यक्षविरुद्धमिदं भूत[10]चैतन्यप्रतिज्ञानम्, [अनु]मानाभावात्, भूतविशिष्ट[11]मात्रपुद्गलानामेव[12], न सात्मकानाम्, अविप्रतिपत्तेः । आह—न भूतसमुदयस्य चैतन्यमिति किमनुमानम्? उच्यते—भूतेन्द्रियातिरिक्तः सञ्चेतयिता, तदुपलब्धार्थानुस्मरणात्, यो हि यैरुपलब्धानर्थानेकोऽनुस्मरति स तेभ्योऽन्यो दृष्टः, [13]यथा गवाक्षैरुपलब्धानर्थाननुस्मरन् तेभ्यो देवदत्तः, यश्च [14]यतो नान्यो नासावेकोऽनेकोपलब्धानामर्थानामनुस्मर्त्ता, यथा मनोविज्ञानम् । इतश्चेन्द्रियातिरिक्तो

---

१ यत् किञ्चिद् द्रवं तं मु० ॥ २ ते भो! एगो चूपा० । ते भो! एको ख २ पु १ पु २ ॥ ३ अह तेसिं विणासे णं वि° ख १ पु १ दी० । अह एसिं विणासे उ वि° ख २ पु २ वृ० ॥ ४ देहिणो ख १ वृ० दी० ॥ ५ भवे चेता तो समुदये इति विशेषावश्यके पाठ ॥ ६ "समुदितेषु तद्भस्म-गोमयादिषु मद स्यात्" इति विशेषावश्यकस्वोपज्ञटीकायाम् । "भस्मा-ऽम्लादिमेलकादावपि स्यान्मदशक्ति" इति विशेषा० कोट्या० टीकायाम् पत्र ५१७ । "भस्मा-ऽश्म-गोमयादिषु समुदितेषु" इति विशेषा० मलधारीटीकायाम् पत्र ७०७ ॥ ७ हस्तचिह्नमध्यगत समग्रोऽपि चूर्णिग्रन्थसन्दर्भ विशेषावश्यकस्वोपज्ञटीकायां "भूताण पत्तेय०" प्रभृतिगाथाटीकारूपेण वर्त्तते । यच्चात्र कोष्ठकान्तरनुसन्धित तत् तत एवेति ज्ञेयम् ॥ ८ दर्शना, मद्या° वा० मो० । दर्शनात्, मद्या° विखो० मु० ॥ ९ °मुदायो° वा० मो० ॥ १० °चैतन्यं प्रतिज्ञानम् वा० मो० मु० ॥ ११ °मात्रे पुद्ग° वा० मो० मु० ॥ १२ °मेव तदात्मका° मु० ॥ १३ यथा विवृतगवाक्षै° विखो० ॥ १४ यतोऽनन्यो विखो० ॥

विज्ञाता, [तदुपरमेऽपि] तदुपलब्धार्थानुसरणात्, यो हि [यदुपरमेऽपि] यदुपलब्धानामर्थानामनुसर्ता स तेभ्योऽन्यो दृष्टः, यथा गवाक्षोपलब्धानामर्थानां गवाक्षोपरमेऽपि देवदत्तः, अनुसरति चायमात्मा अन्ध-बधिरादिकाले[1] पञ्चेन्द्रियोपलब्धानर्थान्, अतः स तेभ्योऽर्थान्तरमिति। व्यतिरेकः पूर्ववत्। इतश्चेन्द्रियातिरिक्तो विज्ञाता, तद्व्यापारेऽप्यनुपलम्भतः, यो हि यद्व्यापारेऽपि यदुपलभ्यानर्थान्[2] नोपलभते स तेभ्योऽन्यो दृष्टः, यथा विवृतगवाक्षोऽपि तद्दर्शनानुपयुक्तस्तेभ्यो देवदत्तः ☞ [विशेषा० १६५५ त ५८ गाथानां स्वोपज्ञटीका] ॥ ८ ॥

इमं पुण णिज्जुत्तीए उत्तरं भण्णति—

* पंचण्हं संयोगे अण्णगुणाणं च[3] चेयणादिगुणो।
पंचेंदियठाणाणं ण अण्णमुणितं मुणति अण्णो ॥ ३१ ॥

॥ समओ समत्तो १ ॥

सङ्ख्या ईश्वरकारणिका वैदिका वैशेषिका अनभिगृहीतमिथ्यादृष्टयश्च गृहस्थाः सर्वेऽपि भौतिकं शरीरं वर्णयन्ति, तेषां पुनर्भूतव्यतिरिक्तआत्मा[4]ऽस्तिता ॥ ३१ ॥ वुत्ता पंचमहब्भूतिया । अयमन्यो मिथ्यादर्शनविकल्पः—तत्र केचिद् एकात्मकं जगदिच्छन्ति, तत्र केषाञ्चिद् विष्णुः कर्ता, केषाञ्चिद् महेश्वरः, स हि कृत्वा जगत् पुनः सङ्क्षिपति। ते पुनर्यदा परैश्चोद्यन्ते 'कथमेकात्मकं विलक्षणं च जगदिति?' इति चोदिता ब्रुवते—

९. [5]जधा य पुढवीथूभे एगे नाणा हि दीसइ।
एवं भो! कसिणे लोए[6] विण्णू नाणा हि दीसए ॥ ९ ॥

९. जधा य पुढवीथूभे० सिलोगो। यथेति येन प्रकारेण पृथिव्येव स्तूपः पृथिवीस्तूपः, तत्पुरुषसमासः, स एक एव स्तूपो नानात्वेन दृश्यते। तद्यथा—निम्नोन्नत-सरित्-समुद्रोपल-शर्करा-सिता-गुहा-दरिप्रभृतिभिर्विशेषैर्विशिष्टोऽपि पृथिवीत्वेन [न] व्यतिरिक्तो दृश्यते, अथवा य एको मृत्पिण्डश्चक्रारोपितः शिवक-स्तूप-च्छन्न[7]-मूल-घटादिभिर्विशेषैरुत्पद्यते।

तथा चोक्तम्—

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ १ ॥
[ब्रह्मबिन्दूपनिषत् श्लोक १२]

एवं भो! कसिणे लोए, कसिणग्गहणं न ह्यनीश्वरात्मकं किञ्चिदस्ति। विण्णूरिति विद्वान् विष्णुर्वा। नाना अर्थान्तरत्वे देव-मनुष्या-ऽजा-ऽवि-कृमि-पिपीलिका-वृक्ष-गुल्म-लता-वितान-वीरुधादिभिर्विशेषैर्दृश्यते परिणतः ॥ ९ ॥

१०. [8]एवमेगो त्ति जंपंति मंदा आरंभणिस्सिया।
[9]एगो किच्चा सयं पावं[10] तेणं तिव्वं णियच्छति[11] ॥ १० ॥[12]

१०. एवमेगो त्ति जंपंति० सिलोगो। एवं अनेन प्रकारेण योऽयमुक्तः एगो त्ति "एक एव पुरुषः" एव प्रभाषन्ते मंदा नाम मन्दबुद्धयः, आरम्भे नियतं आश्रिता आरम्भनिश्रिताः। तेषामुत्तरम्—यदि विष्णुमयं सर्वं तेन एगो किच्चा सयं पावं, यदीश्वरः कर्त्ता तेन यदेकस्य सुखं दुःखं वा तत् सर्वेषामस्तु, एकात्मकत्वे हि सति एकः कृत्वा स्वयं पापं कथमस्य[13] नु वेदको वेदयते? नान्ये वेदयन्ते? इति, यस्माच्च य एव पापं करोति स एव वेदयति, नान्यः, तेन एकात्मकत्वं न भवति। तेण तिव्वं णियच्छति त्ति य एव कर्त्ता स एव त्रिप्रकारं कायिकादि कर्म णियच्छति, वेदयतीत्यर्थः। अथवा त्रिभिस्तापयतीति त्रिप्रम्,

१ °कालेऽपीन्द्रियो° विस्रो० ॥ २ °पलब्धानर्था° चूसप्र० ॥ ३ च चेइणाइगुणे पु २ ॥ ४ °त्मास्तिना ॥ ३१ ॥ पु०। °त्मा नास्ति ॥ ३१ ॥ स० वा० मो० ॥ ५ जहा य पुढवीथूहे एगे णाणिहि दीसंती ख १ ॥ ६ लोए एगे विज्जाऽणुवत्तए ख १ वृ० दी०। लोए विण्णू नाणा हि दीसए ख २। लोए विण्णू नाणा हि वट्टई पु १ पु २ ॥ ७ °च्छन्नअस्तल° मु० ॥ ८ एवमेगे त्ति ख १ ख २ वृ० दी०। एवमेगे ति पु १ पु २ ॥ ९ एगे कि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० पावं तिव्वं दुक्खं नि° ख १ ख २ वृ० दी०। पावं तेणं तिव्वं नि° पु १ पु २ ॥ ११ निगच्छति दी० ॥ १२ एतद्गाथानन्तरं ख २ पु १ पु २ प्रतिषु सर्वगतवादी गतः इति वर्त्तते ॥ १३ °स्य न वेदको चूसप्र० ॥

किञ्च तत्?, कर्म । किञ्चान्यत्—एकात्मकत्वे हि सति पितृ-पुत्रा-ऽरि-मित्रता न घटते । अथवा [1]एकत्वे हि खल्वात्मनो न सुखादयः [2]संविद्यन्ते, सर्वगतत्वात्, इह यत् सर्वगतं न तत् सुखादिगुणम्, यथाऽऽकाशम् । एवं न बध्यते, सर्वगतत्वात्, इह यत् सर्वगत न तद् बध्यते, यथाऽऽकाशम्, यश्च बध्यते न तत् सर्वगतम्, यथा देवदत्तः । एवं न मुच्यते न कर्त्ता न भोक्ता [न मन्ता] न ससारीत्यादि । नाऽऽत्मैकत्वे सुखी, बहुतरोपघातात्, इह यो बहुतरोपघातो नासौ सुखी, यथा सर्वरोगावृतो अङ्गुल्येकदेशेऽरोगः, यश्च सुखी नासौ बहुतरोपघातः, यथेष्टविषयसम्पदुपेतो[ऽनुपद्रवो] देवदत्तः । न चासौ मुक्तः, बहुतरोपनिबन्धनात्, इह यो बहुतरोपनिबन्धनो नासौ मुक्त इति व्यपदिश्यते, न चामुक्तः सुखमश्नुते, यथा सर्वाङ्ग-शीलितो विमुक्ताङ्गुल्येकदेशः पुमान्, यश्च मुक्तो नासौ बहुतरोपनिबन्धनो न च स्वल्पनिबन्धनः, यथाऽशीलितः पुमान् । त्वक्पर्यन्तमात्रशरीरव्यापी जीवः, तत्रैव तद्गुणोपलम्भात्, इह यस्य यावति गुणोपलम्भः स तन्मात्रो दृष्टः, यथा घट', यश्च यत्रासन् न तस्य तत्र गुणोपलब्धिः, यथाऽग्नेरम्भसि [विशेषा० १५८४ त. ८६ गाथाना स्वोपज्ञटीका] ॥ १० ॥

उक्ता एकात्मवादिनः । इदाणिं तज्जीवतस्सरीरवादी । ते भणंति—

११. पत्तेयं कसिणे आया जे बाला जे य पंडिता ।
संति पेच्चा[3] ण ते संति णत्थि सत्तोववाइया[4] ॥ ११ ॥

११. पत्तेयं कसिणे आया० सिलोगो । पत्तेयं नाम पृथग् एकैकं शरीरं प्रति एक एवाऽऽत्मा भवति, न हि सर्वमेकात्मकम् । कसिणो णाम शरीरमात्रः, न तु शरीराद् व्यतिरिच्यते । बाला नाम मन्दबुद्धयः, पंडिता बुद्धिसपण्णा, अथवा पंडिता जे एत दरिसण पवण्णा, तेषां प्रत्येकश एकैक आत्मा । तेषां तु **संति पेच्चा[5] ण ते संति,** सन्तीति सन्ति आत्मानः, केवल तु शरीर आत्मा भूत्वेह च प्रेत्य न ते यान्ति । प्रेत्य नाम परभवो । कथम्? न हि सत्ता[6] औपपातिका विद्यन्ते ॥११॥

यतश्चैवं तेण—

१२. णत्थि पुण्णे व पावे वा णत्थि लोगे इतो परं[7] ।
सरीरस्स विणासेणं विणासो होति देहिणं[8] ॥ १२ ॥[9]

१२. णत्थि पुण्णे व पावे वा० सिलोगो । न हि किञ्चित् तपो-दान-शीलैरध्यावर्यमाणैः पुण्यं बध्यते, हिंसाचौर्यैर्वा पापम् । **णत्थि लोगे इतो परं** ति न चास्त्यन्यो लोकः यत्र पुण्य-पापे अनुकूल्येयाताम् । कस्मात्? **सरीरस्स विणासेणं विणासो होति देहिणं ।** स्यादेतत्—यदि पुण्य-पापे न भवतः तेनायमीश्वरः अनीश्वरो [वा] न विद्यते, नन्वेकस्मादेव पाषाणाद् रुद्रादिप्रतिमा क्रियते पादप्रक्षालनशिला च, न चानयोः पुण्य-पापे स्तः, एवं स्वभावादेव ईश्वरो भवत्यनीश्वरो वा । उक्त च—

कण्टकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य[10] च चित्रता । [11]पौर्णाश्च नीलताऽऽम्राणा स्वभावेन भवन्ति हि ॥ १ ॥

[ ]

तेषामुत्तरम्—[12]विद्यमानकर्तृकमिदं शरीरम्, आदिमत्प्रतिनियताकारत्वात्, इह यदादिमत् प्रतिनियताकार च तद् विद्यमानकर्तृक दृष्टम्, यथा घटः, यच्चाविद्यमानकर्तृकं न हि तदादिमत् प्रतिनियताकारं च, यथाऽऽकाशम्, यत्कर्तृक चेदं शरीर स जीवस्तस्मादन्य इति । आदिमत्त्वविशेषणं जम्बूद्वीपादिलोकस्थितिनिषेधार्थम् । विद्यमानाधिष्ठातृकाणीन्द्रियाणि,

---

१ हस्तचिह्नान्तर्गतोऽयं समग्रोऽपि चूर्णिग्रन्थसन्दर्भश्चूर्णिकृताऽक्षरश विशेषावश्यकस्वोपज्ञटीकात आहृतोऽस्ति ॥ २ सम्पद्यन्ते विस्वो० । सङ्घटन्ते मु० ॥ ३ पच्चा ख २ । पिच्चा शृ० दी० ॥ ४ °ववाइया ख २ । °ववायया पु १ पु २ ॥ ५ पच्चा वा० मो० ॥ ६ सत्त्वा इत्यर्थ । "न सन्ति' न विद्यन्ते 'सत्त्वा' प्राणिन उपपातेन निर्वृत्ता औपपातिका, भवाद् भवान्तरगामिनो न भवन्तीति तात्पर्यार्थ ।" इति वृत्तिकृत ॥ ७ परे ख २ पु १ पु २ शृ० दी० । वरे ख १ ॥ ८ देहिणो ख १ ख २ पु १ पु २ शृ० दी० ॥ ९ एतद्गाथानन्तरं ख २ पु १ पु २ प्रतिषु तज्जीवतच्छरीरवादी गतः इति वर्तते ॥ १० °स्य विचित्रता वृत्तौ ॥ ११ पौर्णाश्चनीलताऽऽम्राणां स्वभा° वा० मो० सं० । पर्णानां नीलता स्वच्छा स्वभा° मु० । वर्णाश्च ताम्रचूडानां स्वभा° वृत्तौ ॥ १२ हस्तचिह्नान्तर्गतोऽय ग्रन्थ-सन्दर्भश्चूर्णिकृता अक्षरश विशेषावश्यकस्वोपज्ञटीकात आहृतोऽस्ति ॥

करणत्वात्, इह यत् करणं तद् विद्यमानाधिष्ठातृकं दृष्टम्, यथा दण्डादयः कुलालाधिष्ठिताः[1], यच्चाविद्यमानाधिष्ठातृकं न तत् करणम्, यथाऽऽकाशम्, यश्चैषामधिष्ठाता स जीवस्तेभ्योऽर्थान्तरमिति। विद्यमानादातृकमिदं इन्द्रियविषयकदम्बकम्, आदाना-ऽऽदेयभावात्, इह यत्राऽऽदाना-ऽऽदेयभावस्तत्र विद्यमानादातृकत्वं दृष्टम्, यथा संदंशा-ऽयःपिण्डयोरयस्कारादातृकता, यच्चाविद्यमानादातृकं न तत्राऽऽदाना-ऽऽदेयभावः, यथाऽऽकाशे, यश्च विषयाणामिन्द्रियैरादाता स तेभ्योऽर्थान्तरमात्मेति। विद्यमानस्वामिकमिदं (विद्यमानभोक्तृकमिदं) शरीरम्, इन्द्रियादिभोग्यत्वात्, इह यद् भोग्यं तद् विद्यमानभोक्तृकं दृष्टम्, यथाऽऽहार-वस्त्रादि, यच्चाविद्यमानभोक्तृकं न तद् भोग्यम्, यथा खरविषाणम्, यश्चैषां शरीरादीनां भोक्ता स तेभ्योऽर्थान्तरमात्मेति। विद्यमानस्वामिकमिदं शरीरम्, इन्द्रियादिसङ्घातत्वात्, यत् सङ्घातात्मकं तद् विद्यमानस्वामिकं दृष्टम्, यथा गृहम्, यच्चाविद्यमानस्वामिकं तदसङ्घातात्मकम्, यथा खरविषाणम्, यश्चैषां शरीरादीनां स्वामी स तेभ्योऽर्थान्तरमात्मेति। यश्चायं कर्त्ता अधिष्ठाताऽऽदाता भोक्ता अर्थी[3] चोक्तः स शरीरादन्यो जीवः, तथा चैवोदाहृतम्। स्यात्—कुलालादीनां मूर्त्तिमत्त्व-सङ्घाता-ऽनित्यत्वादिदर्शनादात्मनोऽपि तद्धर्मता[4], सा तैर्विरुद्धा प्रायः, तच्च न, संसारिणः खल्वदोषात्[5], ससार्यवस्थायामेवायं साध्यते, न मुक्तावस्थायाम्। अयं चानादिकर्मसन्तानोपनिबन्धनत्वाद्[6] द्रव्य-पर्यायार्थिकनयाभिप्रायाच्च तद्धर्माऽपीत्यदोषः। किञ्च—योऽय जातिस्मरः स अविनष्ट इहायातः[7], तदनुभूतानुस्मरणात्, योऽन्यदेश-कालानुभूतमर्थमनुस्मरति सोऽविनष्टो दृष्टः, यथा[8] बाल्यकालानुभूतानां यज्ञदत्तः। अथ मन्यसे—जन्मान्तरविनष्टोऽप्यनुस्मरति, विज्ञानसन्तानावस्थानात्, उच्यते, एवमपि भवान्तरसद्भावः[9] सर्वशरीरेभ्यश्च[10] विज्ञानसन्तानार्थान्तरता सिद्धा, अविच्छिन्नविज्ञानसन्तानात्मकश्चेत्यात्मेति शरीरादर्थान्तरमेव सिद्धः। ☞ [विशेषा० गा० १५६७ त. ७० तथा १६६७ त. ७२ पर्यन्तगाथाना स्वोपज्ञटीका]। तथा च—

विण्णाणंतरपुव्वं बालण्णाणमिह णाणभावातो। जध बालणाणपुव्वं जुवणाणं तं च देहहियं ॥ १ ॥

पढमो थणाभिलासो[11] अन्नाहाराभिलासपुव्वोऽयं। जध सपदाभिलासोऽणुभूतितो सो य देहहितो ॥ २ ॥

[विशेषा० गा० १६६१-६२] ॥ १२ ॥

उक्तस्तज्जीवतच्छरीरवादी।। इदाणिं अकारकवादिणो भण्णंति। तेषामयं पक्षः—

१३. कुव्वं च कारवं[12] चेव सव्वं कुव्वं ण विज्जंति[13]।
एवं अकारओ अप्पा एवमेगे[14] पगब्भिया ॥ १३ ॥

१३. कुव्वं च कारवं चेव० सिलोगो। करोतीति कर्त्ता, सः "स्वतन्त्रः कर्त्ता" [पाणि० सू० १-४-५४] इति कृत्वा न विद्यते। **कारवं चेव** त्ति न चैनमन्यः कारयति विष्णुरीश्वरो वा। **सव्वं कुव्वं ण विज्जति** त्ति, सर्वं सर्वथा सर्वत्र सर्वकालं चेति, अथवा यदपि च किञ्चित् करोति तथापि सर्वकर्त्ता न भवतीति कृत्वा अकर्त्ता एव भवति। **एवं अकारओ अप्पा, एवं** अनेन[15] प्रकारेण योऽयमुक्तः। **एगे** णाम साङ्ख्यादयः ॥ १३ ॥

१४. जे ते तु वादिणो एवं लोए तेसिं कुओ[16] सिया।
तमातो ते तमं जंति मंदा[17] आरंभणिस्सिता ॥ १४ ॥[18]

---

१ कुलालाधिष्ठितास्ः, यच्चा° चूसप्र० ॥ २ यथाऽयं चूसप्र० ॥ ३ अर्थाच्चोक्तः शरी° चूसप्र० ॥ ४ तद्धर्मतासक्तेर्विरुद्धाभिप्रायः विस्वो० ॥ ५ °दोपाः विस्वो० ॥ ६ °सन्तानोपिनिव° चूसप्र० ॥ ७ इहार्थतः, तद° विस्वो० ॥ ८ "यथा बा[ल्यका]लानुभूतानामन्यदेशानुभूतानां वाऽर्थानामनुस्मर्त्ता देवदत्त। यश्च विनष्टो नासावनुस्मरति, यथा जन्मान्तरोपरत, न चान्यानुभूतानामर्थानामन्यस्याकृतसङ्केतस्यानुस्मरणमस्ति, यथा देवदत्तानुभूतानां यज्ञदत्तस्य। अथ मन्यसे" इति विस्वो० पाठ ॥ ९ भावान्त° चूसप्र० ॥ १० शरीरिभ्य° चूसप्र० ॥ ११ °लासो पुव्वो अन्नाहाराभिलासस्स। जध चूसप्र०। °लासो पुव्वं आहाराऽभिलसमाणस्स। जध मु० ॥ १२ कारयं चेव खं २ पु १ पु २ ॥ १३ विज्जती ख १ पु १ ॥ १४ एवं ते उ पग° ख १ वृ० दी०। ते उ एवं पग° ख २ पु १ पु २ ॥ १५ अनेनैव प्रका° पु० ॥ १६ कओ ख २ ॥ १७ मंदा मोहेण पाउता चूपा० ॥ १८ एतद्गाथानन्तर ख २ पु १ पु २ प्रतिषु अकिरियवादी गया इति वर्त्तते ॥

१४. **जे ते तु वादिणो एवं०** सिलोगो। **जे ते** त्ति णिद्देसे। **तु** विसेसणे। अकर्तृवादिनो लोकत्वात् सम्यक्त्वलोको ज्ञान० संयमलोको वा, अथवा योऽभिप्रेतो लोकः परोऽन्यो वा स तेषां नास्ति। तेन पुनरनभिप्रेतलोकमेव **तमातो ते तमं जंति, तम** इति मिथ्यादर्शनं अज्ञानं वा, तस्मात् तमसः तम एव यान्ति । तमो हि द्वेधा—द्रव्ये भावे च। द्रव्ये नरकः तमस्कायः कृष्णराजयश्च, भावे मिथ्यादर्शनं एकेन्द्रिया वा। **मंदा** उक्ताः [सूत्रगा० १०]। **आरम्भे** द्रव्ये भावे च। द्रव्ये षड्कायवधः, भावे हिंसादिपरिणता असुभसंकप्पा । अथवा—"**मोहेण पाउता**" मोहः अज्ञानं तेन प्रावृताः समाच्छन्नाः ॥ १४ ॥[1] उक्ताः अकारकवादिनः। इदाणिं आयच्छट्ठा ऽफलवादि त्ति—

१५. संति पंच महब्भूता इधमेगेसि आहिता ।
आतच्छट्ठा पुणेगाऽऽहु[2] आया लोगे य सासते ॥ १५ ॥

१५. **संति पंच महब्भूता०** सिलोगो। **संति** विद्यन्ते। **पंच** इति तन्मात्रग्रहणम्। **महब्भूता** इति पृथिव्यादयः। **इध त्ति** इह कुपापण्डिलोके। **एगेसिं** ति ण सव्वेसिं। **आहिता** व्याख्याताः। ते तु **आतच्छट्ठा पुण एगे आहु**—पंचमहब्भूतियं सरीरं, सरीरी छट्ठो, स च आत्मा **लोकश्च शाश्वतः। लोको** नाम प्रधानः[3] सम्यक्त्वं चेति ॥ १५ ॥

१६. दुहतो[4] ते ण विणस्संति णो य उप्पज्जए असं ।
सव्वे वि सव्वधा[5] भावा णियतीभावमागता ॥ १६ ॥[6]

१६. **दुहतो ते ण विणस्संति०** सिलोगो। **दुहतो** णाम उभयतो, आत्मा प्रधानं चाक्षुषमचाक्षुष वा ऐहिका-ऽऽमुष्मिको वा लोकः **दुहतो ण विणस्संति** त्ति। स एवं आत्मा—

न जायते न म्रियते कदाचित्, नायं भूत्वा भविता न भूयः।
अ[7]ब्भो (अजो?) नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १ ॥

[भगवद्गीता अ० २ श्लो० २०]

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ १ ॥
अ[8]च्छेद्योऽयमभेद्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। नित्यः सततगः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २ ॥

[भगवद्गीता अ० २ श्लो० २३-२४]

न चोत्पद्यते असदिति असत्कार्यपरिग्रहः, मृत्पिण्डे हि विद्यते घटः। **सव्वे वि सव्वधा भावा, सव्वे** महतादयो विकाराः। **नियतिर्नाम** प्रधानम् तामागताः। सा कथं फलवती भवति? इति, यत् करोति न तस्य लभते फलं आत्मा, न फलति प्रकृतिः, न फलवतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

---

१ चतुर्दशसूत्रगाथाव्याख्यानानन्तरं वृत्तिकृता श्रीशीलाङ्केनाकारकवादिमतनिरासार्थकं निर्युक्तिगाथायुगलं व्याख्यातमस्ति। तच्चेदम्—
को वेएई अकयं? कयणासो पंचहा गई णत्थि। देव-मणुस्सगया-ऽऽगइ-जाईसरणाइयाणं च ॥ १ ॥
ण हु अफल-थोव-ऽणिच्छित ऽकालफलत्तणमिहं अदुमहेऊ। णादुद्ध-थोवदुद्धत्तणे णगावित्तणे हेऊ ॥ २ ॥

समओ समत्तो ॥

अत्र **णगावित्तणे** इति स्थाने ख १ प्रतौ **णमाइत्तणे** इति तथा ख २ प्रतौ **णमायत्तणे** इति च पाठभेदौ वर्तेते, पु २ प्रतौ पुन **णगावित्तणे** इत्येव पाठो वर्तते। एतद् गाथायुगलं **निर्युक्त्यादर्शेषु** वरीवृत्यत एव, किञ्च **चूर्णिकृता** नास्त्याहृत व्याख्यात वा ॥

२ **पुणेगाऽऽहू** ख १। **पुणो आहु** ख २ पु १ पु २। **पुणेवाऽऽहु** वृ० दी० ॥ ३ **प्रधानसम्य°** चूसप्र० ॥ ४ **ते विण°** पु १ पु २ ॥ ५ **सव्वया** ख २ ॥ ६ एतद्गाथानन्तरम् ख २ पु २ **आतमस्वच्छ (षष्ठ) वादी गया** इति वर्त्तते। पु १ प्रतौ पुन **आत्मछट्ठवादी गया** इति वर्त्तते ॥ ७ **अभिब्भो (अभिज्जो)** वा० मो० ॥ ८ **अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः** ॥ इति पाठभेदो **गीतायाम्** ॥

१७. पंच खंधे वदंतेगे बाला उ खणजोइणो।
अण्णो अणण्णो णेगा[1]ऽऽहु हेउयं वे[2] अहेउयं ॥ १७ ॥

१७. **पंच खंधे वदंतेगे०** सिलोगो। ते इ खंधा इमे—रूपं १ वेदना २ विज्ञानं ३ संज्ञा ४ संस्काराः ५। रूपणतो रूपम् १ वे[3]त्तीति वेदना २ विजानातीति विज्ञानम् ३ सञ्जानातीति संज्ञा ४ शुभा-ऽशुभं कर्म संस्कुर्वन्तीति संस्काराः ५। ते पुण **खणजोइणो** क्षणमात्र युज्जंत इति परस्परतः। न चैतेष्वात्माऽन्तर्गतो [भिन्नो] वा विद्यते, सवेद्यसंस[4]रणप्रसङ्गादित्यादि तेषामुत्तरम्। **अण्णो अणण्णो णेगाऽऽहु**, केचिदन्यं शरीरादिच्छन्ति केचिदनन्यम्। शाक्यास्तु[5] केचिद् नैवाच्यम् (नैवान्यं केचिच्च नाप्यनन्यम्)। तथा **स्कन्धमातृका** हेतुमात्रमात्मानमिच्छन्ति बीजाङ्कुरवत्। अहेतुकं **शून्यवादिकाः—**

हेतु-प्रत्यय-सामग्रीपृथग्भावेष्वसम्भवात्।
तेन तेनाभिलाप्या हि भावाः सर्वे स्वभावतः ॥ १ ॥

[ ]

लोके यावत्सञ्ज्ञासामर्थ्यमेव दृश्यते यस्मात् तस्मान्न सन्ति भावाः। भावाः सन्ति, नास्ति सामग्री। एवं जगदपि केचिद्धेतुमत् केचिदहेतुमदिति। अथवा हेतुमदिति विष्णुरीश्वरो वाऽस्योत्पादहेतुरिति, अहेतुमन्नाम येषां स्वभावत एव उत्पद्यते। यथा **लोकायतिकानाम्—**

"कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं०" [ ] ॥ १७ ॥ अन्ये ब्रुवते—

१८. पुढवी आऊ[6] य तेऊ य तहा वाऊ य एकओ।
चत्तारि धातुणो रूवं एवमाहंसु जाणगा[7] ॥ १८ ॥

१८. **पुढवी आऊ य[8] तेऊ य०** सिलोगो। केचिद् ब्रुवते—**चत्तारि धातुणो रूवं**। एतेसिं उत्तरं जुत्तीए[9] **पंचमहब्भूतवादिणो** [सूत्रगा० ७ अवतरणत] आरब्भ ॥ १८ ॥ कथं **अफलवाति**? त्ति ताव भण्णति—

१९. अगारमावसंता वि आरण्णा वा वि पव्वगा[10]।
एतं[11] दरिसणमावण्णा सव्वदुक्खा विमुं[12]चंति ॥ १९ ॥

१९. **अगारमावसंता०** सिलोगो। यथास्वं एतानि दर्शनानि प्रपन्नाः ते पुनरगारत्वे वा वसन्ति, अरण्ये वा तापसादयः पव्वगा णाम वचइत्ता (पव्वइता) दगसोअयरियादयो। ते सव्वे वि **एतं दरिसणमावण्णा सव्वदुक्खा विमुचंति**, **तच्चण्णियाणं** उवासगा[13] वि सिज्झंति, आरोप्पगा वि अणागमणधम्मिणो य देवा ततो चेव [14]णिव्वंति। साङ्ख्यानामपि गृहस्थाः अपवर्गमाप्नुवन्ति। **एयं दरिसणमिति** एयं सक्कदसरिणं वा जाणि य **मोक्खवादिदरिसणाणि** वुत्ताइं ताइं पवण्णो **सव्वदुक्खाण मुच्चइ** त्ति वुत्तं त च ण भवति। कथ ते दशकुशलात्मके कर्मपथे स्थिता न निर्वान्ति? यम-नियमात्मके वा साङ्ख्यादयः?। तेषामर्थत एवोत्तरमनेनैव श्लोकेन—

अगारमावसंता तु, आरण्णा वा वि पव्वगा।
एयं दरिसणमावण्णा, सव्वदुक्खा ण मुंचति ॥ १ ॥ ॥ १९ ॥

---

१ णेवाऽऽहु ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ च ख १ ख २ पु १ ॥ ३ वेयतीति मु० ॥ ४ °सरणाप्रस° वा० मो० ॥ ५ शाक्या° चूसप्र० ॥ ६ आऊ तेऊ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ यावरे वृ० दीपा०। जाणगा ख १ ख २ पु १ पु २ दी० वृपा० ॥ ८ य वाऊ य चूसप्र० ॥ ९ युक्त्येत्यर्थ। णिजुत्तीए चूसप्र० ॥ १० पव्वइया पु १ पु २ ॥ ११ इमं दरि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ विमुच्चंती पु २। विमुच्चती ख १ ख २ पु १ ॥ १३ °गा वि विज्झंति स० वा० मो०। °गा वि विज्झंति पु० ॥ १४ 'णिव्वति' निर्वान्ति, सिध्यन्तीत्यर्थ ॥

किञ्चान्यत्—

२०. तेणा[1] विमं तिणच्चाणं ण ते धम्मविदू[2] जणा।
जे ते तु वादिणो[3] एवं ण ते ओहंतराऽऽहिता ॥ २० ॥

२१. तेणा[4] विमं तिणच्चाणं ण ते धम्मविऊ जणा।
जे ते तु वादिणो एवं ण ते संसारपारगा ॥ २१ ॥

२२. तेणा[5] विमं तिणच्चाणं ण ते धम्मविऊ जणा।
जे ते तु वादिणो एवं ण ते गब्भस्स पारगा ॥ २२ ॥

२३. तेणा[6] विमं तिणच्चाणं ण ते धम्मविऊ जणा।
जे ते तु वादिणो एवं ण ते जम्मस्स पारगा ॥ २३ ॥

२४. तेणा[7] विमं तिणच्चाणं ण ते धम्मविऊ जणा।
जे ते तु वादिणो एवं ण ते दुक्खस्स पारगा ॥ २४ ॥

२५. तेणा[8] विमं तिणच्चाणं ण ते धम्मविऊ जणा।
जे ते तु वादिणो एवं ण ते मारस्स पारगा ॥ २५ ॥

२०. तेणा विमं तिणच्चाणं० सिलोगो। तेण त्ति उपासकानामाख्या[9]। कु(त्रि)ज्ञानेन त्रिपिटकज्ञानेन। [ण] ते धम्मविदू विद्वांसो भवन्ति। जायन्ते इति जनाः। ये ते तु वादिणो एवं यथाऽऽदिष्टाः, एतच्च वक्ष्यामः। सर्वे न ते ओहंतराऽऽहिता, ओहो द्रव्ये भावे च, द्रव्यौघः समुद्रः, भावौघस्तु अष्टप्रकारं कर्म यतः संसारो भवति। न ते तस्य उत्पादका वा आहिताः आख्याताः ॥ २० ॥

२१. संसारे चैव संसरन् मोहमुपचिनोति, तस्याप्यपारकः ॥ २१ ॥

२२–२५. ततो गर्भ-जन्म-दुःख-माराणि ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

२६. [10]संसारचक्कवालम्मि भमंता [य पुणो पुणो] ।
उच्चावयं णियच्छंता गब्भमेसंतऽणंतसो ॥ २६ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ पढमज्झयणे[11] पढमो उद्देसओ १ ॥

२६. संसारचक्कवालम्मि० सिलोगो। एवमस्मिन् संसारचक्कवाले भ्रमन्तः चक्रवद् भ्रममाणा उच्चावयं णियच्छंता, उच्चाइं उत्कृष्टानि अवचाइं नीचानि मज्झिमाणि य दुक्खाइं वाइ अधिगच्छंति। अथवा उच्चावचं अनेकप्रकारम्। संसारश्चानेकप्रकारः। तं णियच्छंता गब्भमेसंतऽणंतसो, गब्भो तिरिक्खजोणिय-मणुस्सेसु गब्भातो जम्मं, "एष मार्गणे" तं गब्भं एसंति, अणंतसो त्ति अणंतखुत्तो। अथवा उच्चावयमिति नानाप्रकारं कम्मं तं णियच्छंता तदुपायाद् गर्भ-जन्म-

१ ते णावि संधिं णच्चा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। "'ते' पञ्चभूतवाद्याद्या 'नापि' नैव 'सन्धिं' छिद्र विवरम्" इति शीलाङ्कपादा ॥ २ °विओ जणा सा० ॥ ३ वातिणो ख १। वाइणो खं २ पु १ पु २ ॥ ४–८ ते णावि संधिं णच्चा खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ °ख्या। ज्ञानेन वा० मो० ॥ १० षड्विंशगाथास्थाने खं १ प्रतौ सार्धा सूत्रगाथा वर्त्तते। तथाहि—

णाणाविहाइं दुक्खाइं अणुभवंति पुणो पुणो। संसारचक्कवालम्मि मच्चु-वाहि जराकुले।
उच्चावयाणि गच्छंता गब्भमेसंतऽणंतसो ॥ २६ ॥ त्ति बेमि ॥

वृत्तिकृता श्रीशीलाङ्केन दीपिकाकृता चापि एषा सार्धगाथैव व्याख्याताऽस्ति। ख १ पु १ पु २ प्रतिषु पुनः उपर्युल्लिखितसार्धगाथानन्तरम्

नातिपुत्ते (नातपुत्ते पु १ पु २) महावीरे एवमाह (°माहु पु १ पु २) जिणोत्तमे ॥ २७ ॥ त्ति बेमि।

इति गाथार्धयोजनेन गाथायुगलं वर्त्तते। चूर्णिकृत्परम्परया तु प्रथमगाथापूर्वार्ध-द्वितीयगाथोत्तरार्धवर्जनरूपा एकैव गाथा वर्त्तत इति तैस्तदनुसारेणैव व्याख्यातमस्ति ॥ ११ प्रथमोद्देशकः ख १ ॥

मरणानि दुःखान्यनुभवन्ति । तानि तु न एकशः अनन्तशः अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरन्तं संसारकंतारं अणुपरियट्टंति ॥ २६ ॥ इति परिसमाप्तौ । बेमि त्ति भगवन्तादेशाद् ब्रवीमि, न स्वेच्छया इति ॥

॥ समयस्स पढमो उद्देसो सम्मत्तो १-१ ॥

[समयज्झयणे बिइओ उद्देसओ ।]

बितियउद्देसयाभिसंबंधो—स एव सूतकड-सुत्तकडअधियारोऽनुवर्त्तते, स एव च ससमयपरूवणाधियारो वट्टए । ते परसमया यथास्वं स्वं पक्षं (स्वपक्ष) क्षेपतः प्ररूप्य प्रत्युत्सृष्टाः, तदाश्रितापायाश्च उक्ताः, जधा "गब्भमेसंतऽणंतसो" [सुत्रगा० २६] त्ति । णाणाविधाभिग्गहमिच्छादिट्ठीसु वण्णिज्जमाणेसु अयमवि अभिग्गहितमिच्छादिट्ठिविकप्पो वण्णिज्जति । तस्स इमे चत्तारि अर्थाधिकारा, [नि० गा० २८] तं जधा—बितिए णियतिवातअत्थाधियारो १ अण्णाणवादी २ णाणवादी ३ भिक्खुसमयाधियारो जेसिं चउव्विधं कम्मं चयं ण गच्छति ४ त्ति । एतेहिं चउहिं संसिया गब्भमेसंतऽणंतसो त्ति, तदादीणि य दुक्खाणि पावंति इत्यतस्तं नाऽऽश्रयीत । तत्थ ताव णियतीवादसमयपरूवणत्थमिदमपदिश्यते—

२७. आघायं[३] पुणिहेगेसिं उववण्णा पुढो जिया ।
वेदयंती[४] सुहं दुक्खं अदुवा लुंप्पंति[५] ठाणओ ॥ १ ॥

२७. आघायं पुणिहेगेसिं० सिलोगो । आघातं णाम आख्यातम् । पुनर्विशेषणे । किं विसेसेति ?, पूर्वसमयेभ्यो विशेषयति नियतिवादमिति । इहेति अस्मिल्लोके समयाधिकारे वा, एकेषां न सर्वेषाम्, उपपन्नास्तासु [तासु] गतिसु पृथक् इति पृथक् पृथग् न त्वेकात्मकत्वम् । जीवो त्ति वा पाणो त्ति वा एगट्ठं । वेदयंती णाणाविधेसु ठाणेसु पृथग् णाणाविधाणि सुह-दुक्खाणि अणुभवंति । ते च तेभ्यो नानाविधेभ्यो दुःख[स्थानेभ्यः सुख]स्थानेभ्यश्च लुप्यन्ते, च्यवन्त इत्यर्थः ॥ १ ॥ येन च ते दुक्खेन लुप्यन्ते तन्नेयम्—

२८. ण तं सयंकडं दुक्खं णं[६] य अण्णकडं च णं ।
सुहं वा जंदि[७] वाऽसुहं सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥

२८. ण तं सयंकडं दुक्खं० सिलोगो । येन नियतिः करोति तेण ताव ण तं सयंकडं दुक्खं, न पुरुषकारकृतमित्यर्थः । यत् स्वयंकृतं न भवति इत्यतो ण [य] अण्णकडं च णं, अन्येन कृतं अण्णकडं । च पूरणे । अन्यो नाम पुरुषः । तदुभयकृतमपि न भवति, न चाकृतम् । तत् कथम् ?, उच्यते—सुहं वा जदि वाऽसुहं, अनुग्रहोपघातलक्षणे सुख-दुक्खे । सेधनं सिद्धिः, निर्वाणमित्यर्थः । इयन्तश्च जीवाश्रया भावाः सर्वे नियतीकृताः, न वीर्यं पुरुषकारोऽस्ति, सर्वमहेतुतः प्रवर्तत इति ॥ २ ॥ एषा णियतिवादिदिट्ठी । अकम्मिकाणं च कालवादीणं च दिट्ठी—

२९. ण सइं[८] कडं[९] ण अण्णेहिं वेदयंति पुढो जिया ।
संगइयं[१०] तं तहा तेसिं इहमेगेसिमाहितं[११] ॥ ३ ॥

२९. ण सइं कडं ण अण्णेहिं० सिलोगो । णियतीसभावमेत्तमेवेदं । संगइयं [तं] तहा तेसिं, संगातियं णाम सहगतं संयुक्तमित्यर्थः, अथवाऽस्याऽऽत्मनः[१२] नित्यं सङ्गतानि इति । संगतेरिदं सगतियं भवति, संगतेर्वा हितं संगतिकं भवति । तहा

---

१ °मद्धं वा उत्तरंता संसार° वा० मो० ॥ २ अक्खायं पु १ पु २ ॥ ३ पुण एगेसिं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ वेदयंति ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ लुंपंति ख १ ॥ ६ कओ अण्ण° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ जति वा दुक्खं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ व ख १ ॥ ९ सयं कडं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० संगतियं ख १ ॥ ११ °सि आहियं ख १ ॥ १२ अथवा स्यान्मनः चूसप्र० ॥

तेसिं ति जेण जधा भवितव्वं ण तं भवति अण्णधा। इहेति इहलोके नियतिवाददर्शने वा एगेसिं ण सव्वेसिं आहितं आख्यातम् ॥ ३ ॥ ते तु नियतिवादिणो—

३०. एवमेताइं[1] जंपंता वाला पंडितवादिणो[2]।
णियता-ऽणियतं[3] संतं अयाणमाणा[4] अबुद्धिआ[5] ॥ ४ ॥

३०. एवमेताइं जंपंता० सिलोगो। एवं अवधारणे। कानि (यानि) एतानि कुदर्शनानि ताणि सद्दहंता नियइवाय-अकम्मादी आकस्मिकाः, अहवा पव्वेइ नियइवाददर्शनम्। वाला पंडितवादिणो, बालास्तथा पंडितवादिणो अपण्डिताः पण्डितप्रतिज्ञाः। ते हि णियता-ऽणियतं संतं जे जधा कडा कम्मा ते तधा चेव णियमेण वेदिज्जति त्ति एवं नियतं। तं जधा—णिरुवक्कमायू देव-णेरतिय त्ति, अणियतं सोवक्कमायुं ति। एतं णियता-ऽणियतं संतं सब्भूतं अयाणमाणा अबुद्धिआ, अबुद्धिकाः मन्दमेधस इत्यर्थः ॥ ४ ॥ ते अमेधस एवमेतं अयाणंता—

३१. एवमेगे तु पासत्था[6] अजाणंता विप्पगब्भिया।
एवं पुवट्ठिता[7] संता णऽत्तदुक्खविमोयगा[8] ॥ ५ ॥

३१. एवमेगे तु पासत्था० सिलोगो। एवं अवधारणे। न जाणंता अजाणंता। किमयाणंत त्ति? तमेव णियत-मणियतं च अजाणंता विप्रगल्भिता, तेनैव स्वयंविकल्पितमिथ्यादर्शनाभिनिवेशे असज्जना इवासत्कर्मभिर्धृष्टीभूता लज्जनी-येनापि न लज्जन्ते इत्यर्थः। एवं पुवट्ठिता संता, एवं नाम यद्यप्यभिगृह्य तानि नानाविधानि बालतपांसि स्वे स्वे दर्शने यथो-क्तमुपास्थिता गुर्वादिविनययुक्ताः सर्वप्रकारेण यथोक्तज्ञानात्मनि न विसीदंति तथाप्यात्मान न ससाराद् विमोचयन्ति। उक्तं च—"मिथ्यादृष्टिरवृत्तस्थः०" [ ] ॥ ५ ॥

स्यात्—कथं ते न संसारपारपारगा भवंति?, मिथ्यादर्शनेनोपहतत्वात्। दृष्टान्तः—

३२. जविणो मिगा जधा संता परिताणेण तज्जिता[9]।
असंकिताइं संकंति संकिताइं असंकिणो ॥ ६ ॥

३२. जविणो मिगा जधा संता० सिलोगो। जव एषा विद्यत इति जविनः। के च ते? मृगाः, तत्रापि वात-मृगाः परिगृह्यन्ते। संतग्रहणान्निरुपहतशरीर-वयो-ऽवस्था अक्षीणपराक्रमाः। परितन्यत इति परितानः वागुरेत्यर्थः। तज्जिता वारिता, प्रहता इत्यर्थः, न शक्यमेतत् परितानं निस्सर्तुम्। सा च एगतो वागुरा, एकतो हस्त्यश्व-पदातिवती यथाविभवतो सेना, एकतः पाश-कूटोपगा यथाविभागशः। नित्यत्रस्ताः तत्र ते मृगाः स्वजात्यादिभिः परितुद्यमाना मरणभयोद्विग्ना असंकिताइं संकंति ॥ ६ ॥ स्यात्—किं शङ्कनीयम्? किं न? इति, उच्यते—

३३. परिताणियाणि[10] संकंता पासिताणि असंकिणो।
अण्णाणभयसंविग्गा संपलिंति[11] तहिं तहिं ॥ ७ ॥

३३. परिताणियाणि संकंता० सिलोगो। परि सर्वतः ततानि परिततानि। यानि वा तानि पुनः वज्झ-पोत-रज्जुम-यानि तान्यशङ्कनीयाः परिशङ्किताः। त एवं वराकाः अण्णाणभयसंविग्गा, अज्ञानभयं नाम त एवं न जानते—यथैषा वागुरा दुर्लङ्घ्या, न[12] चाधः शक्यते निस्सर्त्तुम्। ततस्तेऽज्ञाना भयेन संविग्ना तहिं तहिं संपलिंति अणुकूडिलेहिं अण्णपासेहिं, अथवा

---

१ °मेयाणि ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ पंडियमाणिणो ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। पंडियमाणिणो खं १ ॥ ३ णियया-ऽणियय ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ अयाणंता अबु ख १। अजाणंता अबु° ख २ पु १ पु २ ॥ ५ अबुद्धया अबुद्धि° मन्द° चूसप्र० ॥ ६ °त्था ते भुज्जो विप्प° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ पवट्ठिया दी० ॥ ८ णऽत्तदुक्खविमोक्खगा वृ०। ण ते दुक्खविमोयगा दी०। ण ते दुक्खविमोक्खया ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ वज्जिता ख २ पु २ वृ० दी०। तज्जिता ख १ पु १ वृपा० दीपा० ॥ १० परियाणियाणि ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ संपरिअति पु १ वृ० दी० ॥ १२ न वधः चूसप्र० ॥

एकतः पाशहस्ता व्याधाः, एगतो वागुरा, तन्मध्ये संप्रलीयन्तो भ्रमन्त इत्यर्थः, यावद् बद्धा मारिता वा स तेषामज्ञानदोषः ॥ ७ ॥ ते पुण—

३४. अध तं पवेज्ज वज्झं[1] अहे वज्झस्स वा वए ।
[2]वधेज्ज पदपासातो [3]तं च मंदे ण पेहती ॥ ८ ॥

३४. अध तं पवेज्ज वज्झं० [सिलोगो] । वधेज्ज पदपासातो, पदं पासयतीति पदपाशः कूडः उपको वा । पठ्यते च—"मुचेज्ज पदपासादी" आदिग्रहणाद् वन्ध-घात मारणानि । तं च मंदे ण पेहती, स भावमन्दः न प्रेक्षति तम् ॥ ८ ॥ स एवं वराकः—

३५. [4]अहिते हितपण्णाणा विसमं तेणुवागते[5] ।
से बद्धे पयपासेहिं[6] तत्थ[7] घंतं नियच्छति ॥ ९ ॥

३५. अहिते हितपण्णाणा० सिलोगो । विसमं णाम कूट-पाशोपगैः आकीर्णं तद् वागुराद्वारं तं विसमं समं च तेण गतः उपागतः । से बद्धे पयपासेहिं, से त्ति स मृगः वध्यते स्म वध्यः, पदं पाशयतीति पदपाशः, स च कूटः उपगो वा । तत्थेति तेहिं पासादिएहि बद्धे । घन्तः घातकः, घातक एवान्तः घन्तः, घातेन वाऽन्तं करोतीति घन्तः । नियतमधिक वा घन्तं गच्छति नियच्छति ॥ ९ ॥

३६. एवं तु समणा[8] एगे मिच्छादिट्ठी[9] अणारिया ।
असंकिताइं [10]संकिंती संकिताइं असंकिणो ॥ १० ॥

३६. एवं तु समणा एगे० सिलोगो । एवं अवधारणे । तुः विशेषणे । निर्ग्रन्थैर्व्यतिरिक्ता एके न सर्वे । के च ते ?, नियतिवादिनः, जे य अण्णे णाणाविधदिट्ठिणो । मिच्छादिट्ठि त्ति विपरीतग्राहिणः । अणारिय त्ति णाण-दंसण-चरित्त-अणारिया । ते असंकिताइं संकिंती, णाण-दंसण-चरित्ताइं [असकणिज्जाइं] ताइं तपोभीरुत्वाद् अन्यैश्च जीवबहुत्वादिभिः पदैर्नात्र शक्यते अहिंसा निष्पादयितुमिति संकंति ण सद्दहंति, संकिताइं कुदंसणाइं ताइं असंकिणो सद्दहति पत्तियंति ॥१०॥

स्यात्–किं शङ्कनीयम् ? किं न ? इति उच्यते—

३७. धम्मपण्णवणा जा[11] तु तीसे संकंति मूढगा ।
[12]आरंभाय ण संकंति अवियत्ता अकोविता ॥ ११ ॥

३७. धम्मपण्णवणा जा तु० सिलोगो । यावान् कश्चिद् ज्ञेयधर्मः समयेन प्रज्ञाप्यते सा धर्मप्रज्ञापना ।

अधवा दुविधो धम्मो सुतधम्मो चारित्तो य धम्मो य । दसविधो य समणधम्मो अगारमणगारिओ धम्मो ॥ १ ॥

[ ]

स जेण पण्णविज्जइ सा धम्मपण्णवणा । तीसे संकंति वेभेन्ति दुक्खं कज्जति अधवा ण सद्दहंति । अधवा किमेवं ण व त्ति वा सकंति, पृथिव्यादिजीवत्व शंकित । मूढा अज्ञानेन दर्शनमोहेन आरंभाय ण संकंति दव्वारंभे भावारंभे य

---

१ वज्झ अहे वज्झस्स इति वधं अहे वंधस्स इति पाठयुगल वृत्तिकृता दीपिकाकृता च व्याख्यातमस्ति । तथाहि—"अथ' अनन्तरमसौ मृगस्तद् 'वज्झ' ति वर्ध्र यदि वा वन्धनाकारेण व्यवस्थित वागुरादिक वा वन्धन वन्धकत्वाद् वन्धमुच्यते ।" इति । वज्झ अहे वज्झस्स पु १ ॥ २ मुञ्चेज्ज पदपासाओ ख १ ख २ वृ० दी । मुंचेज्ज पयपासाओ पु १ पु २ । मुच्चेज्ज पदपासादी चूपा० वृपा० ॥ ३ तं तु मंदे ण देहते ख २ पु २ । तं तु मंदे ण देहती ख १ पु १ वृ० दी० ॥ ४ अहियप्पाऽहियपण्णाणे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ विसमंतेणुवागते ख १ पु १ वृ० दी० । विसमंतेऽणुवायए ख २ पु २ वृपा० दीपा० ॥ ६ °पासादी तत्थ ख १ वृ० दी० । °पासाइं तत्थ ख २ । °पासायं तत्थ पु २ । °पासाओ तत्थ पु १ । °पासेणं तत्थ सा० ॥ ७ तत्थ घायं नियच्छति ख २ पु २ वृ० । तत्थ घायं निगच्छति खं १ पु १ दी० चूर्णौ च ॥ ८ °णा वेगे पु १ ॥ ९ °च्छद्दिट्ठी ख २ पु २ ॥ १० संकंति ख १ ख २ पु १ पु २ । संकिंता वृ० दी० ॥ ११ जा सा तं तु संकंति खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ आरंभाइं ण ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

वट्टंति, कुपासंडिणो तमेव आरंभं बहुमण्णंति । अवियत्ता णाम अव्यक्ताः, णाऽऽरंभादिसु दोसेसु विसेसितबुद्धयः । अकोविता अविपश्चित इत्यर्थः । मिच्छत्तकडदोसेण सब्भूतं णिग्गंथं पवयणं संकंति ण बुज्झंति ॥ ११ ॥ स्याद् बुद्धिः—यथा मृगाः पाशबद्धाः प्रचुरतृणोदकाद् वनवाससुखात् च्यवन्ते एवं मिथ्यादृष्टयः कुतश्च्यवन्ते ? उच्यते—

३८. सव्वप्पगं विउक्कासं सव्वं णूमं विधुंणिया ।
अप्पत्तियं अकम्मंसे एतमट्ठं मिए चुते ॥ १२ ॥

३८. सव्वप्पगं विउक्कासं० सिलोगो । सर्वत्राऽऽत्मा यस्य स भवति सर्वात्मकः, अथवा जे भावकसायदोसा ते वि सव्वे लोभे समवंतीति सव्वप्पगं । उक्तं च—"लोभो सव्वविणासओ" [दशवै० अ० ८ गा० ३७] । विविधं जात्यादिभिर्मदस्थानैरात्मानं उक्कसति विउक्कसति । नूमं गहनमित्यर्थः । दव्वणूमं दुग्गं अप्पागासं वा, भावणूमं माया । एते तिण्णि वि कसाया विविधैः प्रकारैः धुणिय विधुणिय, किंचि अप्पत्तियं णाम रूसियव्वं, तदपि अप्पत्तियं अकम्मंसे साधौ, अकम्मंसे एभिः सर्वैर्विधूणितैः अकम्मंसो भवति, न चाऽस्य बालबुद्धिः (द्धेः) अप्पत्तियं अकर्मत्वं भवति, सिद्धत्वमित्यर्थः । अधवा अप्पत्तियं कोधो, तेण जइया अकम्मंसे भवति, अंसगहणं तिण्णि तिण्णि कसायंसे से (सेसे) काऊण खवेति, एवं सेसाणऽवि कम्माणि खवेत्ता जीवो अकम्मंसो भवति । तं पुण सम्मद्दंसण-चरित्त-तवो-विणएहिं खवेति, ण मिच्छादंसणअण्णाण-अविरतीहिं । एतमट्ठं मिए चुते त्ति जो मियदिट्ठंतो भणितो [सूत्रगा० ३२] । यथा मृगः पाशं प्रति अभिसर्पन् प्रचुरतृणोदकगोचरात् स्वैरप्रचाराद् वनसुखाद् भ्रष्टः मृत्युमुखमेति एवं ते वि णियतिवादिणो ॥ १२ ॥

३९. जे तेतं णाभिजाणंति मिच्छादिट्ठी अणारिया ।
मिगा वा पासबद्धा ते घायमेसंतऽणंतसो ॥ १३ ॥

३९. जे तेतं णाभिजाणंति० सिलोगो कठो ॥ १३ ॥ णियतिवादो गतो । इदाणिं अण्णाणियवादिदरिसण- अण्णाणेण वा कतो कम्मोवचयो ण भवति तत्प्रतिषेधार्थमपदिश्यते—

४०. माहणा समणा एगे सव्वे णाणं सयं वदे ।
सव्वलोगंसि जे पाणा ण ते जाणंति किंचणं ॥ १४ ॥

४०. माहणा समणा एगे० सिलोगो । माहणा णाम धीयारा । समणा समणा एव । एगे णाम ण सव्वे, जो अण्णाणियवादी, अहवा अम्हंतणए मोत्तूण ते सव्वे वि अप्पणो सपक्ख पससता भण्णाति । सव्वलोगंसि जे पाणा ण ते जाणंति किंचणं, अस्मान् मुक्त्वा सर्वलोकेऽपि वादिनः सर्वप्राणभृतो वा येऽस्मद्दर्शनव्यतिरिक्ता ण ते जाणंति ससारं मोक्खं वा ॥ १४ ॥ ते हि मिच्छादिट्ठिणो सद्भावबुद्ध्याऽपि यथा स्वान् स्वान् कुसमयान् प्ररूपयन्तः न तत्र सद्भावं विन्दन्ति । दृष्टान्तः—

४१. मिलक्खू अमिलक्खुस्स जहा वुत्ताणुभासती ।
ण हेतुं से वियाणेति भासियं तऽणुभासती ॥ १५ ॥

४१. मिलक्खू अमिलक्खुस्स० सिलोगो । यथा कश्चिद् म्लेच्छयुवा केनचिद् वृद्धेणाऽऽचार्येण पथि गृहे वाऽपदिष्टः—पुत्र ! कुत आगम्यते ? । ण हेतुं से वियाणेति त्ति यदर्थं तद् वचोऽभिहितम्, दृष्टि-मुखप्रसादादिभिराकारैः परिशुद्धाकारं ज्ञात्वा किन्तु तमेव भाषितं प्रत्यनुभाषते । अथवा पृष्टः किञ्चित् तत्त्व पृच्छतः सोऽपि तथैवाऽऽह । आर्यकुमारको वा पित्राऽपदिष्टः—भण पुत्र ! सिद्धम् । एष दृष्टान्तः ॥ १५ ॥

---

१ विउक्कस्सं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ विधूणिया ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ जे एतं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ मिच्छद्दिट्ठी ख २ पु १ पु २ ॥ ५ वेगे ख १ ॥ ६ सव्वलोगे वि जे ख २ पु १ पु २ वृ० ॥ ७ जह ख १ ख २ ॥ ८ °भासए ख २ पु १ पु २ ॥ ९ विजाणाति खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० °भासए ख २ पु १ पु २ ॥

४२. एवमण्णाणिया नाणं [1]वयंता वि सयं सयं।
णि[2]च्छयत्थं ण जाणंति मिलक्खू व अ[3]बोधिए ॥ १६ ॥

४२. **एवमण्णाणिया नाणं०** सिलोगो। एवं अवधारणे। **निश्चयार्थो** नाम यथा भावोऽवस्थितः तह आत्मादिपदार्थान् दर्शयन्तोऽप्यन्येपां अचित्रकालाभिज्ञा इव न सद्भावतो वदन्ति। तदेवोदाहरणं—**मिलक्खू व अबोधिए, अबोधिः** अज्ञानमित्यर्थः ॥ १६ ॥ स एवं तेषाम्—

४३. अण्णाणियाण वीमंसा [4]णाणे णेव णियच्छति।
अप्पणो य परं नालं कुतो अण्णाऽणु[5]सासिउं ॥ १७ ॥

४३. **अण्णाणियाण वीमंसा०** सिलोगो। संशयः सन्देहो वितर्कः ऊहा वीमंसेत्यनर्थान्तरम्। तेषां हि असर्वज्ञत्वादसौ **वीमंसा** प्रत्यक्षेष्वपि तावत् पृथिव्यादिषु संदिह्यते किं पुनरात्मादिषु अप्रत्यक्षेषु ?। तदेवं सा वीमंसा इह निश्चयज्ञाने **न नियच्छति** न युज्यते, न घटत इत्यर्थः। स एवं संदिग्धमतिस्तावदात्मानमपि न शक्नोति प्रत्याययितुं कुतस्तर्हि परम् ? संसारतो वा समुद्धर्तुम् ? ॥ १७ ॥ एवं ते मिच्छादिट्ठिणो तदुपदिष्टमनुपदिष्टं वा मिच्छादंसणं पडिवज्जंति। **उदाहरणम्**—

४४. वणे मूढे जधा जंतू [6]मूढ-मूढाणुगामिए।
[7]दुहतो वि अकोविता तिव्वं सोयं णि[8]यच्छति ॥ १८ ॥

४४. **वणे मूढे जधा जंतू०** सिलोगो। जधा कोइ महति वणे दिसामूढेण भणति—भ्रातः ! कतरस्यां दिशि **पाटलपुत्रम्** ? इति। तेनापदिश्यते—अहं ते तत्र नयामीति। ततो सो तेण सह पट्ठितो। तौ हि **मूढ-मूढाणु[9]गामिनौ दुहतो वि अकोविता, दुहतो** णाम तावेव द्वौ। अधवा—"**उभयो वि ण याणंति**" कुतो गम्यते आगम्यते वा ? किं वा गतमवशिष्टं वा ?। **अकोविया** णाम अयाणगा। **तिव्वं सोयं णियच्छति, तीव्रं** नाम अत्यर्थम्, पर्वता-ऽश्म-सरित्-कन्दरा-वृक्ष-गुल्म-लता-वितान-गहनं श्रवन्ति तेनेति श्रोत भयद्वारमित्यर्थः, नियतमनियतं वा गच्छति **नियच्छति**। अधवा खंधावारेण महासत्थवाहेण कोइ अग्गिमदेसिओ गहितो, सो य दिसामूढताए अण्णतो णेइ, तत्थ जे मज्झिम-पच्छिमा ते जाणंति, अग्गिमगा ण जाणंति पंथमिति, ते वि **मूढा मूढाणुगामिया दुहतो वि अकोविया** ॥ १८ ॥ भणितो **दिसामूढदिट्ठंतो**। इदाणिं **अंधदिट्ठंतो** भणति—

४५. [10]अंधे अंधं पहं णेति दूरमद्धाण गच्छती।
आवज्जे उप्पधं [11]जंतो [12]अदुवा पंथाणुगामिते ॥ १९ ॥

४५. **अंधे अंधं पहं णेति०** सिलोगो। जधा कोइ अंधो अद्धाणे अद्धाणट्ठाणे वा किंचि अन्धमेव समेत्य ब्रवीति—अहं ते अभिरुयित गामं णगरं वा णेमि त्ति तेण [13]सधं पट्ठितो। **गच्छति दूरमद्धाणं** ति नासौ जानाति यत्र वस्तव्यं यातव्यं वा इत्यतस्तस्य तदपरिमाणमेव अध्वानमित्यतो दूराध्वानम्। **आवज्जे उप्पधं जंतो,** स एवं पधेणं पत्थितो वि क्षणान्तरं पादस्पर्शेन गत्वा उत्पथमापद्यते यत्र विनाशं प्राप्नुते प्रपात-कण्टका-ऽहि-श्वापदादिभ्यः, अथवा यदृच्छया पन्थानमेवानुपतति। अधवा अन्धलएहिं बहुगेहिं दिट्ठंतो—वुग्गाहेतूण अन्धलया पव्वयं परियंचावेतूण अग्गिल्लं पच्छिल्लयस्स लाएउं पलाओ धुत्तो। ते वि 'इच्छितव्वं वयं भूमिं वच्चामो' त्ति तत्थेव भमंति, सेसं तं चेव। "**आवज्जे उप्पधं जंतू**" घुणाक्षरवत् ॥ १९ ॥

एते दिट्ठंता दव्वदिसामूढेण चक्खुअंधेण य वुत्ता। तत्समवतारः—

---

१ वयतो खं १ ॥ २ णिच्छियत्थं ख २ पु १ पु २ ॥ ३ अवोहिया वृ० दी०। अवोहितो ख १। अवोहिए ख २ पु १ पु २ ॥ ४ अन्नाणे नो नियच्छती ख १ वृ० दी०। णाणे णेव नियच्छती खं २। णाणे णो व नियच्छती पु १ पु २ ॥ ५ °सासया पु १ पु २ ॥ ६ मूढे णेयाणुगामिए ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ दो वि एए अकुविया तिव्वं ख २। दो वि एए अकोवीया तिव्वं पु १ पु २। दो वि अकोविया संता तिव्वं वृ० दी०। उभयो वि ण याणंति तिव्वं चूपा०। ८ निगच्छती ख १ ॥ ९ °णुगमितौ दु° चूसप्र० ॥ १० अधो अधं पह णितो दूर° ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ जंतू ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० ॥ १२ अहवा ख २ पु १ पु २ ॥ १३ सह इत्यर्थ ॥

४६. एवमेगे णियायट्ठी धम्ममाराहगा वयं ।
[1]अदुवा अधम्ममावज्जे ण ते [2]सव्वुज्जगं वए ॥ २० ॥

४६. एवमेगे णियायट्ठी० सिलोगो । एवं अवधारणे । एगे ण सव्वे, भावदिसामूढा भावंधा य । नियतो नाम मोक्षः, नियतो नित्य इत्यर्थः, नियाकेन यस्यार्थः स भवति नियाकार्थः । वयमेव धर्माराधकाः नान्ये । ते एवंप्रतिज्ञाः अपि अधम्ममावज्जे, अपिपदार्थः सम्भावने । मूलपाठस्तु "अदुवा अधम्ममावज्जे" अदुवा णाम स्मरणार्थमेव, अप्येवं अधर्ममापद्यन्ते, यथाशक्त्या आरम्भप्रवृत्ता धर्मायोत्थिता अधर्ममेव आपद्यन्ते । येऽपि च कष्टतपःप्रवृत्ता आजीविकादयः तेऽपि धर्मं अधर्मानुबन्धिन प्राप्य पुनरपि गोशालवत् ससारायैव भवन्ति । ण ते सव्वुज्जगं वए, सव्वुज्जगो णाम सजमो, सर्वतो ऋजुः अकुटिलः निरुपधः, न कस्याञ्चिदवस्थायामकल्पानुज्ञानम[3]लिनो भवतीति ॥ २० ॥

पुनरपि विशेषोपलम्भात् स एवार्थ उपसह्रियते—

४७. एवमेगे वितक्काहिं [4]णो अण्णं पज्जुवासिया ।
अप्पणो य वितक्काहिं अयमंजू[5] हि दुम्मती ॥ २१ ॥

४७. एवमेगे वितक्काहिं० सिलोगो । उक्तं हि—

पुव्वभणितं [तु] ज [एत्थ] भण्णती तत्थ कारण अत्थि । पडिसेधमणुण्णा कारणं विसेसोवलभो वा ॥ १ ॥

[कल्पलघुभाष्ये गा० २५५४]

अधवा द्वौ दृष्टान्तावुक्तौ, उपसहारावपि द्वावेव । एवं अवधारणे । [6]एते इति ये उक्ताः परतन्त्रतीर्थकराः । वितर्कों मीमांसेत्यनर्थान्तरम् । एव स्यादिति, ते तु नान्यं पर्युपासितवन्तः, अन्ये नाम ये छद्मस्थलोकादुत्तीर्णाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः । तानुपास्य अप्पणो य वितक्काहिं चशब्दादन्यमतेश्च, यथा [7]व्यासः अमुकेन ऋषिणा एवमुक्तमितिहासमानयति, यथा कणादोऽपि महेश्वरं किलाऽऽराध्य तत्प्रसादपूर्वमनाः वैशेषिक[मत]मकरोत् । एतैरात्मवितर्कैः परोपदेशैश्च यथास्वं [8]अयमस्मिन् मार्गः ऋजुः अऋजुर्वा । शेषाः प्रद्विष्टमतयो दुर्मतयः ॥ २१ ॥

४८. एवं तक्काए साधेंता धम्मा-ऽधम्मे [9]अकोविदा ।
दुक्खं ते [10]णातिवट्टंति सउणी पंजरं जधा ॥ २२ ॥

४८. एवं तक्काए साधेंता० सिलोगो । एवं अवधारणे । स्वमतिवितर्कैभिः साधयन्तः योजयन्तः कल्पयन्त इत्यर्थः । धर्मो नाम यथाद्रव्य-पर्याय-स्वभावावस्थानम्, विपरीतोऽधर्म इति । अथवा धर्मोऽभ्युदय-नैःश्रेयसिकः सुखकारणमिति, दुःखकारणमधर्मः, तत्र अकोविदा धर्मा-ऽधर्माकोविदाः, असम्बुद्धा इत्यर्थः । दुक्खं ते णाति०, दुःखं ससारो तं नातिवर्त्तन्ते, न उत्तरतीत्यर्थः । अथवा कारणे कार्यवदुपचारं कृत्वाऽपदिश्यते ससार-दुःखकारणमधर्मः । दिट्ठतो—सउणी पंजरं जधा, यथा शुकः कोकिला मदनशिलाका द्रव्यपञ्जर नातिवर्त्तते एवमिमे परतित्थिया दुक्खविमोक्खकारिणो भावपञ्जरं नातिवर्त्तन्ते । "तिउट्टंति" त्रोटयन्ति अतिवर्त्तन्ते वा ॥ २२ ॥ त एवं परतन्त्राः—

४९. सयं सयं पसंसंता [11]गरहंती परं वदिं ।
जे उ तत्थ विउस्संति [12]संसरंते [13]विउस्सिया ॥ २३ ॥

---

१ अहवा अधम्म° पु १ पु २ । अपि अधम्म° चूपा० ॥ २ सव्वज्जुयं ख २ पु १ पु २ । सव्वज्जयं ख १ ॥ ३ °मालिनो चूसप्र० ॥ ४ नो यऽण्णं ख २ पु २ । नो य ण पु १ । नो परं वृ० दी० ॥ ५ °मंजूहिं ख २ पु १ पु २ ॥ ६ एते इति एगे इत्यस्य रूपान्तरम्, एते एके इत्यर्थ । सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रे हि एतद् रूप प्राचुर्येण दृश्यते ॥ ७ न्यास. चूसप्र० ॥ ८ अयस्मिन् चूसप्र० ॥ ९ अकुव्विया ख २ । य कोविया पु १ ॥ १० णाइतुट्टंति वृ० दी० । ण तिउट्टंति चूपा० । णातिउट्टंति ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ गरहंता य परं वदिं ख १ । गरहंता परं वयं ख २ । गरहंता परं वदं पु १ पु २ ॥ १२ संसारं ते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ वि उसिया ख १ वृपा० दीपा० ॥

४९. **सयं सयं पसंसंता०** सिलोगो। **सं सं** नाम आत्मीयमात्मीयं **प्रशंसन्तः** स्तुवन्तः ख्यापयन्तः—इदमेवैकं सत्यमिति, नान्यमतानि। **गर्हन्ति परेषां वचनानि** दोषं प्रकटीकुर्वन्ति। एवं ते परस्परविरुद्धदर्शनाः कुसमयतीर्थकराः मुमुक्षवोऽपि **न** संसारपञ्जरमतिवर्त्तन्ते। येऽप्यन्ये तानाश्रितास्तेऽपि **जे उ तत्थ विउस्संति,** विशेषेण **उस्संति** इदमेवैकं तत्त्वमिति विशेषेण उच्छ्र्यंति गव्वेणं उस्सतीति, ते **संसरंतो** विउस्सति ॥ २३ ॥ **अण्णाणिया वादी** परिसमत्ता। इदानीं यत् "कर्म चतुर्विधं चयं ण गच्छति" त्ति णिज्जुत्तीए [नि० गा० २८] वुत्तं **शाक्यानां** तत्प्ररूपणार्थमपदिश्यते—

५०. अधावरं पुरक्खायं किरियावादिदरिसणं।
कम्मचिंतापणट्ठाणं दुक्खक्खंधविवद्धणं ॥ २४ ॥

५०. **अधावरं पुरक्खायं०** सिलोगो। **अथे**त्ययं निपातः पूर्वप्रकृतापेक्षः। तेभ्यः समयेभ्यः प्रकृतेभ्यः **अथ इदमपरं** पूर्वमाख्यातं **पुरक्खायं**। त एवं ब्रुवते—"गंगावालिकासमा हि बुद्धाः, तैः पूर्वमेवेदमाख्यातम्"। अथवा **पुराख्यात**मिति पूर्वेषु मिथ्यादर्शनप्रकृतेष्वाख्यातम्। अथवा प्रख्यात **पुराख्यातम्**। **क्रिया** कर्मेत्यनर्थान्तरम्, **कर्मवादिदर्शनमित्यर्थः,** विगतं वीभत्सं वा दर्शनम्, अशोभनमित्यर्थः। **कम्मचिंता** णाम यथा येन यस्य येषु च हेतुषु प्रवर्त्तमानस्य कर्म वध्यते ततो कर्मचिन्तातः **प्रनष्टाः**। अथवा अतिकर्मामीरुत्वात् तैः कर्माश्रवाः केचिदवन्धायापदिष्टाः, तत् तेषां कुदर्शनं **दुःखस्कन्धविवर्द्धनम्,** कर्मसमूहवर्द्धनमित्यर्थः, तेषा हि अविज्ञानो[प]चितं ईर्यापथं स्वप्नान्तिकं च कर्म चयं न यातीत्यतस्ते **कम्मचिंतापणट्ठा**। स्यात्–कथ पुनरुपचीयते?, उच्यते, यदि सत्त्वश्च भवति १ सत्त्वसंज्ञा च २ संञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य ३ जीविताद् व्यपरोपण प्राणातिपातः ४। अत्र भङ्गाश्चत्वारः–जीवो जीवसण्णा य, जीवो नजीवसण्णा य०, प्रथमे भङ्गे बन्धः, त्रिष्ववन्धः। अथवा सत्त्वश्च भवति १ सत्त्वसंज्ञा च २ संञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य ३ जीविताद् व्यपरोपणम् ४, चतुसु पदेसु सोलस भंगा, पढमे वंधो, सेसेसु अवंधो ॥ २४ ॥ अधवा—

५१. जाणं काएणं णाऽऽउट्टे अवुहो जे य हिंसती।
पुट्ठो वेदेति परं अवियत्तं खु सावज्जं ॥ २५ ॥

५१. **जाणं काएण णाऽऽउट्टिं (ट्टे)०** सिलोगो। जानानः सत्त्वं यदि कायेण णाऽऽउट्टति। **कायाउट्टणं** णाम जिघांसया उत्थानं हत्थ-पादादिव्यापारो। स एवमणाउट्टमाणो जइ वि हिंसति तधा वि अवंधगो। **अवुहो जे य हिंसति** त्ति, माता प्रसुप्ता पुत्रं मारयति स्तनेन मुखमावृत्य, अन्यतरेण वा गात्रेण। अधवा स एव **अवुहो** वालको यदा पिपीलिकादीन् सत्त्वान् घातयति माता-पितरौ किञ्चिदवचनं ब्रवीति न चास्य कर्मोपचयो भवति। यद्यपि च कश्चिद् भवति स तद्यथाऽस्माकमीर्यापथं तथा। **पुट्ठो वेदेति परं, पुट्ठो** णाम स्पृष्टमात्र एव तत् कर्म वेदेति, मुञ्चतीत्यर्थः। **अव्यक्तं** नाम सूक्ष्मतन्तुवन्धनवत् शीघ्रमेव छिद्यते। सह अवद्येन **सावद्यम्**।

अथवा **जानन्निति** पडमिज्ञस्य बुद्धस्य हिंसतोऽपि पापं न वध्यते, **काएणं णाऽऽउट्टति** त्ति स्वप्नान्ते घातयन्नपि सत्त्वं न कायेन आउट्टति, न समारभते इत्यर्थः। **अवुहो** णाम अप्रवुद्धेन्द्रियो वालः, सो हिंसादिकर्मसु वर्त्तमानोऽपि अवन्धक एव। अधवा अवुधो वालश्च यश्च पथि वर्त्तते, न च पथ्युपयुक्तः, असावपि अवुध्यमानो यानि सत्त्वानि व्यापादयति नानयोः पापोपचयो भवति। **पुट्ठो वेदेति परं,** एतानि चउरो वर्जयित्वा योऽन्यः स स्पृष्टः कर्मणा भवति, वध्यते इत्यर्थः, त णियमा वेदयति। चतुर्भ्यो वन्धहेतुभ्यः परत इत्यर्थः, **तच्चाव्यक्तं सावद्यम्,** अमूर्त्तमित्यर्थः, अथवाऽव्यक्त तेषा त्रिकोटीशुद्धं मांसमपि भक्ष्यम्, अन्यथा त्वभक्ष्यमित्यतोऽव्यक्त स्यात् ॥ २५ ॥ कथं पापं वध्यते?, उच्यते—

---

१ °वाईण दरि° ख २ ॥ २ **संसारपरिवड्ढणं** ख १। **संसार[स्स वि]वद्धणं** वृपा०। **संसारस्स पवड्ढणं** ख २ पु १ पु २ दी०। **दुक्खक्खंधविवद्धणं** इति चूर्णि वृत्तिकृत्सम्मतस्तु पाठो नोपलब्ध कुत्राऽप्यादर्शे ॥ ३ **अविज्ञोपचित** इति वृत्तौ ॥ ४-५ **सञ्चित्य सञ्चित्य** वा० मो० ॥ ६ °**ण[ऽ]णाउट्टी** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ **ज च हिं°** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ **जानति त्ति (जाणं ति)** चूसप्र० ॥ ९ **हिन्सतोऽपि** पु० विना ॥ १० °**ण अणाउट्टिति** चूसप्र० ॥ ११ **हिन्सादि°** पु० स० ॥

५२. संतिमे तयो आदाणा जेहिं कीरइ पावगं ।
[1]अभिकम्माय पेसाय मणसा अणुजाणिया ॥ २६ ॥

५२. संतिमे तयो आदाणा० सिलोगो । **संतीति** विद्यन्ते । **आदानं** प्रसूतिराश्रयो वा । येः क्रियते पापं कर्म, तं च **अभिकम्माय पेसाय** अभिमुखं क्रम्य अभिक्रम्य स्वय घातयित्वेत्यर्थः, प्रेष्य नाम अन्यैः कारयित्वा, हतं हन्यमानं वा **मनसाऽनुजानन्ति** ॥ २६ ॥

५३. एते तु ततो आदाणा जेहिं कीरइ पावगं ।
एवं [2]भावणसुद्धीए णे[3]व्वाणमभिगच्छती ॥ २७ ॥

५३. एते तु ततो आदाणा० पुव्वद्धं कंठं । **एवं भावणसुद्धीए,** भावयन्ति तां भाव्यते वाऽनयेति भावना । शुद्धिर्नाम नात्र विचिकित्सामुत्पादयन्ति ॥ २७ ॥ किञ्च—एवं तस्य भावनाशुद्धात्मनः त्रिकोटीशुद्धभोजिनः यद्यपि कश्चित्—

५४. पुत्तं [4]पि ता [5]समारंभ [6]आहारट्ठमसंजते ।
भुंजमाणो वि[7] मेधावी कम्मुणा णोवलिप्पते ॥ २८ ॥

५४. पुत्तं पि ता समारंभ० सिलोगो । **अपि** पदार्थसम्भावने । उक्तं हि—

"प्राणिनः प्रियतराः पुत्राः" [ ] ।

तेन [8]पुत्रमपि तावत् **समारभ्य, समारम्भो** नाम विक्रीय मारयित्वा तन्मांसेन वा द्रव्येण वा, किमंग णरपुत्रं शूकरं वा छागलं वा आहारार्थं कुर्याद् भक्तं भिक्खूणं ? । **अस्संजतो** णाम भिक्खूव्यतिरिक्तः, स पुनरुपासकोऽन्यो वा । त च भिक्षुः त्रिकोटिशुद्धं भुञ्जानोऽपि **मेधावी कम्मुणा णोवलिप्पते** । तत्रोदाहरणम्—

उपासिकाया भिक्षुः पाहुणओ गतो । ताए लावगो मारेऊण ओवक्खडेत्ता तस्स दिण्णो । घरसामिपुच्छा । अहो [9]णिग्घिण त्ति । ताधे तेण भिक्खुणा कृतकशूलं कृतम् । मा कप्पारेण, हस्ताभ्यां गृहीत्वा खेदय, माऽङ्गारानिति, त्वमेव दह्यसे नाहम्, एवं मत्कृते घातक एव वध्यते, नाहम् ॥ २८ ॥ एषामुत्तरम्—

५५. मणसा जे पदुस्संति चित्तं तेसिं ण विज्जती ।
अणवज्जं अतधं तेसिं ण ते संवुडचारिणो ॥ २९ ॥

५५. मणसा जे पदुस्संति० सिलोगो । पूर्वं हि सत्त्वेषु निर्घृणतोत्पद्यते, पश्चादपदिश्यते—यः परः जीववहं करोति न तत्र दोषोऽस्तीति । ते हि पुण्यकामकाः मातुरपि स्तन छित्त्वा तेभ्यो ददति । अप्रदुष्टा अपि मनसा दुष्टा एव मन्तव्याः य उद्देशकृत भुञ्जते । एवं **तेषां** सद्धभक्तादिपु मत्स्याद्यशनेषु च मूर्च्छितानां ग्रामादिव्यापारेषु च [10]नित्याभिनिविष्टानां कुशल**चित्तं न विद्यते,** अशोभनं चित्तं व्याकुलं वा तदचित्तमेव, यथा अशीलवती । लोकेऽपि दृष्टम्—व्याकुलचित्ता भवति (भणति)—अविचित्तओ हं । एव तेषा सावद्ययोगेषु वर्त्तमानाना **अणवज्जं अतधं तेसिं,** न तहं अतहं, नास्तीत्यर्थः । का तर्हि भावना ?, न तेषामनवद्ययोगोऽस्ति, नित्यमेव हि ते असवुडचारिणो बन्धहेतुषु वर्त्तन्ते, असंवृतत्वात्, ते हि तत्प्रदोष-निह्नव-मात्सर्यादिष्वाश्रवद्वारेषु यथास्वं वर्त्तमानास्तदनुरूपमेव च यथापरिणामं कर्म बध्नन्ति । दव्वसवुडा पावसियाल-चौरादयः, भावसंवुडा साधवः । **संवृतचारिणो** नाम **संवृतः** सयमोपक्रमः तच्चरणशीलः सवृतचारी ॥ २९ ॥

---

१ अहिक्कमाय ख १ पु १ ॥ २ भावविसोहीए ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ नेव्वाणं अहिगच्छती ख १ ॥ ४ "पिता' जनक" इत्येकपदत्वेन वृत्ति-दीपिकाकृतां व्याख्या ॥ ५ ख १ ख २ पु १ पु २ आदर्शेषु चूर्णिप्रतीके च **समारंभ** इत्येव पाठो वर्त्तते । किञ्च—तृतीयोद्देशकप्रारम्भोत्थानिकायामेतत्पाठोद्धरणे पुन **समारब्भ** इति पाठोऽस्ति, दृश्यता पत्रं ३९ ॥ ६ आहारेज्ज असं० ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ य ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ "पुत्रं' अपत्य 'पिता' जनकः 'समारभ्य' व्यापाद्य" इति वृत्तिकृतो दीपिका-कृतश्च व्याख्या ॥ ९ णिग्घिण चूसप्र० ॥ १० नित्याभिविनष्टानां चूसप्र० ॥

५६. इच्चेताहिँ दिट्ठीहिँ सातागारवणिस्सिता।
[1]हियं ति मण्णमाणा तु सेवंती अहियं जणा॥ ३०॥

५६. इच्चेताहिं दिट्ठीहिं० सिलोगो । इति उपप्रदर्शनार्थः । एताहिं ति इहाध्याये या अपदिष्टा नियतिकाद्याः । सातागारवो नाम शरीरसुक्खं तत्र निःसृताः (निःश्रिताः) अज्झोववण्णा इत्यर्थः । हियं ति मण्णमाणा एवमस्माकं हितं भविष्यतीति मूर्खास्तु एतद् अहितमेव सेवन्ते ॥ ३० ॥ अथवा अस्मिन्नर्थेऽय दृष्टान्तः—

५७. [2]जधा [3]आस्साविणिं णावं जातिअंधो दुरूभिया।
[4]इच्छंतो पारमागंतुं अंतरा य विसीयति॥ ३१॥

५७. जधा आस्साविणिं णावं० सिलोगो । आश्रवतीति आश्राविणी अकलकोट्टा भुण्णकोट्ठा वा । जात्यन्धग्रहणं नासौ नावामुखं पृष्ठं वा जानीते, यो वा अवल्लक-पत्रादेरुपकरणस्य यथोपयोगः । स एवमिच्छन्नपि पारं समुद्रपारं वा अन्तरा विषीदति सप्लव एव ह्रियते निमज्जते वा । सो हि णिछिड्डं पि ण सक्केइ वट्टावेतुं, किमंग पुण सयछिड्डं ? ॥ ३१ ॥ एस दिट्ठंतो । उवसंहारो एसो—

५८. एवं तु समणा एगे मि[5]च्छादिट्ठी अणारिया।
संसार[6]पारमिच्छंता संसारे अणुपरियट्टंति॥ ३२॥ त्ति बेमि॥
॥ [7]वितिओ उद्देसओ सम्मत्तो २॥

५८. एवं तु समणा एगे० सिलोगो । एवं अनेन प्रकारेण । तुः विशेषणे । [एगे] अस्मान् मुक्त्वा मिच्छादिट्ठी अणारिया णाम चरित्ताणारिया अणारियाणि वा कम्माणि कुव्वंति । ते संसारपारमिच्छंता संसारे चेवऽणुपरियट्टंति । अवि णाम सो जातिअंधो देवतापभावेण वा अण्णेण वा के[ण]इ [8]उत्तारिज्जेज्ज, ण या मिच्छादिट्ठी ससाराद्दुत्तरति ॥ ३२ ॥

॥ वितिओ उद्देसओ सम्मत्तो १-२ ॥

[समयज्झयणे तइओ उद्देसओ]



समयाधिकारोऽनुवर्त्तत एव । तत्र प्रथमे द्वितीये च कुदृष्टिदोषा अभिहिताः । तृतीये तेषामेवाऽऽचारदोषा अभिधीयन्ते । अथ द्वितीयावसाने सूत्रम्—"पुत्तं पि ता समारब्भ आहारट्ठमसंजते" [सूत्रगा० ५४] आचारदोष उक्तः, इहापि स एवाऽऽचारदोषोऽभिधीयते दृष्टिदोषाश्च । तेषामेव तेरासिगवत्तव्वतं च भणिहिति इत्यतोऽपदिश्यते—

५९. जं [9]किंचि उ पूतीकडं [10]सड्ढी आगंतु ईहियं।
[11]सहस्संतरकडं भुंजे [12]दुपक्खं चेव सेवति॥ १॥

५९. जं किंचि उ पूतीकडं० सिलोगो । यदिति अणिद्दिट्ठस्स णिद्देसो । किंचिदिति य[13]दाहारिमं उवधिजात वा । पूतिग्रहणादाधाकर्मणि गृहीतं आधाकर्मिकम्, एवं हि पूतिं यदि च तदवयवोऽपि वर्त्तते । कथ तर्हि आधाकर्म तद्ग्रहणाच्च

---

१ सरणं ति मण्णमाणा सेवंती पावगं जणा खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । दीपिकायां जणा स्थाने नरा इति पाठो वर्त्तते ॥ २ जह ख १ ॥ ३ आसाविणिं ख २ पु २ । अस्साविणिं पु १ ॥ ४ इच्छई पारमागंतुं ख २ वृ० दी० । इच्छेज्ज पारमागंतू ख १ । इच्छेज्जा पारमागंतुं पु १ पु २ ॥ ५ °च्छदिट्ठी खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ °पारकंखी ते संसारं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ प्रथमस्य द्वितीयः ख २ पु १ पु २ ॥ ८ उत्तारेज्ज पु० ॥ ९ किंचि वि पू° खं १ ख २ पु १ । किंची पू° पु २ ॥ १० सड्ढीमागंतुमीहियं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ सहसंतरियं भुंजे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ दुप्पक्खं ख २ पु १ पु २ ॥ १३ यथाऽऽहा° चूसप्र० ॥

सर्वा अविशोधिकोटिर्गृहीता ?, "एगग्गहणे गहण" ति काउं तज्जातियाण सव्वेसिं तिण्णि विसोधिकोडी वि गहिता। श्रद्धा अस्यास्तीति श्राद्धी, आगच्छन्तीत्यागन्तुकाः, तैः श्राद्धीभिरागन्तूननुप्रेक्ष्य प्रतीत्य उवक्खडियं। अथवा सड्ढि त्ति जे एगतो वसति तानुद्दिश्य कृतम्, तत् पूर्व-पश्चिमानां आगन्तुकोऽपि यदि सहस्संतरकडं भुंजे दुपक्खं णाम पक्षौ द्वौ सेवते, तद्यथा— गृहित्वं प्रव्रज्यां च। अम्हंतणओ वि जो असुद्धं भुंजति सो वि दुपक्खं सेवति। कधं ? दव्वतो लिंगं भावतो असजतो। एवं ते प्रव्रजिता अपि भूत्वा आधाकर्मादिभोजने गृहस्था एव सम्पद्यन्ते ॥ १ ॥

६०. तमेवं[1] अविजाणंता विसमंसि अकोविता[2]।
मच्छा[3] वेसालिया चेव उदगस्स[4] अभिआगमे ॥ २ ॥

६०. तमेवं अविजाणंता० सिलोगो। तमिति निर्देशे, यथोद्दिष्टमेतदर्थं एवं अनेन प्रकारेण मूलगुणे उत्तरगुणे तदुपघातं च अवियाणंता अविशुद्धभोगदोसेण। जधा—"आधाकम्मण्णं भंते ! भुंजमाणे किं पकरेति किं चिणाति०"। [भगवती श० १ उ० ९ सू० ७८, श० ७ उ० ८ सू० २९८]। विसमो णाम वंध-मोक्खो, कम्मवंधो वि विसमो, जतो एक्केक्कं कम्ममणेगप्पगारं अणेगेहिं च पगारेहिं वज्झते अतो विसमंसि अकोविता, असम्बुद्धा इत्यर्थः। ते अयाणगा प्रत्युत्पन्नगृद्धाः अनागतदोष(पा)-दर्शनाद् आधाकर्मादिभिर्दोषैः कर्मवद्धा ससारे दुःखमाप्नुवन्ति। मच्छा वेसालिया चेव, विशालः समुद्रः, विशाले भवाः वैशालिकाः बृहत्प्रमाणाः, अथवा विशालकाः वैशालिकाः। पठ्यते च—"मच्छे वेतालिए चेव" वैताली कूलमिष्यते, लोकसिद्धमेवैतदभिधानम्, यथा—पूर्ववैताली दक्षिणाऽपरेति। सामुद्रकूलोद्भवो स वैशालिको वैतालीकूलो वा मत्स्यः सामुद्रकैर्वीचिप्रहारैर्मत्स्यैश्चान्यैर्वहद्भिर्न वाध्यते, स कथञ्चिदेव ततो निरुपसर्गान्निष्कण्टकात् समुद्रवेलया निसृष्टकायः यानारूढ इव पुमान् परप्रयोगेन अबुध्यमानः स दूरमपहृतः। उदगस्स अभिआगमे त्ति, उदगस्य अभ्यागमो नाम समुद्रान्निस्सरणम्, केचित्तु पुनः प्रवेशः ॥ २ ॥ स एवं शरीरसुखाय अजानानस्तत्रापायान्—

६१. उदगस्सऽप्पभावेणं[5] सुक्कंसि[6] घंतमेति तु।
ढंकेहि य कंकेहि य आमिसासीहि[7] ते दुही ॥ ३ ॥

६१. उदगस्सऽप्पभावेणं० सिलोगो। अप्पभावो णाम उदगस्स अल्पभावः, प्रत्यावृत्ते उदगे शुष्का एव वालुका सवृत्ता पङ्को वा। अथवा अप्पस्स[8] भावः अप्पभावः, स्तोक इत्यर्थः, स च महाकायत्वान्न तत्र शक्नोति तर्तुम्, परिवर्त्तमानो वा नदीमुखे लग्यते, एवं अप्पकातो[9] वि। घंतमेतीति[10] घनघातेन वा अन्तं करोतीति घन्तः, "कर्मवत् कर्मकर्त्ता" इति कृत्वाऽपदिश्यते—स्वयमेवासौ घातार[11] एति प्राप्नोतीत्यर्थः। अथवा घंतो णाम मच्चू त मच्चुमेति। कैः ? उच्यते—ढंकेहि य कंकेहि य० सिलोगो पच्छद्धं। एतेनान्ये आमिषाशिनः शृगाल-पक्षि-मनुष्य-मार्जारादयः क्षुधन्ति तत्रैव। यदृच्छया च केचित् पुनः वीचीमासाद्य वर्द्धमाने च उदके समुद्रमेव विशन्ति। दुहि त्ति तैस्तीक्ष्णतुण्डैः पिशिताशिभिरदयमानास्तीव्रं दुःखमनुभवन्तो अट्टदुहट्टवसट्टा मरति। एस दिट्ठतो ॥ ३ ॥

६२. एवं तु समणा एगे वट्टमाणसुहेसिणो।
मच्छा वेसालिया चेव घंतमेसंत[12]ऽणंतसो ॥ ४ ॥

६२. एवं तु समणा एगे० सिलोगो। एवं अनेन प्रकारेण वर्त्तमानमेव जिह्वासुखमिच्छन्ति अण्णउत्थिया पासत्थादयो वा एगे समुद्रमुत्तरितु अविसुद्धाणि आहारादीणि गवेसता जधा मच्छा एगभवियं मरणं पावेंति एवमणेगाणि जाइतव्व-[13]मरितव्वाणि पावंति। एवं पासत्थादयो वि जोतेएव्वा[14] ॥ ४ ॥

---

१ तमेव ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ अवियाणंता विसमम्मि ख १ ख २ ॥ ३ मच्छे वेतालिए चेव चूपा० ॥ ४ °गस्सऽभि° ख २ पु १ पु २। °गस्सऽहियागमे ख १ ॥ ५ उदगस्स पभावेणं ख १ पु १ वृ० दी०। "उदकस्य प्रभावेन नदीमुखमागता" इति वृत्ति-दीपिकाकृत ॥ ६ सुक्खंसि ग्घायमेन्ति उ ख १। सुक्कम्मि घातमिंति उ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ आमिसत्थेहि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ अप्पस्वभावः चूसप्र० ॥ ९ अल्पकाय इत्यर्थ ॥ १० घातयतीति चूसप्र० ॥ ११ घातं एति पु० ॥ १२ घातमे° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १३ जनितव्य मर्त्तव्यानि ॥ १४ योजयितव्या द्रष्टव्या वा इत्यर्थ ॥

६३. इणमण्णं तु अण्णाणं इहमेगेसिमाहितं।
देवउत्ते अयं लोगे बंभउत्ते त्ति आवरे॥ ५॥

६३. **इणमण्णं तु अण्णाणं०** सिलोगो। इदमिति ज भणिहामि जधा लोको उप्पज्जति विणस्सति य। इहेति इहलोगे। एगेसिं ण सव्वेसि। अथवा एगे णाम न ज्ञानसहायाः। तं कहं? **देवउत्ते अयं लोगे०** सिलोगो [पच्छद्धं]। केइ भणंति–देवेहि अयं लोगो कतो, उत्त इति बीजवद् वपितः आदिसर्गे, पश्चादङ्कुरवद् विसर्पमानः क्रमशो विस्तरं गतः। देवगुत्तो देवैः पालित इत्यर्थः। देवपुत्तो वा देवैर्जनित इत्यर्थः। एवं बंभउत्ते वि तिण्णि विकप्पा भाणितव्वा—ब्रभउत्तः बंभगुत्तः बंभपुत्त इति वा॥ ५॥

६४. ईस्सरेण कते लोगे पहाणाति तहावरे।
जीवा-ऽजीवेहिं संजुत्ते सुह-दुक्खसमण्णिए॥ ६॥

६४. **इस्सरेण कते लोगे०** सिलोगो। "ईश ऐश्वर्ये" **ईश्वरः** प्रभुः महेश्वरोऽन्यो वाऽभिप्रेतः। तथा प्रधानादि अन्ये इच्छन्ति, प्रधानमव्यक्तमित्यर्थः। जीवाश्चाजीवाश्च जीवाजीवाः, तैः **जीवा-ऽजीवैः संयुक्तः**। सुखं च दुक्खं च सुखदुक्खे, सम् एकीभावेन अन्वितः सुख-दुःखसमन्वितः। अन्वितः अनुगत इत्यर्थः॥ ६॥ तथाऽन्ये इच्छंति—

६५. सयंभुणा कते लोगे इति वुत्तं महेसिणा।
मारेण संथुता माया तेण लोए असासते॥ ७॥

६५. **सयंभुणा कते लोगे०** [सिलोगो]। स्वयं भवतीति **स्वयम्भूः**, स तु विष्णुरीश्वरो वा ब्रह्मा वा। **इति वुत्तं** ति, इतिरिति उपप्रदर्शनार्थः, 'उक्तं' कथितमित्यर्थः। महऋषी नाम स एव ब्रह्मा, अथवा व्यासादयो महर्षयः, यो वा यस्याभिप्रेतः स तं ब्रवीति महर्षिमिति। एव यो यस्याभिप्रेतः स त लोककर्तारमिच्छति। केचित् पुनस्त्रयाणामपि साधारणं कर्तृकत्वमिच्छन्ति। तद्यथा—

एका मूर्त्तिस्त्रिधा जाता ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः। कर्त्ता विष्णुः क्रिया ब्रह्मा करणं तु महेश्वरः॥ १॥

[ ]

तत्र तावद् विष्णुकारणिका ब्रुवते–विष्णुः स्वर्लोकादेकांशेनावतीर्य इमान् लोकानसृजत्, स एव मारयतीति कृत्वा मारोऽपदिश्यते, ततस्तेन **मारेण संस्तुता माया**। एके ब्रुवते–यदा विष्णुना सृष्टा लोकास्तदा अजरामरत्वात् तैः सर्वा एवेयं मही निरन्तरमाकीर्णा, पश्चादसावतीवभराक्रान्ता मही प्रजापतिमुपस्थिता। नागार्जुनीयास्तु पठन्ति—

अतिवड्ढीयजीवा णं मही विण्णवते पभुं।
ततो से मायासंजुत्ते करे लोगस्सऽभिद्दवा॥

ततस्तेन परित्रा[णा]य स्वयं मह्या विज्ञप्तेन 'मा भूल्लोकः सर्व एव प्रलय यास्यति इति, भूमेरभावात्' ता च भयविह्वलाङ्गीं अनुकम्पता व्याधिपुरस्सरो मृत्युः सृष्टः। ततस्ते धर्मभूयिष्ठाः प्रकृत्यार्जवयुक्ता मनुष्याः सर्व एव देवेपूपपद्यन्ते स्म। ततः स्वर्गोऽपि अतिगुरुभाराक्रान्तः प्रजापतिमुपतस्थौ, ततस्तेन **मारेण संस्तुता माया, मारो** णाम मृत्युः, **संस्तवो** नाम साङ्गत्यम्, उक्तं हि–मातृपुव्वसथवः, मृत्युसहगता इत्यर्थः। ततस्ते मायाबहुला मनुष्याः केचिदेकमृत्युधर्ममनुभूय नरकादिपु यथाक्रमत उपपद्यन्ते स्म। उक्तं च—

जानन्तः सर्वशास्त्राणि छिन्दन्तः सर्वसंशयान्। न ते तथा करिष्यन्ति गच्छ स्वर्गं न ते भयम्॥ १॥

[ ]

१ °उच्चि त्ति ख २ पु १ पु २॥ २ ईसरेण कडे ख १ ख २ पु १ पु २॥ ३ °जीवसमाउत्ते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ४ प्रधानादन्ये चूसप्र०॥ ५ कडे लोए इती ख १ ख २ पु १ पु २॥ ६ विष्णुसलोकदेकांशे° चूसप्र०॥

येन वा मारेण संस्तुता माया वितिया तेण लोए अमासते ॥ ७ ॥ अन्ये तु—

६६. माहणा समणा एंगे आह अंडकडे जगे ।
असो तत्तमकासी य अयाणंता मुसं वेदे ॥ ८ ॥

६६. माहणा समणा एगे० सिलोगो । माहणा धीयारा । समणा साङ्ख्यादयः । एगे ण सव्वे । अण्डात् कृतः, ब्रह्मा किलाण्डमसृजत्, ततो भिद्यमानात् शकुनवल्लोकाः प्रादुर्भूताः । एवमेते सर्वेऽपि लोकोत्पादवादिनः स्वं स्वं पक्षं प्रशंसन्तो ब्रुवते–असो तत्तमकासी य अयाणंता मुसं वदे, असाविति असावेकः योऽस्मदभिप्रेतः विष्णुरीश्वरो वा तत्त्वं नाम, असावेव नान्यः लोकमकार्षीत्, शेषास्तु लोकोत्पादमजानन्तो मुस वदे । अथवा वयं ब्रूमः–ते वराका लोकस्वभावं अयाणंता मुस वदे । कथम्? ज ते वदन्ति–देव-मणुस्सा तिरिक्ख-णारगा सुहिता दुःखिता, राज-जुवराजादि, सुत्थाणि वा विग्गहाणि वा, सुभिक्खाणि वा दुभिक्खाणि वा, सर्वमेतद् विष्णुकृतम । ये चान्ये तत् सर्वं अयाणंता मुसं वदे ॥ ८ ॥

किंच जं ते—

६७. सएण परियाएण लोयं बूया कडेविधिं ।
तत्तं ते ण वि जाणंति णायं णाऽऽसि कयाति वि ॥ ९ ॥

६७. सएण परियाएण, लोय बूया कडेविधिं० [सिलोगो] । स्वपर्यायो नाम आत्माभिप्रायः अप्पणिज्जो गमकः, य एव स्वेन पर्यायेण ब्रुवते लोगस्स कडविधी, विधिर्विधान प्रकार इत्यर्थः । तेषामुत्तरम्–तत्तं ते ण वि जाणंति, तस्य भावस्तत्त्वम् लोकसद्भाव इत्यर्थः, यथा उत्पद्यते प्रलीयते च स्वकर्मभिः एतत् तत्त्व न जानन्तीति । उक्तं हि–"अणता जीवघणा उप्पज्जित्ता णिलिज्जति" [ ] एव परित्ता वि इत्यर्थः । कर्मभिरुत्पद्यमानः प्रलीयमानश्च सन्ततीः प्राप्य नायं नासीत् कदाचिदपि नित्यः, दव्वट्ठताए सासतो पज्जवट्ठताए असासतो ॥

अधवा सव्व एवायं उत्तरसिलोगो–तेषां कडवादीनां विप्रसृतानि निगम्य सएण परियाएण बूया लोए कडेविधिं, अप्पणियाएण परियाओ णाम गमागमवक्तव्यता बूया, लोए कडे वा ण व त्ति ते उ सव्वे कुवादिणो तत्तं ते ण वि जाणंति णायं णाऽऽसि कयाति वि । तत्त्व यथा भगवद्भिरुपदिष्टम्—"किमिदं भंते! लोके त्ति पवुच्चति?, पंच अत्थिकाया" [भग० श० १३ उ० ४ सू० ४८१] । तथा "दव्वतो ण लोगे ण कयाइ णासि जाव णिच्चे, एव क्खे, भावतो जे जधा भावा पज्जवा उप्पज्जति विणस्संति च ते पडुच्च अणिच्चो" [भग० श० ११ उ० १० सू० ४२०] । पठ्यते च–"लोकं बूया कडे ति च" । चशब्दादकडे ति च नित्य इत्यर्थः द्रव्यतः, भावं पडुच्च कडे ॥ ९ ॥ किञ्चान्यत्–ते ह्यसर्वज्ञा नैव दुक्ख जाणंति, ण च दुक्खुप्पाय, नैव तन्निरोधम्, कथ तर्हि लोकोत्पादं ज्ञास्यन्ति? । कथम्?—

६८. अमणुण्णसमुप्पादं दुक्खमेव विजाणिया ।
समुप्पादमयाणंता किह णाहिंति संवरं? ॥ १० ॥

६८. अमणुण्णसमुप्पादं० सिलोगो । अमणुण्णो णाम असजमो, न हि कस्यचिदसजमतत्त्व परेणाऽऽत्मनि क्रियमाणमिष्टम् इत्यतः असौ दुष्टाशीविषवत् सर्वस्यैवायमन्यः असजमः । तेषा च यत् पूर्वं नासीत् पश्चाज्जातं तत् सर्वं दुक्खं, जं पि किंचि सुखसण्णित तं पि दुक्खमेव, चंकम्मितं दुक्ख, एव ठिति आसित सेय दुक्ख, छुधा वि धंतगत्तण पि दुक्ख । एवमादीणि पुव्व णासी पश्चाज्जायन्त इति दुक्खाणि, तानि चेश्वरकृतानि नास्माभिरिति । त एव तस्य दु.खस्य समुप्पादम-

१ वेगे ख २ पु १ पु २ ॥ २ वते ख २ पु १ पु २ ॥ ३ सतेहिं परियातेहिं लोयं बूया कडे ति या ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ बूया लोए कडेविधिं इति लोयं बूया कडे ति च इति चूर्णौ पाठभेदौ ॥ ५ णाभिजाणंति वृ० दी० । ण वि जाणंती ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ ण विणासि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ कयाइ ति दी० ॥ ८ चक्कम्मितम्मि (त पि) दुक्खं पु० सं० ॥ ९ शयनमित्यर्थ ॥ १० तृप्तत्वमपीत्यर्थ ॥

याणंता किह णाहिंति संवरं ? । का तर्हि भावना ?—तद्धि तैरात्मनैव पूर्वं पापं कृतम्, पश्चाद् हेत्वन्तरतः तेष्वपि विपक्वं, तद्यथानाम कृष्यादीनि कर्माणि स्वयं कृत्वा तत्फलमुपभुञ्जाना ब्रुवते—यदस्मासु किञ्चित् कर्म विपच्यते तत् सर्वमीश्वरकृतमिति। एवं तस्स दुक्खस्स समुप्पादमयाणंता कहमणिपुणा संसारगतयो (गतीः) ज्ञास्यन्ति ? संसारदुक्खणिस्सरणोवायं च कधं णाहिंति संवरं ॥ १० ॥ भणिया कडवादिणो । तेरासिइया इदाणिं—ते वि कडवादिणो चेव । तेरासिया णाम जेसिं ताइं [1]एक्कतीस सुत्ताइ तेरासियासुत्तपरिवाडीए ते भणति—

६९. सुद्धे अपावए [2]आसी इहमेगेसि आहितं ।
[3]कीलावण-प्पदोसेण रजसा अवतारते ॥ ११ ॥

६९. **सुद्धे अपावए आसी०** सिलोगो । तेषां हि यथोक्तधर्मविशेषेण घटमानोऽयमात्मा इह शुद्धाचारो भूत्वा मोक्खो अपापको भवति, अकर्मा इत्यर्थः । इहेति इहलोके मिथ्यादर्शनसमूहे वा । स मोक्षप्राप्तोऽपि भूत्वा **कीलावण-प्पदोसेण रजसा अवतारते,** तस्य हि स्वशासनं पूज्यमानं दृष्ट्वा अन्यशासनान्यपूज्यमानानि [च] क्रीडा भवति, मानसः प्रमोद इत्यर्थः, अपूज्यमाने वा प्रदोषः, ततोऽसौ सूक्ष्मे रागे द्वेषे वाऽनुगतान्त[4]रात्मा शनैः शनैः निर्मलपटवदुपभुज्यमानः कृष्णानि कर्माण्युपचित्य स्वगौरवात्तेन रजसाऽवतार्यते ॥ ११ ॥ ततः पुनरपि—

७०. [5]इह संवुडे भवित्ताणं [6]सुद्धे सिद्धीए चिट्ठती ।
पुणो कालेणऽणंतेणं तत्थ से अवरज्झती ॥ १२ ॥

७०. **इह संवुडे भवित्ताणं सुद्धे सिद्धीए चिट्ठती०** [सिलोगो]। इहेति इह आगत्य मानुष्ये वयः प्राप्य प्रव्रज्यामभ्युपेत्य **संवृतात्मा भूत्वा,** जानको नाम जानक एव आत्मा, न तस्य तज्ज्ञान प्रतिपतति । [7]यदि वा—एतत् शासनं न ज्वलति तत एवं प्रज्वाल्य किञ्चित् कालं ससारेऽवस्थित्य "प्रेत्य पुनरपापको भवति" मुक्त इत्यर्थः । एवं **पुनरनन्तेनानन्तेन कालेन** स्वशासनं पूज्यमानं वा अपूज्यमानं वा दृष्ट्वा **तत्थ से अवरज्झती, अवराधो** णाम रागं दोस वा गच्छति, ततः सापराधत्वात् चौरवद् रागद्वेषोत्थैः कर्मभिर्बाध्यते, ततः कर्मगुरुत्वात् पुनरवतार्यते, तेनैव क्रमेण शासनं प्रज्वाल्य निर्वाति च । उक्तं च—

[8]दग्धे पुनः पुनरुपैति भवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितभीरुनिष्ठम् ।
मुक्तः स्वयं कृतभवश्च परार्थशूरस्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यम् ॥ १ ॥

[सिद्ध० द्वा० २ श्लो० १८] ॥ १२ ॥

यतश्चैवम्—

७१. एताणु[9]वीयि मेधावी [10]बंभचेरं न तं वसे ।
पुढो पावादिया सव्वे अक्खातारो सयं सयं ॥ १३ ॥

७१. **एताणुवीयि मेधावी०** सिलोगो । एवं त्रैराशिकमते चान्ये प्रागुक्ताः कृतवादिनः, तांश्च स्वच्छन्दबुद्धिविकल्पैः पूर्वा-ऽपराधिष्ठितमतीन् अनुचिन्त्य ज्ञात्वेत्यर्थः, नैते निर्वाणायेति द्रव्यब्रह्मचेरं **न तं वसे** त्ति ण तं रोएज्जा आयरेज्जा वा, ण वा तेहिं समं वसेज्जा ससग्गि वा कुर्यात् तेहिं ति, मा भूत् सेहमतिं वुग्गाहेज्जा । उक्तं हि—"शङ्का काङ्क्षा

१ "डवेइयाइ बावीस सुत्ताइ तिक्णइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए" इति पाठो **समवायाङ्गसूत्रे** सूत्र १४७ पत्र १२८–२ तथा **नन्दीसूत्रे** सूत्र ५६ पत्र २३६–२ मध्ये दृश्यते ॥ २ **आया इह**° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ **पुणो किड्डा-पदोसेणं से तत्थ अवरज्झति** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । **किड्डा** स्थाने ख २ पु १ पु २ **कीडा** पाठ ॥ ४ °**रात्मना शनैः** पु० ॥ ५ **इह संवुडे मुणी जाते पच्छा होति अपावए । वियडं व जहा भुज्जो नीरय सरयं तहा** ॥ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ **पेच्चा होति अपावए** चूपा० ॥ ७ **यतचे(श्चै)तत्** वा० मो० ॥ ८ **दग्धेन्धनः पुनरुपैति** इति द्वात्रिंशिकायां पाठ ॥ ९ °**णुवीति** ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० **बंभचेरे ण ते वसे । पुढो पावादुया** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

जुगुप्सा च०" [ ]। सव्वे वि एते पुढो पावादिया सव्वे अक्खातारो सयं सयं, पुढो णाम पृथक् पृथग् यथामति विकल्पशो वा स्वं स्वमिति स्वं स्वं सिद्धान्तं प्रशंसन्ति, परसिद्धान्तं च निन्दन्ति ॥ १३ ॥

७२. सए[1] सए उवट्ठाणे सिद्धिमेव न अन्नहा।
अधोधि[2] होति वसवत्ती सव्वकामसमप्पियो ॥ १४ ॥

७२. सए सए उवट्ठाणे० सिलोगो। स्वे स्वे आत्मीये [आत्मीये] उपतिष्ठन्ति तस्मिन्निति उपस्थानम्। सिद्धिरिति निर्वाणम्। एवं अवधारणे। नान्यथेति नान्येन प्रकारेण मुच्यन्ते सत्त्वाः। अन्येषा तु स्वाख्यातचरणधर्मविशेषादिहैवाष्ट-गुणैश्वर्यप्राप्तो भवति, तद्यथा—अणिमान लघिमानमित्यादि। अहवा अधोधि[3] होति वसवत्ती, अधोहि[4] नाम अवधिज्ञानः। वशवर्त्ती नाम वशे तस्येन्द्रियाणि वर्त्तन्ते, नासाविन्द्रियवशकः। सव्वकामसमप्पियो णाम सर्वकामसमर्पितस्य यथेच्छातः उपनमन्तेत्यर्थः, तस्य सर्वकामा अर्पिताः, सर्वकामानां वा समर्पितः ॥ १४ ॥

७३. सिद्धा य ते अरोगा य इहमेगेसि आहितं।
सिद्धिमेव पुराकाउं आसएहिं[5] गढिता णरा ॥ १५ ॥

७३. सिद्धा य ते अरोगा य० सिलोगो। ते हि रिद्धिमन्तः शरीरिणोऽपि भूत्वा सिद्धा एव भवन्ति नीरोगाश्च। नीरोगा णाम वातादिरोगैरागन्तुकैश्च न पीड्यन्ते, ततः स्वेच्छातः शरीराणि हित्वा निर्वान्ति। एव सिद्धिमेव पुराकाउं आसएहिं गढिता णरा, सिद्धिं पुरस्कृत्येति सिद्धा एव वयम्, अनेन वाऽऽचारेण सिद्धिं यास्यामः, पूजापुरस्कारकारणात्। हिंसादिषु आश्रवेषु गढिता णाम मूर्च्छिताः, संसक्तभावात् ॥ १५ ॥

त एव सिद्धाः सिद्धवादिनः ये चान्ये आश्रवगढितावादिनस्ते—

७४. असंवुडा अणादीयं भमिहिंति पुणो पुणो।
कप्पकालुववज्जंति[6] ठाणा असुर-किव्विस[7] ॥ १६ ॥ त्ति बेमि ॥
॥ ततिओ उद्देसओ सम्मत्तो १-३ ॥

७४. असंवुडा० सिलोगो। अणादीयं भमिहिंति पुणो पुणो, एतत् कण्ठ्यम्। कप्पकालुववज्जंति ठाणा असुर-किव्विसा, कल्पपरिमाणः कालः कप्पकालः, कप्प एव वा कालः। तिष्ठन्ति तस्मिन्निति स्थानम्। आसुरेषूपपद्यन्ते किल्विषिकेषु च। ततो उव्वट्टा अणंतं कालं हिंडंति ससारे। इच्चेते कुसमये बुज्झेज्ज तिउट्टेज्ज त्ति ॥ १६ ॥

॥ ततिओ उद्देसओ सम्मत्तो १-३ ॥

[समयज्झयणे चउत्थो उद्देसओ]



उद्देसाभिसंबंधो—"किच्चुवमा य चउत्थे" [नि० गा० २९] णिज्जुत्तीए वुत्त। किचेहिं कृत्यैरुपमीयन्ते इत्यतः कृत्यो-पमाः। सूत्रस्य सूत्रेण सह सम्बन्धने मोक्षार्थमुपस्थितः आत्मनोऽपि ताव सरणं न भवति जेण कप्पकालुववज्जंती, किमग पुनरन्येषाम्? इत्यतोऽपदिश्यते—

---

१ सते सते ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ अहो वि होति वस° खं १ ख २ पु १ वृ० दी०। अहो इहेव वस° पु २ ॥ ३ अवोधि चूसप्र० ॥ ४ अवोहि चूसप्र० ॥ ५ सासए गढिता खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ °कालमुवज्जंति ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ आसुर-किव्विसिय ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

७५. एते जिता भो![1] न सरणं [2]बाला पंडितमाणिणो।
[3]जहित्ता पुव्वसंजोगं [4]सितकिच्चोवगा सिया॥ १॥

७५. एते जिता भो! [न] सरणं० सिलोगो। **एते** इति य उद्दिष्टाः, श्रयन्ति तमिति शरणम्, **भो!** इति शिष्यामन्त्रणम्, **जिता** नाम विषय-कषायैस्ते जिता न भवन्ति शरणाय, दुर्बला इत्यर्थः। अथवा—**"एते [जिता] भो! असरणं"** परीषहजितत्वात् अत्तणो य परेसिं च। स्यात् कथ अशरणाय भवन्ति? उच्यते, येन **बाला पंडितमाणिणो**। अथवा पयण-पयावणादिआरंभ-विहार-धण-धण्ण-गो-महिस-सयणा-ऽऽसणादिपरिच्छदा णाणाविधेहिं दुक्खेहिं अभिभूता आत्मनः सरणं मण्णंते ते कधं अण्णेसिं सरणं भविस्सति?, ते असरणे सरणबुद्धिया **बाला पंडितमाणिणो**। संजमो य भावसरणं अत्तणो य ताव परेसिं च। तं प्रति जिता **जहित्ता पुव्वसंजोगं,** के ते?, कुतित्था लिंगत्था य, **पुव्वसंयोगो** णाम स्वजन-धन इत्यादि। तं च हित्वा **सितकिच्चोवगा सिया, सिताः** बद्धा इत्यर्थः, सितानां कृत्यानि सितकृत्यानि, तद्यथा—पचन-पाचना-ऽऽरम्भ-परिग्गहादीनि, **उपगा** नाम योग्याः। अथवा **सितकृत्योपगा** इति **सिताः** गृहस्थाः, नित्यमेवारम्भोपजीवित्वाद् असुभाध्यवसिताः पापोपगा भवन्ति, ततश्च नरकोपका इति। एत्थ दिट्ठंतो **सुयिवादिपोट्टेणं (? खोट्टेणं? बोट्टेणं)**—अंतरदीवे एक्कस्स भिण्णवाहणियस्स पुव्वपविट्ठस्स उच्छुखाइयस्स समुद्रकूलावस्करस्थाने सुक्कसण्णं 'गुलमट्टियं' ति काऊण भक्षयति इतरदर्शनम्। सब्भावे कधिते 'णत्थि किंचि सुइ' त्ति सगिह चेव हव्वमागते॥ १॥ यतश्चैव तेण—

७६. तं च भिक्खू परिण्णाय विज्जं[5] तेसु ण मुच्छए।
[6]अणुकसाए अणवलीणे [7]मज्झिमेण मुणि [8]जावए॥ २॥

७६. **तं च भिक्खू परिण्णाय०** सिलोगो। तदिति तत् तेपां आरम्भादि सितकृत्योपगत्वं चशब्दात् कुदर्शनग्रहणं अन्यच्च छउमत्थं चउपज्जवं जाणणापरिण्णाए परिजाणिया [पच्चक्खाणपरिण्णाए] पच्चक्खातुं तदाचारस्य **विज्जं** नाम विद्वान संस्कृतापभ्रंशः न मूर्च्छां **तेपु** कुर्यात्, यथा एते वि णिव्वाणाय। अथवा यत् तेपां परैः क्रियते **"ण तत्थ मुच्छए"**। अमूर्च्छमान एव च **अणुकसाए अणवलीणे, अणुकसायो** नाम तणुकसायो, यथाऽणुत्वात् परमाणुर्नोपलभ्यते एवमस्यापि यद्यप्यक्षीणाः कपायास्तथाप्यणुत्वान्नोपलभ्यन्ते, निगृहीतत्वान्नोदीर्यन्त इत्यर्थः। **पठ्यते चान्यथा सद्भिः—"अणुकसाए (अणुकसे) अणवलीणे"** तत्र **अणुकसो** णाम न जात्यादिभिर्मदस्थानैरुत्कर्पं गच्छति, अपलीयते स्म अपलीनः, यो हि जात्यादिरहितः पूर्वमासीत् स नापलीयेत, न ग्राहयेदात्मानमित्यर्थ.। तत आत्मोत्कर्पत्वा-ऽपलीनत्वे वर्जयित्वा **मज्झिमेण मुणि जावए** नोन्नमते न लज्जते इत्यर्थ.। अथवा—राग-द्वेपौ हित्वा तयोः **"मध्येन"** मुनिर्यापयेत्, अरक्त-दुष्ट इत्यर्थः॥ २॥

अथवा मध्यमिति—

७७. सपरिग्गहा य सारंभा [9]इहमेगेसिं आहितं।
अपरिग्गहे अणारंभे [10]भिक्खू जाणं परिव्वए॥ ३॥

७७. सपरिग्गहा य सारंभा० सिलोगो। परिग्रहा-ऽऽरम्भावुक्तौ प्रथमोद्देशके [सूत्रगा० १४ चूर्णौ]। **इह**ेति इहलोके, एके न सर्वे आहित आख्यातम्। यदेपामारम्भ-परिग्रहावाख्यातौ निर्वाणाय अतत्त्वम्। साधवस्तद्विपरीताः, तन्मध्ये **अपरिग्गहे अणारंभे,** ज्ञानवान् ज्ञानी, भिक्षुः पूर्वोक्तः, समन्ताद् व्रजेत् **परिव्रजेत्**॥ ३॥ स्यादेतत्—अनारम्भा-ऽपरिग्रहवतो

---

१ भो! असरणं चूपा०। भोऽसरणं ख १ पु १॥ २ जत्थ बालेऽवसीयति ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा० दी०। बाला पंडियमाणिणो वृ० दीपा०॥ ३ हेच्चा णं पुव्व° ख १ ख २ पु १ पु २॥ ४ सिता किच्चोवदेसिता ख २ पु १ पु २ वृपा०। सिया किच्चोवदेसगा खं १॥ ५ विज्जं ण तत्थ मुच्छए चूपा०। विज्जं तेसि ण मुच्छए पु १ पु २॥ ६ अणुक्कस्से अप्पलीणे ख १ खं २ वृ० दी०। अणुक्कसे अप्पलीणे पु १ पु २। अणुक्कसे अणवलीणे चूपा०॥ ७ मज्झेण ख १ ख २ वृ० दी० चूपा०॥ ८ जावते ख १ ख २ पु १ पु २॥ ९ °सिमाहियं ख २॥ १० भिक्खू ताणं परिव्वते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥

अपरिचयस्य च भिक्षोः कथं शरीरयापनाप्रक्रिया स्यात्? इति न च शारीरो धर्मो भवति, तत उच्यते—**कडेसु घासमेसेज्ज०** सिलोगो । अथवा "जावए" त्ति वुत्तं [सूत्रगा० ७६] सा चेयं यापना—

७८. कडेसु घासमेसेज्ज विऊ[1] दत्तेसणं चरे ।
अगिद्धे विप्पमुक्के य ओमाणं परिवज्जए[2] ॥ ४ ॥

७८. **कडेसु घासमेसेज्ज०** । तैरेवाऽऽरम्भ-परिग्रहवद्भिः पचमानकैः अर्थाय कृतेषु प्रासुकीकृतेष्वित्यर्थः, ग्रस्यत इति ग्रासः, तेषु कृतवत्सु स भिक्षुर्याचेत, यदुक्तमेषणीयं **चरेत्**, "चर गति-भक्षणयोः" भुञ्जीतेत्यर्थः । एवमाहार-उवधि-सेज्जाओ वि । तदपि भुञ्जानः **अगिद्धे विप्पमुक्के य, अगिद्धो** अरक्त इत्यर्थः, बायालीसदोसविप्पमुक्कं एसणं चरेदिति गवेसणा गहणेसणा य गहिताओ । **अगिद्धे** त्ति घासेसणा । **विप्पमुक्के** त्ति न तेष्वाहारादिषु ममीकारः कर्त्तव्यः, यत्र वा इष्टो आहारो लभ्यते तत्रापि कुले ग्रामे वा न सङ्गः कार्य इत्यतो विप्पमुक्को य । **ओमाणं परिवज्जए** त्ति, सपक्ख-परपक्खओमाणपेल्लिय च खेत्तं वज्जेतव्वं, मा भूद् एवं दोषाः स्युरिति । उवहि-सेज्जादि वि जोएज्जा आदिग्गहणं ॥ ४ ॥ कित्थुयमाधिकारो गतो । समयाधिकारोऽनुवर्त्तत एव । लोकस्य च पापण्डलोकस्य च तदधिकारेऽनुवर्त्तमाने इदमपदिश्यते—

७९. लोगावायं[3] णिसामेज्ज इहमेगेसि आहितं ।
विपरीतपण्णसंभूया[4] अण्णोण्णवुइताणुगा ॥ ५ ॥

७९. **लोगावायं णिसामेज्ज०** सिलोगो । **लोका** नाम पापण्डा गृहिणश्च, लोकस्य लोकयोर्वा वादः **लोकवादः**, तद्यथा— "अनपत्यस्य लोका न सन्ति, गावान्ताः नरकाः, तथा गोभिर्हतस्य गोघ्नस्य नास्ति लोकः ।" [ ] तथा—

जेसिं सुणया जक्खा विप्पा देवा पितामहा काया । ते लोगदुव्वियड्ढा दुक्खं मोक्खा वियोधितुं ॥ १ ॥

[ ]

तथा पुरुषः पुरुष एव, स्त्री स्त्रीत्येव । तथा पापण्डलोकस्यापि पृथक् तयोरिव प्रसृताः—केपाञ्चित् सर्वगतः असर्वगतः नित्योऽनित्यः अस्ति नास्ति चात्मा, तथा केचित् सुखेन धर्ममिच्छन्ति, केचिद् दुःखेन, केचिद् ज्ञानेन, केचिदाभ्युदयिकधर्मपराः नैव मोक्षमिच्छन्ति । इहेति इहलोके **आहितं** आख्यातम् । पठ्यते च—"**लोकावादं[5] णिसामेत्ता**" **णिसामेत्ता** जाणित्ता य ण सद्दहेज्ज, **लोकस्वभावो** नाम अज्ञानित्वाद् यत्किञ्चिज्ज्ञापिता । उक्तं च—

एवंस्वभावः खलु एष लोकः न स्वार्थहानिः पुरुषेण कार्या ।

[ ]

अथ कस्मान्न श्रद्धेयाः परसमयाः? इति, यस्मात् ते **विपरीतपण्णसंभूया** त्रयाणामपि ज्ञानानां विपरीतया प्रज्ञया सम्भूताः । उक्तं हि—"मति-श्रुत-विभङ्गा विपर्ययश्च" [तत्त्वा० अ० १ सू० ३२], विपरीतप्रज्ञा सञ्जाता येषां ते **विपरीतपण्णसंभूता** । अन्योन्यस्य वुइत अणुगच्छंतीति **अण्णोण्णवुइताणुगा** । तत् कथं (कथम्?), **व्यासोऽपि** हि इतिहास्यमानयनम(? यत्र)न्यस्य वचः प्रमाणीकरोति, तद्यथा—'**अनुकपेन** ऋषिणा एवं दृष्टम्, अन्येनैवम्' इति, नान्योन्यस्य वचनमतिवर्त्तते, प्रायेण हि वार्तानुवार्त्तिको लोकः । तथा चोक्तम्—"गतानुगतिको[6] लोकः०" [ ] ॥ ५ ॥

अस्यामेव लोकचिन्तायां केचित् पापण्डास्तच्छ्रावकाश्चैवं प्रतिपन्नाः—

---

१ विज्जू ख १ ॥ २ °ज्जते ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ **लोगवाय णिसामेज्जा** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । **लोकावादं णिसामेत्ता** चूपा० ॥ ४ °**संभूतं अण्णवुत्ततयाणुगं** वृ० दी० । °**संभूतं अण्णण्णवुतिताणुय** ख १ । °**संभूतं अणु(ण्णु)ण्णवुतिताणुगं** पु १ पु २ । °**संभूतं अण्णं ति वुतिताणुगं** ख २ ॥ ५ **लोकवादं** पु० स० ॥ ६ "गतानुगतिको लोको न लोक पारमार्थिक । पश्य मूर्खेण लोकेन हारित ताम्रभाजनम् ॥" इति सम्पूर्ण श्लोक ॥

८०. अणंते णितिये लोए सासते ण विणस्सए[1]।
अंतवं णितिए लोए एवं वीरोऽधिपासति[2] ॥ ६ ॥

८०. अणंते णियते (णितिये) लोए० [सिलोगो]। अनन्तो नाम नास्ति परिमाणमस्य क्षेत्रतः कालतोऽपीति। णितिये नित्य इत्यर्थः। तनुः (ते तु) के ? साङ्ख्याः, तेषां सर्वगतः क्षेत्रज्ञः कूटस्थः ग्रहणम्। [सासते त्ति] यथा वैशेषिकाणां परमाणवः शाश्वतत्वेऽपि सति क्रियावन्तः ण विणस्सए त्ति न तेषां कश्चिद् भावो विनश्यति उत्पद्यते वा। अन्ये तु ब्रुवते—अंतवं[3] णितिए लोए, यथा पौराणिकानां सप्त द्वीपाः सप्त समुद्राः क्षेत्रलोकपरिमाणम्, कालतस्तु नित्यः, केषाञ्चिदन्तवान् नित्यश्च। एवं अवधारणे। वीरो जावकः। अधिक अन्येभ्यः सत्त्वेभ्योऽन्यतीर्थकरेभ्यो वा पश्यति अधिपश्यति ॥ ६ ॥ किञ्चान्यत्—

८१. [4]अमितं जाणती वीरे इहमेगेसि आहितं।
सव्वत्थ सपरिमाणं इति[5] वीरोऽधिपासती ॥ ७ ॥

८१. अमितं जाणती वीरे० [सिलोगो]। न मित अमितम्। का तर्हि भावना ?—केषाञ्चित् सर्वज्ञवादिनां अनन्तं ज्ञानं सर्वत्र चाप्रतिहतमिति, अथवा लोगमेव अमित जाणति। अमितो णाम अपरिमाणो लोकः, तच्च सर्वज्ञो वीरः तथैव जानाति। अन्ये पुनः— सव्वत्थ सपरिमाणं इति वीरो त्ति, सर्वत्रेति तिर्यगूर्द्ध्वमधश्चेति क्षेत्रतः, कालतः केषाञ्चिद् द्विग्रं वर्षसहस्र केषाञ्चिदन्यथा, इति उपप्रदर्शनार्थः, वीरः उक्तः, अधिक पश्यतीति अधिपश्यति ॥ ७ ॥

एव यस्य परिमाणमिष्ट स तेनार्थाभिप्रेतेन परिमाणेन नानन्तलोकमिच्छति। तत्र ये ब्रुवते—"अणंते णितिए लोए" [सूत्रगा० ८०] त एवं ब्रुवते—यो हि यथा भावः स तथैवात्यन्तमविकल्पो भवति। तद्यथा—यस्त्रसस्त्रस एव स्थावरः स्थावर एव, सर्वकालं [न त्रसत्वं जहाति] न स्थावरत्व जहाति, एवं देवा देवा एव, मनुष्येषु स्त्री-पुं-नपुंसका इति। अथवा यदुक्तम् "लोकावादं[6] णिसामेज्ज" [सूत्रगा० ७९] ते च लोकवादा उक्ताः। अथवा स्त्री स्त्री एव, एवं त्रसस्त्रस एव, स्थावरः स्थावर एव। भट्टारगो भणति—मिच्छा एत, जो जधा सो तहेव अव्वत्तं भण्णति। अयं तु स्वभावो—

८२. जे केइंति[7] तसा पाणा चिट्ठंतऽद्धुव[8] थावरा।
परियाए अत्थि से[9] जायं जेणं[10] ते तस-थावरा ॥ ८ ॥

८२. जे केइति तसा पाणा० सिलोगो। जे त्ति अणिद्दिट्ठणिद्देसे। केचिदिति न सर्वे त्रसाः, न स्थावराः। तत्र त्रसन्तीति त्रसाः, तिष्ठन्तीति स्थावराः। परियाए अत्थि से जायं, पर्यायो नाम पर्यायः प्रकार इत्यर्थः। अथ कोऽर्थः ? अस्त्यसौ कश्चित् प्रकारः येन ते त्रसा भवन्ति स्थावरा वा। तत्र तावत् त्रसनिर्वर्त्तकानि कर्माण्युपचित्य त्रसा भवन्ति। एवं स्थावरा अपि ॥

[11]नागार्जुनीयास्तु पठन्ति—त्रसनामउदयेण त्रस न तु स्थावरोदयनामेन। उक्त च—"[12]अणिच्चमावासमुविति जंतवो, पलोइया सोच्च समेच्च इंतयं।" तथा चोक्तम्—"ठाणी विविधा ठाणा०" [सूत्रगा० ४१९]। अन्यच्चोक्तम्—"अशाश्वतानि स्थानानि" [ ]। यो हि यथाकर्मा स तथा भवतीति, तद्यथा—नारगो तिर्यङ् मनुष्यो देवो वा, तथा स्त्री-पुं-नपुंसक वा, न तु जातिमनुष्योऽस्ति जातिस्त्री वेत्यादि। यतश्चैव तेनायमन्यः पर्यायो भवतीति वाक्यशेषः, येन

१ °स्सति ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ इति धीरोऽतिपासति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ अणंतेवं चूसप्र० ॥ ४ अपरिमाणं विजाणाति इह° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ इति धीरोऽतिपासति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ लोकवादं पु० सं० ॥ ७ केति तसा ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ चिट्ठंति अदु व ख १ ॥ ९ से अजू ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० तेण ख १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ अत्र स्थाने नागार्जुनीयाचार्याणा कोऽपि पाठभेदो वाचनाभेदो वा नास्ति, किन्तु व्याख्याभेद एवात्र दृश्यते ॥ १२ आचाराङ्गसूत्रद्वितीयश्रुतस्कन्धे विमुक्त्यध्ययनाख्यचतुर्थचूलायाम् "अणिच्चमावासमुविंति जतुणो पलोयए सुच्चमिण अणुत्तर।" (गा १) इतिरूप पाठो वर्त्तते ॥

ते त्रसा भवन्तीति स्थावरा वा । किञ्चान्यत्–इहैव तावद् दासो भूत्वा राजा भवति, राजा भूत्वा द्रमकः, तथा बाल-कौमार-यौवन-मध्यम-स्थाविर्याण्यन्योपमर्देन प्रमर्देन प्राप्नोति, गति-स्थान-शयना-ऽऽसन-स्वप्न-बोधादयोऽन्येऽपि विशेषा वक्तव्या इति ॥ ८ ॥ किञ्चान्यत्–प्रत्यक्षेण परोक्षं साध्यते, न त्वमी सत्त्वाः—

८३. उरालं जगतो जोगं विवज्जासं[1] पलिंति य ।
सव्वे अकंतदुक्खा[2] य[3] अतो सव्वे अहिंसगा[4] ॥ ९ ॥

८३. उरालं जगतो जोगं० सिलोगो । **उरालं** प्रागडं स्थूलम् । **जगतो योगो,** तद्यथा—गर्भ-बाल-कौमार-यौवन-मध्यम-स्थाविर्याणि उरालानि प्रागडानि जुञ्जति विजुञ्जति । तथा च तस्मिन्नेव वयसि कश्चिद् दासो भूत्वा राजा भवति, ईश्वरश्च भूत्वा निर्धनो भवति । "अस भुवि" विपरीततामेवैति विपर्यासः, **विपर्यासेन प्रलीयन्ते,** अन्यथाभावगमनेनेत्यर्थः । चशब्दान्न सर्वथा प्रलीयन्ते, द्रव्यतो हि अवस्थिता एव, अनेन प्रत्यक्षदृष्टेन सामान्येनानुमानेनैव साध्यन्ते । यथेह जातिस्मरणाद्वा बहवो विशेषा दृश्यन्ते एवं भवान्तरगतस्य अप्रत्यक्षा गति-कायेन्द्रिय-लिङ्ग-त्रस-स्थावर-राज-युवराज-ईश्वरादि-दास-भृतक-द्रमकादयश्चोत्तमाद्या विपर्यासा भवान्तरेष्वपि प्रत्येतव्याः । एते तु प्रत्यक्ष-परोक्षास्तास्तान् पर्यायविशेषान् परिणमन्तः **सव्वे अकंतदुक्खा य,** सर्वे इत्यपरिशेषाः **कान्तं** प्रियमित्यर्थः, न कान्तमकान्तम्, दुक्खं अणिट्ठं अकतं अप्पियं जाव अमणामं दुक्ख । अनुकूलमपि चैतद् ज्ञायते—तधा सव्वे इट्ठा सुभा, कंता सुभा, जाव मणामा सुभा । **अतो** इति अस्मात् कारणाद् **अहिंसगा** एव ज्ञात्वा सर्वसत्त्वानि अस्य साधोरहिंसनीयानि ॥ ९ ॥ किं कारणम् ? तदुच्यते—

८४. एतं खु णाणिणो सारं जं ण हिंसति किंचणं[5] ।
अहिंसासमयं चेव एतावंतं[6] वियाणिया ॥ १० ॥

८४. एतं खु णाणिणो सारं० सिलोगो । **एतदिति** यदुक्तम् उच्यते वा सार, विद्धीति वाक्यशेषः । यत् किम् ?, उच्यते—**जं ण हिंसति किंचणं, किंचिदिति** त्रस स्थावरं वा, अहिंसा हि ज्ञातागमस्य फलम् । तथा चाह—"योऽधीत्य शास्त्रमखिल०"[ ] । **"एवं खु णाणिणो सारं जं न भासति अलियपयं" एवं अदत्तं मेहुणं परिग्गहं** च । जं च रागादिअज्झत्थदोसे विवज्जेति तदप्युच्यते **एतं खु णाणिणो सारं** । स्यात्—किं कारण सत्त्वा न हिंसनीयाः ?, उच्यते–**अहिंसासमयं चेव,** अहिंसासमया नाम तुल्यता, यथा मम दुक्खमप्रियं एव सर्वसत्त्वानाम् । एतां अहिंसां समतामात्मनः सर्वजीवैः **एतावंतं वियाणिया "न हिंसति कंचणं"** इति वर्त्तते । एतावांश्च ज्ञानविषयः यदुत सर्वत्र सँमया[7] भाव्येति । तथाऽनृता-ऽदत्ता-दानादिष्वपि आश्रवेषु यथासम्भवमायोज्यमिति ॥ १० ॥ उक्ता मूलगुणाः । उत्तरगुणसिद्धये व्यपदिश्यते—

८५. वुसिए[8] य विगतगेही आयाणं संरक्खए[9] ।
चरिया-ऽऽसण-सेज्जासु भत्त-पाणे य अंतसो ॥ ११ ॥

८५. वुसिए य विगतगेही आयाणं० सिलोगो । **वुसिते** त्ति स्थितः, कस्मिन् ?, धर्मे । **विगतगृद्धिरिति** अलुद्धः । "आदिरन्त्येन सहिते"ति अक्रुद्धः अमानः अमायावी । पठ्यते [च]—**"अकसायी सदाऽधिगतंगेधी[10]"** कषायाः क्रोधाद्याः, **ग्रेधिः** लोभः, "एगग्गहणेण गहण"मिति "आदिरन्त्येन सहिते"ति वा ग्रेधिग्रहणात् सर्वे आकृष्टाः । **आदाणं सारक्खए** त्ति आत्मान **सारक्खति** असजमातो, आदीयत इति **आदानं** ज्ञानादि, तं सारक्खति मोक्खहेतु । किं च—**चरिया-ऽऽसण-सेज्जासु भत्त-पाणे य अंतसो, सारक्खते** इति वर्त्तते, **चरिय** त्ति इरियासमिती गहिता, चरिआए पडिवक्खो आसण-

१ विपरीयासं पलेति य खं २ । विपरीयंसं पलिंति य ख १ पु १ पु २ ॥ २ अक्कंत° ख १ ख २ पु २ वृ० दी० । अकंत° पु १ वृपा० दीपा० ॥ ३ त ख २ ॥ ४ अहिंसिया ख १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ कंचणं ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ६ इत्तावत्तं वि° ख २ । इत्तावय वि° ख १ पु १ पु २ ॥ ७ समता इत्यर्थ ॥ ८ अकसायी सदाऽधिगतगेधी चूपा० । जुसिए य विगतगेही य आ° ख १ । वुसिए य विगतगेही य आ° ख २ पु १ पु २ ॥ ९ संर ख २ पु १ ॥ १० °गतबोधी" चूसप्र० ॥

सयणे, एत्थ आदाणं सारक्खति। अथवा चरियागहणेण समितीओ गहिताओ, आसण-सयणगहणेण कायगुत्ती, "एक्कगहणेण गहणं" ति काऊण मण-वइगुत्तीओ वि गहिताओ। भत्त-पाणगहणेण एसणासमिई, एवं आदाण-परिट्ठावणियाई सूइयाओ। **अंतसो** इति जाव जीवितान्तः ॥ ११ ॥

८६. एतेहिं तिहिं ठाणेहिं [1]संजमेज्ज सया मुणी।
[2]उक्कासं जलणं [3]णूममज्झत्थं च विगिंचए ॥ १२ ॥

८६. **एतेहिं तिहिं ठाणेहिं०** सिलोगो। एतानीति यान्युक्तानि। इरिया एगं ठाणं १ आसण-सयण ति बिइयं २ भत्त-पाणे ति ततियं ३। अहवा एतेसु चेव इरियाइगेसु मणो-वयण-काएणं, अहवा इरियं मोत्तूण सेसेसु उग्गम-उप्पायणेसणासु **संजमेज्ज सया मुणी**, सदा सर्वकालम्। इयाणिं एतेसु सजमंतो इमानन्यानध्यात्मदोषान् परिहरेत्, तद्यथा—**उक्कासं जलणं णूमं०** सिलोगो [पच्छद्धं]। उक्कस्यतेऽनेनेति **उक्कासो** मानः। ज्वलयनेनेति **ज्वलनः** क्रोधः। **नूमं** णाम अप्रकाशं माया। **अज्झत्थो** णाम अभिप्रेतः, स च लोभः ॥ १२ ॥ स एवं 'परसमयाः न सद्भावः' इति मत्वा सम्यग्दृष्टि-ज्ञानवान् यथोक्तेषु मूलोत्तर-गुणेषु यतमानः—

८७. समिते तु सदा साधू पंचसंवरसंवुडे।
सितेहिं असिते भिक्खू [4]आमोक्खाए परिव्वएज्जासि ॥ १३ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ [5]पढमं अज्झयणं सम्मत्तं १ ॥

८७. **समिते तु सदा साधू०** सिलोगो। **समिते तु** तेषामेवोत्तरगुणानां पूर्वोक्तानां परिसमाननं क्रियते। **सदा** नित्यम्। **तुः** विशेषणे। साधयतीति **साधुः**। **पञ्च संवराः** प्राणाति[6]पातविरमणाद्याः, तत्संवृतत्वान्न पापमादत्ते इति। स एव सवृतत्वात् **सितेहिं असिते भिक्खू**, सिता बद्धा इत्यर्थः, गृहि-कुपाषण्डादिभिर्गृह-कलत्र-मित्रादिभिः सङ्गैः सिताः, तेषु सितेषु **असितः** अबद्ध इत्यर्थः, तैर्याच्यमानः ता[न्] नाश्रितो वा अणसितः। एवं कथम्?, उक्तं हि—"जणमज्झे वि वसतो एगंतो०" [ ] आङ्—मर्यादा-ऽभिविध्योः, परि—समन्ताद् आदि-मध्या-ऽवसानेषु, यावन्न मुच्यसे ताव **आमोक्खाए[7] परिव्वएज्जासि त्ति बेमि**, शिष्योपदेशः ॥ १३ ॥ गतः सूत्राणुगमो। इदाणिं णया—

णायम्मि गेण्हितव्वे० गाधा ॥ **सव्वेसिं पि णयाणं०** गाधा ॥

॥ प्रथमाध्ययनं समाप्तम् १ ॥

---

१ संजते सततं मुणी खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ उक्कसं ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ३ णूमं मज्झत्थं च ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। णूमं मज्झं च ख १ ॥ ४ आमोक्खा य पु २ सा० वृ० दी० ॥ ५ समयज्झयणं सम्मत्तं पु २ ॥ ६ °पाताद्या', चूसप्र० ॥ ७ °क्खाये प° वा० मो० ॥

२

[॥ बिइयं वेयालियज्झयणं ॥]

[पढमो उद्देसओ]

अज्झयणाभिसंबंधो—ससमयगुणे णाऊण परसमयदोसे य ससमए जयमाणो कम्मं विदालेज्जासि त्ति वेतालियज्झयणमागतं । तस्सुवक्कमादि चत्तारि अणुयोगद्दारा । अज्झयणत्थाधिकारो कम्मं वेयालियव्वं ति । उद्देसत्थाधिकारो पुण—

पढमे [1]संबोधि अणिच्चया [2]य १ बितियम्मि माणवज्जणता ।
अहिगारो पुण भणिओ तहा तहा बहुविहो तत्थ २ ॥ १ ॥ ३२ ॥

पढमे संबोधि अणिच्चया य० गाहा । पढमे उद्देसए हिताहिता संबुज्झितव्वं अणिच्चता य, "डहरे बुड्ढे य पासधा०" [सूत्र गा० ८९] एवमादि १ । बितिउद्देसए माणवज्जणता माणो वज्जेतव्वो, 'जे यावि अणायए सिदा" [सूत्र गा० ११२] एवमादि २ ॥ १ ॥३२ ॥

उद्देसम्मि य [3]ततिए मिच्छत्तचितस्स अवचयो भणितो ३ ।
वज्जेयव्वो य सया सुहप्पमाओ जइजणेणं ॥ २ ॥ ३३ ॥

उद्देसम्मि [य] ततिए० गाहा । ततिए मिच्छत्तादिचितस्स कम्मस्स अवचयो, "संवुडकम्मस्स भिक्खुणो" [सूत्र गा० १४२] एवमादि ॥ २ ॥ ३३ ॥ णामणिप्फण्णे णिक्खेवे वेतालियं ति । तत्थ गाधा—

❀ वे[4]तालियम्मि वेतालगो य वेतालणं वि[5]तालणियं ।
तिण्णि वि चउक्कगाइं वितालगो एत्थ पुण जीवो ॥ ३ ॥ ३४ ॥

तत्थ वेतालगो णामादि चतुव्विधो । णाम-ठ्ठवणाओ तधेव । दव्ववेतालगो जो हि जं दव्वं वितालयति रथकारादिः । भावे णोआगमतोभावविदालगो साधुः । जीवो कम्मं विदालयति कम्मं वा जीवं ॥ ३ ॥ ३४ ॥

विदालणं पि णामादि चतुव्विधं, तत्थ गाथा—

दव्वं च परसुमादी दंसण-णाण-तव-संजमा भावे ।
दव्वं च दारुगादी भावे कम्मं वि[6]दालणियं ॥ ४ ॥ ३५ ॥

दव्वं च परसुमादी० गाधा । विदालणमिति करणभूतम् । तत्र द्रव्ये परश्वादि । ज्ञानाद्यात्मकेन भावेन भाव एव मिथ्यात्वादिरूपो विदार्यते । भावे विदारणं णाण-दंसण-चरित्ताणि । विदालणियं पि नामादि चतुर्विधम् । णाम-ठवणाओ तधेव । द्रव्यविदालणियं दारुगं । भावे अट्ठविधं कम्मं विदारिज्जति ॥ ४ ॥ ३५ ॥ वेतालियस्स गाधाए णिरुत्तं भण्णति—

वे[7]तालियं इहं देसियं ति वे[8]तालियं ततो होति ।
वेतालियं[9] इहं वित्तमत्थि तेणेव य णिवद्धं ॥ ५ ॥ ३६ ॥

वेतालियं इहं देसियं ति वेतालियं ततो होति । एतदेव करणभूतं वैतालिकमध्ययनम् । किं विदारयति ?, तदेव कर्म । आह—यद्येवं कर्मविदालणत्वाद् वैतालिकम्, तेन सर्वाध्ययनानां वैतालिकत्वं प्रसज्यते, न वा तानि कर्म-

---

१ संबोधो ख २ पु २ वृ० ॥ २ य वीयम्मि खं १ खं २ पु २ ॥ ३ तइए अण्णाणचियस्स ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ४ वेयालियं ति वे° खं १ वृ० ॥ ५ वियालणगं ख १ ॥ ६ वियाल° खं १ ख २ पु २ ॥ ७ वेतालीयं इह दे° खं २ ॥ ८ वेयालिकं तओ खं १ ख २ पु २ ॥ ९ °लिकं तहा वित्त° ख १ ख २ पु २ ॥

विदालणानि, विशेषो वा वक्तव्यः, उच्यते यो विशेषः—वेतालियं इहं वित्तमत्थि तेणेव य णिबद्धं, वैतालियनामवृत्तजातितया वा बद्धत्वाद् वैतालियं ॥ ५ ॥ ३६ ॥ अस्योपोद्घातः—

❀ कामं तु सासतमिणं कधितं अट्ठावयम्मि उसभेण ।
अट्ठाणउतिसुताणं सोऊण[1] य ते वि पव्वइता ॥ ६ ॥ ३७ ॥

भरधेण भरधवासं णिज्जिऊण अट्ठाणउती वि भातरो भणिता—ममं ओलग्गध, रज्जाणि वा मुयध त्ति । अट्ठावते भगवन् उसभसामी पुच्छितो—एवं भरधो भणति, किमेत्थ अम्हेहिं करणीयं? ति । ततो भगवता तेसिं अंगारदाहगदिट्ठंतं भणिऊण इदमध्ययनं कथितम् । यद्यपि चेदमध्ययनं शाश्वतं तथापि तेन भगवता पुत्राः सम्बोधिता इति कृत्वा स एव विशेषस्तीर्थकरैरप्यस्योपोद्घातेऽनुवर्त्यते स्म इति । एवं उवघातणिज्जुत्तीए “उद्देसे निद्देसे य णिग्गमे०” [आव० नि० गा० १४०-४१] त्ति अक्खाणगं समोतारेतव्वं ॥ ६ ॥ ३७ ॥ स भगवान् तान् तत्संसारविमुमुक्षुराह—

८८. भो[2]! संबुज्झह किं[3]ण्णु बुज्झहा? संबोधी खलु पेच्च दुल्लभा ।
णो हूवणमंति रा[5]तिओ णो सुलभं पुणरावि[4] जीवियं ॥ १ ॥

८८. भो! संबुज्झह किण्णु बुज्झहा० वृत्तम् । सम्यक् सङ्गतं समस्तं वा बुध्यते संबुज्झध । स्यात् कुत्र बुध्यते?, धर्मे । किमिति परिप्रश्ने । स्यात् किं कारणं बुध्यते? उच्यते, संबोधी खलु पेच्च दुल्लभा, सम्बोधिस्त्रिविधा—णाण-दंसण-चरित्ताणि । खलु विशेषणे । चारित्रसम्बोधिरधिक्रियते मनुष्यत्वे, न शेषगतिष्विति । अधवा बुज्झध “किं रज्जेहिं विसएहिं कलत्रेहिं वा करेस्सध ?” [ ] । प्रसुप्तस्य सम्बोधिर्भवतीत्यतः सुप्ता एव वक्तव्याः । एत्थ णिज्जुत्तिगाधा—

❀ दव्वं णि[6]द्दावेतो दं[7]रिसण-णाण-तव-[8]संजमो भा[9]वो ।
अधिकारो पुण भणितो णाणे तह दंसण चरित्ते ॥ ७ ॥ ३८ ॥

॥ इति प्रथमः ॥

सुत्तो दुविधो—दव्वसुत्तो भावसुत्तो य । तत्थ दव्वसुत्तो दुविहो—उपचारसुत्तो णिद्दासुत्तो य । उपचारसुप्तः पतित ओदनः । निद्रासुप्तो नाम निद्रावेदोदयाविष्टः स्वपिति, पञ्चानामपि विषयाणां तत्कालमावन्नो । भावसुप्तस्तु ज्ञानादिविरहितः अज्ञानी मिथ्यादृष्टिरचारित्री च । जो दव्वसुत्तो सो भावतो विभइतो । एवं जागरिओ वि । द्रव्यजागरता भावसुप्तेन चाविकारः ॥ ७ ॥ ३८ ॥

स्यात् कथं सम्बोधिर्दुर्लभा ?, उच्यते, “मा[10]णुस्स-देस-कुल-काल०” गाधा । [मरणसमाधिप्रकीर्णके गा० ६३३] इतश्च सम्बोद्धव्यं धर्मे यस्मात्—णो हूवणमंति रातिओ णो सुलभं पुणरावि जीवियं, न ह्यतिक्रान्तरात्रयः पुनरुपनमन्ते । कथम्? न हि बालरात्रयो यौवनरात्रयो वाऽतिक्रम्य पुनरुपनमन्ते । का तर्हि भावना?—न वृद्धो भूत्वा पुनरुत्तानशायी क्षीराहारो बालको भवति, न वा शिल्पक-कलाग्रहणसमर्थः कुमारको रक्तगण्ड-मंसू भवति, न वाऽभिनवश्मश्रुभूपिताधरोष्ठकपोलः कामभोगोल्वणमना युवा भवति । अत्रोदाहरणं लौकिकम्—

नन्दः किल मृत्युदूतैराकृष्ट आह—कोटीमह दद्यां यद्येकाहं जीवेत्, तथापि न लब्धवानिति । अतः णो सुलभं पुणरावि जीवितं, जहण्णेण अंतोमुहुत्ताऊहि उक्कोसेणं पुव्वकोडीआयुगेहि अधियाऊहि ॥ १ ॥

एत्थंतरे क[11]स्सइ दुपक्कमो होज्ज, तं पुण छिण्णं ण सक्कति पुणो वड्ढावेतुं, सदोपक्रमो अनियतो, तद्यथा—

---

१ सोऊणं ते ख २ । सोऊण वि ते ख १ पु २ ॥ २ भो! इति पद ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० नास्ति ॥ ३ किन्न बु° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ पुण दी० ॥ ५ राइओ खं १ पु २ ॥ ६ णिद्दावेदो ख १ ॥ ७ दंसण° ख १ ख २ पु २ ॥ ८ °संजमा खं २ पु २ ॥ ९ भावे ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ १० “माणुस्स देस-कुल-काल-जाइ-इंदिय-बलोवयाणं च । विण्णाण सद्धा दंसणं च दुलह सुसाहूणं ॥ ६३३ ॥” पूर्णा गाथा ॥ ११ कस्यचिदुपक्रम ॥

८९. [1]डहरा वुड्ढा य पासधा गब्भत्था [2]य चयंति माणवा ।
सेणे जह वट्टयं हरे एवं [3]आउखयम्मि तुट्टई ॥ २ ॥

८९. डहरा वुड्ढा य पासधा गब्भत्था य चयंति माणवा । मनोरपत्यानि मानवाः, मानवग्रहणेन मनुष्याणां कथ्यते, अथवा सर्वे एव मानवा अपदिश्यन्ते । सेणे जह वट्टयं हरे, यथेति येन प्रकारेण, वट्टगा नाम तित्तिरजातिरेव ईपदधिकप्रमाणा उक्ता वार्तकाः । एवं अवधारणायाम् । आयुषः क्षयः आयुःक्षयः, स उपक्रमादन्यथा वा तुट्टइ त्ति विद्यते (त्रुट्यति) जीवः [शरीरात्] शरीरं वा जीवात्, अथ मनुष्यजीवितात् त्रुट्यति स्वजनादिभिर्वा ॥ २ ॥

योऽपि नाम कश्चित् स्वजनात् प्रमत्तो न बुध्यते—यथा माता-पितरौ मे वृद्धौ, ताभ्यां मृताभ्या धर्मं करिष्यामीति, एतदप्यकारणम् । कथ तर्हि ? उच्यते—

९०. [4]माताहि पिताहि लुप्पते णो सुलभा सुगती [5]य पेच्चओ ।
[6]एताणि भयाणि देहिया आरंभा विरमेज्ज [7]सुव्वते ॥ ३ ॥

९०. माताहि पिताहि लुप्प० वृत्तम् । मातृभ्य इति सर्वमातृग्रामो गृह्यते । पितृभ्य इति पितृग्रामः । लुप्पत इति छिद्यते, तेषु जीवत्स्वेव कदाचित् पूर्वतर म्रियते, न च सैव माताऽन्यत्रापि भवति पिता वा, अथैकेन्द्रियादिषु प्रक्षिप्तः नैव माता-पितृसम्बन्धं लभते । न वा सुगतिः प्रेत्य सुलभा भवति, सुगतिर्नाम [सु]कुलम्, [8]प्रेत्यैयोनिरेव ।

नागार्जुनीयास्तु पठन्ति—

माता पितरो य भातरो विलभेज्जसु केण पेच्चए ? ।

नारक-देवैकेन्द्रिया-ऽसञ्ज्ञिषु च । यतश्चैवं तेण एताणि भयाणि देहिया, एतानि यान्युक्तानि "णो हूवणमंति राइओ" [सू० गा० ८८] पेक्खिया देहिया पस्सिया । आरम्भो नाम असयमः, अनुक्तमपि ज्ञायते परिग्रहाच्च । कथम् ? आरम्भपूर्वको परिग्रहः, स च निरारम्भस्य न भवतीत्यत आरम्भग्रहणम् ॥ ३ ॥

स्यादारम्भादनिवृत्तस्य को दोषः ?, उच्यते—

९१. जमिणं जगती पुढो जगा कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ।
सयमेव [9]कडेऽभिगाहए णो तेणं मुचे अपुट्ठवं ॥ ४ ॥

९१. जमिणं जगती पुढो जगा० वृत्तम् । यदिति यस्मात् कारणात् तस्मिन् जगति पुढो नाम पृथक् कम्मेहिं ति यथाकर्मभिः लुप्पंति त्ति नरकादिषु विविधैर्दुःखैर्लुप्यन्ते सर्वसुखस्थानेभ्यश्च च्यवन्ते । किञ्च—सयमेव कडेऽभिगाहए, ण इस्सरादीकतपच्चयेन, यथा कर्म कृतमसम्बोधिदोषाद् अष्टप्रकार आत्मनि अवगाहति, आत्मा कर्मसु वा, अकारलोपं कृत्वा तमेव अवगाहति । णो तेणं मुचे अपुट्ठवं नासौ तेन कर्मणा मुच्यतेऽस्पृष्टमस्यास्तीति । आह हि—"पावाणं च भो ! कडाणं कम्माणं०" । [दशवै० चूलिका १] ॥ ४ ॥

किञ्च—न केवलमिहानित्यभावना भवति, अन्यत्राप्येपणा भवत्येव । तथा—

९२. देवा गंधव्व-रक्खसा असुरा [10]भूमिगता सिरीसिवा ।
राया-[11]णर-सेट्ठि-[12]माहणा ठाणा ते वि चयंति [13]दुक्खिया ॥ ५ ॥

---

१ दहरा ख १ ॥ २ वि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ आतुखयम्मि ख २ । आउखयं ति पु १ ॥ ४ माता ति पिता ति लुप्पति ख १ । माया इ पिया इ लुप्पई पु २ । माता पितरो य भातरो विलभेज्जसु केण पेच्चए इति नागार्जुनीय पाठभेद चूर्णौ ॥ ५ वि ख १ वृ० ॥ ६ एयातिं भयातिं पेहिया ख २ । एयाइं भयाइं पेहिया पु १ पु २ । एयाइं भयाइं देहिया ख १ ॥ ७ सुहिते वृपा० दीपा० ॥ ८ प्रेतयोस्त्विनिरेव पु० विना ॥ ९ कडेहिं गाहती णो तस्सा मुच्चे खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । कडेहिं स्थाने ख १ कडेभि इति पाठो वर्त्तते ॥ १० भूमिचरा खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ णर-अधिप-माहणा चूपा० (?) ॥ १२ °माहणा ते वि चयंति ठाणाइं दुक्खिया खं २ पु १ ॥ १३ दुक्खिया ख १ ॥

९२. देवा गंधव्व-रक्खसा असुरा० वृत्तम् । अथवा मा भूत् कश्चिद् देवसुखेसु सङ्गं करिष्यतीत्यतस्तदनित्यत्वज्ञापनार्थं अपदिश्यते—**देवा गंधव्व-रक्खसा**, देवग्रहणाद् वाणमन्तरभेदाः, असुराणां प्रतिपक्षः सुरा वैमानिकाः, **भूमिगता** असुरा एव, अथवा **भूमिगता** भूमिजीवा एव, अथवा **भूमिगता सरीसृपा** गृह्यन्ते । इहापि च **राया-णर-सेट्ठि-माहणा,** राजानः चक्रवर्त्याद्याः, **नराः** पृथग्जनाः, **सेट्ठी** णेगमाद्यधिपाः । [अथवा—"अधिपा]स्तु" अधिकं पान्तीत्यधिपाः, ते तु मन्त्रि-महामन्त्रि-गणक-दौवारिकादयः । माहनग्रहणाद् जातिभेदः । त एते सर्व एव या (? वा) स्थानेभ्यश्च्यवन्ते, **दुःखिता** नाम न वा स्यात् कस्यचिन्मरणमिष्टम् । उक्तं च—"मरणमिति महद्भयं०" [ ] ॥ ५ ॥

तदपि च कालवशेन, किम् ? योऽपि कामनिमित्तं नोद्यमते तत्प्रत्यादेशः—

९३. कामेहि य [1]संथवेहि य [2]कम्मसहे कालेण जंतवो ।
ताले जध बंधणच्चुतो एवं [3]आउखए वि तुट्टति ॥ ६ ॥

९३. कामेहि य संथवेहि य० वृत्तम् । कामा अप्पसत्थिच्छाकामा मयणकामा य, अविशिष्टा वा शब्दादयः । कामोपग्रहाश्च रूपादयः सस्तुता वर्त्तन्ते, अथवा सस्तुता इति पूर्वा-ऽऽपरसस्तवो गृह्यते । स एवं तेभ्यः **कामेभ्यः संस्तवेभ्यश्च कम्मसहि** त्ति कर्मभिः सह त्रुट्यतीति, कोऽर्थः ?, न ते कामाः सस्तुताश्चैन गच्छन्तमनुयास्यन्ति । **कालेनेति** सोपक्रमेणान्यतरेण वा। जायन्त इति **जन्तवः** । **ताले जध बंधणच्चुतो,** तले जातं ताल, तालं हि गुरुत्वाद् दूरपाताच्च शीघ्रं पततीत्यतस्तद्ग्रहणम् । तालस्यापि द्विधा पातः—उपक्रमात् कालेन च । **एवं आउखए वि तुट्टति** जीवोऽपि सोपक्रमेणान्यथा वा ॥ ६ ॥

किञ्च—न केवल कामेषु सस्तुतेषु च सक्ता गृहिणस्तावत् पतन्ति, अन्येऽपि हि तथैव । तं जधा—

९४. जे [4]यावि भवे वहुस्सुता धम्मिय माहण भिक्खुए सुयी ।
[5]अभिनूमकरेहिं मुच्छिया तिव्वं ते कम्मेहिं किच्चंति ॥ ७ ॥

९४. जे यावि भवे वहुस्सुता धम्मिय माहण भिक्खुए[6] सुयी । धर्मे नियुक्तो धार्मिकः । बृहन्मना ब्राह्मणः । **भिक्खणसीलो भिक्खू । सुचिरिति** यथावत् स्वधर्मव्यवस्थितः परिव्राजको वा । **अभिनूमकरेहि मुच्छिया, नूमं** नाम कर्म माया वा, अभिमुखं नूमीकुर्वन्तीति **अभिनूमकराः** विषयाः, तेषु **मूर्च्छिताः** गृद्धाः, लोभो गृहीतः । "एगग्गहणे गहणं" ति सेसकसाया वि गहिता । कथ तं नेच्छन्ति पेच्छंति पेच्छिज्जंति च अण्णेहिं ? **ते** हि आहारादिसु कामेसु सक्ताः इह च परत्र च **तीव्रमेव** तदुपचितैः **कर्मभिः कृत्यन्ते** कामजनितैरित्यर्थः ॥ ७ ॥

स्यात्—कथं ते कर्मभिरेव कृत्यन्ते न निर्वान्ति ?, उच्यते—

९५. अह पास विवे[7]गमुट्ठिते [8]अवितिण्णे इह भासती [9]धुतं ।
[10]णाहिसि आरं कतो परं ? वेहासे कम्मेहिं कि[11]च्चंति ॥ ८ ॥

९५. अध पास विवेगमुट्ठिते० वृत्तम् । अथेति प्रकृत्य(ता)पेक्षम् । अथवा किं न पश्यसि **विवेगमुट्ठिते ? । विवेगो** नाम स्वजन-गृहादिभ्यः प्रव्रज्यास्थान[12]मनुत्तरम । अथवा—"**कम्मविवागो**" यत्र स्थिताः कर्मनिर्वाणायेत्यर्थः । विविधं तीर्णा वितीर्णाः, न वितीर्णा **अवितीर्णाः,** न कामभोगाभावतीर्णाः । **इहेति** अस्मिंल्लोके । अथवा **इहेति** पूरणार्थः । **धुतं** णाम येन कर्माणि विधूयन्ते, वैराग्य इत्यर्थः । चारित्रमपि केचिद् भणन्ति, वयं स्वतः विरताः, **विरताः** अपापकर्माणः । अथवा "अपि" सम्भावने, **तीर्णा** अपि गृहादिसङ्ग्रन्थं केवलं **भाषन्ते,** न तु कुर्वन्ति । स एवं भाषमाणः पाषण्डी पाषण्डगणो वा,

---

१ संथवेहि गिद्धा कम्म° पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ कम्मसहा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ आउखयम्मि तु° ख १ ख २ पु २ वृ० दी० । आउखयं ति पु १ । ४ जे यावि वहुस्सुते सिया धम्मिय माहण भिक्खुए सिया ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । भिक्खुए स्थाने ख २ भिक्खए इति पाठ ॥ ५ अभिणूमकडेहिं मुच्छिए तिव्वं से कम्मेहिं किच्चती ख १ ख २ पु १ पु २ । किच्चती स्थाने ख १ कच्चति इति पाठ ॥ ६ °ए वहुसुयी चूसप्र० ॥ ७ विवाग° चूपा० ॥ ८ अवि तिण्णे चूपा० ॥ ९ धुवं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० ण णाहिसि चूपा० ॥ ११ कच्चति ख १ ॥ १२ °मन्यतरम् पु० विना ॥

"अणेगेसु च एकादेशो भवत्येव" । **णाहिसि आरं कतो परं,** ज्ञास्यसि आरं गृहस्थत्वम्, परं प्रव्रज्या । किमुक्तं भवति ? न त्वं जानीषे कैः कर्मभिः गृही भवति प्रव्रजितो वा ? अजानन् कथं कुशलानि वेत्स्यसि ? । अथवा आरमिति अयं लोकः, परस्तु परलोकः । अयं सौत्रोऽर्थः—आरः संसारः, परः मोक्षः । तदिति आरं पारं वा न ज्ञास्यति, कुतः ? कुमार्गाश्रयात् । अथवा—"ण णाहिसि"त्ति न जानयिष्यसि मोक्षमात्मानं परं वा । तत्राऽऽत्मा आरं, परं पर एव । अथवा णाहिसि गिही ण पव्वइतो, आरः गृही, परः प्रव्रजितः । **वेहासं** नाम अन्तरालम्, न गृहित्वे नापि श्रामण्ये, अन्तराले वर्त्तते । ते हि आहारादिषु कामेषु सक्ता इह परत्र च तीव्रमेव तदुपचितैः **कर्मभिः कृत्यन्ते,** कामजनितैरित्यर्थः ॥ ८ ॥

आह—एते तावदवितीर्णत्वाद् मा भूवन् निर्वाणाय, अथ ये इमे उद्दण्डिकाः चूर्णिकादयश्च एते कथं न तन्निर्वाणाय ?, उच्यते—

९६. जइ वि य णिगिणे किसे चरे जइ वि य भुंजिय [1]मासमंतसो ।
[2]जइ विह [3]मायादि मिज्जती आगंता ग[4]ब्भादणंतसो ॥ ९ ॥

९६. जइ वि [य] णिगिणे किसे चरे० वृत्तम् । यदीति अभ्युपगमे । **णिगिणो** नाम नग्नः । कृशस्तपोनिष्टप्तत्वाद् आतापनादिभिः । **मासो** सङ्ख्यातप्रतिभाग इति कृत्वा मासस्य अन्ते सकृद् भुङ्क्ते इति मासान्तशः । चउत्थ-छट्ठ-ऽट्ठम-दसम-दुवालसमेहिं स एवं तपोनिष्टप्तशरीरोऽपि **जइ विह मायादि मिज्जती,** अणिद्दिट्ठणिद्देसा माया आदिर्येषां कषायाणाम्, आदीयत इत्यादिः, "माङ् माने" कथं मीयते पूर्यत इत्यर्थः ? मायादीनां कषायाणां [5]योजनम् । अथवा मीयत इति—यथा धान्यस्य कुडो मीयते एवं मायादिभिः कषायैः स मीयते, पूर्यत इत्यर्थः । स एव कषायाणामाकण्ठं मितः मरणमेता **आगंता गब्भादणंतसो,** आगमिष्यतीति **आगन्ता,** गर्भः आदिर्यस्य संसारक्रमस्य स भवति **गर्भादिः,** तद्यथा—गर्भ-प्रसव-बाल्य-कौमार-यौवन-मध्यम-स्थाविर्य-मरण-नरकदुःखान्त इति । उत्तीर्णस्य च नरकात् स एव ध्रुवः, पुनः स एव क्रम इति ॥ ९ ॥ यतश्चैवं मिथ्यादर्शनोपहतं तपोऽपि न दुर्गतिनिवारकमित्यतो मद्दर्शितमार्गमास्थाय—

९७. [6]पुरुसोरम पावक[7]म्मुणा पलियंतं मणुयाण जीवितं ।
[8]सन्ना इह काममुच्छिता मोहं जंति [9]नरा असंवुडा ॥ १० ॥

९७. **पुरुसोरम पावकम्मुणा०** वृत्तम् । पुरुशयनात् पुरुषः, हे पुरुष ! पुरुषाः ! वा, उपेत्य रम **उपरम** । **पापानि** प्राणातिपातादीनि मिच्छादंसणसल्लताणि अट्ठारस ठाणाणि । स्यात् कामभोग-जीवितनिमित्तं नोपरमः स्याद् इत्यतोऽपदिश्यते—**पलियंतं मणुयाण जीवितं,** परि समन्तात् आदिजीवितस्य परः वर्षशतम्, अथवा **प्रलीयं** कर्म यावदायुर्निर्वर्त्तितं तत्परिक्षयान्तम्, अथवा यस्यान्तोऽस्ति तत् प्राप्तमेव वेदितव्यमिति । आह हि—"दूरस्थमपि भावित्वाद् आगतमेव" [ ] । तथा उदधीन्यपि दिवि उषितो । जे पुण असजमजीवितेण कलत्रादिपङ्कावसन्ना इह मनुष्यलोके शब्दादिविषयेषु **मूर्च्छिता** अध्युपपन्नाः । **मोहं जंति नरा असंवुडा, मोहो** नाम कर्म तं जंति, मोहतश्च गर्भ-जन्म-मरणादिः स एव ससारक्रमः । **असंवुडा** हिंसादिएहिं इंदिएहिं वा ॥ १० ॥ यतश्चैव तेन—

९८. [10]जंतयं विहराहि जोगवं [11]अणुपाणा पंथा दुरुत्तरा ।
अणुसासणमेव [12]परक्कमे [13]वीरेहिं सम्मं पवेदितं ॥ ११ ॥

९८. **जतयं विहराहि जोगवं०** वृत्तम् । जतयं नाम "गामे एगरादीयं नगरे पंचरादीयं" [दशाश्रु० अ० ८ सू० ११९] यत्नतः । **योगो** नाम सयम एव, योगो यस्यास्तीति स भवति **योगवान्** । जोगा वा जस्स वसे वट्टंति स भवति

१ मासमेत्तसो ख १ ॥ २ जे इह ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ मायावि दी० । मायाति ख २ पु १ पु २ ॥ ४ °ब्भाय णं° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ भोजनम् चूसप्र० ॥ ६ पुरिसो° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ °कम्मुणो ख २ दी० ॥ ८ सत्ता पु १ ॥ ९ असंवुडा नरा ख २ पु १ ॥ १० जततं ख १ । जयतं ख २ पु १ । जययं पु २ ॥ ११ अणुपत्थि पाणा दुरु° चूपा० (?) ॥ १२ पक्कमे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ धीरेहिं ख २ ॥

योगवान् णाणादीया । अथवा योगवानिति समिति-गुप्तिषु नित्योपयुक्तः, स्वाधीनयोग इत्यर्थः, यो हि अन्यत् करोति अन्यत्र चोपयुक्तः स हि तत्प्रवृत्तयोगं प्रति अयोगवानेव भवति । लोकेऽपि च वक्तारो भवन्ति—विमना अहं, तेन मया नोपलक्षितमिति । अतः स्वाधीनयोग एव योगवान् । स्यात्—किमर्थं नित्योपयोगः ?, उच्यते, अणुपाणा पंथा दुरुत्तरा, अणवः प्राणा येषु ते इमे भवन्ति अणुपाणाः, सूक्ष्मा यदुक्तं भवति । तानविराधयद्भिः [दुःखेन] उत्तीर्यन्त इति दुरुत्तराः अतः । [अथवा—] "अणुपत्थि पाणा" अणुपत्थि वीय-हरितादि । अणुसासणमेव परक्कमे, अनुशास्यतेऽनेनेति अनुशासनं सूत्रम्, यद् यथा सूत्रोपदेशेनानुशास्यते यश्चाऽऽचार्यैस्तदन्तरा, अनुशासनमेव पराक्रमेः भृशं क्रमेः । स्यात् केनेदमनुशासनम् ?, उच्यते, वीरेहिं सम्मं पवेदितं, "नित्यमात्मनि गुरुषु च बहुवचनम्" [ ] तेन वीरेहिं सम्मं पवेदितं, अथवा सर्व एवार्हन्तो वीरास्तैः प्रवेदितम् ॥ ११ ॥ स्यादेतत्—के वीराः ? इति, उच्यते—

९९. वीरा विरता हु पावका कोधा-कातरियादिपीसणा ।
पाणे ण हणंति सव्वसो पापातो विरताऽभिणिव्वुडा ॥ १२ ॥

९९. वीरा विरता हु पावका० वृत्तम् । यो विरतः स वीरः । कुतः ? पापात् । अथवा विराजमानाः विदालयन्तीति वा वीराः सम्यगुत्थिताः संजमसमुट्ठाणेणं । स्यात् किं पापकं यतस्ते विरताः ?, उच्यते, कोधा-कातरियादिपीसणा, कातरिया णामा माया, कोधग्गहणाद् मानोऽपि गृहीतः, कातरियाग्रहणाल्लोभः, पीसणा णाम क्रोध-कातरिकादयः कषायाः, किं पीषयन्ति ? ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि, अथवा त एव वीराः पीषणाः । पीषणा दव्वे भावे य । दव्वे कुंकुमादिपसत्थदव्वपीसणा विषादिअप्पसत्थदव्वपीसणा । भावे पसत्थभावपीसणा य अप्पसत्थभावपीसणा य, अपसत्थभावपीसणेहिं अधिकारो । त एवं पीसणा पाणे ण हणंति सव्वसो, सव्वसो नाम सव्वप्पकारेण योगत्रिक-करणत्रिकेण । पापं नाम कर्म, येन च हिंसादिकर्मणा तत् पाप बध्यते तस्मिन् कारणे कार्यवदुपचारात् कृत्वाऽपदिश्यते पापातो विरताऽभिणिव्वुडा, अभिमुखं णिव्वुडा अभिणिव्वुडा अभिप्रसन्नाः, यथोष्णमुदकं सीतं भूतं णिव्वुडमित्यपदिश्यते एवम्, अथवा कषायोपशमाच्छीतीभूता अभिनिव्वुडा वुच्चंति ॥ १२ ॥

स्यात्—तस्याभिनिर्वृतात्मनः साधोः परीषहोपसर्गाः प्रादुर्भवेयुः, ततस्तेन इदमालम्बनं कृत्वा अधियासेतव्वा—

१००. ण वि ता अहमेव लुप्पधे[3] लुप्पंती लोगंसि[4] पाणिणो ।
एवं सहितेऽधिपासए[5] अणिहे से पुट्ठोऽधियासए ॥ १३ ॥

१०० ण वि ता अहमेव लुप्पधे० वृत्तम् । नाहमेक एव शीतोष्ण-दंश-मशकादिभिः परीषहोपसर्गैर्लुप्यामि, अन्ने वि असंयताः पुत्र-दारभरणादिभिः क्लेशैर्लुप्यन्ते, तथा च चोर-पारदारिकादयः पराधीना लुप्यन्ते, अनपराधिनोऽपि कर्षकादयः करभर-वि(वे)ट्ठयादिभिरुपक्लेशैर्लुप्यन्ते । एवं सहिते, एवं अनेन प्रकारेण सहिते णाणादीहिं, आत्मनो वा हितः सहितः, अधिकं पृथग्जनान् पश्यति अधिपश्यति । अनिहो नाम परीषहोपसर्गैर्न निहन्यते, तव-संजमेसु वा सततपरक्कमं ण णिहेति । से इति णिद्देसे । स एव भिक्षुः कथञ्चित् परीषहोपसर्गैः स्पृश्यते ततः सो पुट्ठोऽधियासए, अकारलोपो द्रष्टव्यः ॥ १३ ॥

स एवं परीषहसहिष्णुः—

१०१. धुणिया कुलियं व लेववं कसए देहमणासणादिहिं ।
अविहिंसामेव पव्वए अणुधम्मो मुणिणा पवेदितो ॥ १४ ॥

१०१. धुणिया कुलियं व लेववं० वृत्तम् । धुणिया णाम धुणेज्जा कम्मं । कधं ?, जधा करणकुड्डं उभयोपासलित्त चिरेण कालेण जुण्णलेवं सततं लिप्पंते वा जोगं वा लेतीमं, उपमाने वति । कसए त्ति कृशं कुर्यात् । दिह्यत इति देहः । यथा

---

१ °पयुक्तः ? पु० ॥ २ विरया वीरा समुट्ठिया कोहाका° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ लुप्पए ख १ ख २ । लुप्पइ पु १ पु २ ॥ ४ लोगम्मि पु १ पु २ ॥ ५ सहिएहिं पासए खं २ पु १ । सहिए वि पासते ख १ पु २ ॥

कुड्डं लकुटादिभिः प्रहारैः लेपापगमात् कृशीभवति एवं साधुरपि अनशनादिभिः तपोविशेषैः कृशं देहं कुणति, देहे च सम्यक्तपोभिरेव कृश्यमाणे कर्मदेहोऽप्यपकृश्यत एव । द्रव्यकर्षणा कुड्ये शरीरे वा, भावकर्षणा राग-द्वेषौ कर्षयति यः । स एवं अनशनादितपोयुक्तः राग-द्वेषापकृष्टः अविहिंसामेव पव्वए, न विहिंसा अविहिंसा, अतस्तामविहिंसां पव्वए । कथमहिंसकः स्यादिति ? अनुधर्मो अनु पश्चाद्भावे, यथाऽन्यैस्तीर्थकरैस्तथा वर्द्धमानेनापि मुनिना प्रवेदितम् । अणुधर्मः सूक्ष्मो वा धर्मः । पुव्ववद् वृत्तम् अप्पसत्थभावे धुणणं, तम्मि विधुए कम्मरयो विधुत एव भवति ॥ १४ ॥ स्यात्—कथं धूयते ?,

१०२. सउणी जध पंसुगुंडिता विधुणिय धंसयती सितं रयं ।
एवं दविओवधाणवं कम्मं खवति तवस्सि माहणो ॥ १५ ॥

१०२. सउणी जध पंसुगुंडिता० वृत्तम् । सउणि काउल्ली धूलीए वालेट्टितुं तद् रजः पक्षावुभौ धुन्वती ध्वसयति, सितं बद्धं, रञ्जयतीति रजः, एष दृष्टान्त । एवं दविओवधाणवं, दविओ राग-दोसरहितो, द्रव्यमात्रमेव उवदधातीति उपधानम्, तदस्यास्तीत्युपधानवान् । कर्म क्षपति तवस्सि माहणो, समणे त्ति वा माहणे त्ति वा ॥ १५ ॥

अथ तं कश्चित्—

१०३. उट्ठितमणगारमेसणं समणं ठाणठितं तवस्सियं ।
डहरा वुड्ढा य पत्थए अवि सुस्से ण य तं लभे जणो ॥ १६ ॥

१०३. उट्ठितमणगारमेसणं० वृत्तम् । उट्ठितो णाम धर्मे प्रव्रज्यायाम् । नास्यागारं विद्यते अनगारः, अनगारत्वमेषति, अथवा मोक्षमेव एषति । समणं ठाणठितं चरित्ते णाणातिसु वा, तपःस्थित तपस्सियं, बारसविधे तवे । तमेव धम्मे दृढप्रतिज्ञं डहरा वुड्ढा य पत्थए, डहरि त्ति पुत्त-णत्तुआदयः, तेसु विसेसतो णेहो भवति कालुणिय करेंतेसु । वड्डमाति-पिति-मातुल-पितृव्यादयः पत्थए त्ति उप्पव्वावेतुं इच्छति । ते अज्जेमएण ठिता तण्हाए छुहाए य अवि सुस्से ण [य] तं लभे जणो अवि मरेज्ज, ण वि उप्पव्वावेतु सक्केति, जनानामधर्मव्यवस्थितत्वाद् जनवत् स तान् पश्यति न तु स्वजनवत् ॥१६॥

१०४. जइ कालुणियाइं से करे जइ रोयंति य पुत्तकारणा ।
दवियं भिक्खुं समुट्ठितं णो लब्भंति णं संणवेत्तए ॥ १७ ॥

१०४. जइ कालुणियाइं से कए (करे)० वृत्तम् । कालुणिया णाम

णोह ! पिय ! कत ! सामिय ! [? अइंसण ! णिप्पणत्त ! भुवणम्मि । सव्वं सुण्ण पणइणि-] पुत्ता ते पितुवियोगवेलप्पा ॥ १ ॥
सेणी गामो गोट्ठी गणो व तं जत्थ होसि सण्णिहितो । दिप्पति सिरीए सुपुरिस ! किं पुण णियगं घरद्दारं ? ॥ २ ॥

[ ]

पुत्रकारणाद् एकमपि तावत् कुलतन्तुवर्द्धनं पितृपिण्डद धनगोप्तार च पुत्रं जनयस्व, ततो यास्यसि, एवं कलुणाणि रुदंता । दवियं ति, दविओ राग-दोसरहितो । भिक्खणशीलो भिक्खू । सम्यगुत्थितं समुट्ठितं, सजमुट्ठाणेण समुट्ठितं ति । णो लब्भंति णं ति ण सक्केंति सण्णवेत्तए त्ति आणेतु ॥ १७ ॥

---

१ कम्म खवेति ख १ ॥ २ तवस्सिणं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ लभे जणं ख १ ख २ पु २ । लभे ज्जणं पु १ । लभे जणा वृ० दी० ॥ ४ अजेमकेन अभोजनेनेत्यर्थ ॥ ५ °याणि कासिया जति खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ रोवंति व पुत्त° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ लब्भिति ख १ पु २ वृ० दी० । लज्जंति पु १ ॥ ८ संथवित्तए ख १ खं २ वृ० दी० । संठवित्तए पु १ पु २ ॥ ९ चूर्ण्यादर्शेष्वियं गाथा खण्डितरूपैवोपलभ्यते, ना च श्रीसागरानन्दपादैर्यथानुसन्धितैवात्र मुद्रिताऽस्ति । वृत्तिकृता पुनरियं गाथा पाठभेदेनोद्धृताऽस्ति । तथाहि—

णाह ! पिय ! कंत ! सामिय ! अइवल्लह ! दुल्लहो सि भुवणम्मि । तुह विरहम्मि य निक्किव ! सुण्णं सव्वं पि पडिहाइ ॥ १ ॥

१०५. जइ[1] णं कामेहि लाविया, जइ[2] आणेज्ज ण बंधिता घरं ।
[3]तं जीवित णावकंखिणं, णो लब्भंति ण स[4]ण्णवित्तए ॥ १८ ॥

१०५. **जइ णं कामेहि लाविया०** वृत्तम् । यदीति अभ्युपगमे । कामा सद्दाति धणाति वा । लाविय त्ति णिमंतणा । जइ कामेहिं धणेण वा बहुप्पगारं उवणिमंतेज्ज बंधित्ता वा घरं आणेज्ज । तं जीवित णावकंखिणं, तमिति तं साधुं जीवितं असंजमजीवितं नावकाङ्क्षति नावकाङ्क्षिणम् । णो लब्भंति ण सण्णवित्तए, नोकारः प्रतिषेधे, लब्भिति त्ति ण ते लभंते सण्णवेत्तए ॥ १८ ॥ किञ्च—

१०६. सेहिंति अ णं ममायिणो, [5]माति पिति थि पती य भायरो ।
पासाहि [6]ण पासओ तुमं, [7]परलोगं पि जहाहि उत्तमं ॥ १९ ॥

१०६. **सेहिंति अ णं ममायिणो०** वृत्तम् । असंजम समायंति त्ति **ममायिनः**, ते **माति-पिति-स्त्रि-पति-भायरो सेहंते** त्ति सेहवेन्ति । कथं सेहवेंति ? **पासाहि ण पासओ तुमं, तुमं** अतीव **पासओ** ज अतीव पस्ससि लोगनिरिक्खितो भवान्, जतो एक [8]एवात्मपायभीरू **पासए** त्ति प्रवचनवयणेणं, कहं अम्हेहिं दुक्खिताणि ण पासति ? त्ति । यदि त्वं एव दीर्घदर्शी तो **परलोगं पि जहाहि उत्तमं** ति, इमो ताव त्वया लोगो जढो, अम्हेहि य तुज्झ णिमित्तेण अद्धितीए किलस्समाणेहिं अम्ह य वुड्ढत्तणे सुस्सूसाए अकीरमाणीए पुत्त-दारे य अभरिज्जमाणे य परलोगो वि ते ण भविस्सति । उक्तं च—

या गतिः क्लेशदग्धानां गृहेषु गृहमेधिनाम् । पुत्र-दारं भरन्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ! ॥ १ ॥

[ ]

उत्तमो नाम स तव एव माता-पितृसुश्रूषया उत्तमो लोको भविष्यति, अन्यथा त्वधमः ॥ १९ ॥ एवं तैरुपसर्गैः क्रियमाणैः किञ्चिदेवं धर्मकातरः—

१०७. अण्णे अण्णेहिं मुच्छिता, मोहं जंति [9]णरा असंवुडा ।
विसमं विसमेहि गाहिया, ते पावेहि पुणो पगब्भिता ॥ २० ॥

१०७. **अण्णे अण्णेहिं मुच्छिता०** वृत्तम् । अन्योन्येपु मूर्च्छिताः । तद्यथा–कश्चिद् भार्यायाम्, कश्चित् पुत्रे, कश्चिन्मातरि पितरि च । **मोहं जंति णरा असंवुडा,** मुह्यते येन स **मोहः** कर्म अज्ञानं वा, तत्कृतो वा नानायोनिगहनः संसारः, अथवा स्वजनस्नेहमोहिताः कृत्या-ऽकृत्ये न जानन्ति । न संवृताः **असंवृताः** इन्द्रिय-नोइन्द्रियतः संवररहिताः । **विसमं विसमेहि गाहिया, विसमो** णाम असंजमो, तं असंजमं असंयतैरेव ग्राहिताः । **ते पावेहि पुणो पगब्भिता, पापानि** छेदन-भेदन-विशसन-मारणादीनि प्राणवधादीनि वा, तेपु पापेपु वर्त्तमानाः पुणरवि गब्भीभूया उन्मार्गमाचरन्तो न लज्जन्ते, पुराणश्मशानचितकमांसखादकपिशाचहस्तावसारणम् ॥ २० ॥ अहं ससारस्स ण वीभेमि कुतस्तर्हि तव ?, यतश्चैवम्—

१०८. [10]दविएव समिक्ख पंडिते, पावातो विरतोऽभिणिव्वुडो ।
[11]पणता वीरा महाविधिं, सिद्धिपधं णेआउअं सिवं[12] ॥ २१ ॥

१०८. **दविएव समिक्ख पंडिते०** वृत्तम् । **दविकः** उक्तः, एवं अनेन प्रकारेण योऽयमुक्तः, सम्यग् ईक्ष्य **समीक्ष्य,**

---

१ जइ तं का° ख १ पु १ पु २ । जइ वि य का° ख २ वृ० दी० ॥ २ जइ णेज्जाहि ण बंधिउं घरं ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ३ जइ जीवित णावकंखए ख १ ख २ । जइ जीवित णावकंखती पु १ पु २ । जइ जीवित णाभिकंखए वृ० दी० ॥ ४ संथवित्तए खं १ ख २ वृ० दी० । संठवित्तए पु १ पु २ ॥ ५ माय पिया य सुया य भारिया ख १ ख २ । माय पिया य सुण्हा य भारिया पु १ पु २ ॥ ६ णे ख २ पु १ ॥ ७ लोग परं पि जहाहि पोस णे ख १ पु २ । लोग परं पि जहासि पोस णे पु १ वृ० दी० । लोग परं पि चयाहि पोस णे खं २ ॥ ८ पवाऽऽत्मापाय° मु० ॥ ९ असंवुडा नरा ख २ पु १ पु २ ॥ १० नम्हा दविइक्ख पंडिते ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० ॥ ११ पणए वीरे महावीहिं ख १ पु १ पु २ । पणता वीघेतऽणुत्तरं सिद्धि° चूपा० । पणता वीरा महावीही इति आचा० श्रु० १ अ० १ उ० ३ सू० २ ॥ १२ धुवं खं २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० । धुयं खं १ ॥

पापं हिंसादि । अन्यथा पाठस्तु—"तम्हा दविइक्ख पडिते" तस्मादेवं ज्ञात्वा विरताणं अविरताणं च गुण-दोसे । **पावातो विरतो** अट्ठारसट्ठाणातो सयणातो वा विरतो भवाहि, **अभिणिव्वुडो** असजमउण्हातो सीतीभूतो । **पणता वीरा महाविधिं,** भृशं नताः प्रणताः, प्रणेतार इत्यर्थः, कतरं ?, जो हेट्ठा सवोहणमग्गो भणितो, **वीराः** उक्ताः, **वीही** नाम मार्गः चक्रवीथिवत्, महती वीही **महावीही,** अधवा [भाव]वीही एव **महावीधी** । तत्र द्रव्यवीधी नगर-ग्रामादिपथाः, भाववीधी तु [1]सिद्धिपन्थाः **णेआउअं सिवं** । पाठविशेषस्तु—"**पणता वीधेतऽणुत्तरं**" एतदिति भाववीधी जं भणिहामि, **अणुत्तरं** असरिस अणुत्तरं वा ठाणादि । सेहन्तं सिद्धिः, पद्यत इति पन्थाः । नयतीति **नैयायिकः** । **शिवं** नीरोगम् । "**धुवं**" वा, धुवो सासतो ॥ २१ ॥ स एव प्रणतः—

१०९. वेतालियमग्गमागतो,[2] मण वयसा काएण संवुडे ।
चेच्चा वित्तं च णातयो,[3] आरंभं[4] च सुसंवुडे चरे[5] ॥ २२ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ वेतालियस्स[6] पढमो उद्देसओ समत्तो २–१ ॥

१०९. वेतालियमग्गमागतो० वृत्त । **वैतालिकं** उक्तम् । अथवा विदालयतीति **वैदालिकः** भगवानेव । वैतालिकस्य मार्गः **वैतालिकमार्गः** तं **आगतः** प्राप्त इत्यर्थः । **मण वयसा काएण संवुडे** त्ति तिगुत्तो । **चेच्चा वित्तं च णातयो, चेच्चा** णाम त्यक्त्वा । **वित्तं** बाह्यमभ्यन्तरं च, बाह्यं गो-महिष्यादि, अब्भिंतरं हिरण्ण-सुवण्णादि, अथवा आभ्यन्तरं विद्या-बुद्धि-कौशल्यादि, शेषं बाह्यम् । **णातयो** त्ति पुव्वा-ऽवरसस्तुताः । **आरम्भस्तु** पचन-च्छेदनादि प्राणातिपातो वा, चशब्दात् शेषाश्रवा अपि, **चेच्चा** अपि वर्त्तते । **संवुडे** इंदिएहिं । **चरेदिति** अनुमतार्थे । अथवा–"**परिचएज्जासि त्ति बेमि**" ॥ २२ ॥

॥ वेतालिए पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥ २–१ ॥

[वेयालीयज्झयणे बिइओ उद्देसओ]

उद्देसत्थाधिगारो–माणो वज्जेतव्वो । तत्थ गाधा—

*** तव-संजम-णाणेसु वि जति माणो वज्जितो महेसीहिं ।**
अत्तसमुक्कसणट्ठं[7] किं पुण हीला नु[8] अण्णेसिं ? ॥ ८ ॥ ३९ ॥

महातवस्सिणा सजमे अतीव अप्पमत्तेण अतीव च वहुस्सुतेण जइ ताव माणो वज्जितो, तेन तपस्वित्वे अप्रमत्तत्वे वहुश्रुतत्वे वा गव्वं न याति, किमंग पुण नातिक्रुत्सनतपोयुक्तेन प्रमादवता अल्पश्रुतेन वा गव्वो कायव्वो ? परो वा हीलेतव्वो ? ॥ ८ ॥ ३९ ॥ किञ्चान्यत्—

*** जइ ताव णिज्जरमतो पडिसिद्धो अट्ठमाणमहणेहिं ।**
अवसेस मयट्ठाणा परिहरितव्वा पयत्तेण ॥ ९ ॥ ४० ॥

॥ वेयालियस्स[9] णिज्जुत्ती सम्मत्ता २ ॥

॥ ९ ॥ ४० ॥ भणियो उद्देसत्थाधियारो । सुत्ताभिसंबंधो पुण–उक्तं प्रथमस्यान्ते "**चेच्चा वित्तं च णातयो**" [सूत्रगा० १०९] स एव वित्त स्वजनारम्भ विहाय तपसि स्थितत्वात्—

---

१ मुक्तिपन्था' पु० ॥ २ °मातओ, मण पु १ ॥ ३ नायओ ख १ ख २ ॥ ४ च परिच्चएज्जासि ॥ त्ति चूपा० ॥ ५ चरेज्जासि ख १ । चरेज्जासि ख २ पु १ पु २ ॥ ६ वेतालीयस्य प्रथमोद्देशकः ख २ ॥ ७ °क्करिसत्थं ख १ ख २ पु २ ॥ ८ उ ख १ ख २ पु २ ॥ ९ °लीयस्स पु २ ॥

११०. तय सं व जहाइ[1] से रयं, इति संखाय मुणी ण मज्जए।
गोयण्णयरेण[2] जे विदू, अहऽसेयकरी[3] अण्णेसि इंखिणी ॥ १ ॥

११०. तय सं व जहाइ से रयं० वृत्तम्। तया णाम कंचुओ, स्वामित्यात्मीयाम्, उपमाने व त्ति उरगवत्, से इति स पूर्वविवक्षितः साधुः, रिज्यत[4] इति रजः। तत् केन जहाति? अकषायत्वेनेति वाक्यशेषः, अकषायस्य हि सर्पत्वगिवाव- हीयते रजः। **इति संखाय मुणी ण मज्जए,** इति उपप्रदर्शने, **एवं संखाए** त्ति एवं परिगणेत्ता, एवं ज्ञात्वेत्यर्थः, **ण मज्जए** त्ति न मदं कुर्यात्। तत् केन मज्जते? **गोयण्णयरेण जे विदू, गोत्रं** नाम जातिः कुलं च गृह्यते, अन्यतरग्रहणात् क्षत्रियः ब्राह्मण इत्यादि, अथवा अन्यतरग्रहणात् शेषाण्यपि मदस्थानानि गृहीतानि भवन्ति। **इंखिणी** णाम खिंसणा णिंदणा हीलणा, **अन्ये** ब्रुवते रिक्तता। अथवा–"**गोतण्णतरेण माहणे**" **माहणो** साधू, अहिंसगो सुन्दरो, अण्णे असोभणा ॥ १ ॥

स्यात्—य एषां मदानां एकेनानेकैर्वा मदस्थानैर्मत्तः परं परिभवति तस्य को दोषः?, उच्यते—

१११. जो परिभवती परं जणं, संसारे परियत्तती[5] चिरं।
अदु इंखिणिया तु पाविया[6], इति संखाए मुणी ण मज्जए ॥ २ ॥

१११. जो परिभवती परं जणं० वृत्तम्। **परो** नाम आत्मव्यतिरिक्तः सपक्षः परपक्षो वा, अथवा **परः** अस्वजनः। **परिभवो** नाम अहं जात्यादिश्रेष्ठः त्वं हीनजातिरिति, एवं कुलादिषु, नान्यत्रापि। सो अणादीए अपज्जंते अणवदग्गे **संसारे परियत्तती चिरं,** सर्वतो वर्त्तते परिवर्त्तते, **चिरमिति** अणंतं कालं, विसेसेण सुकुच्छितासु जातीसु एगेंदिय-बेइंदियादिसु। यत- श्चैवं तेन **अदु इंखिणिया तु पाविया, अदु** इति यदुक्तकारणाद् **इंखिणिका** प्रागुक्ता पातयति नीचगोत्रादिषु ससारे व त्ति **पाविया**। अथवा इह परत्र च भयेषु पातयतीति "**पातिका**" वानरपिटिका, इह **सुघराहष्टान्तः** [कल्पभाष्ये गा० ३२५२], परलोके **कोकिलकश्च** परिभट्ठओ सड्ढुणओ जाओ [ ]। इति उपप्रदर्शनार्थम्, **एवं संखाए** एवं परिगण्य **मुणी ण मज्जए** मद न कुर्यात् ॥ २ ॥

११२. जे यावि[7] अणातए सिया, जे वि य पेस्सगपेसगे[8] सिया।
इदं मोणपदं[9] उवट्ठिते, णो लज्जे समतं सदा[10] चरे ॥ ३ ॥

११२. जे यावि अणातए सिया० वृत्तम्। **जे** त्ति अणिद्दिट्ठणिद्देसे। नान्यो नायकोऽस्यास्तीति **अनायकः** चक्रवर्त्ती बलदेवो वासुदेवो महामडलिओ वा। वासुदेवो ण पव्वयति, निदानकृतत्वात्, तेन नाधिकारः। **पेस्सगपेसगो** णाम तेसिं चेव चक्किमादीणं "जो पिढिगावाहगो[11] प्रव्रजितः स्यात्, असावपि चक्रवर्त्तिप्रव्रजितः त पूर्वदासदासं वारसावत्तेण वंदणेण वंदति। वंदमाणोऽपि वा **इदं मोणपदमुवट्ठिते** त्ति, इदमिति आरुहतं[12] मुनेः पदं **मौनपदम्,** पद्यतेऽनेनेति पदम्, मोक्ष गम्यत इत्यर्थः, उपेत्य स्थितः **उवट्ठितो**। न तेन पूर्वस्वामिना लज्जा कर्त्तव्या–जहाऽहं पुव्वदासदास वदाविज्जामि। इतरेणापि न गर्वः–अहं सामिगसामिणा पूइज्जामि। **समतं** ति अराग-द्वेषवानित्यर्थः, **सदा** सर्वकालं चरेदित्यनुमतार्थः ॥ ३ ॥

स्यात्–कथं ताभ्या लज्जा-मदौ न कर्त्तव्याविति?, उच्यते—

११३. समयण्णयरम्मि[13] संजमे, संसुद्धे समणे परिव्वए।
जा[14] आवकधा समाहिते, दविए कालमकासि पंडिते ॥ ४ ॥

---

१ चयाइ ख २ ॥ २ °ण माहणे अह° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा०। °ण जे विदू अह° वृपा० ॥ ३ अहऽसेउ अण्णेसि ख १ ॥ ४ रीयत चूसप्र० ॥ ५ °यत्तती महं ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। °यत्तती चिरं ख २ वृपा० दीपा० ॥ ६ पातिका चूपा० ॥ ७ जे आवि अणायगे सिया ख १ ख २ पु २। जे णाय अणाय पासिया पु १। जे यावि भवे अणायगे चूपा० ११३ सूत्रगाथाचूर्णौ ॥ ८ पेसगपेसपेसिया ख १ ॥ ९ जे मोण° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० सता चरे पु १। तद्रा चरे ख १ ॥ ११ जो पढिगा° वा० मो० ॥ १२ मारुहतं चूसप्र० ॥ १३ सम अण्णयरम्मि संजमे ख १ पु २ वृ० दी०। समे अण्ण- यरम्मि संजमे ख २ पु १। समयण्णतरम्मि वा सुते चूपा०। समे+अण्णयरम्मि=समयण्णयरम्मि इति अत्र सूत्रे सन्धिविवेक ॥ १४ जे आव° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

११३. समयण्णयरम्मि संजमे० वृत्तम्। तौ हि संयतत्वं प्रति समावेव, अथवाऽयमपि छेदोपस्थानीये[1], एवं परिहारविशुद्धिकादिषु शेषेष्वपीति। अथ समे त्ति एकस्मिन्नेव तौ संयमस्थाने वर्त्तयेताम्, अण्णयरे व त्ति विसमे वा छट्ठाणपडितस्स, तेसु सम्यक्त्वादपि पूज्यः सयम इति कृत्वा अन्यतरे अधिके वर्त्तमानः पूज्यः, संयतत्वादेव। अथवा "जे यावि भवे अणायगे, जे वि य पेस्सगपेस्सए" [गा० ११२] त्ति लोगिगो मानाई उक्तः, इह तु[2] "समयण्णतरम्मि वा सुते" समे वि सुए ण ममं परिचिततरं ति काउं समाणो ण कायव्वो, लहु वा मे अधीत ति। अण्णयरं तु एगो गणी एगो वायगो, पूर्वगतं वाचितं येन स वाचकः, न च वाचकेन मानः कार्यः। संसुद्धो णाम स एव सयमः शुद्धः यत्रासौ वर्त्तते, अथवा स एव लज्जा-मद-दोसादिएहिं संसुद्धो। समणे त्ति सम्यग् मणे समणे वा समणे। परि समंता सव्वातियारसुद्धो सव्वतो वा वए परिव्वए। स्यात् कियच्चिर कालम्?, उच्यते, जा आवकधा समाहिते, यावदस्य कथा प्रवर्त्तते देवदत्तो यज्ञदत्तो वा। दविओ णाम राग-दोसरहितो। स्यात्—मृतस्यापि कथा प्रवर्त्तते तत उच्यते—कालमकासि पंडिते यावत् कालं न करोपि तावन्मानादिदोषरहितेन भवितव्यम्॥ ४॥ स्यात्—किमालम्बनं कृत्वेति यतितव्यम्?, उच्यते—

११४. दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागतं तधा।
पुट्ठे फरुसेहि[3] माहणे, अवि-हण्णू[4] समयंसि रीयती॥ ५॥

११४. दूरं अणुपस्सिया० वृत्तम्। दूरं नाम दीर्घं अनुपश्य। तीतं धम्ममणागतं तधा, धर्मः स्वभाव इत्यर्थः, वर्त्तमानो धर्मो हि कालानादित्वाद् दूरः वर्त्तमानः, स तु अविरतत्वान्मानादिमदमत्तस्य दुक्खं भूयिष्ठोऽतिक्रान्तः। किञ्च— "इमेण खलु जीवेण अतीतद्धाए उच्च-णीय-मज्झिमासु गतीसु असतिं उच्चगोते असतिं णीयगोते होत्था" [भग० श० १२ उ० ७], तथा च अतीतकाले प्राप्तानि सर्वदुःखान्यनेकशः, एवमनागतधर्ममपि। अथवा दूरमणुपस्सिअ त्ति दढ पस्सिय, अथवा मोक्षं दूरं पस्सिय दुर्लभबोधितां पस्सिय, जात्यादिमदमत्तस्य च दूरतः श्रेयः एवमणुपस्सिय इत्येवमाद्यतीता-ऽनागतान् धर्मान् अणुपस्सिता। पुट्ठे फरुसेहि माहणे, फरुसा नाम स्नेहवियुक्ताः तैः, वाचिकाः कायिकाश्चोपसर्गाः क्रियन्ते। तत्र वाचिकाः आक्रोश-हीलनाद्याः, कायिकास्तु वध-बन्धन-ताडना-ऽङ्कन-च्छेदन-मारणान्ताः। अथवा प्रतिलोमाः फरुसा। तैरुदीर्णैः अविहण्णू अपि हन्यमानाः, अविहण्णू यथा खन्दकशिष्याः, न तु खन्दकः [कल्पभा० गा० ३२७१-७४ पत्र ९१५]। समयंसि रीयति त्ति यथा समयेऽपदिष्टं तथा रीयते, चरेदित्यर्थः। पठ्यते च—"अविहण्णू समयाऽधियासए"। अस्यार्थः—अविहण्णू अविहन्यमानः सम्यग् अधियासए। अथवा अविहण्णू इति हन्यमानो न हन्यात् कञ्चित्। अथवा धर्ममस्योपदिशेत् स कीटकधर्मकथिक उच्यते॥ ५॥

११५. पण्हसमत्थे[6] सदा जए, समिता[7] धम्ममुदाहरेज्ज मुणी।
सुहुमे हु[8] सया अलूसए, णो कुप्पे[10] णो माणि माहणे॥ ६॥

११५. पण्हसमत्थे सदा जए० वृत्तम्। पृच्छन्ति तमिति प्रश्नः, यावत् प्रश्नान् परः पृच्छेत् तं व्याकर्तुं समर्थः। पठ्यते च—"पण्हसमत्ते सदा जते" समाप्तप्रश्न इत्यर्थः, सदा जते त्ति ज्ञानवान् अप्रमत्तश्च, अयतस्य हि क्षीर परिचिकित्सकस्येव न वचः प्रमाणं भवति। उक्तं हि—"अट्ठितो ण ठवेति पर" [ ]। समिता णाम सम्मं धम्मं उदाहरेज, "जहा पुण्णस्स कत्थती तथा तुच्छस्स कत्थती" [आचाराङ्ग श्रु० १ अ० २ उ० ६ सू० ५]। सुहुमे हु सया अलूसए, सुहुमो नाम सयमः, स हि सुहुमेण वि अतिचारेण लूसिज्जति, कथयतो वा सूक्ष्मेणापि आत्मोत्कर्षेण परहीलया वा लूसिज्जति, पूया-गारव-सक्कारहेतुं वा कथयतो लूसेति। अहवा सुहुमे त्ति सूक्ष्मबुद्धिः कथयेत्। अलूषकस्तु स

१ °स्थापनीये पु०॥ २ इयं तु चूसप्र०॥ ३ परुसेहि ख २॥ ४ अविहण्णू समयाऽधियासए चूपा० वृपा० दीपा०॥ ५ रीयप्रश्न इत्यर्थ० चूसप्र०॥ ६ पण्णसमत्ते ख १ ख २ पु २ वृ० दी०। पण्हसमत्ते चूपा०। पण्हसमत्थे वृपा० दीपा०॥ ७ समता वृ० दी०॥ ८ उ ख १ ख २ पु १ वृ० दी०। अ पु २॥ ९ कथयंतो ण पर [णु] कोवये चूपा०॥ १० कुज्झे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥

एवमनागंसी न च मार्गविराधनां करोति। अपरियच्छंते य परे ण कुप्पेज्ज, णेव य कधणलद्धीसपण्णताए **माणी माहणो होज्जा**। अधवा–"कधयंतो ण परं [णु] कोवये" अन्यतर कपायं गमयेत्॥ ६ ॥ स एवम्—

११६. वहुजण[1]णमणम्मि संवुडे, स[2]व्वट्ठेसु सदा अणिस्सिते।
ह[3]रदे व[4]तुमे (? पतुमे) अणाइले, धम्मं पा[5]दुरकासि कासवं ॥ ७ ॥

११६. वहुजणणमणम्मि संवुडे० वृत्तम्। वहुजनं नामयतीति वहुजननामनः, वहुजनेन वा नम्यते, स्तूयत इत्यर्थः, स धर्म एव। सर्वलोको हि धर्ममेव प्रणतः, न हि कश्चित् परमाधार्मिकोऽपि व्रवीति–अधम्मं करेमि। **तत्रोदाहरणम्—**

सेणिओ राया। तस्स अत्थाणीए धर्मजिज्ञासायां 'के धम्मिया ?' इति। ततो पारिसदेहिं भणति–दुल्लभा धम्मिया, पायं अधम्मिओ लोओ। **अभयो** भणति–लोगस्स ताव पाएण एस पइण्णा जधा 'वयं धम्मिया' इति। परिसाए असद्दहंतीए अभएण भण्णति–परिक्खामो। ततो रायाणुमए सिता-ऽसिताणि दुवे भवणाणि कारवेत्ता पउर-जणवता भणिया–जे तुम्हं धम्मिया ते धवलं गिहं पविसतु, अधम्मिया असियमिति। ततो ते सव्वे पउरजणा धवलगृहमणुपविट्ठा। अधिगारिगेहिं पुच्छिता–किं भवतो धम्मं करेह ? त्ति। तत्थेगो भणति–अ[6]धं करिसगो, तत्थ मे अणेगेहिं सउणसहस्सेहिं धण्णं उवजीविज्जति। अण्णो भणति–अहं वणिजो, कलोपजीवी, वभणो मे णिच्चग भुंजति त्ति। अण्णो भणति–अह कुडुंवभरणपवित्तो किलेसभागी। किं वहुणा ?, सोयरियादयो वि 'कुलधर्मानुवर्त्तित्वाद् वयमपि धम्मिया' एव ध[7]वलगिधमणुपविट्ठा। उक्तं च–"सोतसुतघोररणमुह०" [ ]। अध तत्थ दुवे सावगा सकृन्मद्यपाननिवृत्तिकृतभङ्गा असितभवणमणुपविट्ठा पुच्छिता भणंति–सुसाधुणो सुसावगा य धम्मिया जे सया अपमत्ता, अम्हे पुण पमादिणो स्वकृतमद्यपाननिवृत्तिकृतभङ्गा ण ध[8]वलगिहारुहा, अतो असितभवणमणुपविट्ठा इति ॥

एव वहुजननमितो धर्म इति, तस्मिन् वहुजननमिते संवृतात्मा भवेदिति वाक्यशेपः। अन्ये त्वाहुः–**वहुजननमनः** लोभः, सर्वो हि लोकस्तस्मिन् प्रणतः। असंयतास्तावत् सर्वे शब्दादिविषयप्रणताः, प्रमत्तसंयता अपि तत्रैव केचित् प्रणताः, वीतकषायास्त्वप्रणताः, जे य ज[9]यणो अप्पमत्ता इति तेऽपि न प्रणताः। उक्तं च–"कोधस्स उदयणिरोधो वा उदयपत्तस्स वा कोधस्स विहलीकरणं" [भग० श० २५ उ० ७ सू० ८०२ पत्र ९२२, औपपा० सू० १९ पत्र ४०]। एवं योगेन्द्रियाणामपि वक्तव्यम्। **संयतो** नाम विरतः, निवृत्त इत्यर्थः। **सव्वट्ठेसु सदा अणिस्सिते** त्ति सव्वेसु इंदियत्थेसु यावंतो वा असयमार्थाः अथवा ऐहिका-ऽऽमुष्मिकेपु **अणिस्सितो** णाम नाऽऽकाङ्क्षति। **ह[10]रदे वतुमे (? पतुमे) अणाइले, हरदे** त्ति महासमुद्रः, स हि नक्रादिभिर्महामत्स्यैः स्फुरद्भिरपि नाऽऽकुलजलो भवति, न क्षुब्धजल इत्यर्थः, पद्म-महापद्मादयो वा ह्रदाः स्वच्छ-प्रसन्न-गम्भीरजलाः, गम्भीरत्वादनाकुलाः, एवमसावपि पूर्वा-ऽपरज्ञेयपरिशुद्धस्वच्छज्ञानवान् प्रसन्नवाङ्-मनाः न च परप्रवादिभिः शक्यते विक्षोभयितुं इत्यनाकुलः। कोधादीहि वा **अणाइलो**। अधवा **अणाइल** इति निरुद्धाश्रवः, अनातुरो न ग्लायति धर्मं कथयन्। **धम्मं प्रादुरकासि कासवं** ति, प्रादुः प्रकाशने, स भगवान् **आर्यसुधर्मः** अण्णतरो वा गणधरो ह्रद इवानाकुलः **धर्मं प्रादुरकार्षीत्**, एवमन्येऽपि स्थविराः प्रादुरकार्षीत् (? कार्षुः) प्रादुष्कुर्वन्ति करिष्यन्ति च। कश्यपस्याय **काश्यपः**, स एवंलक्षणकं धर्मं अहिंसादिलक्षणं धर्मं कथयति ॥ ७ ॥ तं जधा—

११७. वहवो पाणा पुढोसिया, पत्तेयं स[11]मियं उवेहाए।
जे मोणपदं उवट्ठिते, वि[12]रतिं तत्थमकासि पंडिते ॥ ८ ॥

---

१ °णमणसि ख १ पु २ ॥ २ सव्वट्ठेहिं णरे अणि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ हरए व सया अणाविले ख १ वृ०। हरए व सिया अणाविले ख २ दी०। हरए व सया अणाइले पु १। हरए व सया अणाउले पु २ ॥ ४ वतुमे पद्महद इत्यर्थ ॥ ५ पादु° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ अहम् इत्यर्थ ॥ ७ धवलगृहम् ॥ ८ धवलगृहार्हा ॥ ९ यतय ॥ १० हरदे वतुमे पद्मनामा ह्रद इत्यर्थ ॥ ११ समयं समीहिया वृ०। समयं उवेहिया ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा० दी०। समिया उवेहिता चूपा० ॥ १२ विरती तत्थ अकासि ख १ ख २ पु १ पु २। पु १ विरती स्थाने विरयं इति पाठमेद ॥

११७. बहवो पाणा पुढोसिया० वृत्तम् । अथवोपदेश एवायम्—बहवो प्राणा पुढोसिता, बहव इति अनन्ताः, पृथक् पृथक् सिता पुढोसिता, तं जधा—पुढविकाइयत्ताए० । तेषां तु प्रत्येकं अनन्तानामप्येको धर्मः समान एव 'सुखप्रियत्वम्' । समियं उवेहाए त्ति, समिता णाम समता, प्रत्येकाश्रयेऽपि सति[1] अभीष्टसुखता दुःखोद्वेगता च समानमेतत्, अथवा—"समिया इति समं उवेहिता" । जे मोणपदं उवट्ठिते, मुनेरिदं मौनम् । विरमणं विरतिः, तेषामतिपातादीनां[2] अकासि त्ति करिष्यसि । पापाद् डीनः पण्डितः । का भावना ?—यथा तवैते इष्टा-ऽनिष्टे सुख-दुःखे एवं पाणाणमवि इत्येवं मत्वा विरतिं तत्थमकासि पंडिते, स एव विरतात्मा ॥ ८ ॥

११८. धम्मस्स[3] य पारए मुणी, आरंभस्स य अंतए ठिते[4] ।
सोयंति य णं ममायिणो[5], णो लभती णितियं परिग्गहं[6] ॥ ९ ॥

११८. धम्मस्स य पारए मुणी० वृत्तम् । धम्मो दुविहो—सुतधम्मो चरित्तधम्मो य, तयोः पारं गच्छतीति पारगः, श्रुतज्ञानपारङ्गतः चोद्दसपुव्वी, पारं वा काङ्क्षति एव पारङ्गतः, काङ्क्षति वा अकषायः, तस्य च चरित्रमधिकृत्यापदिश्यते । आरम्भो नाम जीवकायसमारम्भः, तस्यान्ते व्यवस्थितः, नारभत इत्यर्थः । जे य पुण आरंभ-परिग्गहे वट्टंति ममायंति वा ते तं परिग्गहं णट्ठविणट्ठ सोयंति य णं ममायणो, अलभ्यमानमपि यथेष्ट परिग्गह सोयंति णं ममाइणो । उक्तं हि—"परिग्रहेष्वप्राप्त-नष्टेषु काङ्क्षा-शोकौ, प्राप्तेषु च रक्षणम्, उपभोगे चातृप्तिः" । णो लभति णितियं परिग्गहं ति, अग्गिसामण्णताए चोरसामण्णताए णितिओ[7] ण भवति ॥ अयमपरकल्पः तमिव—"धम्मस्स य पारए मुणी, आरंभस्स य अंतिए ठितं । सोयंति य णं ममाइणो" अम्हे सुहिता, तुम्हं संतविभवो वि अतिदुक्करं तव-चरणं करेसि । जेणं ममायंते तेण ममायिणो[8] माता-पुत्रादयो । णो लभंति णितियं परिग्गहं ति, स तेषा नित्य वशकः आसीदिति नित्यं परिग्रहपरः, ततस्तत्प्रत्ययिकं णो लभंति णितियं परिग्गहं ॥ अमुमेवार्थं[9] नागार्जुनीया विकल्पयन्ति—

सोऊण तयं उवट्ठितं, केयि गिही विग्घेण उट्ठिता ।
धम्मम्मि इधं अणुत्तरे, तं पि जिणेज्ज इमेण पडिते ॥ ॥ ९ ॥

११९. इहलोग दुहावहं विदा[10], परलोगे य दुहं दुहावहं[11] ।
विद्धंसणधम्ममेव[12] या, इति विज्जं कोऽगारमावसे ? ॥ १० ॥

११९. इहलोग दुहावहं विदा परलोगे य दुहं दुहावहं० वृत्तम् । कृषि-भृतक-चौरादीनां इहलोग एव दुधावधं धणं । उक्तं हि—

अममा जनयन्ति काङ्क्षिताः, निहिता मानसचौरज भयम् । विन्दन्ति जना हि०" [ ] ।

परलोकेऽपि च दुहं अस्माद् धनोपार्जनदुःखात् सुमहत्तरं दुःख समावहन्तीत्यतो दुहावहं । अथवा—"दुहा दुहावहा" पुनरनन्ते ससारे पर्यटन्तः शरीरादिदुःखं समावहन्ति । विद्धंसणधम्ममेव या, अग्नि-चौराद्युपद्रवैः कालपरिणामतश्च विद्धंसणधम्ममेव या, इति एवं विद्वान् मत्वा को नाम अगारमावसे ? ॥ १० ॥

---

१ सति सतीपुसु° पु० वा० मो० । सति सतीप्सु° स० ॥ २ °तिपातनं अ° चूसप्र० ॥ ३ °स्स पयारए पु २ । लिपिभेदविकृतोऽय पाठभेद ॥ ४ अतिए ठिए ख १ ख २ । अतिए ठितं चूपा० ॥ ५ ममाइणो ख १ ख २ पु १ पु २ चूपा० ॥ ६ णो लभंति णितियं ख १ चूपा० । नो य लभंति णियं ख २ वृ० दी० । ण लभंती नियय पु १ । णो लहई नियय पु २ ॥ ७ णितओ पु० विना ॥ ८ ममायणो पु० विना ॥ ९ "अत्रान्तरे नागार्जुनीयास्तु पठन्ति—सोऊण तयं उवट्ठियं, केइ गिही विग्घेण उट्ठिया । धम्मम्मि अणुत्तरे मुणी, तं पि जिणिज्ज इमेण पंडिए ॥" इति वृत्तौ ॥ १० विऊ ख १ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ दुहा दुहावहा चूपा० ॥ १२ °व तं, इ° ख २ वृ० दी० । °व या, इ° ख १ । °व य, इ° पु १ पु २ ॥

किञ्चान्यत्– पव्वइतेण वि न सक्कार-वंदण-णमंसणाओ बहुमण्णितव्वा। उक्तं च तत्थ—

१२०. म[1]हता पलिगोह जाणिया, जा वि य वंदण-पूयणा इधं।
सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विदु[2] मंता प[3]यहेज्ज संथवं॥ ११॥

१२०. महता पलिगोह जाणिया० वृत्तम्। **परिगोहो** णाम परिष्वङ्गः, दव्वे परिगोहो पंको, भावे अभिलाषो बाह्या-ऽभ्यन्तरवत्थुसु। परस्परतः साधूनां जा **वि वंदणा** णमसणा सा वि ताव **परिगोहो** भवति, किमंग पुण सद्दादि-विसयासेवण ?, अथवा प्रव्रजितस्यापि पूजा सत्कारः क्रियते, किमङ्ग पुण रायादिविभवाससा ?। **सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे,** सूचनीय सूक्ष्मम्, कथम् ? शक्यमाक्रोश-ताडनादि तितिक्षितुम्, दुःखतर तु वन्द्यमाने पूज्यमाने वा विषयैर्वा विलोभ्यमाने निःसङ्गतां भावयितुमिति, एव सूक्ष्मं भावशल्यं दुःखमुद्धर्तुं हृदयादिति वाक्यशेषः। इत्येवं **मत्वा विद्वान् पयहेज्ज संथवं,** सम्यक् स्तवः सतो वा स्तवः संथवो॥ **नागार्जुनीयास्तु पठन्ति—**

पलिमंथ महं विजाणिया, जा वि य वंदण-पूयणा इधं।
सुहुमं सल्लं दुरुद्धरं, तं पि जिणे एएण पंडिते॥ ॥ ११॥

१२१. एगे चरे ठाण[4] आसणे, सयणे एग स[5]माहितो चरे।
भिक्खू उवहाणवीरिए, वइगुत्ते अ[6]ज्झप्पसंवुडे॥ १२॥

१२१. **एगे चरे ठाण आसणे०** वृत्तम्। द्रव्ये एगल्लविहारवान्, भावे राग-द्वेषरहितो वीतरागः, "गच्छगतो वि य णिग्गहपरमो०" [ ] राग-द्वेषयोः वीतराग इव वीतरागः। **ठाणं** काउस्सग्गो। **आसणं** पीढ-फलगं भूमिपरिग्गहो वा। **सयणं** तणुवण्णो। **एगो** राग-द्दोसरहितो, सव्वत्थ पवाद-णिवाद-सम-विसमेसु ठाण-णिसीयण-सयणेसु एगभावेण भवितव्वं, णाणादिसमाहितो **चरे**दिति अणुमतार्थे। **भिक्खू उवहाणवीरिए,** उपधानवीर्यवानिति तपोवीर्यवान्। **वइगुत्ते** त्ति वयिगुत्ती गहिता। **अज्झप्पसंवुडे** त्ति मणोगुत्ती गहिता। पूर्वार्द्धेन तु कायगुप्तिः॥ १२॥

इदाणिं जो सो एगल्लविहारी तं पडुच्चा घरे य णिकारणेण भणति—

१२२. णो पी[7]हे ण[8] यावऽवंगुणे, दारं सुण्णघरस्स संजते।
पुट्ठो ण[9] उदाहरे व[10]यिं, ण स[11]मुच्छति णो संथडे तणे॥ १३॥

१२२. **णो पीहे ण यावऽवंगुणे०** वृत्तम्। **पिहितं** णाम ढक्कियं। अवंगुतदुवारिए **सुण्णघरे** वा भिन्नघरे वा। शुनां हित शून्य, शून्य वा यत्रान्यो न भवति। **पुट्ठो ण उदाहरे वयिं,** चत्तारि भासाओ मोत्तूण उदाहरति वयिं, अवस्स सवुज्झितुकामस्स वा एगनायं एगवागरणं वा जाव चत्तारि। णिसीयणट्ठाणे मोत्तूण सेस वसधिं **ण समुच्छति** त्ति ण पमज्जति, **णो संथडे तणे** त्ति ण वा तणाइं सथरेति, किमंग पुण किर्त्ति पोत्तिं वा ?॥ १३॥

स एवं शरीरोवस्सयादिसु अप्रतिवद्धः अणियतवासित्वात्—

१२३. जत्थऽत्थमिते अ[12]णाइले, सम-विसमा[13]इं मुणीऽधियासए।
चरगा अदु वा वि भेरवा, अदु वा तत्थ सिरीसिवा सिया॥ १४॥

१२३. जत्थऽत्थमिते अणाइले० वृत्तम्। जत्थ से अत्थमेति सूरो जले थले वा तत्थ वसति **अणाइलो** णाम

---

१ महयं पलिगोव जा° ख २ पु १ वृ० दी०। महया पलिगोव जा° ख १ पु २॥ २ विदुमं ता वृ० दी० व्याख्यामेद॥ ३ पजहेज्ज संठवं ख २ पु १। परिहेज्ज संथवे ख १ पु २॥ ४ ठाणमासणे ख २ पु १॥ ५ समाहिए सिया ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। समाहिमासिया ख २॥ ६ अज्झत्थसं° ख १ पु १ पु २॥ ७ पेहए ख २॥ ८ नावपंगुणे खं १ पु १ पु २॥ ९ नोयाहरे ख २॥ १० वतिं खं १॥ ११ ण समुच्छे णो संथरे तणं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ १२ अणाउले पु २ वृ० दी०॥ १३ °माणि मुणीऽहियासए ख १ ख २ पु १ पु २॥

परीषहोपसर्गैः नक्रैः समुद्रवद् नाऽऽकुलीक्रियते । सम-विसमाइं ठाण-सयणा-ऽऽसणाइं मुणीऽधियासए न राग-द्वेषं गच्छेत् । तत्थ से अच्छमाणस्स चरगा अदुवा वि भेरवा, चरन्तीति चरकाः पिपीलिका-मत्कुण-घृतपायिकादयः, भेरवा पिशाच-श्वापदादयः, सरीसृपाः अहि-मूषकादयः, सव्वे अहिआसए त्ति ॥ १४ ॥ एवमन्येऽपि—

१२४. तिरिया मणुसा य दिव्विया,[1] उवसग्गा तिविहा[2] वि सेविया ।
लोमादीयं[3] पि ण हरिसे, सुण्णागारगते महामुणी ॥ १५ ॥

१२४. तिरिया मणुसा य दिव्विया० वृत्तम् । तिरिया चतुव्विधा । उवसग्गा तिविहा वि सेविया नाम सेवित्वा अणुभूय लोमादीयं पि ण हरिसे, लूयत इति लोम । लोमहरिसो दुधा भवति—प्रतिलोमैर्भयात् १ अनुलोमैः प्रहर्षेण हासतः २ । आदिग्रहणाद् दृष्टि-मुखप्रसादो दैन्यं वा । सुण्णागारगते महामुणी, स तैर्भैरवैरप्युपसर्गैरुदीर्णैरिछद्यमानो मार्यमाणो वा ॥ १५ ॥

१२५. णो[4] जावऽभिकंख जीवितं, णो वि य पूयणपत्थए सिया ।
अब्भत्थमुवेंति[5] भेरवा, सुण्णागारगतस्स भिक्खुणो ॥ १६ ॥

१२५. णो जावऽभिकंख जीवितं० वृत्तम् । अनुलोमैर्वा उदीर्णैः असजमजीवितं ण वा पूया-सक्कारं पत्थेज्ज । तेनैवं जीवितमनाकाङ्क्षता पूजा-सत्कारौ च, भयानके वाऽऽवसथे वसता अब्भत्थमुवेंति भेरवा, अभ्यस्ता नाम आसेविता असकृद् असकृत् सहमानेन जाता उदिता आसेविता अभ्यस्ता इति, अतः उवेंति उपयान्ति भयानकाः । पठ्यते च—"अब्भत्थ-(अप्पऽब्भइय) मुवेंति भेरवा" अल्पाः न बहवः पिशाच-श्वापद-व्यालादयः जीवितात्ययिका उवेंति, शीतोष्ण-दंश-मशकादयस्तु उदीर्णा अपि शक्या अधिषोढुमिति, अभ्यस्तत्वात्, नीराजितवारणस्येव भैरवा एव भवन्ति ॥ १६ ॥ तस्यैवम्—

१२६. उवणीततरस्स ताइणो, भयमाणस्स विवित्त[7]मासणं ।
सामाइयमाहु तस्स [8]तं, जो अप्पाण भए ण दंसए[9] ॥ १७ ॥

१२६. उवणीततरस्स ताइणो० वृत्तम् । भिक्षोः धर्ममुपनीतः परीषहजयं वा, अयं चोपनीतः अयं चोपनीतः अयमनयोरुपनीततरः, ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु यस्याऽऽत्मा उपनीततरः स भवति उपनीततरः । त्रायतीति त्राता, स च त्रिविधः—आत्म० पर० उभयत्राता जिनकल्पिका-ऽर्हद्-गच्छवासिनः । भयमाणस्स विवित्तमासणं, इत्थी-पसु-पंडगविरहितं विवित्तं, आसनग्रहणादुपाश्रयोऽपि गृहीतः । सामाइयमाहु तस्स तं, समभावः सामाइयं, तस्सेवंगुणजातीयस्स सामायिकम्, कतर ?, चारित्तसामाइयं, आहु उक्तवानिति, तित्थकरो अज्जसुधम्मो वा सिस्साणं कथेति । तस्य चारित्रधर्मः किं करोति ?, यः आत्मानं भये न दर्शयति, न क्षुभ्यत इत्यर्थः ॥ १७ ॥ किञ्चान्यत्—

१२७. उसिणोदग[10]-तत्तभोयणो[11], धम्मट्ठिस्स[12] मुणिस्स [13]हीमतो ।
संसग्गि असाधु रायिहिं[14], असमाधी तु तधागतस्स वि ॥ १८ ॥

१२७. उसिणोदग-तत्तभोयणो० वृत्तम् । उसिणग्रहणात् फासुगोदग-सोवीरग-उण्होदगादीणि गहिताणि, तप्तग्रहणात् स्वाभाविकस्याऽऽतपोदकादेः प्रतिषेधार्थः । धर्मेण यस्यार्थः स भवति धम्मट्ठी । "ह्री लज्जायाम्" असंयमं प्रति ह्रीर्यस्यास्ति स ह्रीमान्, तस्य ह्रीमतः, स हि लोके शीतोदकं पिवन् लज्जते, ह्रीयत इत्यर्थः । तस्यैवमप्रमत्तस्य सतः संसग्गि असाधु रायिहिं राजादिभिस्तस्यासाध्वी । कथम् ?, रिद्धिं दृष्ट्वा ता मा भून्मूर्च्छां कुर्यात्, मूर्च्छितश्च असमाधी भवति तधागतस्स वि त्ति वैराग्यगतस्यापि । अथवा यथाऽन्ये, यथा ज(जि)नादयो गता वीतरागा तथा सो वि अप्रमादं प्रति गतः ॥ १८ ॥

---

१ मणुया य दिव्वगा ख २ । मणुया व दिव्विगा ख १ पु १ पु २ ॥ २ °हाऽहियासिया ख २ वृ० दी० । °हाऽधिया-सिया ख १ पु २ । °हाऽधियासए पु १ ॥ ३ लोमायियं पि ख १ पु १ पु २ ॥ ४ णो आवऽभिकखे जी° ख १ । णो अभिकंखेज्ज जी° ख २ पु १ वृ० दी० । णो अभिकंखेइ जी° पु २ ॥ ५ अब्भत्थ (अप्पऽब्भइय) मुवेंति चूपा० । अब्भत्थमु-वेंति ख २ । अज्झत्थमुविंति पु १ पु २ ॥ ६ °त्थ भवति चूसप्र० ॥ ७ विविक्कमा° ख २ ॥ ८ जं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ देसए पु १ ॥ १० °ग-भत्त° ख २ ॥ ११ °भोइणो पु १ पु २ ॥ १२ धम्मठियस्स खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ ह्रीमतो ख १ खं २ पु २ ॥ १४ रायहि ख २ पु २ ॥

इदाणिं प्रमत्ता उच्यन्ते—

१२८. अ[1]धिकरणकरस्स भिक्खुणो, वदमाणस्स [2]पसज्झ दारुणं।
अट्ठे परिहा[3]यते धुवं, अधिकरणं ण करे[4]ज्ज संजते ॥ १९ ॥

१२८. अधिकरणकरस्स भिक्खुणो० वृत्तम्। अधिकरणं करोतीति अधिकरणकरः। प्रसह्येति आक्रम्य पर परिभवात्। सम्बन्धस्नेहसन्ततिं दारयतीति ततः **दारुणं**। **अट्ठे परिहायते धुवं**, अर्थो नाम मोक्षार्थः, तत्कारणादीनि च ज्ञानादीनि परिहायंति। [उक्तं च—]

ज अज्जियं समीखल्लएहिं तव-णियम-बंभमइएहिं। मा हु तयं छड्डेहिध बहुतरयं सागपत्तेहिं ॥ १ ॥
[कल्पभाष्ये गा० २७१४,५७४६]

एतेण कारणेण **अधिकरणं ण करेज्ज संजते**, स्वपक्ष-परपक्षाभ्यामिति वाक्यशेषः ॥ १९ ॥

तस्यैवाधिकरणमकुर्वाणस्य—

१२९. सीतोदगपडिदुगुंछिणो, अपडिण्णस्स लवाव[6]सक्किणो।
सामायिकमाहु त[7]स्स तं, जं गिहिमत्तेऽसणं ण भक्खति ॥ २० ॥

१२९. सीतोदगपडिदुगुंछिणो० वृत्तम्। **सीतोदगं** णाम अविगतजीवं अफासुगं **प्रतिदुगुंछति** णाम ण पिवति, यो हि यन्नाऽऽसेवति स तद् जुगुप्सत्येव, जधा धीयारा [8]गोमांस-मद्य-लसुन-पलण्डुं दुगुंछंति, न केवलं धीयारा गोमांस दुगुंछंति तदाशिनोऽपि जुगुप्संति। **अपडिण्णो** णाम अप्रतिज्ञः, नास्य प्रतिज्ञा भवति यथा मम अनेन तपसा इत्थं णाम भविष्यतीति, त जधा—"णो इधलोगट्ठताए तवं करोति०" [दशवै० अ० ९ सू० ९] जधा **ध[9]म्मिल्ल-बंभदत्ता** [धम्मिल्लहिंडी पत्र ५२, उत्तरा० अ० १३] आहार-उवधि-पूयाणिमित्तं वा अप्रतिज्ञः। **लवं** कर्म, येन तत् कर्म भवति तत आश्रवात् स्तोकादपि **अवसकाति**। तस्यैवंविधस्य **सामायिकमाहु तस्स तं** तदेवास्य **सामायिकं** चारित्रसामायिकम्। यत् किं न करोति? **जं गिहिमत्ते असणं ण भक्खति**, मा भूत् पच्छाकम्मदोसो भविस्सति। णट्ठे हिते वीसरिते स एव सीतोदगवधः स्यादिति ॥ २० ॥ किञ्च—

१३०. [10]ण य संखतमाहु जीवितं, तध वि य बालजणो पग[11]ब्भति।
बाले पावेहि मि[12]ज्जती, इति सं[13]खाय मुणी ण मज्जती ॥ २१ ॥

१३०. ण य संखतमाहु जीवितं० वृत्तम्। ण हि छिण्णतन्तुवद् इदं जीवितं पुनः शक्यते सस्कर्तुम्। **तथेति** तेन प्रकारेण **बालजणो** णाम असंयतजनः **प्रगल्भीभवति**, प्राणातिपातादिपु प्रवर्त्तमानो धृष्टो भवतीत्यर्थः। स एव बालः पापेपु कर्मसु प्रगल्भीभवन् तैरेव **बाले पावेहि मि[14]ज्जती** हिंसा[15]दीहिं तज्जणिएण वा कर्मणा मानभा[16]ण्डमिव **मीयते** पूर्यत इत्यर्थः, **"मार्यते"** वा संसारे। **इति संखाय मुणी ण मज्जती**, इति संखाय त्ति एव परिगणय्य ण **मज्जति** त्ति न मदं कुर्यात् न क्रुध्येत ॥ २१ ॥ मानाधिकार एव अस्मिन्नुद्देशके वर्ण्यते, तेण **इति संखाए मुणी ण मज्जती**। क्रोधो मानेऽपि गृहीतो। लोभस्तु—

१३१. [17]छंदेण प[18]लेतिमा पया, बहुमाया-मोहेण पाउडा।
वियडेण पलेति माहणे, [19]सीयुण्हं वयसाऽधियासए ॥ २२ ॥

---

१ अहिगरणकडस्स ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ पसज्ज ख १ पु २ ॥ ३ °यती वह्न ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ °ज्ज पंडिए ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ "त दाइ पच्छ नाहिसि छड्डेंतो सागपत्तेहिं।" इति रूपमुत्तरार्द्धं कल्पभाष्ये ॥ ६ °सप्पिणो वृ० दी० ॥ ७ तस्स जं, जो गिहिमत्तेऽसणं न भुंजती ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। गिहिमत्ते स्थाने गिहिमत्त इति पाठ ख १ ख २ ॥ ८ "अविला-करहीखीर लसुण पलडु सुरा य गोमस। वेयसमए वि अमय" इति पिण्डनिर्युक्तौ गा० १९४ पत्र ७१-२ ॥ ९ धम्मिल्ल-ब्रह्मदत्तावित्यर्थ ॥ १० "असखय जीविय मा पमायए" उत्त० अ० ४ गा० १ ॥ ११ °ब्भती ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १२ मज्जती पु १ चूपा० ॥ १३ संखात ख १ पु १ ॥ १४ मज्जति चूसप्र० ॥ १५ °दीएहिं पु० ॥ १६ °भण्ड पु० विना ॥ १७ छण्णेण चूपा० ॥ १८ पले इमा पया ख १ पु २ ॥ १९ सीउण्हं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

१३१. छंदेण पलेतिमा पया० वृत्तम् । छंदो णाम लोभः इच्छा प्रार्थना, तेण छंदेण प्रलीयतेयं प्रजा तासु तासु गतिषु भृशं लीयते गच्छति । पठ्यते च—"छण्णेण पलेतिमा पया" छण्णेणेति डंभेणोवहिणा वा कूटतुल-कूटमानादिभिः, तथा हिंसादिषु कर्मसु प्रवर्त्तते दम्भेनैव, पलायितुमिच्छति कर्मबन्धात् । यथा मारेंतो वि य देवसुवरिं छुभत्ति—महर्षिप्रणीतोऽयं मार्गः, तथा चित्तं न दूषयितव्यमिति । पाषण्डिनोऽपि शाक्यादयः छण्णेण पलायितुमिच्छन्ति कर्मबन्धात्, तद्यथा—सङ्घसतगा ग्रामाः दासी-दास-हिरण्यादि च, ते उपासगसंता वा । भागवता ब्रुवते–सव्वं देवो करेति । यथा छण्णेण तथा लोभादिभिरपि । बहुमायेति उक्कंचणादि, पापण्डिनोऽपि मायाबहुला कुक्कुडेहिं लोअं उवचरति । उक्तं हि—

कुक्कुटसाध्यो लोको नाकुक्कुटतः प्रवर्त्तते किञ्चित् । तस्माल्लोकस्यार्थे पितरं[1] सत्कुर्कुटं कुर्यात् ॥ १ ॥

[ ]

चित्तप्रामाण्यं वर्णयन्ति । मोहो नाम अज्ञानं तेन प्रावृताः छादिता इत्यर्थः । शासनाश्रितास्तु वियडेण पलेति माहणे, भावेनेति वाक्यशेषः, तेनाकुटिलेन अविकुत्थितेनाजिम्हेन । कुतः प्रलीयते ?, संसारात्, न केवलमात्मशुद्ध्या पलीयते, बाह्येनापि प्रलीयते । तद्यथा–सीउण्हं[2] वयसाऽधियासए, सीते अप्रावृतः, उण्हे आतापयति, अथवा सीता अनुलोमाः, उष्णाः प्रतिलोमाः, वयसेति वाचा । यथा वयसा तथा मणसा वि, एवं सेसिंदियदमो वि ॥ २२ ॥

किंच जं बहुप्पसण्णं[3] तं गेण्हाहि चिट्ठंते—

१३२. कुजए अपराजिते जधा, अक्खेहिं कुसलेहिं दिव्वं[4] ।
कडमेव गहाय क्का[5] णो कलिं १, णो त्रेतं ३ णो चेव दावरं २ ॥ २३ ॥

१३२. कुजए अपराजिते जधा० वृत्तम् । कुत्सितो जयः कुजयः, द्यूतकरत्वमित्यर्थः । कुजयः जूतेण थोवं विढप्पति । यद्यपि अपराजितो अक्खेहि देवताप्रसादेन वा अक्खहितएण वा अपराइतो तथापि कुच्छित एव जयः । अक्खा पासका । "दिव् क्रीडा-व्यवहारयोः" अक्षैर्दीव्यतीति दिव्यम्, दिव्य चास्यास्तीति दिव्यवान् क्रीडावान् । जध सो दिव्वं कडमेव गहाय क्का णो कलिं १ णो त्रेतं ३ णो चेव दावरं २ ॥ २३ ॥ उवसहारः—

१३३. एवं लोगंसि[7] ताइणो[8], बुइतेऽयं[9] धम्मे[6] अणुत्तरे ।
तं गेण्ह[10] हितं ति उत्तमं[11], कडमिव सेसऽवहाय पंडिते ॥ २४ ॥

१३३. एवं लोगंसि ताइणो० वृत्तम् । एवं अनेन प्रकारेण, अस्मिंल्लोके पापण्डलोगे वा, ताइणो त्ति आत्म-परोभयत्रायिणो जिन-तीर्थकर-स्थविराः, बुइते उक्तः, अयं ति इमो जइधम्मो सुत-चरित्तधम्मो य, अणुत्तरे बहुफले, अतुल्ये इत्यर्थः । तं गेण्ह हितं ति उत्तमं, तमिति तं धर्मं गेण्हाहि इहलोए परलोए य हितं, इहलोए आमोसहि[माइ]लद्धीओ [आव० नि० गा० ६९-७०], परलोए सिद्धी देवलोग-सुकुलपच्चायादी । ते इति तस्य ग्राहकस्य निर्देशः । उत्तमः प्रधानः, धर्म इति वर्त्तते कडमिव द्यूतकरवत् सेसा तिण्णि आता पासत्था अण्णतित्थिया गिहत्था य अवहाय छड्डेत्ता । को भवति ?, उच्यते, पंडितो भवति ॥ २४ ॥ किञ्च–एषा हि शब्दादीना त्वक्परीषह एव गरीयान् अत एवोच्यते—

१३४. उत्तर मणुयाण आहिता, गामधम्म इति[12] मे अणुस्सुतं ।
जंसी विरता समुट्ठिता, कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥

१३४. उत्तर मणुयाण आहिता० वृत्तम् । उत्तरा नाम शेपविपयेभ्यः ग्रामधर्मा एव गरीयांसः । यथा मयाऽनुश्रुतं स्थविरेभ्यः, तैः पूर्वं श्रुतम्, पश्चात् तेभ्यो मयाऽनुश्रुतम् । उक्तं हि—

---

१ पितरमपि सकुर्कुटं वृत्तौ ॥ २ सीउण्हं वा० मो० ॥ ३ बहुप्पणहंलं तं चूसप्र० ॥ ४ दीवयं ख २ वृ० दी० । दिव्वयं पु १ पु २ ॥ ५ क्का इति चतु सरत्यायोतकोऽक्षराङ्क, ४ इत्यर्थ ॥ ६ तेयं ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ७ लोगम्मि ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ ताइणा ग १ म २ वृ० दी० । तातिणा पु १ ॥ ९ वुइए जे धम्मे ख २ पु १ वृ० दी० ॥ १० गिण्ह ख २ पु १ पु २ ॥ ११ उत्तिमं पु १ ॥ १२ °धम्मा ति मे ख २ । °धम्मा इ मे पु १ । °धम्मे इइ मे पु २ ॥

सुखस्यातिरसः स्वर्गः, स्वर्गस्यातिरसः स्त्रियः। गवामतिरसः क्षीरं, क्षीरस्यातिरसो घृतम् ॥ १ ॥

[ ]

सर्व एव [वा] विषयग्रामधर्माः। अथवा उत्तराः शब्दादयो ग्रामधर्मा मनुष्याणां चक्रवर्ति-बलदेव-वासुदेव-मण्डलिकानाम्। तेसु उत्तरेसु वि जंसि विरता समुट्ठिता जासु इत्थिगासु सम्यग् उत्थिताः समुत्थिताः। कासवस्स अणुधम्मचारिणो, काश्यपः वर्द्धमानस्वामी, काश्यपचीर्णानुचरणशीलाः कासवस्स अणुधम्मचारिणो। अथवा ऋषभ एव काश्यपः, तेन चीर्णमनुचरन्ति यथोद्दिष्टम् ॥ २५ ॥

१३५. जे एत करंति आहितं, णायएण महता महेसिणा।
ते उट्ठित ते समुट्ठिता, अण्णोण्णं सारेंति धम्मतो ॥ २६ ॥

१३५. जे एत करंति आहितं० वृत्तम्। जे इति अणिद्दिट्ठणिद्देसो। जे अणुधम्मचरितं कुर्वन्ति **आहितं** आख्यातम्। केण?, **णायएण महता** ज्ञातकुलीयेन। केन **महता**? इति, ज्ञातृत्वेऽपि सति राजसूनुना केवलज्ञानवता वा। महाँश्चासौ ऋषिश्च **महर्षिः**, अथवा मोक्षेसिणा। **ते उट्ठित ते समुट्ठिता,** उत्थिता नाम मोक्षाय, सम्यगुत्थिताः **समुत्थिताः**, न यमालिवत् [भगवती श० ९ उ० ३३]। शाक्यादयोऽपि हि मोक्षार्थमभ्युत्थिताः। **अन्योन्यं** च सीदंतं **सारेंति धर्मत** इति धर्मे सीदन्तं धम्मियाए पडिचोदणाए, अथवा धर्मे स्खलितं स्खलन्तं वा धम्मियाए पडिचोदणाए धम्मिएणं पडोआरेणं ॥ २६ ॥ धर्मे सम्यगवस्थितश्च भूत्वा—

१३६. मा पेह पुरा पणामए, अभिकंखे उवधिं धुणित्तए।
जे दूवणतेहिं णो णता, ते जाणंति समाहिमाहितं ॥ २७ ॥

१३६. मा पेह पुरा पणामए० वृत्तम्। "अ-मा-नो-नाः प्रतिषेधे" [ ] मा प्रेक्षस्व, पुरा नाम पुव्वकालिए पुव्वरत-पुव्वकीलितादि। प्रणामयन्तीति **प्रणामकाः** दुग्गतिं संसारं वा प्रति धर्मे स्थितम्। सङ्क्षेपार्थस्तु—पुव्वकीलितं ण सुमरेज्जा, धर्मं वा प्रति प्रणामयेदात्मानम्। **उवधिं** दव्वे हिरण्णादि, भावोवधिं अट्ठविधं कम्मं। अभिमुखं कंखेज्जासि त्ति **अभिकंखे उवधिं धुणित्तए**। मानाधिकारेऽनुवर्त्तमाने **जे दूवणतेहिं णो णता,** जे इति अणिद्दिट्ठणिद्देसो, दुष्टं प्रणताः **दूपनताः** शाक्यादयः, ते हि मोक्षाय प्रपन्ना अपि विषयेषु प्रणता रसादिषु, नेति प्रतिषेधे, आरम्भ-परिग्रहेषु ये न नताः। **ते जानन्ति समाहिमाहितं,** त एव ज्ञानवन्तः ये सम्यङ्मार्गाश्रिताः, न तु अज्ञानिनः, न वा समाधिं याणंति। **समाधिर्नाम** राग-द्वेषपरित्यागः ॥ २७ ॥ स एवं समाधिमार्गावस्थितः—

१३७. णो काधीए होज्जा संजते, पासणिए ण य संपसारए।
णच्चा धम्मं अणुत्तरं, कतकिरिए य णं यावि मामके ॥ २८ ॥

१३७. णो काधीए होज्जा संजते० वृत्तम्। कथयतीति **कथिकः**, अक्खाणगाणि गोयरग्गगतो उवस्सयगतो वा अप्रतिमानो कथयति **कथिकः**। **पासणिओ** णाम गिहीणं व्यवहारेषु प्रस्तुतेषु पणियगादिषु वा प्राश्निको न भवति, अपाया तत्थ, जो जिव्वति तस्स अप्पियं भवति। **संपसारको** नाम सम्प्रसारकः, तद्यथा—इमं वरिसं किं देवो वासिस्सति ण व? त्ति, किं भडं अग्घहिति वा न वा?, उभयथाऽपि दोषः, अधिकरणसम्भवात् अग्घिहिति ण वहि त्ति। **णच्चा धम्मं अणुत्तरं** एवंविधेन न भाव्यम्। **कतकिरिओ** णाम कृतं परैः कर्म पुट्ठो अपुट्ठो वा भणति शोभनमशोभन वा एवं कर्त्तव्यमासीद् न वेति वा। **मामको** णाम ममीकारं करोति देसे ग्रामे कुले वा एगपुरिसे वा ॥ २८ ॥

---

१ एय चरंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ णातेणं महता ख १ पु १ पु २ ॥ ३ हणित्तए वृ०। धुणित्तए दी० ॥ ४ दूमणतेहिं खं १ ख २ पु १ पु २ वृपा० दी० ॥ ५ काहिते होज्ज ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ ण तावि ख २ ॥ ७ मामते ख १ पु १ ॥

किञ्च—अयं चान्यः कर्मविदालनोपायः, तद्यथा—

१३८. छण्णं च पसंस णो करे, ण य उक्कास पगास माहणे।
तेसिं सु[1]विवेगमाहिते, पण[2]ता धम्मे सुज्झोसितं धुतं ॥ २९ ॥

१३८. छण्णं च पसंस णो करे० वृत्तम्। द्रव्यच्छन्नं निधानादि, भावच्छन्नं माया। भृशं शंसा प्रार्थना लोभः। **उक्कासो** मानः। प्रकाशः क्रोधः, स हि अन्तर्गतोऽपि नेत्र-वक्त्रादिभिर्विकारैरुपलक्ष्यते। उक्तं हि—"कुद्धस्स खरा दिट्ठी०" [ ] य एव कषायनिग्रहोद्यताः **तेसिं सुविवेकः** गृह-दारादिभ्यो विवेको बाह्यः, आभ्यन्तरस्तु कषायविवेकः, **आहितं** आख्यातम्। **सुविवेगो** त्ति वा सुणिक्खंतं ति वा सुपव्वज्ज त्ति वा एगट्ठं। भृशं नताः **प्रणताः**। कुत्र नताः?, धर्मे वा। **सुज्झोसितं** ति "जुषी प्रीति-सेवनयोः"। धूयतेऽनेनेति **धुतं**। ज्ञानादि संयमो वा येषां **सुज्झोसितं** स्वभ्यस्तं **तेसिं सुविवेगमाहिते** ॥ २९ ॥ स एवं विदालनामार्गमाश्रितः—

१३९. अ[3]णिहे सहिते सुसंवुडे, धम्मट्ठी उवधाणवीरिए।
विहरेज्ज समाहितेंदि[4]ए, आतहितं दुक्खेण लब्भते ॥ ३० ॥

१३९. अणिहे सहिते सुसंवुडे० वृत्तम्। **अनिहो** नाम अनिहतः परीषहैः, तपःकर्मसु वा नाऽऽत्मानं निधयति। ज्ञानादिषु सम्यग्[5] हितः **सहितः**, णाणादीहि ३ आत्मनि वा हितः **स्वहितः**, अथवा यस्त्रिगुप्तः स[6] **सहितः**। धर्मेण यस्यार्थः स भवति **धम्मट्ठी**। भावोवधाणवीरियसयुक्तः तवे बारसविधे। स एवंगुणजुत्तो **विहरेज्ज समाहितेंदिए** अनियतवासित्वं गृह्यते, समाहितो निगृहीतेन्द्रियत्व च। उक्तं हि—

सद्देसु य भद्दय-पावएसु सोतविसयं उवगतेसु। तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सदा ण होतव्वं ॥ १ ॥
[ज्ञाता० श्रु० १ अ० १७ सू० १३५ पत्र २३३-१]

एव सेसिंदियविसएसु वि। स्यात्—किमर्थं एवंविधः प्रयत्नः क्रियते अतिदुःखश्च?, उच्यते, **आतहितं दुक्खेण लब्भते,** त जधा—"माणुस्स खेत्त जाती०" [आव० नि० गा० ८३१] गाधा ॥ ३० ॥

स्यात्—कथं अनादिमति ससारे अयमात्मा न पूर्वमेवानेन पथा प्रयातः? इति, उच्यते—

१४०. ण हि णूण पुरा म[7]ऽणुस्सुतं, अ[8]दुवाऽवितधं णो अधिट्ठितं।
मुणिणा सा[9]माइगं पदं, णा[10]तएण जगसव्वदंसिणा ॥ ३१ ॥

१४०. ण हि णूण पुरा मऽणुस्सुतं० वृत्तम्। नेति प्रतिषेधे। **हि** पादपूरणे। **नूनं** अनुमाने। **पुरा** इ[11]ति अतिक्रान्तकालग्रहणम्। अनुगत श्रुतं **अनुश्रुतम्**। किञ्च तत्?, उच्यते, व[12]क्ष्यते हि—"**मुणिणा सामाइयं पदं।**" अथवा सुणेत्ता वि **अवितधं णो अधिट्ठितं,** अवितहं णाम यथावत्, अधिट्ठितं णाम करणे। तदिदं **मुनिना सामाइगं पदं** आख्यातमित्यर्थः। समता सामाइयं, तच्च अनेकप्रकारम्। कतरेण मुणिणा तदाख्यातम्?, **णातएण जगसव्वदंसिणा,** जगे सव्वं पस्सतीति जगसव्वदसी ॥ ३१ ॥

---

१ च विवेग° वृ० दी०। सुविवेग° वृपा० दीपा० ॥ २ °ता जेहिं सु° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ अणहे वृपा० ॥ ४ °हिदंदिए आयहियं खु दुहेण लब्भई ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ सम्यगाहितः समाहित॰, णाणा° चूसप्र० ॥ ६ समाहितः चूसप्र० ॥ ७ मे+अणुस्सुत=मऽणुस्सुत। अणुस्सुतं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ अदुवा तं तह णो समुट्ठियं खं १ ख २ पु १ पु २। अदुवा तं तह णो अणुट्ठियं वृ०। अदुवाऽवितहं णो अणुट्ठियं वृपा० ॥ ९ सामाइताऽऽहितं, णा° ख १ पु १ पु २। समयाहियाहियं, णा° ग २ ॥ १० णाएणं जग° पु १ पु २ ॥ ११ इति क्रमाद् अति° वा० मो० ॥ १२ अस्यामेव सूत्रगाथायां तृतीयचरणरूपेण ॥

१४१. [1]**एवं माता महंतरं, धम्ममिमं सहिता बहू जणा।**
गुरुणो [2]**छंदाणुवत्तगा, विरता तिण्ण** [3]**मधोघमाहितं ॥ ३२ ॥ त्ति बेमि ॥**

॥ [वेतालियस्स] वितिओ उद्देसओ सम्मत्तो २-२ ॥

१४१. एवं माता महंतरं० वृत्तम्। **एवं** अवधारणे। महदन्तर **मत्वा** ज्ञात्वा। तत् कस्य कयोः केषां वा ?, उच्यते, सुत्तस्स य असुत्तस्स य, विरतीए अविरतीए, मोक्खसुहस्स संसारसुहस्स य, सच्छासनस्य मिथ्यादर्शनानां च। अथवा–"इमं धम्मं महत्तरं मत्वा" कुप्रवचनेभ्यः। **सहिता** नाम ज्ञानादिभिः [4]**बहवो जना** इति अणंतातीतकाले सिद्धाः सपदं च। **गुरुणो छंदाणुवत्तगा,** गुरवः तीर्थकरादयः, छन्दः अभिप्रायः। **विरता** भूत्वा विषय-कषायेभ्यः **तीर्णा** [5]**मधोघं** तरन्ति च। द्रव्यौघः समुद्रः, भावौघस्तु ससारः। **आहितं** आख्यातं कथितमित्येकोऽर्थः ॥ ३२ ॥

॥ इति [वैतालीये] द्वितीयोद्देशकः समाप्तः २-२ ॥

[वेयालियज्झयणे तइओ उद्देसओ]



सूयणाधिकारे प्रस्तुते विदारणाधिकारोऽनुवर्त्तते। उक्तं हि–"**उद्देसगम्मि ततिए अण्णाणचियस्स अवचयो होहि।**" [नि० गा० ३३] स च सुहसातस्स ण भवति, परीषहसहिष्णोर्भवति। स कथम् ?, उच्यते—

१४२. संवुडकम्मस्स भिक्खुणो, जं दुक्खं पुट्ठं अबोधिए।
तं संजमतो विचिज्जती, मरणं हेच्च वयंति पंडिता ॥ १ ॥

१४२. संवुडकम्मस्स भिक्खुणो० वृत्तम्। संवृतानि यस्य प्राणवधादीनि कर्माणि स भवति **संवुडकम्मा**। इन्द्रियाणि वा यस्य संवृतानि स भवति सवृतः, निरुद्धानीत्यर्थः। यस्य वा यत्नवतः चंकमणादीणि कम्माणि सवृतानि, अथवा मिथ्यादर्शना-ऽविरति-प्रमाद-कषाय-योगा यस्य संवृता भवन्ति स **संवृतकर्मा**। भिक्खणसीलो **भिक्खू**। **जमिति** अणिद्दिट्ठणिद्देसो। **दुक्खमिति** कम्मं। **पुट्ठं** णाम बद्ध-पुट्ठ-णिधत्त-णिकाइतं। **अबोधिए** णाम अण्णाणेण धम्मं अबुज्झमाणेणं यावन्न ताव सुबध्यते स्म। **तं संजमतो विचिज्जती,** तं पंचणालिविहाडिततडागदृष्टान्तेन निरुद्धेसु च नालिकामुखेसु वाता-ऽऽतपेनापि शुष्यते, ओसिञ्चमाणं च सिग्घतर सुक्खति, एवं सयमेन निरुद्धाश्रवस्य पूर्वोपचितं कर्म क्षीयते। आह–तपः कर्मक्षयाय ?, उच्यते, सयमोऽपि तपोऽभ्यन्तर एव उक्तः, [7]दशप्रकारा इन्द्रियादिसंलीनता उक्ता–इंद्रियपडिसलीणता ५ जोगपडिसलीणता ६ कसायपडिसलीणता १०। सवृतात्मनस्तु अनशना-ऽवमौदर्यादितपोयुक्तस्य उत्सिच्यमानमिवोदकं क्षिप्रं कर्मापचीयते, सेलेसिं पडिवण्णो उक्कोसो सवुडो। मणुस्ससतियं **मरणं हेच्च वयंति पंडिता** [9]मोक्षम्, अथवा म्रियते येन तद् मरणम्, तच्च कर्म ससारो वा, तं हित्वा व्रजन्ति मोक्षं पण्डिताः ॥ १ ॥ येऽपि नाम न मोक्षं तेनैव भवग्रहणेन व्रजन्ति तान् प्रतीत्यापदिश्यते—

१४३. जे विण्णवणाहिऽ[10]**झूसिता, संतिण्णेहि समं वियाहिता।**
[11]**तम्हा उड्ढं ति पासधा, अद्दक्खू कामाणि रोगवं ॥ २ ॥**

---

१ एवं मंता महत्तरं धम्ममिणं स° ख २ वृ० दी०। एवं मत्ता महंतरं धम्ममिणं स° ख १ पु १ पु २। एवं माता महत्तरं धम्ममिमं स° चूपा० ॥ २ छंदोऽणुयत्तगा ख १ पु २ ॥ ३ महोघ° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ बहुवचना चूसप्र० ॥ ५ भावौघं चूसप्र० ॥ ६ °मओऽवचिज्जई ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ भगवत्या श० २५ उ० ७ सू० ८०२ पत्र ९२१ तथा औपपातिकोपाङ्गे सू० १९ पत्र ४० मध्ये सलीनता सप्रभेदा व्यावर्णिता वर्त्तते ॥ ८ °नाव्यामादितपो° चूसप्र० ॥ ९ मोक्खं, वा० मो० ॥ १० °ऽज्झोसिया ख १ ख २ पु २। अजोसिता पु १ ॥ ११ उड्ढं तिरियं अधे तिधा चूपा० वृपा०। तिधा स्थाने वृपा० तहा वर्त्तते ॥

१४३. जे विण्णवणाहिऽझूसिता० वृत्तम् । विज्ञापयन्ति रतिकामाः विज्ञाप्यन्ते वा मोहातुरैर्विज्ञापनाः स्त्रियः, "जुषी प्रीति-सेवनयोः" अझूषिता नाम अनाद्रियमाणा इत्यर्थः, विज्ञापनासु हि पञ्चापि विषयाः स्वाधीनाः शब्दादयः । उक्तं हि—

पुप्फ-फलाणं च रसं सुराए मसस्स महिलियाण च । जाणंता जे विरता ते दुक्करकारए वंदे ॥ १ ॥

[ ]

अस्पृष्टा वा ताभिः कौमारब्रह्मचारिणः ते संतिण्णेहि समं वियाहिता, सम्यक् तीर्णाः संवृतात्मानो भूत्वा संसारौघं तीर्णाः, मोक्षं जिगमिषवोऽपि हि अतीर्णा अपि तीर्णा इव प्रत्यवसेयाः । विविधं आहिता वियाहिता । तम्हा उड्ढं ति पासधा, तस्मादिति तस्मात् कारणाद् यस्माद् विज्ञापनासु अजूषिता संतिण्णेहि समं वियाहिया । तीर्णमवन्धकत्वं च प्रति समाः । ऊर्द्धमिति मोक्षः तत्सुखं वा, तं दृष्ट्वा कामभो[गा रो]गवद् द्रष्टव्याः, पक्वार्बुदपरिश्रावणवत् व्रणालेपनवद्वा । पठ्यते च—"उड्ढं तिरियं अधे तिधा" उड्ढं दिव्वा कामा, अधे भवणवासिणं, तिरियं तिरिक्ख-मणुस्सजोणि-वाणमंतरा । ते तिविधे वि य दृष्ट्वा कामाणि रोगवद् अधिकं अत्यर्थं वा । यथा रोगा दुक्खावहा एवं कामा अपि, अट्ठविधकम्मरोगापन्नो सो भवति । एवं सेसाणि वि आसवदाराणि जोएयव्वाणि ॥ २ ॥ एयं सवुडत्तणं विरडं च कहं तरेज्ज ? दिट्ठंतो—

१४४. अग्गं वणिएहि आणियं, धारेंती रायाणया इहं ।
एवं परमाणि महव्वताणि, अक्खाताणि सरातिभोयणाणि ॥ ३ ॥

१४४. अग्गं वणिएहि आणियं० वृत्तम् । यदुत्तमं किञ्चित् तदग्गं, तद्यथा वर्णतः प्रकाशतः प्रभावतश्चेत्यादि, तच्च रत्नादि, तत्तु द्रव्यं वणिग्भिरानीतं राजानो धारयन्ति तत्प्रतिमा वा । तत्तु वस्त्रमाभरणादि वा, तथैव चाश्वो हस्ती स्त्री पुरुषो वा, यो वा यस्मिन् क्षेत्रे प्रधानः स तत्र तत् प्रधान द्रव्यं धारयति, शब्दादिविषयोपगतः परिभुङ्क्ते इत्यर्थः । राजस्थानीया जीवाः, जेहिं मिच्छत्तादिदोसा खविता खयोवसममाणिता वा बारसविधा वा कसाया ते परमाणि महव्वतरयणाणि रातीभोयण-वेरमणछट्ठाणि राजान इवाग्र्याणि रत्नानि वणिग्भिरानीतानि धारयन्तीति । अग्रं प्राधान्यम् । पूर्वदिग्निवासिनामाचार्याणा-मर्थः । प्रतीच्यापरदिग्निवासिनस्त्वेवं कथयन्ति—एते "जे विण्णवणाहिं अझोसिता संतिण्णेहि समं वियाहिता" [सूत्रगा० १४३] ते, न सर्व एवायं लोकः महाव्रतानि प्रतिपद्यते [इति] उच्यते—अग्गं वणियेहि आहितं, अग्गाणि वराणि रयणाणि वणिग्भिरानीतानि धारयन्ति शतसाहस्राण्यनर्घेयाणि वा राजान एव धारयन्ति, तत्तुल्या तत्प्रतिमा वा । कियन्तो लोके हस्तिवणिजः क्रायिका वा ? एवं परमाणि महव्वताणि रत्नभूतान्यतिदुर्द्धराणि, तेषामल्पा एवोपदेष्टारो धारयितारश्च ॥ ३ ॥

१४५. जे इध सायाणुगा णरा, अज्झोववण्णा कामेसु मुच्छिता ।
किमणेण समं पगब्भिता ?, ण वि जाणंति समाहिमाहितं ॥ ४ ॥

१४५. जे इध सायाणुगा णरा० वृत्तम् । जे इति अणिद्दिट्ठणिद्देसो । सायं अणुगच्छतीति सायाणुगा इहलोग-परलोगनिरवेक्खा । एव इड्ढि-रस-सायगारवेसु अज्झोववण्णा अधिकं उपपण्णा अज्झोववण्णा, तस्सिन्नेव सोतिंदियादिसाए इच्छा-मदणकामेसु य मुच्छिता गिद्धा गढिता अज्झोववण्णा । किमणेण समं पगब्भिता, ते वि अइयारेसु पसज्जमाणा यदा परैश्चोद्यन्ते तदा ब्रुवते—किमनेन स्वल्पेन दोषेण भविष्यति ?, वितध वा दुप्पडिलेहित-दुब्भासित-अणाउत्तगमणादि ? । एवं थोवथोवं पावमायरता पदे पदे विसीदमाणा सुबहून्यपि पापान्याचरन्ति । उक्तं च—

करोत्यादौ तावत् सघृणहृदयः किञ्चिदशुभं० [ ]

---

१ °या तृष्टमव° चूसप्र० ॥ २ आहियं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० । आहित आहृतमिति वा योऽर्थ ॥ ३ राईणिया ख १ ख २ पु १ । रायाणिया पु २ ॥ ४ एवं परमा महव्वता, अक्खाया उ सराइभोयणा ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ °णामार्थ. । प्रतीच्या अपर° चूसप्र० ॥ ६ एते इत्यर्थ ॥ ७ आहितं आहृतम्, आनीतमित्यर्थ ॥ ८ कामेहिं वृ० दी० ॥ ९ किवणेण ख २ पु १ वृ० दी० । किमणेण इति ख १ पु २ वृपा० दीपा० ॥ १० श्रोत्रेन्द्रियादिसाते श्रोत्रेन्द्रियादिसुखे इत्यर्थ ॥

दिट्ठंतो जधा–एगस्स सुद्धे वत्थे पंको लग्गो। सो चिंतेति–किमेत्तियं करिस्सति? त्ति तत्थेव हसितं, एवं वितियं मसि-खेल-सिंघाणग-सिणेहादीहि सव्वं मइलीभूतं ॥

अधवा **मणिकोट्टिमे** चेडरूवेण सण्णा वोसिरिता, सा तत्थेव घट्टा। एवं खेल-सिंघाणादीणि वि 'किमेताणि करिस्संति?' त्ति तत्थेव तत्थेव घट्टाणि। जाव तं मणिकोट्टिमं सव्वं लेक्खादीहि–श्लेष्मादिभिः मलिनीभूतं दुग्गंधिगं च जातं। **भद्दगमहिसो** वि एत्थ दिट्ठंतो भाणितव्वो [ ]। **आं[1]वभक्खी राया** दिट्ठंतो य [उत्त० अ० ७ गा० ११]।

एवं पदे पदे विसीदंतो किमणेण दुब्भासितेण वा स्तोकत्वादस्य चरित्तपडस्स मलिणीभविस्सति? जाव सव्वो चरित्तपडो मइलितो अचिरेण कालेण, चरित्तमणिकोट्टिमं वा। **ण वि ते जाणंति समाहिमाहितं,** ते हि णिच्छयणयतो अण्णाणिणो चेव लब्भंति ॥ ४ ॥ पदे पदे विसीदमाणा जया साधम्मिएहिं परेहिं वा चोइता भवंति तदा—

१४६. वाहेण जधा व वि[2]च्छते, अवले होति गवं प[3]चोदिते।
[4]जेण तस्स तहिं अप्पथामता, अचयंतो खलु सेऽवसीदती ॥ ५ ॥

१४६. वाहेण जधा व विच्छते० वृत्तम्। **वाहो** णाम लुद्धगो, तेण सरेण तालितो मृगोऽन्यो वा, स तेण ताव परद्धो यावत् श्रान्तश्चचारि वि पादे विन्यस्य व्यवस्थितः ततो मरणं चाऽऽप्तः। अयं तु **सौत्रो** दृष्टान्तः–**वाहेण जहा व विच्छते** वाहतीति वाहः शाकटिकोऽन्यो वा, **यथेति** येन प्रकारेण तेन वाहेन विषमतीर्थे श्रान्तो वा अवहन् प्रतोदेन विविधं **क्षतः अवलो** नाम क्षीणवलः भरोद्वहने श्रान्तो वा, गच्छतीति गौः, भृशं **चोदितः** चोद्यमानोऽपि न शक्नोत्युद्वोढुम्। **जेण तस्स तहिं अप्पथामता,** तस्येति तस्य गोः तस्मिन्निति पांसूत्करे विषमे वा **अप्पथामया** णाम जेण अवहंतो तोत्तगप्पहारे सहति, जइ थामवं होंतो तो ण तुत्तगप्पहारे सहंतो। सव्वत्थापि **अचयंतो खलु से** तीक्ष्णैः प्रतोदाग्रैः तुद्यमानो **अवसीदति**। अथवा–"**से अन्तए** अन्त्यायामप्यवस्थायां अन्तशः **णातिचए** ण सक्केति **अवसे विसीदती**"। एवं सो वि सयमादि-निरुद्यमः ॥ ५ ॥

१४७. एवं कामे[5]सणा विदू, अज्ज सुए प[6]यहामि संथवं।
कामी कामे ण कामए, लद्धे वा[7] वि अ[8]लद्ध कण्हुई ॥ ६ ॥

१४७. एवं कामेसणा विदू० वृत्तम्। **एवं** अवधारणे। उक्ता **कामैषणा** काममार्गणा। **विदूरिति** विद्वान्। कामवि-पाकं विदन्निह परत्र च कामपिशाचपीड्यमानश्चिन्तयति–**अज्ज सुए पयहामि संथवं, संथवो** णाम पुव्वा-ऽवरसंबंधो, तं सथवं अद्य श्वः परश्वो वा प्रहास्यामि, स हि तं सथवं उत्सिसृक्षुरपि मुमुक्षुरपि कुटुम्बभरणादिदुःखैरेव हि विवक्षितो गौरिव न शक्नोति उत्स्रष्टुम्। अथवोपदेश एवायम्–**एवं कामेसणं विदू०** वृत्तम्। **एवं** अनेन प्रकारेण। काम्यन्त इति कामाः। "एष मार्गणे"। **विदूरिति** विद्वान्, नाविद्वान्। कुटुम्बभरणे दुस्त्यजान् मत्वा तत्र चाशक्तो गौरिवावहन् तुद्यते, कृषि-पशुपाल्यादिषु च कर्मसु वर्त्तमानो वाध्यते। एवं वह्वपायान् कामान् मत्वा **अज्ज वा सुते वा [पयहेज्ज] संथवं,** श्रुत्वा च सथवं **कामी कामे ण कामए,** कमणीयाः काम्यन्ते वा **कामाः**। इब्भेसु वि जधा **पण्डुमधुर-उत्तरमधुराइब्भयोः संयोग-विप्प-योगो** [ ]। णिमतिज्जमाणो वा जधा—

जो कण्णाए धणेण य णिमंतियो जोव्वणम्मि गहवतिणा। णेच्छति विणीतविणयो तं वइररिसिं णमंसामि ॥ १ ॥
[आव० नि० गा० ७६८]।

---

१ आंवभक्खी वा० मो०। आम्रभक्षी राजा इत्यर्थः ॥ २ विज्ञए पु १ ॥ ३ पचोचिते ख १ ॥ ४ से यऽंतसो अप्पथामए, णातिवहति अवले विसीयति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। णातिवहति स्थाने ख २ णातिवभए इति पु १ णाइवव(ध)ते इति पाठभेदौ दृश्येते। से अंतए अप्पथामए, णातिचए अवसे विसीदति चूपा० ॥ ५ °सणं विदू ख १ ख २ पु १ चूपा०। °सणे विऊ पु २ ॥ ६ पयहेज्ज खं १ ख २ पु २ वृ० दी०। पजहेज्ज पु १ ॥ ७ यावि ख १। आवि पु २ ॥ ८ अलद्धु खं २ पु १ ॥

अलद्धे असंते पत्थेति, उवज्जिणित्ता भुंजीहामि । कुण्डइ त्ति कश्चिद् ग्रामे वा पुरे वा ॥ ६ ॥ अथवा हीनोत्तम-मध्यमे उपदेशः क्रियते तेसु तेसु पमत्तस्स—

१४८. मा पच्छ असाधुता तवे[1], अचेही अणुसासे[2] अप्पगं ।
अधियं च असाधु सोयंती[3], से थणती परितप्पती[4] वहुं ॥ ७ ॥

१४८. मा पच्छ असाधुता तवे० वृत्तम् । मा पच्छेति[5] इयं असाधुता तप्स्यते । असाधुता नाम हिंसादिकर्मप्रवृत्तिः मरणकाले तप्स्यते परत्र वा । उक्तं हि—

जधा सागडिओ जाण समं हेच्चा महापहं । विसम मग्गमोतिण्णे अक्खे भग्गम्मि सोयते ॥ १ ॥

[उत्त० अ० ५ गा० १४]

वेच्च[6] वहुं—"अपच्छ आम्बकं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए ।" [उत्त० अ० ७ गा० ११] एवं ज्ञात्वा अचेही अणुसासे अप्पगं, अतीव अतीहि अत्यन्तं क्रम इत्यर्थः, कुतः ? प्रमादात्, आत्मानमेवाऽऽत्मना अनुशास्ति । किच—अधियं च असाधु सोयती, जधा जधा असाधुता तधा तधाऽधिग सोयति, इहापि ताव चोराती असाधूणि कम्माणि कातुं गहिता सोयति, किमु परत्र ? । स्तनति च शरीरादिभिर्दुःखैर्बाध्यमानाः । शोचनं मानसस्तापः, निस्तननं तु वाचिकं किञ्चित् कायिकं च । मर्वतस्तप्यते परितप्यते वहिरन्तश्च काय-वाङ्-मनोभिर्वा । वहुं ति अपरिमाणं, पंकोसण्णनागवत् [उत्त० अ० १३ गा० ३०] ॥ ७ ॥ किञ्च—

१४९. इह जीवितमेव पस्सधा[7], तरुणगो वाससयस्स तिउट्टति[8] ।
इत्तरवासं व वुज्झधा[9], गिद्ध नरा कामेसु[10] चिप्पिता ॥ ८ ॥

१४९. इह जीवितमेव पस्सधा० वृत्तम् । इहेति इह मानुष्ये । जीवति येन तद् जीवितम् । एव अवधारणे । तरुणगो णाम असम्पूर्णवया अन्यो वा कश्चित् । पठ्यते च—"दुर्वलं वाससयं परमायुः" ततो तिउट्टति छिद्यते प्रत्यपाय-वहुलात् । वक्ष्यति हि—गब्भाय(यि) मिज्जंति[11] वुया-ऽवुयाणा० [सूत्रगा० २८७] । इत्तरवासं व वुज्झधा, इत्तरमिति अल्पकालमित्यर्थः, त बुध्यत अवगच्छत, एवमल्पेऽप्यायुषि वह्वपाये वा । तथापि नाम गृद्धा नरा कामेसु चिप्पिता आक्रान्ताः, न पुनरुत्तिष्ठन्ति तदुल्लङ्घनाय ॥ ८ ॥ किञ्च—

१५०. जे इध आरंभणिस्सिता, आतदंड एगंतलूसगा ।
गंता ते पावलोगगं[12], चिरकालं[13] आसुरियं दिसं ॥ ९ ॥

१५०. जे इध आरंभणिस्सिता० वृत्तम् । जे इति अणिदिट्ठणिद्देसो । इहेति इह मनुष्यलोके पापण्डिनोऽपि भूत्वा शाक्यादयः । आरंभो हिंसादि तण्णिस्सिता, परदण्डप्रवृत्ता आत्मानमपि दण्डयन्ति, अथवा ण तेसिं इमो लोगो न परलोगो तेनाऽऽत्मान दण्डयन्ति । एगंतलूसगा एगतहिंसगा इत्यर्थः, येऽपि न स्वयं घातयन्ति तेऽपि उद्दिश्यकृतभोजित्वाद् वधनमनु-मन्यन्ते । एवंविधाः गंता ते पावलोगगं, गंतारो नाम गमिष्यन्ति, पापानि पापो वा लोकः नरकः । चिरकालं ति वहूणि पलितोवम-सागरोवमाणि । आसुरिका दव्वे भावे य । आसुरियाणि न तत्थ सूरो विद्यते, अथवा एगिंदियाणं सूरो णत्थि

---

१ भवे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ °सास ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ सोतती ख १ पु १ ॥ ४ परिदेवती ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ मा तेति चूसप्र० ॥ ६ वर्चोवहुरित्यर्थः ॥ ७ पासहा ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ तरुणए वाससयस्स तुट्टति खं २ । तरुणए (तरुणे पु २) वाससयाउ तुट्टति ख १ पु २ वृपा० । तरुणे वाससयस्स तुट्टति वृ० दी० । दुव्वल वाससयाउतिउट्टति चूपा० ॥ ९ °वासे य वु° ख २ पु १ । °वासे व वु° ख १ पु २ ॥ १० कामेसु मुच्छिया ख २ वृ० दी० । कामेहि मुच्छिया ख १ पु १ पु २ ॥ ११ °य मिज्जिति त्ति गब्भाया । इत्तर° पु० स० । °य मितिज्जिति त्ति गब्भाया । इत्तर° वा० मो० ॥ १२ °लोगतं ख १ पु १ । °लोगयं खं २ पु २ ॥ १३ चिररायं आसुरियं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

जाव तेइंदिया असुरा वा भवंति। दिसं ति दिश्यत इति दिग्। दिग्ग्रहणादष्टादशप्रकारा भावदिक् [आचा० नि० गा० ४० त ६२]। एवं गिहिणो वि जे इधं आरंभणिस्सिता आतदंडा एगंतलूसगा ते नरकं यान्ति ॥ ९ ॥

१५१. ण [1]य संखयमाहु जीवितं, तह वि य बालजणो पगब्भती।
पच्चुप्पण्णेण कारितं, के दट्ठुं परलोगमागते? ॥ १० ॥

१५१. ण य संखयमाहु जीवितं० वृत्तम्। असस्करणीयं असंस्कृतं। उक्तं हि—

दढकलितं करेन्ता वच्चंति हु [3]राइणो य दिवसा य। आयुं संवेल्लेन्ता गता य ण पुणो णियत्तिन्ति ॥ १ ॥

[ ]

तह वि य णाम बालजणो हिंसादिषु पापकर्मसु प्रवर्त्तमानः प्रगल्भीभवति धृष्टीभवतीत्यर्थः। यदापि च पापकर्माण्याचरन् परेणोच्यते—'किं परलोगस्स ण बीभेसि?' ततो भणति—पच्चुप्पण्णेण कारितं के दट्ठुं परलोगमागते?, प्रत्युत्पन्नेनैव सौख्येन कार्यम्, को हि दृष्ट्वा स्वर्गं मोक्षं वा तत्सुखं वा परलोकादायातः? ॥ १० ॥

कथं वा साक्षाददृश्यमानः परलोकोऽस्तीत्यध्यवसेयः? उच्यते—

१५२. [4]अदक्खुव दक्खुवाहितं, सद्दहसू अदक्खुदंसणा!।
हंदि! हु सुनिरुद्धदंसणे, मोह[5]णिएण कडेण कम्मुणा ॥ ११ ॥

१५२. अदक्खुव दक्खुवाहितं० वृत्तम्। न पश्यतीति अदक्खुं, अदक्खुणा तुल्य अदक्खुवत्। दक्खू णाम द्रष्टा। दक्खुणा व्याहृतं दक्खुवाहितं श्रद्धस्व हे अदक्खुदंसणा!। कधं अदक्खुदंसणो? योऽपि कार्या-ऽकार्यानभिज्ञो सोऽपि अन्ध एव, न दक्खुदर्शनी। हंदि! हु सुनिरुद्धदंसणे, हन्दीति सम्प्रेषणे, हि पादपूरणे, दृश्यते येन तद्दर्शनम्, निरुद्धं दर्शनं यस्य स भवति निरुद्धदर्शनः, तत् केन?, मोहनीयेन कर्मणा निरुद्धं, मिच्छादिट्ठी। एवं चारित्रनिरोधेन चरित्ते अचरित्ते वा भावना। निरुद्धं तव ज्ञानं सन्निकृष्टम्, केन ज्ञास्यसि परलोकम्?, अथवा निरुद्धमिति नानन्तम्, न चक्षुर्दर्शनम्, तत् कथं परलोकं द्रक्ष्यसि? इति। आत्मादीनि चाचाक्षुपाणि द्रव्याणि ॥ ११ ॥

१५३. दुक्खी [6]मोहे पुणो पुणो, [7]निव्विंदेज्ज सिलोग-पूयणं।
एवं सहिते[8]ऽधिपासिया, आयतुले पाणेहि भवेज्जसि ॥ १२ ॥

१५३. दुक्खी मोहे पुणो पुणो० वृत्तम्। दुःखमस्यास्तीति दुःखी, तैस्तैर्दुःखैः पीड्यमानः पुनः [पुनः] मोहमुपार्जयति। मुज्झति जेण मोहिज्जति वा स मोहः, कर्मेत्यर्थः, तेन ससारमनुपरीति। यतश्चैवं ततो निव्विंदेज्ज सिलोग-पूयणं, सिलोगो नाम श्लाघा यशःकामता, पूजा आहारादिभिः, दोण्णि वि णिव्विंदेज्ज गरहेज्ज, सत्कार-पुरस्कारौ न प्रार्थयेदयमर्थः। एवं सहितेऽधिपासिया, एवं अनेन प्रकारेण सहितो णाम ज्ञानादिभिः, अधियं पस्सिया अधिपस्सिया। आयतुले पाणेहि भवेज्जसि त्ति, यदात्मनो नेच्छसि तत् परेषामिति ॥ १२ ॥ योऽपि तावत्—

१५४. गारं पि य आवसे णरे, [9]अणुपुव्वं पाणेहि संजते।
समया सव्वत्थ सुव्वते, देवाणं गच्छे सलोगतं ॥ १३ ॥

१५४. गारं पि य आवसे णरे० वृत्तम्। अगारत्वम्, अपिशब्दार्थः सम्भावने, किमुतानगारत्वम्?, आवसतीति आवसे। अनुपूर्वं नाम पूर्वं श्रवणम्, ततो ज्ञान-विज्ञाने सयमासयमश्च, इह तु सयमासयमो अधिकृतः, दुवालसविधं सावगधम्मं फासितो। समया सव्वत्थ सुव्वते, समभावः समता तां समताम्, सव्वत्थ भावसमता, कडसामाइओ हि

१ "असखय जीविय मा पमायए०" उत्त० अ० ४ गा० १ ॥ २ त खं १ पु १ ॥ ३ रायणो वा०। राइओ वृ० ॥ ४ अदक्खुव! वृ० दी० ॥ ५ °णिज्जेण ख २ पु १ ॥ ६ मोहं ख २ ॥ ७ निर्च्छिदिज्ज ख २ ॥ ८ °ऽहिपासते, आयतुल पाणेहि संजते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। तुलं स्थाने तुले ख २। पाणेहि स्थाने पालेहिं पु १ ॥ ९ अणुपुव्वि ख २ पु २ ॥

सव्वत्थ समतां भावयति । तदनु चाकृतसामायिकः शोभनव्रतः सुव्रतः देवाणं गच्छे सलोगतं समानलोगतं सलोगतं, विविक्तत्व-बंभचेर-देवाणं सलोगतं, किं पुण जो महव्वताइं फासेति ? ॥ १३ ॥

यतश्चैवं श्रावका अपि देवलोकं गच्छन्ति जिनेन्द्रवचनानुशास्ताः तेण—

१५५. सोचा भगवाणुसासणं[1], सच्चे[2] तत्थ करेहुवक्कमं[3] ।
सव्वत्थ[4] विणीतमच्छरे, उंछं भिक्खु विसुद्धमाहरे ॥ १४ ॥

१५५. सोच्चा भगवाणुसासणं० वृत्तम् । अनुशास्यते येन तदनुशासनम्, श्रुतज्ञानमित्यर्थः । अथवा अनुशासनस्य श्रावकधर्मस्य फले सच्चे तत्थ करेहुवक्कमं, सत्ये अवितथे, सद्भ्यो वा हितं सत्यं सत्यवचन नानृतं सयमो वा, तत्र कुर्यादुपक्रमम् । उपक्रमो नाम यथोपदेशः । अथवा—"सत्यमिति सत्यम् तत्थ करेज्ज उवक्कमं" ति न वितथं । सव्वत्थ विणीतमच्छरे, सर्वत्रेति सर्वार्थेषु, येन विनीतो मत्सरः स भवति विनीतमत्सरः । मत्सरो नाम अभिमानपुरस्सरो रोषः । स चतुर्द्धा भवति, तं जधा—खेत्तं पडुच्च १ वत्थुं पडुच्च २ उवधिं पडुच्च ३ सरीर पडुच्च ४ । एतेसु सव्वेसु उप्पत्तिकारणेसु विनीतमत्सरेण भवितव्वं । तथा जाति-लाभ-तपो-विज्ञानादिसम्पन्ने च परे न मत्सरः कार्यः—यथाऽयमेभिर्गुणैर्युक्तोऽहं नेवि, तद्गुणसमाणे वा । दव्वुंछं उंक्खलि[5]-खलगादि, भावुंछं अज्ञातचर्या । विसुद्धं नाम उग्गममादीहि अकल्पतश्च । आहरे आदद्यात् ॥ १४ ॥ एवम्—

१५६. सव्वं णच्चा अधिट्ठए, धम्मट्ठी उवधाणवीरिए ।
गुत्ते जुत्ते सदा जते, आत-परे परमायतट्ठिते ॥ १५ ॥

१५६. सव्वं णच्चा अधिट्ठए० वृत्तम् । सर्वं ज्ञेय यावत् शक्तिर्विद्यते तावदध्येयम्, ज्ञात्वा च अकृत्यं न कर्त्तव्यम्, कृत्यमाचर्त्तव्यमिति । उक्तं हि—"ज्ञातागमस्य हि फलं०" [ ] । अधिट्ठए धम्म णाणादीणि वा । धम्मेण जस्स अत्थो स भवति धम्मट्ठी तथोपधानवीर्यवान्[6] । गुत्ते जुत्ते सदा जते, [गुत्ते] त्रिगुप्तः, जुत्तो णाम णाणादीहिं तव-सजमेसु वा, सदा नित्यकाल यतेत यत्नवान् स्यात् । कुत्र यतेत ? तदिदं आत्म-परे आत्मनि परे च आत-परे, णो अत्ताणं अतिवातेज्ज णो परं अतिवातेज्जित्ति । आत्मनः परं आत्मसु वा परम्, किं त ?, आयतार्थिकत्वम्, अत्थो णाम णाणादि, आयतो णाम दृढग्राहः, आयतविहारकमित्यर्थः[7] ॥ १५ ॥

१५७. वित्तं पसवो य णातयो[8], बालजणो[9] सरणं ति मण्णती ।
एते मम तेसु वी अहं, णो ताणं सरणं च[10] विज्जती ॥ १६ ॥

१५७. वित्तं पसवो य णातयो० वृत्तम् । वित्तं हिरण्णादि । पसवो गो-महिसा-ऽजा-ऽविगादि । णातयो माता-पिति-सबंधिणो । बालजणो सरणं ति मण्णती, एतान् बालजनः शरण मन्यते, एते हि मां दुःखात् परित्रास्यन्ति इह परत्र च, तं च न भवति । कथम् ?, इह तावत्—

सयणस्स वि मज्झगतो रोगाभिहओ किलिस्सए एगो । सयणो वि य से रोगं ण विरिंचति णेव णासेति ॥ १ ॥

[मरण० प्र० गा० ५८३]

सव्वगय-हेतुसुद्धं[11] अप्पाणं जाण णिच्छएणेक्कं । [ ]

यथा ते मम न त्राणाय तथाऽहमपि न तेषां त्राणं शरणं चेति, इतश्च न भवति शरणम् ॥ १६ ॥ यतः—

---

१ °वाण अणु° पु २ ॥ २ सच्चं चूपा० ॥ ३ करेज्जुव° वृ० दी० चूपा० ॥ ४ °त्थ अवणीत° पु २ वृ० दी० ॥ ५ उक्खलुक्ख° मो० वा० ॥ ६ ततोपधा° वा० मो० ॥ ७ आयकवि° चूसप्र० ॥ ८ णायतो ख १ पु २ । नातिओ पु १ ॥ ९ तं बाले सरणं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० ति ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ °हेतुसिद्धं पु० विना ॥

१५८. अब्भागमियंसि[1] वा दुहे, अहवोवक्कमिते[2] भवंतए[3]।
एगस्स गती वें आगती, विदु मंता सरणं ण मण्णती ॥ १७ ॥

१५८. अब्भागमियंसि वा दुहे० वृत्तम्। अभिमुखं आगमिकं अभ्यागमिकं व्याधिविकारः, स तु धातुक्षोभादागन्तुको वा। उपक्रमाज्जातमिति औपक्रमिकम्, अनानुपूर्व्या इत्यर्थः, निरुपक्रमायुःकरणम्। भवंतो नाम भवान्तो मरणमेव, का भावना?, तद्धि यद् बालमरणं न भवति, जरा-कामाद्युपक्रमतो वा फलप्रपातवत्। तस्यैवंविधमृतस्य एगस्स गती व आगती, एकस्येति पशु-ज्ञातृहीनस्य। एव विदुः मत्वा न ताँ वित्त-पशु-ज्ञातृन् शरणं मन्यते ॥ १७ ॥ एवम्—

१५९. सव्वे सयकम्मकप्पिया, अवियत्तेण दुहेण पाणिणो।
हिंडंति भयाकुला सढा, वाधि-जरा-मरणेहऽभिद्दुता ॥ १८ ॥

१५९. सव्वे सयकम्मकप्पिया० वृत्तम्। सर्वे इति अपरिशेषाः स्वैः कर्मभिः कल्पिताः, प्रविभक्तविशेषा इत्यर्थः, तद्यथा—पृथिवीकायिकत्वेन०। "कृती छेदने" न विकृत्तं अच्छिन्नमित्यर्थः, अवियत्तेन वा अधिगच्छन्तेनेत्यर्थः, दुहेणेति दुःखिनः प्राणिनः जीवाः हिंडंति भयाकुला सढा, भयैः आकुला भयाकुलाः, भयानि सप्त, भयानि वा दुःखं तेनाऽऽकुलाः, सढा नाम तपश्चरणे निरुद्यमाः शठीभूता वा, पापकर्मभिः ओतप्रोता इत्यर्थः। वाधि-जरा-मरणेहऽभिद्दुता, नारक-तिर्यग्-मनुष्येषु व्याधिः, जरा तिर्यग्-मनुष्येषु, मरणं चतसृष्वपि गतिषु ॥ १८ ॥

१६०. इणमो[10] य खणं वियाणिया[11], णो सुलभं बोधी[12] य आहितं।
एवं सहिते[13]ऽहिपस्सिया, आह जिणे इणमेव सेसगा[14] ॥ १९ ॥

१६०. इणमो य खणं वियाणिया० वृत्तम्। इणमो त्ति इदम्, क्षीयत इति क्षणः, स तु सम्मत्तसामाइयादिचतुर्विधस्यापि एक्केक्कस चतुर्विधो खणो भवति, त जधा—खेत्तखणो कालखणो कम्मखणो रिक्ख(क्क)खणो, एते चत्तारि वि जधा लोगविजए पढमे उद्देसए "खण जाणाहि पडिए" त्ति सुत्ते [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० १ सू० ५ चूर्णौ] भणिता तथा भाणितव्वा। विविधं जाणिया विजाणिया। णो सुलभं बोधी य आहितं, बोधी णाणाति तिविधो, आहितं आख्यातम्। उक्तं च—

लद्धेल्लियं च बोधिं अकरेंतो अणागतं च पत्थिंतो। अण्णं दाइ बोधिं लब्भिसि कयरेण मोल्लेणं? ॥ १ ॥

[आव० नि० गा० ११९० पत्र ५०९, उपदेशमाला गा० २९२]

विराहितसामण्णस्स हि दुल्लभा बोधी भवति, अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं उक्कोसेणं हिंडति। एवं सहितेऽहिपस्सिया, एवं मत्वेति वाक्यशेषः, णाणातिसहितो अधिपासए परीसहे। पठ्यते च—"एवं सहितेऽधियासए" अधियं वाऽऽसए अधियासए। यदुक्तमेवमेतत् क एवमाह?—आह जिणे इणमेव सेसगा, रिसभसामी भगवं अट्ठावए पुत्तसंबोधणत्थ एवमाह, इदमेव ये चाऽजिताद्याः शेषका जिनाः ते प्राहुः ॥ १९ ॥

किमतिक्रान्ता अनागताश्चैव जिनाः कथितवन्तः कथयिष्यन्ति च?, ओमित्युच्यते—

१६१. अभविंसु पुरा पि भिक्खवो[15]!, आएसा वि भविंसु[16] सुव्वता।
एताइं गुणाइं आह[17] ते, कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २० ॥

---

१ °गसितम्मि वा ख १ पु १। °गमियम्मि वा ख २ पु २॥ २ अहवा उक्कमिते वृ० दी०। अहवा उवकमिए ख २ पु १ वृ० दी०॥ ३ भवंतरे वृ० दी०। भवंतए ख २ वृपा० दीपा०॥ ४ एक्कस्स ख १ ख २ पु १ पु २॥ ५ य ख १ वृ० दी०॥ ६ तद्धेयद्दवाल° पु० स०। तद्धियद्धवाल° वा० मो०॥ ७ तानित्यर्थ॥ ८ अव्वत्तेण ख १ पु २ वृ० दी०॥ ९ जाति-जरा° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ १० इणमेव ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। इणमेय ख २॥ ११ विताणिता ख १॥ १२ बोधिं च आ° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ १३ °तेऽहिपासए ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। °तेऽधियासए चूपा० वृपा० दीपा०॥ १४ सेसता ख १ पु १॥ १५ भिक्खुवो! पु २॥ १६ भवंति ख २ पु १ पु २॥ १७ आहु ते ख २ पु १ वृ० दी०। आहिए ख १ पु २॥

१६१. अभविंसु पुरा पि भिक्खवो० वृत्तम् । अभविष्यन् अतिक्रान्ताः, भिक्षवः ! इति आमत्रणम् । आएसा वि भविंसु सुव्वता, आदेसा इति आगमेस्सा । एताइं गुणाइं आह ते, एते ये उक्ता इहाध्ययने अप्रमादादिगुणाः सिद्धिगमणसफला । काश्यपः उसभसामी वद्धमाणसामी वा । अनुगतो वा अनुकूलो वा अनुलोमो वा अनुरूपो वा धर्मः अनुधर्मः, काश्यपस्यानुचरणधर्मशीलाः । द्विधा समासः क्रियते—कासवो जं अणुधम्मं चरति जो वा कासवस्स अणुधम्मं चरति ॥ २० ॥ ते च गुणा उक्ताः । पुनरपि चोच्यन्ते—

१६२. तिविधेण वि पाण[1] मा हणे, आयहिए अणियाण संवुडे ।
एवं सिद्धा अणंतगा[2], संपत[3] जे य अणागताऽवरे ॥ २१ ॥

१६२. तिविधेण वि पाण मा हणे० वृत्तम् । त्रिविधेन योगत्रय-करणत्रयेण प्राणाः आयुः-बलेन्द्रियाः प्राणाः ते मा हण । आत्मनो हितं आत्महित । अणिदाणो ण दिव्व-माणुस्सएसु कामभोगेसु आससापयोगं करेति । इंदिय-णोइंदिएसु संवुडो । एवं सिद्धा अणंतगा, एवं मग्गं अणुपालेत्ता अतीतकाले अणता सिद्धा, संपतं सखेज्जा सिज्झंति, अणागते अणंता सिज्झिस्संति । अवरे नाम ये वर्त्तमाना आगमिष्याश्चेति ॥ २१ ॥

१६३. एवं से उआहु अणुत्तरणाणी, अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाण-दंसणधरे ।
अरहा णायपुत्ते भगवं, वेसालीए वियाहिते ॥ २२ ॥[4] त्ति बेमि ॥

॥ ततिओ उद्देसओ । वितियं वेतालीयं सम्मत्तं ॥ २ ॥

१६३. एवं से उआहु अणुत्तरणाणी अणुत्तरदंसी० । एवं अवधारणे । से इति सो उसभसामी अट्ठावते पव्वते अट्ठाणउतीए सुताणं आह कथितवान् अणुत्तरणाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाण-दंसणधरो, एतेण एकत्वं णाण-दंसणाणं ख्यापितं भवति । अरहा णायपुत्ते पूजादीनर्हतीति अर्हा, नास्य रहस्यं ति विद्यते वा अरहा । ज्ञातस्य पुत्रः ज्ञातपुत्रः, णातकुलपसूते सिद्धत्थखत्तियसुते । भगवान् ऐश्वर्यादियुक्तः । वेसालीए त्ति गुणा अस्य विशाला इति वैशालीयः, विशालं शासनं (विशालशासने) वा इक्ष्वाकुवंशे भवो वैशालीयः ।

"विशाला जननी यस्य, विशालं कुलमेव वा । विशालं प्रवचनं चास्य, तेन वैशालिको जिनः ॥ १ ॥
[ ]

वियाहितो व्याख्यातः ॥ २२ ॥ इति एवं जम्बूस्वामिनः वृद्धभगवान् आर्यसुधर्मा कथयति—"एवं से उदाहु जाव वियाहितो" । इतिः परिसमाप्तौ अथवा एवमर्थः, एवं इति वेमि, सुधम्मसामिस्स वयणमिदं—भगवता सर्वविदा उवदिट्ठं अहमवि वेमि ॥ नयाः पूर्ववत् ॥

॥ [इति वैतालीयाख्यं] द्वितीयाध्ययनं समाप्तम् ॥

---

१ पाणि ख १ पु २ ॥ २ °तसो सं° ख १ पु १ पु २ दी० ॥ ३ °पति जे ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ एतद्गाथानन्तरं ख १ पु १ पु २ आदर्शेषु चूर्णि-वृत्ति-दीपिकाकृद्भिरनङ्गीकृता एका गाथाऽधिका दृश्यते । सा चेयम्—

इति कम्मवियालमुत्तमं, जिणवीरेण सुदेसियं सया ।
जे आचरंति आहिय खवितरया, वइहिंति ते सिवं गतिं ॥ ति बेमि । पु १ प्रतौ गतिं इति नास्ति ॥

३

[तइयं उवसग्गपरिण्णज्झयणं]

[पढमो उद्देसओ]



इदाणिं उवसग्गपरिण्ण त्ति अज्झयणं। तस्स वि चत्तारि अणुयोगदारा परूवेतव्वा। अत्थाधियारो दुविधो–अज्झयणत्थाधियारो उद्देसत्थाधियारो य। अज्झयणत्थाधियारो–सव्वे उवसग्गा जाणित्ता सम्मं अधियासेतव्वा। उद्देसत्थाधियारो—

पढमम्मि य पडिलोमा[1] १ मायादि अणुलोमगा य वितियम्मि २।
ततिए [2]अज्झत्थुवदंसणा य परवादिवयणं च ३ ॥ १ ॥ ४१ ॥

पढमम्मि य पडिलोमा० गाथा। पढमे उद्देसए पडिलोमा, जधा "पुट्ठे [य] दंस-मसएहिं तणफासमचाइता" [सूत्रगा० १७०], आय-पर-तदुभयसमुत्था उवसग्गा भण्णंति १। वितिए तु मायादिअणुलोमा उवसग्गा, अण्णे य रायमादी पाएण अणुलोमे उवसग्गे उप्पायंति २। ततिए उद्देसए अज्झत्थविसेसोवदंसणं भण्णिहिति, "के जाणंति विओवातं इत्थीओ उदयातो वा? ।" [सूत्रगा० २०६] परवादिवयणं,–"संवद्धसमकप्पा हु अण्णमण्णेहि मुच्छिता।" [सूत्रगा० २११], परसमयिका परतित्थियभाविता य उवसग्गा उप्पाएन्ति ३ ॥ १ ॥ ४१ ॥

हेउसरिसेहिं अहेउ[3]एहिं ससमयपडितेहिं णिउणेहिं।
सीलखलितपण्णवणा कया चउत्थम्मि उद्देसे ४ ॥ २ ॥ ४२ ॥

हेउसरिसेहिं० गाथा। चउत्थुद्देसए हेतुसरिसा अहेतू भण्णिहिन्ति, "जधा मंधातई णाम" [सूत्रगा० २३४], सीलक्खलिता कुतित्थिया एवं पण्णविंति एवं परूविंति हेत्वाभासादि। अहेतवो भूत्वा हेतुमिवाऽऽत्मानमाभासयन्ति हेत्वाभासाः। ससमयपडितेहिं ससमयजोग्गेहिं, जो (जा) तेसिं समया जुज्जमाणया णिउणा भणिता। अथ आयरिओ ससमयपडितेहिं णिउणेहिं दिट्ठतेहिं तेसिं सीलखलिताणं अण्णउत्थियाणं पण्णवणं करेति चउत्थे ४ ॥ २ ॥ ४२ ॥

एवं दुविधो वि अत्थाधियारो भणितो। इदाणिं णामणिप्फण्णो णिक्खेवो। तत्थ गाधा—

उवसग्गम्मि य छक्कं दव्वे चेयणमचेयणं दुविहं।
आगंतुगो य पीलाकरो य जो [4]सो उवस्सग्गो ॥ ३ ॥ ४३ ॥

उवसग्गम्मि य छक्कं० गाथा। णाम-ठवणाओ तधेव। वइरित्तो दव्वोवसग्गो दुविधो–चेतनदव्वोवसग्गो य अचेतनदव्वोवसग्गो य। चेतनदव्विगं जं तिरिक्ख-मणुआ णियगसरीरावयवेण आहणति। अचेतनदव्विगं तं चेव लउडादीहिं। अथवा अभिघातो तडिमादि उवरिं पडति। अथवा उवसग्गो दुविधो–आगंतुगो पीलाकरो य। आगंतुगो चतुप्पद-लउडादीहि। पीलाकरो वातिय-पेत्तियादि ॥ ३ ॥ ४३ ॥ खेत्तोवसग्गो जं—

खेत्तं वहुओ[5]घभयं कालो एगंत[6]दूसमादीओ।
भावे कम्मस्सुदओ सो दुविहो ओघुवक्कमिओ ॥ ४ ॥ ४४ ॥

खेत्तं वहुओघभयं० गाथा। ओघो वहुगं उप्पण्णं वहूपसग्गो, जधा वहूपसग्गो लाढाविसयो जहिं भट्टारगो पविट्ठो

---

१ °मा नाइकयणुलोमगा य वीयम्मि ख १ वृ०। °मा हुंती अणुलोमगा य वितियम्मि ख २ पु २ ॥ २ अज्झत्थविसीदणा य ख १ ख २ पु २ वृ० चूपा०। तृतीयाध्ययनतृतीयोद्देशकमत्कचूर्णिप्रारम्भोपक्रमणिकायामयमेव पाठो निर्दिष्टोऽस्ति ॥ ३ °एहिं समयपतिएहिं ख १ ख २। "स्वसमयप्रतीतैं निपुणभणितैर्हेतुभि" इति वृत्तिकृत ॥ ४ सो उ उवसग्गो ख २ पु २ ॥ ५ °ओघपयं ख १ ख २ पु २ वृ०। °ओघभयं वृपा० ॥ ६ दुस्समाईओ खं १ ॥

आसि छदुमत्थकाले, सुणगादीहिं तत्थ णिद्धम्मा खावेंति । ओहभयं भवति जधा भरधवासे । कालोवसग्गो एगंतदूसमा । सीतकाले वा सीतपरीसहो वा णिदाघकाले उसिणपरीसहो वा, एवमादि कालोवसग्गो भवति । भावोवसग्गो कम्मोदयो । सो पुण दुविधो—ओहतो उवक्कमतो वा । ओहतो जधा णाणावरणं दंसणमोहणीयं असुभणामं णियागोतं अंतरायिकं कम्मोदय त्ति । उवक्कमियं जं वेदणिज्जं कम्मं उदिज्जति । दंडे[3] कस सत्थ रज्जू० गाधा [आव० नि० गा० ७२५] ॥ ४ ॥ ४४ ॥

उवक्कमिए[4] संजमविग्घकारए तत्थुवक्कमे पगतं ।
दव्वे चउव्विधो देव-मणुस-तिरिया-ऽऽयसंवेतो ॥ ५ ॥ ४५ ॥

उवक्कमिए संजमविग्घकारए० गाधा । जे सजमाउ उवक्कामेंति उवसग्गा तेहिं अहियारो । जेण वा दव्वेण दव्वेहि वा त कम्मं उदीरिज्जति, जेण सजमातो उवक्कमाविज्जति तेण वि अधियारो । ते चउव्विधा—दिव्वा तिरिक्खजोणिया माणुस्सा आयसवेतणिया । दिव्वा चउव्विधा—हासा पदोसा वीमसा पुढोवेमाता । मणुस्सा वि चउव्विधा—हासा पदोसा वीमंसा कुसीलपडिसेवणता । तिरिया चउव्विधा—भया पदोसा आहारा अवच्च-लेणसारक्खणता । आयसवेतणीया चउव्विधा—घट्टणता लेसणता थंभणता पवडणता, अधवा वातिता पेत्तिया सभिया[5] सन्निवाइया ॥ ५ ॥ ४५ ॥

एवेक्केक्को[6] चउव्विहो[7] अट्ठविहो वा वि सोलसविहो वा ।
घडण जयणा य तेसिं एत्तो वोच्छं अहीयारे[8] ॥ ६ ॥ ४६ ॥

॥ तइयज्झयणणिज्जुत्ती सम्मत्ता ॥ ३ ॥

एवेक्केक्को चउव्विहो० गाधा । अट्ठविहो कहं होति ?, एक्केक्को अणुलोमो पडिलोमो य । अधवा सव्वे वि सोलसविधा उवसग्गा, चत्तारि चउक्का सोलस भंगा भवंति । एवं उवसग्गा जाणितव्वा जाणणापरिण्णाए, पच्चक्खाणपरिण्णाए अधियासेतव्वा । परिहरंतेण तधा तधा घडितव्वं परिक्कमितव्वं जधा परीसहा णिज्जेज्ज त्ति ॥ ६ ॥ ४६ ॥

गतो णामणिप्फण्णो । सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं—

१६४. सूरं मण्णति अप्पाणं जाव जेयं[9] ण पस्सति ।
जुज्झंतं दढधम्मा(?न्ना)णं सिसुपालो[10] व महारधं ॥ १ ॥

१६४. सूरं मण्णति अप्पाणं० सिलोगो । कश्चित् सङ्ग्रामे उपस्थितो स्वाभिप्रायेण शूरमित्यात्मान मन्यमानो वाग्भिर्विस्फूर्जन्नुपतिष्ठति जाव जेयं ण पस्सति, जियति जिनाति वा ।

गर्जते कलभस्तावद् घनमाश्रित्य निर्भयः । गुहान्तरविनिष्क्रान्तं यावत् सिंहं न पश्यति ॥ १ ॥

तावद् गजः प्रश्रुतदानगण्डः, करोत्यकालाम्बुदगर्जितानि । यावन्न सिंहस्य गुहास्थलीषु, लाङ्गूलविस्फोटरवं शृणोति ॥ २ ॥

[ ]

णिदरिसणं—जुज्झंतं दढधम्मा(?न्ना)णं, जुज्झमाणं जुज्झंतं, दढं[11] धनुर्यस्य स भवति दढधन्वा तं दढधन्वानम् । सिसुपालो व महारथं, मधारवो केसवो, शिशुपालेन तुल्य शिशुपालवत् । स किल माद्रीसुतः चतुर्भुजो जातः । भीतया पश्चात् तया नैमित्ती पृष्टः—किमिद रूपम् ? । तेनापदिश्यते—महाद्भुतमेतत्, यं दृष्ट्वाऽस्य एतौ द्वौ भुजौ स्वाभाविकौ भविष्यतः ततोऽस्य मृत्युरिति । ततः सा माद्री दारकजन्मवर्द्धापकानामागतानां तं दारकं दर्शयति स्म, यथार्हं च पादेष्वपातयत् । वासुदेवस्य चाऽऽगतस्य तमालोक्य तौ भुजौ नष्टौ । पश्चात् तस्य मात्रा वासुदेवोऽभयं याचितः । तेनापदिश्यते—अपराध-

१ छद्मस्थकाले ॥ २ °ठयित । उ° वा० मो० ॥ ३ "दंड कस सत्थ रज्जू अग्गी-उदगपडण विस वाला । सी-उण्ह अरइ भय खुहा पिवासा य वाही य ॥ ७२५ ॥ मुत्त-पुरीसनिरोहे जिण्णा-ऽजिण्णे य भोयणे बहुसो । घमण घोलण पीलण आउस्स उवक्कमा एए ॥ ७२६ ॥"
४ ओवक्कमियो संजमविग्घकरो तत्थुवक्कमे ख २ पु २ । ओवक्कमियो संजमविघायकारि तमुवक्कमे खं १ ॥ ५ सिंभिया पु० ॥ ६ एक्केक्को य चउ° ख १ खं २ पु २ वृ० ॥ ७ °व्विहो दिव्वाई होइ सोलसविहो उ ख १ वृ० ॥ ८ अहीयारो ख २ पु २ वृ० दी० ॥ ९ जेतं पु १ ॥ १० °पाले महा° खं १ पु २ । °पालो व्व महा° ख २ ॥ ११ "दढ –समर्थो धर्म –स्वभावः सङ्ग्रामाभङ्गरूपो यस्य स तथा तम्" इति वृत्ति-दीपिकाकृतोर्व्याख्यानम् ॥

शतमस्य क्षमयिष्यामि। ततोऽसौ प्रवृद्धं वासुदेवं समक्षं परोक्षं वा गोपाल-वत्सपालादिभिराक्रोशैराकुष्टवान्, आज्ञाप्रतिषेधादींश्चापराधान् कृतवान्। ततोऽपराधशते पूर्णे कचिदेवाभिमुखमापतन्तं आक्रोशन्तं 'मत्पथोऽवसर्पस्व' इति, 'नाहमपथा गच्छामि'। अल्पेनैवाऽऽयासेन चक्रभृत् सुदर्शनचक्रधारातिपातेन शिरश्छिन्नं कृतवानिति परोक्षो दृष्टान्तः ॥ १ ॥

अयं तु प्रत्यक्षः—

१६५. पयाता सूरा रणसीसे संगामम्मि उवट्ठिते।
माता पुत्तं ण याणाति जेतेण परिविच्छते[1] ॥ २ ॥

१६५. **पयाता सूरा रणसीसे०** वृत्तम् (सिलोगो)। भृशं याताः प्रयाताः, शपति शप्यते वा शूरः, महता उक्किट्ठि-सीहणात-बोल-कलकलसद्देणं पयाताः **रणसीसं** णाम अग्गाणीकं। समस्तं ग्रस्यते ग्रस्यन्ते वा तस्मिन्निति सङ्ग्रामः। **उपस्थिते** णाम अन्योन्यबलेषु सङ्ग्रामायोपस्थितेषु। **माता पुत्तं ण याणाति,** अमाता-पुत्रो यदा सङ्ग्रामो भवति। का भावना?—तस्यामवस्थायां माता पुत्रं मुक्तं उत्तानशयं क्षीराहारमजङ्गमं भयोद्भ्रान्तलोचना अप्पा(त्ता)दण्णा ण याणाति, नो(ना)पेक्षते, न त्राणायोद्यमते, हस्तात् कटीतो वा भ्रश्यमानं भ्रष्टं वा न जानीते। **जेतेण परिविच्छते,** जयतीति जेता अतस्तेन जेत्रा, तेण जेएण परि सव्वतो भावे, समन्ताद् बाणादिभिरायुधैस्तैः क्षतः **परिविच्छते,** सव्वतो छिण्ण-परिच्छिण्णमित्यर्थः ॥ २ ॥

१६६. एवं सेहे वि अप्पुट्ठे[2] भिक्खुचरियाअकोविदे[3]।
सूरं मण्णति अप्पाणं जाव लूहं ण सेवति ॥ ३ ॥

१६६. **एवं सेहे वि अप्पुट्ठे०** सिलोगो। **अप्पुट्ठो** णाम अप्पुट्ठधम्मो, अस्पृष्टो वा परीषहैः, अदृष्टधर्मा इत्यर्थः। भिक्खूणां चरिया **भिक्खुचरिया,** कोविदो विपश्चित्, न कोविदो **अकोविदो,** न तावत् परीषहोपसर्गैः विकोविदः। सो पव्वयंतो चिंतेइ भणति य—किं पव्वज्जाए दुक्करं कातुं ति?, किं णिच्छियस्स दुक्करं?, णणु सीह-वग्घेहिं वि समं जुज्झिज्जति, संगामे य पविसिज्जति, अग्गिपडणं च कीरइ। एवं अदिट्ठपरीसहो **सूरं मण्णति अप्पाणं,** तपःशूरम्। जधा दव्वसगामे कुंता-ऽसि-बाणगहणे जुद्धे उवट्ठिते केइ परबलसद्दं सोऊण चेव णस्सति, केइ प्रवृत्ते प्रहताः अप्रहता वा, केइ मारिज्जति। एवं भावसगामे वि **सूरं मण्णति अप्पाणं जाव लूहं ण सेवं(व)ति,** रूक्षः संयम[4] एव, रूक्षत्वात् तत्र कर्माणि न श्लिष्यन्ति, रूक्षपटे रजोवत्[5]। तत्र केचिद् दृष्ट्वैव साधून् जल्लादीहिं लिप्ताङ्गान् केचिदर्द्धकृते लोचे केचित् परिसमाप्ते केशान् स्रष्टुं गताः, तत एव यान्ति ॥ ३ ॥ उक्ता ओघउपसर्गाः। इदानीं[6] विभागशः उपदिश्यन्ते। तत्थोवसग्गा परीसहा य एगं चेव काउं उवदिस्सति—

१६७. जदा हेमंतमासम्मि सीतं फुसति सवातगं[7]।
तत्थ मंदा विसीदंति रट्ठहीणा[8] व खत्तिया ॥ ४ ॥

१६७. **जदा हेमंतमासम्मि०** सिलोगो। यत्रातीव शीतं भवति, वर्ष-वर्दलादयो वा तीव्रवाता भवन्ति, वातग्रहणात् सीह-वग्घ-विरालोपाख्यानं, यथा पोसे वा माहे वा। **तत्थ मंदा विसीदंति** तस्मिन् काले तत्र, मन्दा उक्ताः, विविधं सीदन्ति विसीदन्ति—अहो! इमा सुदुक्करा पव्वज्जा, बहवो परीसहोवसग्गा विसंधितव्वा[9]। ते एवं चिंतेंता सीयाभिभूता **रट्ठहीणा व खत्तिया,** जधा परबलेण उच्छादिते रट्ठे हितसारे य परबलक्कंते विलुप्पमाणे वा **खत्तिओ** णाम राया सो जधा सोयति एवं सेहो वि णिरग्गिमरणो वुत्तावगुत्तासु वसधीसु सीताभिहुते विचिंतेति—किमेवंविधाए पव्वज्जाए गहियाए? ॥ ४ ॥ भणितो सीतपरीसहो। एष एवोपसर्गः, तत्पुरुषोऽयं समासः। तदिदाणीं उण्हपरीसहोऽपदिस्सति—

---

१ °विक्खते ख २ ॥ २ अब्भुट्ठे ख १ ॥ ३ भिक्खाचरिया° ख २ पु १ वृ० दी०। भिक्खाचरिए ख १ पु २ ॥ ४ संजम वा० मो० ॥ ५ रजवत् वा० मो० ॥ ६ इदाणिं वा० मो० ॥ ७ सवायगं ख २ पु २। सव्वगं वृ० दी० ॥ ८ रज्जहीणा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ विपोढव्वा।

१६८. पुट्ठो[1] गिम्हाभितावेणं विमणे सुपिपासिते ।
तत्थ मंदा विसीदंति मच्छा अप्पोदए जधा ॥ ५ ॥

१६८. **पुट्ठो गिम्हाभितावेणं°** सिलोगो । अभिमुखं तापयतीति **अभितापः** । अशोभनमनाः **विमनाः** कर्पूरवासितोदक धाराघरादि वा चिंतेंतो । अथवा तपं प्रति विगतं मनोऽस्य स भवति विगतमनाः । पातुमिच्छा पिपासा । सुट्ठु पिपासितो । **मच्छा अप्पोदए जधा,** तदल्पत्वादतीव तप्यन्ते, वहिरुदकतापेन अन्तश्च मनस्तापेन तप्यमानाः यथा सीदन्ति, एवमसावपि जल्ल-मल-स्वेदक्लिन्नगात्रो वहिरुष्णाभितप्तः शीतलान् जलाश्रयान् धारागृहाणि च चन्दनादींश्चोष्णप्रतीकारान् अनुस्मरन् भृशं अनुशोचते व्याकुलचेता भवति ॥ ५ ॥ वुत्तो उष्णपरीसहो । इदाणीं जातणापरीसहो—

१६९. सदा दत्तेसणा दुक्खं जायणा दुप्पणोल्लिया ।
कम्मंता[2] दुब्भगा चेव इच्चाऽऽहंसु पुढोजणा ॥ ६ ॥

१६९. **सदा दत्तेसणा दुक्खं°** सिलोगो । सदेति सव्वं कालमविश्रामम्, दत्तग्रहणाद् जातितं च दत्तं च, दत्तमप्येसणीयं च । दुक्ख छुधा-तिसाभिभूतेहिं परिहरिदुम्, दुक्खं च पडिसेहिज्जति अणेसणिज्जं, साम्प्रतसुखाभिलाषी पडुप्पण्णभारिओ जीवो, दिंतगा य रुस्संति । **जायणा दुप्पणोल्लिया** दुःखं प्रणुद्यते जायणा, बलदेववत् । वत्तारो य भवंति— **कम्मंता दुब्भगा चेव,** कृषी-पशुपाल्यादिभिः कर्मान्तैः[3] आम्राः (आर्त्ताः) अभिभूता इत्यर्थः, स्त्री-मित्र-ज्ञाति-स्वामिनां **दुब्भगा** । इति आहुः पृथक् पृथग् जना विस्तरतो वा जनाः पृथग्जनाः ॥ ६ ॥

१७०. एते सद्दे अचाएंता[4] गामेसु[5] नगरेसु वा ।
तत्थ मंदा विसीदंति संगामम्मि[6] व भीरुणो[7] ॥ ७ ॥

१७०. **एते सद्दे अचाएंता°** सिलोगो । शब्द्यतेऽनेनेति शब्दः । **अचाएंता** णाम अशक्नुवन्तः सोढुम् । कोदीर्यन्ते ? उच्यते—**गामेसु नगरेसु वा,** वा विकल्पे, खेड-कव्वडादीसु वि । **तत्थ मंदा विसीदंति संगामम्मि व भीरुणो,** भीरवो हि सङ्ग्रामे प्राप्ते मरणभयाद् विषीदन्ति, ऊरू खंभइज्जंति, खिन्नचित्ता[8] भवन्ति ॥ ७ ॥

१७१. अप्पेगे खुज्झितं[9] भिक्खू[10] सुणी दंसति[11] लूसए ।
तत्थ मंदा विसीदंति तेऊपुट्ठा[12] व पाणिणो ॥ ८ ॥

१७१. **अप्पेगे खुज्झितं भिक्खू°** सिलोगो । अपि एके न सव्वे । **खुज्झितो** णाम क्षुधितः पिपासुर्वा, तं क्षुत्-तृष्णाप्रतियोगार्थमटन्तं **सुणी दसति,** श्वसतीति सुणी, लूषयतीति लूषकः भक्षक इत्यर्थः । **तत्थ मंदा विसीदंति** संयमोद्यमं प्रति सीदन्ति । दिट्ठंतो—**तेऊपुट्ठा व पाणिणो, तेजो** नाम अग्निस्तेन दवाग्निना अन्यतमेन वा तेजसा शश-मूषक-मार्जार-कोलवृक-क्षुपक-लता-वितान-वृक्षादयो दह्यमानाः सङ्कुचन्ति । प्राणिग्रहणात् सर्वप्राणिनोऽपि दह्यमाना विसीदन्ति ॥ ८ ॥

१७२. अप्पेगे परिभासंति[13] पाडिपंथियमागता ।
पडियारगता[14] एते जे एते एवजीविणो ॥ ९ ॥

---

१ पुट्ठे गिण्हाधिता° ख १ ख २ । पुट्ठे गिम्हेऽहिता° पु २ ॥ २ कम्मत्ता दूभगा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ "कर्मभिरार्त्ता पूर्वस्वकृतकर्मण फलमनुभवन्ति, यदि वा कर्मभि-कृष्यादिभि आर्त्ता-तत् कर्तुमसमर्था उद्विग्ना सन्त" इति वृत्ति-दीपिकयोर्व्याख्या ॥ ४ अचाइता ख २ । अभाएंता ख १ । अचायता पु १ पु २ ॥ ५ गामंसि नगरंसि वा ख २ ॥ ६ °गामंसि व ख २ पु १ ॥ ७ भीरुया ख २ ॥ ८ °चिंता चूसप्र० ॥ ९ जुज्झित ख १ ख २ पु २ । झुज्झियं पु १ । खुधियं वृ० दी० ॥ १० भिक्खुं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ डसइ ख १ पु १ पु २ ॥ १२ तेउपु° ख २ पु २ । तेजपु° ख १ पु १ ॥ १३ पडिभा° ख २ वृ० दी० ॥ १४ तद्दारवेतणिज्जे ते जे एते चूपा० ॥

१७२. अप्पेगे पडि(रि)भासंति० सिलोगो । समन्ताद् भाषन्ते परिभाषन्ते । पद्यतेऽनेनेति पन्थाः, पन्थानं प्रति योऽन्यः पन्थाः स प्रतिपथः प्रतिपन्था वा, तेन गच्छतीति प्रातिपथिकः, तं गामाणुगामं रीयंतं केइ पाडिपथगाः पडिभासंति। अथवा यो यस्य विलोमकः स तस्य प्रातिपथिको भवति, ते तु सर्वे एव कुतीर्थाः सन्मार्गविलोमकाः । कथम् ? अणुसोयपट्ठिए बहुजणम्मि साधवो हि प्रतिश्रोतसा मोक्षमभि प्रस्थिताः, कुतीर्थास्त्वनुश्रोतसा । किं भाषन्ते ? पडियारगता एते, करणं कृतिर्वा कारः, कारं प्रति योऽन्यः कारः प्रतिकारः, तं गताः पडियारगताः पडियाइं कम्माइं वेदंति, एतेहि अण्णाए जातीए पथा उच्छूढा तेण णिर्यंणा हिंडंति, ण य दत्ताइं दाणाइं तेण न लभंति, लद्धं पि य ण गेण्हंति, ण वा उदगाणि दत्ताणि तेण ताणि ण पिवति । जे एते एवजीविणो त्ति जे एते एवंजीवणसीला, तं जधा—कंजिग-उसिणोदगादीहिं अन्ताहारेण य जीवंति । पठ्यते च—“तद्दारवेतणिज्जे ते” जेहिं चेव दारेहिं कतं तेहिं चेव वेदिज्जति त्ति तद्दारवेदणिज्जं । जधा—अदत्तदाणा तेण ण लभंते, सेसं तधेव ॥ ९ ॥

१७३. अप्पेगे वइं[2] जुंजंति चरगा[3] पिंडोलगाऽहमा ।
मुंडा कंडूविणट्ठंगा उज्जल्ला असमाहिता ॥ १० ॥

१७३. अप्पेगे वइं जुंजंति० [सिलोगो] । अप्येके न सर्वाः (सर्वे) वाचं जुंजंति वाचमुदीरयन्तीत्यर्थः । अहो ! एते चरगा पिंडोलगा पिंडेसु दीयमानेसु उल्लेति पिंडोलगा । अधमा णाम अधमजातयः, ब्राह्मणा ह्युत्तमाः, क्षत्रियाः वैश्या मध्यमाः, शूद्रा अधमाः । ब्राह्मणस्य किल भिक्षा इष्टा क्षत्रियर्षीणां च, शेषास्तु यद्यटन्ति क्लेशं कुर्वन्ति ते तत् पिण्डं ति । मुण्डेति अशिखाः । स्वेद-मल-मत्कुणादिभिः खाद्यमाना अङ्गुल-नखशुक्ति-शलाकादीनां कण्डुकितमार्गैः विणट्ठंगा । उज्जल्ल त्ति उवचितजल्ला मलसकटाच्छादिताङ्गाः । “उज्जाय” त्ति वा पठ्यते च, उज्जातो मृगो नष्ट इत्यर्थः, उज्जातमृगसमाः । असमाहित त्ति अशोभना विवृताङ्गत्वात्, अथवा असमाहिता दुक्खिता ॥ १० ॥

१७४. एवं विप्पडिवण्णेगे अप्पणा उ अजाणगा ।
तमातो ते तमं जंति [8]मंदा मोहेण पाउता ॥ ११ ॥

१७४. एवं विप्पडिवण्णेगे० सिलोगो । एवं अनेन प्रकारेण, न सम्यक् प्रतिपन्नाः विप्रतिपन्नाः, एगे मिथ्यादृष्टयः स्वयमजानकाः न च ज्ञानवतां शृण्वन्ति । अज्ञानं हि तमः, ते ततो अण्णाणतमातो तमंतरं कायाइ उक्कोसकालट्ठितीयं मोहणिज्जं कम्मं बंधंति, एवं णाणावरणिज्ज दसणावरणिज्जं, एगिंदियादिसु वा एगंततमासु जोणीसु उववज्जंति, णिब्बंधकारेसु वा णरएसु । बुद्धीए मंदा । मोहो अण्णाणं । पाउता छण्णा । अधवा—“मतिमंदा इत्थिगाउ या” मंदविण्णाणा उ स्त्रीमोहेन ॥ ११ ॥ उक्ताः शब्दाः । इदाणिं फासा—

१७५. पुट्ठो य दंस-मसएहिं तणफासमचाइता[10] ।
न मे दिट्ठे परे लोए[11] किं परं मरणं सिया ? ॥ १२ ॥

१७५. पुट्ठो य दंसमसएहिं० सिलोगो । सिंधु-तामलित्तिगादिसु विसएसु अतीव दंसगा भवंति, अप्रावृतास्ते भृश वाध्यमानाः शीतेन च अत्थरण-पाउरणट्टताए तणाइं सेवमाणा तेहिं विज्झंति अचाइता अधियासमिति[12] वाक्यशेषः । इद च दुःखमपि सह्यते यदि नाम परः लोकः स्यात्, स च न मे दिट्ठे परे लोए किं परं मरणं सिया, न हि मयाऽन्येन वा स

---

१ नमा इत्यर्थः ॥ २ वयि ख २ । वति ख १ ॥ ३ नगिणा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ उज्जाया चूपा० ॥ ५ क्षत्रिये क्षपी, अवशेषास्तु अवलगन्ति क्लेशं कुर्वन्ति तेन तत् पिंडोलगा । मुंडे° मुद्रिते ॥ ६ यद् घटन्ति पु० ॥ ७ अशिषाः चूसप्र० ॥ ८ मतिमंदा इत्थिगाउ या चूपा० ॥ ९ पाउडा ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० °चायिया खं १ । चाइया पु १ पु २ ॥ ११ °ए जइ परं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ अणधि° चूसप्र० ॥

साक्षात् परलोको दृष्टः यन्निमित्तं क्लेशः सह्यते। क्लेशान् सह्यमानस्य हि परं मरणं सिया, तदप्यनिष्टम्, मरणमिहेच्छेद् यद्यसौ परलोकः स्यादिति, सदिग्धे तु परलोके किं दुःखेन तपसा कृतेन? इति। अयमदर्शनपरीषहोपसर्गः ॥ १२ ॥ किञ्च—

१७६. संतत्ता केसलोएणं वंभचेरपराइता[1]।
तत्थ मंदा विसीदंति मच्छा पविट्ठा[2] व केयणे ॥ १३ ॥

१७६. संतत्ता केसलोएण० [सिलोगो]। समस्तं तप्ताः [सतप्ताः]। क्लिश्यन्त एभिराकृष्टा इति केशाः। दुःखभीरवो हि केचित् केसलोयपराजिता विप्पडिवज्जंति तेपां स एवोपसर्गः। वंभचेरं इत्थिपरीसहो तेण पराइता उवसग्गिता अणुवसग्गिता वा तत्थ मंदा विसीदंति मच्छा पविट्ठा व केयणे, केयणं णाम कडवल्लसठितं, मच्छा पाणिए पडिणियत्ते उच्चारिज्जंति इत्यर्थः, खुड्डुमादी, तत्थ ते पविट्ठा वरागा सोयंति विसीदंति परिघोलंति जैया[3] व पाणियं पि घुलितं ॥ १३ ॥

१७७. आयदंडसमायारा मिच्छासंठितभावणा।
हरिस-प्पदोसमावण्णा केयि लूसेंति अणारिया[4] ॥ १४ ॥

१७७. आयदंडसमायारा० सिलोगो। आत्मानं दण्डयितुं शीलं येषां ते भवन्ति आत्मदण्डसमाचाराः। मिच्छत्तसंठिता भावणा जेसिं ते भवंति मिच्छासंठितभावणा। ते तु कथमात्मानं दण्डयन्ति? उच्यते, ते साधून् दृष्ट्वा हर्षात् प्रदोषाद्वाऽवपिट्टेन्ति, जधा सो पुरोहितपुत्रः[5]। केयि त्ति ण सव्वे, लूसेंति अक्कोसेंति पिट्टेंति य अनार्या दंसणादीहिं ३ ॥१४॥

१७८. अप्पेगे पलियंतम्मि[6] चारो चोरो त्ति सुव्वयं।
वंधंति भिक्खुयं वाला कसाय-वसणेहि[7] य ॥ १५ ॥

१७८. अप्पेगे पलियंतम्मि० सिलोगो। अपि एके न सर्वे, पडियंतं समन्तादन्तं परियन्तं। कस्य? देशस्य। तस्मिन्नदेशे पर्यन्ते रीयन्तं कश्चिद् भाषन्ते—चारिकोऽयम्, चारयतीति चारकः, येषां परस्परविरोधः ते चारिकमित्येनं सवदन्ते। चोरं वा त सुव्वयं पि सन्नतं शोभनं व्रतम्। सकिता वा णिस्संकिया वा भूत्वा वंधंति भिक्खुयं वाला, जधा गोसालो वद्धो आसीत् [आव० नि० गा० ४८४]। कसाय-वसणेहि य त्ति, तत्पुरुषः समासः द्वन्द्वो वाऽयम्, सभावत एव केचित् साधून् दृष्ट्वा कसाइज्जति, वसण केसिंच भवति—कप्पडिग-पासडियां[8] वाहेंति णच्चावेंति वा ॥ १५ ॥

तेष्वेव पर्यन्तेपु मध्यदेशेपु वा कंचि रियमानं कश्चिद्[9] वालो—

१७९. तत्थ दंडेणं[10] संवीते मुट्ठिणा अदु फलेण वा।
णातीणं[11] सरती वाले इत्थी वा कुद्धगामिणी ॥ १६ ॥

१७९. तत्थ दंडेण संवीते० सिलोगो। दंडो णाम खीलो दडप्पहारो वा। मुट्ठी मुट्ठीरेव। फलं चवेडाप्रहारः। संवीतः सम्प्रहृत इत्यर्थः। णातीणं सरती वाले, जइ णाम णातयो केयि एत्थ होत्था(होंता) भाति-मित्तादयो णाहमेवंविधां आवर्ति पावेतो। इत्थी वा कुद्धगामिणी, जधा सा अचंकारितभट्टा [दशाश्रु० अ० ८ नि० गा० ५३–५६ चूर्णौ] कुद्धा गच्छतीति कुद्धगामिणी ॥ १६ ॥

१८०. एते भो! फरुसा[12] फासा कसिणा दुरधियासगा।
हत्थी वा सरसंवीता [13]कीवा वसगा गया गिहं ॥ १७ ॥ त्ति वेमि ॥

॥ तृतीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः ३–१ ॥

१ पराजिया ख १ ख २ पु १ ॥ २ °च्छा विट्ठा ख १ पु २ ॥ ३ जया वि पाणियं धुलित पु० ॥ ४ लूसंतऽणारिता खं २ पु १ पु २। लूसंति णारिया ख १ ॥ ५ पञ्चकल्पमहाभाष्ये एतदुदाहरण द्रष्टव्यम् ॥ ६ °यंतंसि ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ७ °वयणेहि खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ °या वा होंति ण° चूसप्र० ॥ ९ कैश्चिद् चूसप्र० ॥ १० दंडेहिं ख २ ॥ ११ सरए ख १ पु २ ॥ १२ कसिणा फासा फरुसा दुर° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ कीवाऽवस गया गिहं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ०। तिव्वसढगा गता गिहं चूपा०। तिव्वसङ्के गया गिहं वृपा० ॥

१८०. एते भो ! फरुसा फासा० सिलोगो। फरुसा नाम स्नेहवियुक्तैरुदीरिताः। दुक्खं अधियासिज्जंति दुरधियासगा अप्पसत्तेहिं। ते अणधियासेमाणा हत्थी वा सरसंवीता शरप्रहारैरित्यर्थः, यथा रौद्रसङ्ग्रामे हस्तिनः शरसंवीता नश्यन्ति एवं भावसङ्ग्रामादपि परीसहपरायिता क्लीवा वशका नाम परीषहे वशकाः पुनरपि गृहं [गताः] गच्छन्ति गमिष्यन्ति च। पठ्यते च-"तिव्वसढगा गता गिहं। ति बेमि" तीव्रं शठाः तीव्रशठाः, तीव्रैर्वा शठाः तीव्रशठाः, तीव्रैः परीषहैः प्रतिहताः ॥ १७ ॥

॥ इति [तृतीयोपसर्गपरिज्ञाध्ययने उद्देशः] प्रथमः ३-१ ॥

[उवसग्गपरिण्णाए विइओ उद्देसओ]

स एव उपसर्गाधियारो अणुवत्तत एव।

१८१. अध इमे[1] सुहुमा संगा भिक्खूणं जे दुरुत्तरा।
जत्थ[2] मंदा विसीदंति ण चएत्ता[3] जवइत्तए[4] ॥ १ ॥

१८१. अध इमे सुहुमा संगा० सिलोगो। अथेत्यानन्तर्ये, पडिलोमोवसग्गा गता, इदाणिं अणुलोमा। उक्तं हि—"पढमम्मि य पडिलोमा णाती अणुलोमगा य वितियम्मि।" [नि० गा० ४१] सुहुमा णाम णिउणा, न प्राणव्यपरोपणवत् स्थूरमूर्त्तयः, उपायेन धर्माच्च्यावयन्ति। उक्तं हि—"शक्यं जीवितविघ्नकरैरप्युपसर्गैरुदीर्णैः माध्यस्थ्यं भावयितुम्।" [ ] अनुलोमा पुण पूजा-सत्कारादयः भिक्खूणं दुरुत्तरा भवंति। वक्ष्यति हि—"पाताला व दुरुत्तरा" [श्लो० १९२] सज्जते यत्र स सङ्गः। संगो त्ति वा विग्घो त्ति वा वक्खोडो त्ति वा एगट्ठं। अल्पसत्त्वानां दुस्तराः न तु सत्त्ववताम्। जत्थ मंदा विसीदंति, मंदा उक्ताः, विसेसेण सीयंति। ण चएत्ता णाम असक्केंता जवइत्तए त्ति वा लाढेत्तए त्ति वा एगट्ठं ॥ १ ॥

१८२. अप्पेगे णातयो[5] दिस्स[6] रुयंति[7] परिवारिया[8]।
पोस णे तात! पुट्ठो सि कस्स[9] परिचयासि णे? ॥ २ ॥

१८२. अप्पेगे णातयो दिस्स० सिलोगो। अपिः पदार्थसम्भावने। एके न सर्वे ज्ञातयो माता-पित्रादि पव्वयंतं पुव्वपव्वइतं वा दट्ठूणं रुयंति। किंवं ?, किवण-करुणाणि—"नाथ! पिय! कंत! सामिय!०"। [ ] परिवारिया दव्वतो भावतो य। वयं वृद्धा कर्मासहिष्णवः, तदिदानीं पोसाहि णे, आवाल्यात् पुट्ठो मांदादिभिः[10] ॥ २ ॥

१८३. पिता[11] ते थेरतो तात! ससा ते खुड्डिया इमा।
भातरो ते सवा[12] तात! सोदरा किं जहासि[13] णे? ॥ ३ ॥

१८३. पिता ते थेरतो तात० सिलोगो। तात! इत्यामन्त्रणम्। उक्तं हि—

पिता ते स्थविरो तात! वयं च गतयौवनाः। न च तत् कर्म जानासि यज्ज्ञानात्यपरो जनः ॥ १ ॥
[ ]

---

१ अहिमे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ °त्थ एगे वि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ चयंति ख १। चयंति ख २ पु १ पु २। "शक्नुवन्ति" इति वृत्ति-दीपिकाकारौ ॥ ४ जवित्तए ख १ पु २। जहित्तए ख २ पु १ ॥ ५ नायया ख १ पु २। णायओ खं २ पु १ ॥ ६ दिस्सा ख १ ख २ ॥ ७ रोयंति ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ परियारिया पु १ ॥ ९ कस्स तात! चयासि णो ख १ ख २ पु २ वृ० दी०। कस्स ताय! जहासि णे पु १ ॥ १० मात्रादिभिरित्यर्थ ॥ ११ पिता त थे° ख १। पिया य थे° पु २ ॥ १२ सया पु १। सगा ख १ ख २ पु २ वृ० दी० ॥ १३ चयासि ख २ वृ० दी० ॥

त्वां हि मुक्त्वा अस्यां दशायां कोऽन्यः पोपयिष्यति ? । तं तु सद्भावतो ब्रूते, कौतुकाद्वा अन्येष्वपि पुत्रेषु विद्यमानेषु ब्रवीति—पोस णे तात ! पुट्ठो सि, कस्स णाम तुमं अम्हे अणाहाइ परिच्चयसि ? । किञ्च—कश्चिद् ना [जनः] सुहृद्भिर्वा निष्क्रामन्नुपदिश्यते—पिता ते थेरतो तात !, थेरगो दंडधरितग्गहत्थो अत्यन्तदशा प्राप्तः युक्त त्वयि जीवमाने मल्लपिंड-मडंतो ? कथं च तव धर्मः स्यादस्मिन् विलपमाने ? । ससा नाम ते भगिनी, सा य खुड्डुलिया भद्र ! बृहत्तमा कन्या वा, कोऽस्या निर्वहणं करिष्यति ? । एवमादीणि कार्यसहस्राणि सताणि असताणि वा उदीरति । भातरो ते सगा तात ! शृण्वन्तीति श्रवाः आणा-उववाय-वयणणिद्देसे य चिट्ठंति । समानोदराः सोदराः । सोदरग्रहणाद् अन्येऽपि ताव एकपित्रादयो छडिज्जंति सुद्दं, न तु सोदराः ॥ ३ ॥ किञ्च—

१८४. मातरं पितरं पोस एवं[1] लोगो[2] भविस्सति ।
एवं[3] खु[4] लोइयं तात ! जे[5] पालंति उ मातरं ॥ ४ ॥

१८४. मातरं पितरं पोस० सिलोगो । मातापितरौ हि शुश्रूषार्हौं ताविदानीं पुष्णाहि । एवं लोको भविष्यतीति अयं परश्च । अस्मिंस्तावद् यशः कीर्त्तिश्च भवति मङ्गलं च । उक्तं हि—

गुरवो यत्र पूज्यन्ते यत्र धान्यं सुसम्भृतम् । अदन्तकलहो यत्र तत्र शक्र ! वसाम्यहम् ॥ १ ॥

[ ]

परलोकश्च भवति गुरुशुश्रूषया । एते हि पदीवसरिथया समणगा भवंति जे माया-पितर ण सुस्सूसंति, तेण तेसिं गुरुपडिणीयाणं कतो लोगो धम्मो वा भविस्सति ? ॥ ४ ॥ किञ्चान्यत्—

१८५. उत्तरा[6] महुरुल्लावा पुत्ता ते तात ! खुड्डगा ।
भारिया ते णवा तात ! मा सा अण्णं[7] जणं गमे ॥ ५ ॥

१८५. उत्तरा महुरुल्लावा० सिलोगो । उत्तरा नाम प्रतिवर्षमुत्तरोत्तरजातकाः समघटच्छिन्नगाः । पठ्यते च—"इतरा मधुरोल्लावा" इतरा णाम खुड्डलगा अव्यक्तमहुरोल्लावकाः । पुत्ता ते तात ! खुड्डगा, तात इत्यामन्त्रणम्, खुड्डग त्ति अप्राप्तवयसः अकर्मयोग्या वा । भारिया ते णवा तात !, भरणीया भार्या, नवा नाम नववधूः अप्रसूता गर्भिणी वा, मा सा अण्णं जणं गमेज्ज उब्भामए वा करेज्ज, जीवंत एव तुमम्मि अण्णं पतिं गेण्हेज्जा ततो तुज्झ वि अड्डिती भविस्सति, अम्ह वि य जणे छायाघातो अवण्णओ य भविस्सतीति ॥ ५ ॥ किञ्च—जो जधा पुव्वमासी तस्स हि स एव उवसग्गो पायो भवति, यो नान्यथा ब्रवीति । तद्यथा—यः कृष्यादिकर्मपराजितः तं दृष्ट्वा ब्रुवते—

१८६. एहि ताव[9] घरं जामो मा तं कम्मसहा वयं ।
[10]वितियं पि तात[11] ! पासामो जामो[12] ताव सयं गिहं ॥ ६ ॥

१८६. एहि ताव घरं जामो० सिलोगो । जाणामो—जधा तुमं अतिकम्मा भीतो पव्वइतो, इदाणिं वयं कम्मसमत्था कम्मसहा कम्मसहायकत्व प्रति भगतः, तदिदानीं कुमार ! [किं] अतिभणिएण ? चंपगाणि वि हत्थेण मा छिवाहि, तणं वा उक्खिवाहि—त्ति दूरगतं च ण दट्ठूण भगंति । आसण्ण वा गृहम्—आगच्छ, वितियं पि तात ! पासामो जामो ताव सयं गिहं, वितिय पि तात ! पासामो, स्वे गृहे तिष्ठन्तमिति वाक्यशेषः, वितिय पि ताव पेच्छामु सव्वाइं णियल्लगाइ ॥ ६ ॥

---

१ एस पु १॥ २ लोए भविस्सती ख १ पु १ पु २ ॥ ३ एयं ख १ पु १ ॥ ४ खलु खं २ ॥ ५ जे पोसेति उ मातरं ख १ । जो पोसइ उ मायरं पु १ । जे पोसे पिउ-मायर पु २ ॥ ६ इतरा मधुरोल्लावा चूपा० । उत्तरा मधुरोल्लावा ख १ ख २ वृ० दी० ॥ ७ अण्णजणंगमा पु २ ॥ ८ वि य अड्डितीया भवि° वा० मो० ॥ ९ ताय ! ख १ ख २ पु १ पु २ दी० ॥ १० वीयं ख १ पु १ पु २ ॥ ११ ताया ! पु २ ॥ १२ जामु ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

१८७. गंतुं तात! पुणाऽऽगच्छे[1] ण[2] तेणासमणो सिया।
अकामकं[3] परक्कमंतं को तं वारेतु[4]मरहति? ॥ ७ ॥

१८७. गंतुं तात! पुणाऽऽगच्छे० सिलोगो। गत्वा स्वजनपक्षं दृष्ट्वा पुनरागमिष्यसि, न हि त्वं तेनाश्रमणो भविष्यसि यस्त्वं स्वजनमवलोकयित्वा[5] पुनरायास्यसि। अकामकं[6] परक्कमंतं, अकामको नाम अणच्छिओ[7], परक्कमंतं ति पडिजयंतं। अथवा यदा त्वं पर (?) प्राप्य निष्क्रान्तो भविष्यसि भुक्तभोगित्वात् तदा अकामकं पराक्रमन्तं को तं वारेतुमर्हति? ॥ ७ ॥ धरेन्तग[8] वा पव्वइयगं भणंति—

१८८. जं किंचि अणगं तात! तं पि सव्वं समीकतं[9]।
हिरण्णं ववहाराती तं पि दासामो[10] ते वयं ॥ ८ ॥

१८८. जं किंचि अणगं तात! तं पि सव्वं समीकतं० [सिलोगो। समीकतं ति वा] उत्तारियं ति वा विमोक्खितं [ति] वा एगट्ठं। हिरण्णं ववहाराती, जो वा णियगो खीणमंडमुल्लो पव्वइतो तं भणति—हिरण्णं ते कताकतं दासामो, आदिग्रहणात् सुवण्णं वा भंडमुल्लं वा दासामो जेणेव ववहरिस्ससि, व्यवहारार्थं व्यवहाराय। अपि पदार्थादिषु, तच्च ते दासामो, अन्यच्च यद् वक्ष्यसि ॥ ८ ॥

१८९. इच्चेवं[11] णं सुसिक्खंतं कालुणतो[12] उवट्ठिता।
विबद्धो[13] णातिसंगेहिं[14] ततो गारं पहावती ॥ ९ ॥

१८९. इच्चेवं णं सुसिक्खंतं० सिलोगो। साधुक्रिया सुट्ठु सिक्खंतं सुसिक्खंतं। पाठान्तरम् "सुसेहिंति" वा ओसिक्खावेंतीत्यर्थः। कालुणतो उवट्ठित त्ति कलुणाणि कदंता य रुयंता य णिरिक्खंता य तं उवसग्गेंति समुट्ठिता उप्पव्वावेतुं। स च तेहिं णाणाविधेहिं विबद्धो णातिसंगेहिं ततो गारं पहावती, गारं नाम अगारत्वं भृशं वा धावति [पधावती] ॥ ९ ॥ किञ्चान्यत्—

१९०. वणे[15] जातं जधा रुक्खं मालुया पडिबंधती।
एवं[16] [17]णं परिवेढंति[18] णातओ[19] असमाधिए[20] ॥ १० ॥

१९०. वणे जातं जधा रुक्खं० सिलोगो कंठो। एवं [णं] परिवेढंति द्रव्यतः। भावतश्च परिवेढणं असमाधीए त्ति तं तं भणंति करेंति य येनास्यासमाधिर्भवति। अथवा असमाधिता ते द्रव्यतो भावतश्च, स तैः करुणादिभिः ॥ १० ॥

१९१. विबद्धे[21] णातिसंगेहिं हत्थी वा वि णवग्गहे।
पिट्ठतो परिसप्पंति सूतिय[22] व्व अदूरतो[23] ॥ ११ ॥

१९१. विबद्धे णातिसंगेहिं हत्थी वा वि णवग्गहे [पुव्वद्धं]। कश्चित् कालं कासारोच्छुखण्डादिभिरनुवृत्त्य पश्चाद् आराप्रहारैर्बाध्यते। तेऽप्येनं पुनर्जातमिव मन्यमानाः तस्याभिनवानीतस्य पिट्ठतो परिसप्पंति। को दृष्टान्तः?, सूतिय व्व अदूरतो, यथा तद्दिनसूतिका गृष्टिः स्तनन्धकस्य पीतक्षीरस्य इतश्चेतश्च परिधावतो ईषदुन्नतवालधिः सन्नतग्रीवा रम्भायमाणा

१ पुणो गच्छे ख २ पु १ पु २ ॥ २ ण याय तेण समणो ख २ । ण तेण समणो ख १ पु १। नेवण समणो पु २ ॥ ३ °मगं परक्कम्म को ते वा° ख १ ख २ पु १। °मगं परक्कंतं को ते वा° पु २ ॥ ४ धारेतु° वृपा० दीपा० ॥ ५ °मवलोक्य पुन° पु० ॥ ६ अकामं ते परक्कम अकामको चूसप्र० ॥ ७ अनर्थिक इत्यर्थः ॥ ८ 'धरेन्तग' ऋणवन्तम् इत्यर्थः ॥ ९ समीगयं ख १ ख २ ॥ १० दासामु ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ इच्चेव णं सुसेहिंति का° खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ कालुणिया समुट्ठिया खं १ पु २। कालुणीय समुट्ठिया ख २। कालुणिया समुवट्ठिया पु १ वृ० दी० ॥ १३ निबद्धा पु १ ॥ १४ णायसं° ख २। णाइसं° पु १ पु २ ॥ १५ जहा रुक्खं वणे जायं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १६ एवं ख १ खं २ पु २ ॥ १७ तं पु १ ॥ १८ पडिबंधंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १९ नायओ ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २० °माधिणा खं १ ख २ पु २। °माहिए पु १ ॥ २१ विबद्धो खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २२ सूती गो व्व ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २३ अदूरगा पु १ वृ० दी०। अदूरए ख १ खं २ पु २ ॥

पृष्ठतोऽनुसर्पति, स्थितं चैनं उल्लिखति, अदूरतोऽस्यावस्थिता स्निग्धया दृष्टया निरीक्षते, एवं बंधवा अप्यस्य उदकसमीपं वाऽन्यत्र वा गच्छन्तं 'मा णासिस्सेहिति' त्ति पिट्ठतो[1] परिसप्पंति, चेडरूवं वा से मग्गतो देन्ति, शयानमासीनं चैनं स्नेहमिवोद्गिरन्त्या दृष्टया अदूरतो निरीक्षमाणा अवतिष्ठन्ते ॥ ११ ॥

१९२. एते संगा मणुस्साणं पाताला वे[2] अतारिमा ।
कीवा जत्थ[3] विसण्णेसी णातिसंगेहि मुच्छिता ॥ १२ ॥

१९२. एते संगा मणुस्साणं० सिलोगो । एते इति ये उद्दिष्टाः, सज्यते येन स सङ्गः, मनुष्याधिकार एव वर्त्तते तेन मनुष्यग्रहणम् । पाताला नाम वलयामुखाद्याः, सामयिकोऽयं दृष्टान्तः । उभयाविरुद्धस्तु पातालो समुद्र इत्यपदिश्यते । न तारिमा अतारिमा न शक्यते बाहुभ्या तर्तुमिति । कीवा कातरा जत्थ विसण्णेसी विसण्णं एसतीति विसण्णेसी णातिसंगेहि मुच्छिता, विसण्णा वा आसति विसण्णासी णातिसंगेहि मुच्छिता । अथवा—"कीवा जत्थावकीसंति" अपकृष्यन्ते मोक्षगुणातो धम्मातो वा ॥ १२ ॥ किंणिमित्तं णातिसगेहि मुच्छिता ?—

१९३. तं च भिक्खू परिण्णाय सव्वे संगा महासवा ।
जीवितं नावकंखेज्जा[4] सोच्चा धम्ममणुत्तरं ॥ १३ ॥

१९३. तं च भिक्खू परिण्णाय सव्वे संगा महासवा [पुव्वद्ध] । तदिति यदेतदुक्तं अथवा तं उपसर्गगणं दुविधाए [परिण्णाए] परिण्णाय, सव्वे इत्यपरिशेषाः, संगा एव महान्ति कर्माण्याश्रवन्तीति [महाश्रवा । ·· ····· ·· ·· · · · ···· ·· ·· · · ···· ···] ॥ १३ ॥

१९४. अहो[5]! इमे संति याऽऽवट्टा[6] कासवेण पवेइता ।
बुद्धा जत्थावसप्पंति[7] सीदंति अबुधा जहिं ॥ १४ ॥

१९४. [अहो !] इमे संति याऽऽवट्टा० सिलोगो । अहो ! दैन्य-विसमया-ऽऽमन्त्रणेषु । अथवा—["अध] इमे संति आवट्टा" अथेत्यानन्तर्ये, इमे वक्ष्यमाणाः, सन्तीति विद्यन्ते, द्रव्यावर्त्ता नदीपूरो, भावावर्त्ता यैः प्रकारैरावर्त्तन्ते संयमभीरवः । कासवेण पवेइता प्रदर्शिता इत्यर्थः । बुद्धा जत्थावसप्पंति, बुद्धा दुविधा—दव्वे भावे य, दव्वे णिद्दाबुद्धा, भावे णाणातिबुद्धा, अवसप्पन्ति नाम अवगच्छन्ति । सीदंति अबुधा जहिं ॥ १४ ॥ किञ्च—यः कश्चित् संयतः कस्सति रण्णो पुत्तो वा अरायवंसिओ वि को वि रूवसपण्णो विज्जा-मत-कलागुणसपण्णो वा । तं जधा—

१९५. रायाणो रायमच्चा य माहणा अदुव[8] खत्तिया ।
णिमंतयंति भोगेहिं भिक्खुअं साधुजीविणं ॥ १५ ॥

१९५. रायाणो रायमच्चा य० सिलोगो । रायाणो चक्कवट्टिमादी, तत्थ बंभदत्तेण चित्तो निमंतिओ । [उत्त० अध्य० १३] रायमच्चा इस्सर-तलवर-माडविगादि । माहणा भट्टा । खत्तिया नाम गणपालगा, गणभुत्तीए वा भ्रष्टराज्याः, जे वा अरायाणो अरायवंसिया । णिमंतयंति भोगेहिं भिक्खुअं साधुजीविणं ति, साधुविहीए फासुएण पडोआरेण जीवति त्ति साधुजीवी । अथवा साध्विति प्रशंसायाम्, शोभनेन जीवनेन जीवतीति, सयमजीवितेनेत्यर्थः ॥ १५ ॥

के च ते भोगाः ? इमे—

---

१ पच्छतो पु० स० ॥ २ व दुरुत्तरा १८१ सूत्रगाथाचूर्णो पाठान्तरम् ॥ ३ जत्थ य कीसंति नाति° ख १ पु १ पु २ वृ० दी० । जत्थऽवकिस्संति नाति° ख २ । जत्थ विसण्णासी णाति° इति जत्थावकीसंति णाति° इति च चूर्णौ पाठभेदौ ॥ ४ नातिकं° ख १ । नाहिकं पु २ ॥ ५ अहिमे ख १ ख २ पु २ वृ० दी० । अध इमे पु १ चूपा० । अहो ! इमे वृपा० ॥ ६ आवट्टा खं १ ख २ पु १ पु २ चूपा० ॥ ७ °त्थ पस° ख १ पु २ ॥ ८ अदु ख° पु २ । °ऽदुव ख° पु १ ॥

१९६. हत्थ-ऽस्स-रह-जाणेहिं विहारगमणेहि य।
भुंजाहिमाइं[1] भोगाइं महरिसी! पूजयामु[2] ते॥ १६॥

१९६. हत्थ-ऽस्स-रह-जाणेहिं० सिलोगो। हत्थि-अस्स-रथादीणि पसिद्धाणि। जाणाणि [3]सीदा-संदमाणिगादीणि। पुण जले थले य, जले णावादि, थले [4]सीता-संदमाणिगादी। विहारगमणा इति उज्जाणियागमणाइं। चशब्दादन्यैश्च त्रादिभिः इन्द्रियक्षमैर्विपर्यैर्यथेष्टतः भुंजाहिमाइं भोगाइं, इमानीति विद्यमानानि प्रत्यक्षाणि वा महरिसि! त्ति। एवमपि ऽसिरे चेव पूजनीयश्च॥ १६॥ किञ्चान्यत् तमेवं णिमतयंति—

१९७. वत्थ-गंध-मलंकारं इत्थीओ सयणाणि य।
भुंजाहिमाइं भोगाइं आयसो[5]! पूजयामि ते॥ १७॥

१९७. वत्थगंधमलंकारं० सिलोगो। वत्थाणि अयिणगादीणि। गंधा कुष्ठादयः। अलंकारा हारादयः। स्त्रियः इं ते धूतं भगिणिं वा देमि अण्ण वा जं इच्छसि। सयणाइं अत्थुत-पच्चत्थुताणि। चशब्दाद् लोही-लोह-कडाह-कडुच्छुगा-ीणि सव्वो घरोवक्खरो सहीणो, जारिसो चेव मम परिच्छतो तारिस चेव दलयामि। तेनोपचितो भुंजाहिमाइं भोगाइं मया वेधीयमानानि। आयसो! पूजयामि ते साम्प्रतमेभिर्वस्त्रादिभिः पूजयामि पूजयिष्यामश्च त्वाम्, सर्वस्य त्वं वशयिता नविष्यसि॥ १७॥ किञ्चान्यत्—न च तवास्माभिरभ्यर्थ्यमानस्य कृततपःप्रणाशो भविष्यति। कथम्?—

१९८. जो तुमे णियमो चिण्णो भिक्खुभावम्मि उत्तमो[6]।
अगारमावसंतस्स[7] सव्वो सो चिट्ठती तधा[8]॥ १८॥

१९८. जो तुमे णियमो चिण्णो० सिलोगो। इंदिय-णोइंदिएहिं चीर्णो कृतः। भिक्खुभावम्मि उत्तमो, भिक्खुभावो णाम पव्वज्जा, उत्तमो असरिसो। अगारमावसंतस्स सव्वो सो चिट्ठती तधा। "संविज्जते" वा, न विनश्यतीत्यर्थः, लोकसिद्धमेवेतं—सुकयस्स विपुजयोः॥ १८॥ किञ्चान्यत्—

१९९. चिरं दूइज्जमाणस्स [9]दोसो दाणिं कुतो तव?।
इंचेव[10] णं णिमंतेंति [11]णीयारेण व सूयरं॥ १९॥

१९९. चिरं दूइज्जमाणस्स० सिलोगो। चिरं तुमे धम्मो कतो, दूइज्जता य णाणापगारा देसा दिट्ठा तवोवणाणि तित्थाणि य। दोष इदानीं कुतस्तव? किं त्वया चौरत्वं कृतं पारदारिकत्वं वा?। अथवा दोसो पावं अधर्म इत्यर्थः, स कुतस्तव?, क्षपितस्त्वया, कृतं सुमहत् तपः, ण य ते उप्पव्वयंतस्स वयणिज्जं भविस्सति, किं भवं चोरो पारदारिगो वा?, ननु तीर्थयात्रा अपि कृत्वा पुनरपि गृहमागम्यते। एवमादिभिः हस्त्यश्व-रथ-वस्त्रादिभिः निमन्त्रणैश्च ते णियल्लगा अणियल्लगा वा इच्चेव णं णिमंतेंति णीयारेण व सूयरं, णीयारो णाम कुडगादि, स तेण णीयारेण छितो घरसूयरगो अडविं ण वच्चति मारिज्जति य, एवं सो वि असारेहिं णिमंतितो ते भोत्तुं मरण-णरगादियाइं दुक्खाइं पावेति॥ १९॥

२००. चोदिता भिक्खुचरियाए[12] अचयंता[13] जवइत्तए[14]।
तत्थ मंदा विसीदंति उज्जाणंसि[15] व दुब्बला॥ २०॥

---

१ भुंज भोगे इमे सग्घे मह° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ २ °यामु तं ख २ वृ० दी०। °याम ते पु २॥ ३-४ शिविका-स्यन्दमानिकादीनि॥ ५ आउसो! पूजयामु तं ख १ ख २ पु २ वृ० दी०। आयसो! पूजयामु ते पु १॥ ६ सुव्वता! ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ७ आगार° ख १ ख २॥ ८ सव्वो संविज्जए तधा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा०॥ ९ दोसे दाणिं कओ तव ख १ पु २॥ १० तं चेव ख १ पु २॥ ११ नीवारेण ख १ ख २ पु १ पु २॥ १२ °चज्जाए ख १ ख २ पु १ पु २॥ १३ अचयंता ख २॥ १४ जवित्तए ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। जहेत्तए ख २॥ १५ उज्जाणम्मि घ ख १ पु २॥

२००. चोदिता भिक्खुचरियाए० सिलोगो। चोदिता नाम [1]अवधिता तज्जिता वाधिता इत्यर्थः। चरणं चर्या चक्कवालसामायारी। जवइत्तए त्ति वा लाढेत्तए त्ति वा एगट्ठ। तत्थ मंदा विसीदंति उज्जाणंसि व दुव्वला, केइ आयसमुत्थेहिं [केइ परसमुत्थेहिं] केइ उभयसमुत्थेहिं, ऊर्द्धं यानं उद्यानम्, तत्र (तच्च) नदी तीर्थस्थल गिरिपब्भारो वा, तत्थ पुंगवा वि य आरुभंता सीतिज्जंति, किमंग पुण दुव्वला दुपदा चउप्पदा वा?, एवं के वि पव्वयंता चेव ताव भावदुव्वला सीदंति ॥ २० ॥ किञ्च—

२०१. अचयंता [2]य लूहेणं उवधाणेण तज्जिता।
तत्थ मंदा वि[3]सीदंति [4]पंकंसि व जरग्गवा ॥ २१ ॥

२०१. अचयंता य लूहेणं० सिलोगो। अचएंता अशक्नुवन्तः। लूहं दव्वे य भावे य, दव्वे आहारादि, भावलूहं सयम एव। तवोवधाणेण तज्जिता अवहत्थिता। तत्थ मंदा विसीदंति, पङ्के जीर्णगौः जरद्गववत् ॥ २१ ॥

२०२. [5]एयं निमंतणं लद्धुं मुच्छिता गिद्ध इत्थिसु।
अज्झोववण्णा [6]कामेसु चोइज्जंता[7] गिहं गय ॥ २२ ॥ त्ति बेमि ॥
॥ उवसग्गपरिण्णाए वितिओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२०२. एयं णिमंतणं लद्धुं० सिलोगो। एतं णिमंतणं ति जं हेट्ठा भणिय, लद्धुं प्राप्तुम्। मुच्छिता विसएसु। गिद्धा इत्थिगासु। अज्झोववण्णा कामेसु, कामा—इच्छा-मदणकामा। चोइज्जंता णाम णिब्भत्थिज्जंता परिस्सहेहिं णिमंतिज्जमाणा वा गिहं गय त्ति बेमि, पुनर्गृहं गताः, पुनर्गृहस्थीभूता इत्यर्थः ॥ २२ ॥

॥ [उवसग्गपरिण्णाए वितिउद्देसओ] ३–२ ॥

[उवसग्गपरिण्णज्झयणे तइओ उद्देसओ]

णिज्जुत्तीए वुत्तो दुविधो उवसग्गो—ओहे ओवक्कमे य [नि० गा० ४४] अज्झत्थ विसीयणा य [नि० गा० ४१], स च वालपव्वइतो तरुणीभूतश्चिन्तयति—चिरकालं प्रव्रज्या दुष्करा कर्तुमित्यतोऽवसीदति। दृष्टान्तः—

२०३. जधा संगाम[9]कालंसि पच्छतो भीरूवेहति।
वलयं गहणं णूमं को जाणेति पराजयं? ॥ १ ॥

२०३. जधा संगामकालंसि० सिलोगो। येन प्रकारेण यथा। सङ्ग्रामकालो नाम समभिचारितं युद्धम्। तत्थ कोइ वच्चंतो भीरू पच्छतो उवेहति। वलयं गहणं णूमं, वलयं णाम एक्कदुवारो गड्डापरिक्खेवो वलयसंठितो वलयं भण्णति, गृह्यते यत् तद् गहनं वृक्षगहनं लता-गुल्म-वितानादि च, नूमं नाम अप्रकाशं जत्थ णूमेति अप्पाणं गड्डाए दरीए वा। को जाणेति पराजयं ति दैवायत्तो हि पराजयो ॥ १ ॥

२०४. मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स मुहुत्तो [10]हवति तारिसो।
पराजियाऽवसप्पामो इति [11]भीरू उवेहती ॥ २ ॥

२०४. मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स० सिलोगो। मीयतेऽनेनेति मुहूर्त्तः। बहूना हि मुहूर्त्तोना एक एव मुहूर्त्तो भवति यत्र विजयो भवति पराजयो भवति वा। जयश्चेद् इत्यतः शोभनम्, पराजयश्चेदित्यतोऽवरम्, पराजिया मो अवसर्पिष्यामः। अवसर्पितो इति भीरू उवेहती ॥ २ ॥ एस दिट्ठंतो। अयमर्थोपणयो—

---

१ अपहृता ॥ २ च ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ वियट्टंति ख १ ॥ ४ सिरंसि व जर° ख १ पु २। उज्जाणंसि जर° ख २। थलसि व जर° पु १ ॥ ५ एवं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ कामेहिं खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ °ता गया गिहं ॥ ति ख २ ॥ ८ गत्वा पुनर्गृहस्थीभूत्वा चूसप्र० ॥ ९ °कालम्मि पिट्ठतो भीरु पेहती ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० होति ख २ पु १ ॥ ११ भीरु ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

२०५. एवं तु समणा एगे अवलं[1] णच्चाण अप्पगं।
अणागयं भयं दिस्स[2] अवकप्पंतिमं सुतं ॥ ३ ॥

२०५. एवं तु समणा एगे० सिलोगो। एवमनेन प्रकारेण। तु पूरणे। एगे ण सव्वे। संजमे तैस्तैः प्रकारैः अवलं ज्ञात्वा अप्पगं अणागयं [भयं] दिस्स, अणागतं णाम अपत्तं 'मा णाम एव होज्ज' त्ति। ततः अवकप्पंतिमं सुतं, सुतं अव[म]रक्षणादि अवकल्पयन्ति, अधीयन्त इत्यर्थः। इमानीति अर्थोपार्जनसमर्थानि गणिय-णिमित्त-जोइस-वाय-सद्दसत्थाणि ॥ ३ ॥

२०६. को[3] जाणति[4] वियोवातं[5] इत्थीतो उदगातो वा।
चोदिज्जंता पवक्खामो ण णे[6] अत्थि पकप्पियं ॥ ४ ॥

२०६. को जाणति वियोवातं० सिलोगो। विओवातो णाम व्यापातः[7], सो उण इत्थीपरीसहतो भवति, ण्हाण-पियणादिणिमित्तं उदगातो वा, वा विकप्पे, जो वा जस्स पलिओवमादि। परिसहजिता अमुकेण चेव लिंगेण कोंटल-वेंटलादीहिं कज्जेहिं अट्टज्झाणेण चोदिज्जंता पवक्खामो, चोदिज्जंता पुच्छिज्जंता, प्रायशः कुण्टलट्टीओ लोगो समणे पुच्छति तत्थ चरेस्सामो विज्जा-मंते य पउंजिस्सामो। ण णे अत्थि पकप्पियं ति ण किंचि अम्हेहिं पुव्वोवज्जितं धणं पेइयं वा। एवं णच्चा पावसुतपसंगं करेंति ॥ ४ ॥

२०७. इच्चेवं[8] पडिलेहंति वलयाइपडिलेहिणो।
वितिगिंछसमावण्णा[9] पंथाणं वं[10] अकोविता ॥ ५ ॥

२०७. इच्चेवं पडिलेहंति० [सिलोगो]। इति एवं इच्चेवं, पडिलेहंति णाम समीक्षन्ते सम्प्रहारेंति, भाववलय-भावग्गहण-भावणूमाइं पडिलेहंति। वितिगिंछसमावण्ण त्ति, किं संजमगुणे सक्केस्सामो ण सक्केस्सामो? त्ति। उक्तं हि—

"लुक्खमणुण्हमणियतं कालाइक्कंतभोयणं विरसं।" [ ]

दिट्ठंतो—पंथाणं व अकोविता, जधा अदेसितो विगलपधे चिंतेंतो अच्छति—किमयं पंथो इच्छितं भूमिं जाति?। एगत्तो वि ण णिव्वहति अकोविया अयाणगा ॥ ५ ॥ उक्ता अप्पसत्था। इदाणिं पसत्था—

२०८. जे तु संगामकालम्मि णाता सूरपुरंगमा।
ण ते पिट्ठतो[11] पेहंति किं परं मरणं भवे[12] ॥ ६ ॥

२०८. जे तु संगामकालम्मि० सिलोगो। जे त्ति अणिद्दिट्ठणिद्देसे। तुः विसेसणे। ज्ञाता णाम प्रत्यभिज्ञाता नामतः कुलतः शौर्यतः शिक्षातः। तद्यथा—चक्रवर्त्ति-वलदेव-वासुदेव-माण्डलीकादयः। प्राकृताश्च वीरपट्टगेहिं बद्धगेहिं सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया उप्पीलियसरासणपट्टिया [13]गहियाउध-पधरणा समूसियधयग्गा सूरा एव चक्रवर्त्यादीनां पुरतो गच्छंति सूरपुरंगमा, न ते वलयादीणि पडिलेहन्ति। ते तु सपहारेंति—

तरितव्वा व पइण्णिया, मरितव्वं वा समरे समत्थएणं। असरिसजणउल्लावया, ण हु सहितव्वा कुले पसूयएणं ॥ १ ॥

[आव० नि० गा० १२५६ हारिवृ० पत्र ५५७-२]

परवलं जेतव्वं वा मरितव्वं वा। ण ते पिट्ठतो पेहंति, अपत्ते जुद्धे जुद्धमाणे वा। किं परं मरणं भवेत्?, मरणादप्यनिष्टतम अश्लाघ्यत्वम्, मरणादपि विशिष्यते भग्नप्रतिज्ञजीवितम् ॥ ६ ॥

---

१ अकरं ण° ख १ ॥ २ दिस्सा ख २ ॥ ३ के जाणंति विओवातं ४१ निर्युक्तिगाथाचूर्णौ पाठान्तरम् ॥ ४ जाणाति ख १ ख २ पु २ ॥ ५ विऊवातं ख १ खं २। विओवायं पु १ पु २ ॥ ६ नो णे पु १ ॥ ७ व्युपातः वा० मो० ॥ ८ इच्चेव णं प° ख २ पु १ ॥ ९ °गिंच्छं स° ख २ वृ० दी० ॥ १० वा ख २ ॥ ११ पिट्ठमुवेहिंति खं २ वृ० दी०। पिट्ठं उवेहिंति पु १ पुट्ठमुवेहिंति ख १। पुट्ठं उवेहंति पु २ ॥ १२ सिता ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ गृहीतायुध-प्रहरणा ॥

उक्तः प्रशस्तदृष्टान्तः । तदुपसंहारः प्रशस्त एव—

२०९. [1]एवं समुट्ठितं भिक्खुं वोसिज्जाऽगारबंधणं ।
आरंभं [वि]तिरियं कट्टु अत्तत्ताए[2] परिव्वए ॥ ७ ॥[3]

२०९. एवं समुट्ठितं भिक्खुं० सिलोगो । सम्यग् उत्थितं **समुत्थितं** दव्वसमुत्थाणेण भावसमुत्थाणेण य । **अगारबन्धनं** छित्वा अज्झत्थतो अवसीतमाणं **आरंभं [वि]तिरियं कट्टु** त्ति दव्वे भावे चाऽऽरम्भः, **वितिरियं** णाम वितिरिच्छं वोलेंति, अनुलोमेहिं दुक्खमतिक्राम्यन्ते नदीश्रोतोवत् । परीसहोवसग्गाणि जिणिऊण णेव्वाणरज्जकखी **अत्तत्ताए** आत्महिताय सर्वतो संव्रजेत्, सिद्धिगमनोद्यतेन मनसा । अथवा–**आतो** मोक्षः सञ्जमो वा अस्यार्थः "**आतत्थाए**" । अथवा आप्तस्याऽऽत्मा आप्तात्मा, आप्तात्मेव आत्मा यस्य स भवति आप्तात्मा इष्टः, वीतराग इव व्रजेदित्यर्थः ॥ ७ ॥

अज्झत्थविसीदण त्ति गतं । इदाणिं परवादवयणं । तं अत्तत्ताए परिव्वयंतं—

२१०. तमेगे परिभासंति भिक्खुयं साहुजीविणं ।
[4]जे ते उ एवं भासंति [5]अंतए [6]तेऽसमाहिते ॥ ८ ॥

२१०. तमेगे पडिभासंति० सिलोगो । तमिति तं [7]अत्तयाए पसवुडं रीयमाणं, **एगे** ण सव्वे, समता भासति **परिभासंति**, आजीवकप्रायाः अन्यतीर्थिकाः, सुत्तं अणागतोभासियं च काऊण **वोडिगा** । **साधुजीविणं** ति णाम साधुवृत्तिः, अपापजीविनमित्यर्थः । **जे ते [उ] एवं भासंति अंतए [ते]ऽसमाहिते, अंतए** [8]नामं आभ्यन्तरतः दूरतः **तेऽसमाहिए,** णाणादिमोक्खा परमसमाधी, अत्यन्तअसमाधौ वर्त्तन्ते । **असमाहिए** अकारलोपं कृत्वा, संसारे इत्यर्थः ॥ ८ ॥

किं प्रभापन्ते ?—

२११. संबद्धसमकप्पा [10]हुँ अण्ण[11]मण्णसमुच्छिता ।
पिंडवातं गिलाणस्स जं सारेध दलाध य ॥ ९ ॥

२११. संबद्धसमकप्पा हु० सिलोगो । समस्तं बद्धाः **संबद्धाः** पुत्र-दारादिभिर्मन्यैर्गृहस्थाः, सम्बद्धैः **समकल्पाः** तुल्या इत्यर्थः, जधा गिहत्था "माता मे पिता मे" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० १ सू० १] त्ति एवमादिभिः सङ्गैर्बद्धाः । **अण्णमण्णसमुच्छिता** णाम माता पुत्ते मुच्छिता पुत्तो वि मातरि, एवं भवन्तोऽपि शिष्या-ऽऽचार्यादिभिः परस्परं संबद्धाः । अन्यच्चेदं कुर्वीत–**पिंडवातं गिलाणस्स जं सारेध दलाध य,** पिण्डस्य पातः **पिण्डपातः** भैक्षम्, एवं पिंडवायं गिलाणस्स आणेत्ता देध, यच्च परस्परतः सारेध वारेध पडिचोदेध सेज्जातो उट्ठवेध त्ति, जं च गिलाणस्स आयरिय-वुड्ढ-मामाएसु आहार-उवधि-वसधिमादिएहिं य उवग्गहं करेह ॥ ९ ॥

२१२. एवं तुब्भे सरागत्था अण्णमण्णमणुव्वसा ।
णट्ठसप्पधसब्भावा संसारस्स अपारगा ॥ १० ॥

२१२. एवं तुब्भे सरागत्था अण्णमण्णमणुव्वसा० सिलोगो । रागस्थिता **सरागत्था** सदोस-मोहा । अन्योन्यस्य अनुगता वश **अणुव्वसा** । **णट्ठसप्पधसब्भावा,** शोभनः पन्थाः सत्पन्थाः ज्ञानादि, सतो वा भावः सद्भावः, सत्पथसब्भावो नाम यथार्थोपलम्भः । **संसारस्स अपारगा** पारं गच्छन्तीति पारगाः, न पारगा अपारगाः ॥ १० ॥ एवं भासमाणेसु—

---

१ एवं समुट्ठिए भिक्खू ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ आतत्ताए पु १ । आतत्थाए चूपा० ॥ ३ एतद्गाथानन्तर खं २ पु १ प्रतौ अध्यात्मविपीदनार्थाधिकारो गतः इति वर्त्तते ॥ ४ जे ते उ परिभा° खं १ ख २ पु १ पु २ । जे एवं परिभा° वृ० दी० ॥ ५ अंतरे पु १ ॥ ६ ते समाहिए वृ० दी० ॥ ७ अतियाए वा० मो० ॥ ८ नाम नाभ्य° चूसप्र० ॥ ९ °क्खो प° वा० मो० ॥ १० हु ख १ । उ पु २ ॥ ११ मण्णेसु मु° ख १ १ पु २ वृ० दी० । °मण्णे समु° ख २ ॥

२१३. अह ते पडि[1]भासेज्ज भिक्खू मोक्खविसारदो ।
एवं तुब्भे[2]ऽवभासंता दुवक्खं चेव सेवधा ॥ ११ ॥

२१३. अह ते पडिभासेज्ज० [सिलोगो] । अथेत्यानन्तर्ये, तान् प्रतिभाषते भिक्खू मोक्खविसारदो, विसारदो नाम सिद्धान्तविज्ञायकः । स किं पडिभासति ?, एवं तुब्भे[3]ऽवभासंता दुवक्खं चेव सेवधा । दुपक्खो णाम सपराइयं कम्मं भण्णति गृहस्थत्वं वा ॥ ११ ॥ किञ्च—

२१४. तुब्भे भुंजह पाएसु गिलाणो[4] अभिहडं ति य ।
तं च वीओदगं[5] भोच्चा तमुद्देसादि जं कडं ॥ १२ ॥

२१४. तुब्भे भुंजह पाएसु० सिलोगो । तुब्भे जेहिं भिक्खाभायणेहिं भिक्खं गेण्हध तेहि आसंगं करेध, आजीवका [6]परातकेसु कंसपादेसु भुंजंति, आधारोवकरण-सज्झाय-ज्झाणेसु य मुच्छं करेध, गिलाणस्स य पिंडवातपडियाए गंतुमसमत्थस्स भत्तं मत्तेहिं कुलगेण वा अण्णतरेण वा मत्तेहिं अभिहडं भुंजध, एवं तुब्भेहिं [7]पायपरिभोगे।धिं वंधोऽणुण्णातो भवति, अन्तरा य कायवधो सो य [8]तुंध णिमित्तं, आणंतो भत्तिमंतो वि कम्मवंधेण लिप्पति, पाणिपायं पि ण य कायव्वं जति [9]पादे दोसो, स च किं तुज्झ देतो णट्ठसप्पधसब्भावो ? उदाहु [10]संप्पधि वट्टति ? । अविण्णाणा य मिगसरिसा तुब्भे, जेण असंकिताइं संकध संकितट्ठाणाइं ण संकध त्ति—तं च वीओदगं भोच्च त्ति कंदमूलाणि ताव सयं भुंजध, सीतोदगं पिवध, एव पुढवि-तेउ-वाउवधे वट्टध, जं च छक्कायवधणिप्फण्णं उद्देसियं तं भुंजध, तुब्भे चेव गिहत्थसरिसा पावतरा वा गिहत्थेहिं, येन ते गृहस्था अनभिगृहीतमिथ्यादृष्टयोऽपि भवन्ति, न तु भवन्तः, जेण अभिग्गिहीतमिच्छद्दिट्ठिणो साधुपरिवायं च करेध । दव्वं खेत्तं कालं सामत्थं चऽप्पणो वियाणित्ता कीतकड-ऽच्छेज्जादिसु वि दोसा भाणितव्वा ॥ १२ ॥

ते एवं असंजतेहिंतो वि पावतरा कता समाणा महता अपत्तिएण—

२१५. लित्ता तिव्वाभि[11]तावेणं [12]उज्जाता असमाहिता ।
णातिकंडुइयं [13]साधु अरुकस्सा[14]वरज्झति ॥ १३ ॥

२१५. लित्ता [तिव्वाभितावेणं० सिलोगो] । तिव्वाभितावो णाम तीव्रोऽमर्षः । दंसणमोहणिज्जकम्मोदएणं कोध-माण-कसायोदएण य लित्ता । उज्जाता णाम शून्या । एतदेव व्याचष्टे—अण्णाणा[15] दंसण-चरित्तेहिं असमाहिता, तैरेव विहीणा । णातिकंडुइयं साधु त्ति जधा कंडुइयं [ण] साधु त्ति, तं अरुकस्स अवरज्झति, पच्चुय पीडाहेतुत्वात्, एवं साधुहीलणा वि अपत्था। अधवा—"लित्ता तिव्वाभिलेवेणं" तेण मिच्छादंसणा[16]धवलेवेण लित्ता गुणेहिं शून्या बुद्ध्यादीहिं असमाहिता आतुरीभूता भणंति—जुत्त णाम तुब्भेहिं अम्हे गिहत्थसरिसा काउं पावतरा वा, तेऽत उच्यन्ते—णातिकंडुइतं साधु, साधु णाम सुट्ठु, अरुअं हि रुज्जमाणं खज्जइ, तं जतिण(?जत्तेण) सुट्ठु कंडूइज्जइ, [17]तेतेणातिकड्डइणं ण साधु, अवरुज्झति अरुगस्स अरुअइत्तस्स वा, अर्थात् प्राप्तं अतिकडुइयं ति भृशमपराध्यते, नातिरूढव्रणस्य, एवं यद्यहं त्वया नातिनिष्ठुरं उक्तो भविष्यति ततोऽहमपि नातिनिष्ठुरमेवा[18]पगपत् (?) त्वया वाऽहं यत्किञ्चन प्रलापिनाऽसम्बद्धसमकल्पोऽपदिष्टः, न चाहं तैर्गुणैर्युक्तः, भवन्तस्तु कन्दमूलोदकभोजिनः उद्दिश्यकृतभोजिनश्च सच्छासनप्रत्यनीकाश्च तेन न कथं गृहस्थैः पापतर ? इति ॥ १३ ॥ एवम्—

---

१ परिभासिज्जा ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । परिहासिज्जा ख १ ॥ २ °ब्भे पभासेंता ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । °ब्भे विभासेंता पुचूपा० ॥ ३ °ब्भे विभा° पु० ॥ ४ गिलाणा अभिहडं ति य ख १ पु २ । गिलाणाभिहडं ति य ख २ । गिलाणाभिहडम्मि य पु १ ॥ ५ वीतोदगं ख २ ॥ ६ परकीयेषु कांस्यपात्रेषु भुञ्जन्ति, आहारोपकरण-॥ ७ पात्रपरिभोगे ॥ ८ तव ॥ ९ पात्रे ॥ १० सत्पथे ॥ ११ °भिलेवेणं चूपा० ॥ १२ उज्झिया वृ० दी० । उज्जया ख १ पु १ । उज्जुत्ता ख २ । उज्जुया पु २ ॥ १३ सेयं अरुयस्सा° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १४ °वरुज्झति पु २ चूपा० ॥ १५ °णा ण दंस° पु० स० मो० ॥ १६ °धवले° स० वा० मो० ॥ १७ तेतेण एतेनेत्यर्थ ॥ १८ °वापशवत् पु० । °वापश्ययत् वा० मो० ॥

२१६. तत्तेण अणुसट्ठा ते अपडिण्णेण जाणया।
ण एस णितिए[1] मग्गे असमिक्ख[2] वती किंती[3] ॥ १४ ॥

२१६. तत्तेण अणुसट्ठा ते० सिलोगो। तत्त्वं तथ्यं सद्भूतं नानृतमित्यर्थः। अणुसट्ठा णाम अणुसासिता। ते इति आजीविकाः बोडियादयो ये चोद्दिट्ठभोजिनः पाखण्डाः। अपडिण्णेणं ति विसय-कसायणियत्तेण जाणएण एव वुत्ता भणंति—ण एस णितिए मग्गे, णितिओ णाम नित्यः अव्याहतः एषः, असमीक्ष्य वाचिकी कृतिर्वा। कृतिर्नाम कुशलकृतिः, पौर्वापर्यसम्बन्धसद्भावार्थोपलम्भस्तु सर्वज्ञज्ञानाद् युक्तः। अथवोपदेश एवायम्—तत्तेण अणुसट्ठा ते अपडिण्णेण जाणए—त्ति। कहमणुसट्ठा?, ण एस णितिए मग्गे, न एष भगवतां नीतिको मार्गः, [4]नैतिको नाम नित्यः। एष हि असमीक्ष्य भवद्भिरेव वाचा चटकरमात्रा वा कृतिः कृता ॥ १४ ॥ किञ्चान्यत्—

२१७. एरिसा[5] जा वई एसा अग्गि वेलु व्व करिसिता।
[6]गिहिणो अभिहडं सेयं भुंजितुं ण तु भिंक्खुणो[7] ॥ १५ ॥

२१७. एरिसा जा वई एसा० सिलोगो। एरिसा णाम येयमुक्ता 'तुब्भे संवद्धसमकप्पा वयं न' [श्लो० २११] इति एषा न निर्वोहिका। कथं?, अग्गि वेलु व्व करिसिता, विल्वो हि मूले स्थिरः अग्रे कर्षितः, एवमियं वाग् भवतां संकल्पस्थूरा, निश्चयकृता न हि भवन्तः, न सम्बद्धकल्पाः, तथोक्तम्—'कन्दमूलादि-उद्दिश्यभोजित्वाच्च' [श्लो० २१४]। यतश्चैवं तेन नैष भवतां वाङ्निश्चयः सुन्दरः। अथवा—"एरिसा मे वई एसा अग्गे वेलु व्व करिसिति" त्ति, जधा व वंसीकडिल्ले वंसो[ऽ]मूलच्छिण्णो न शक्यते अन्योन्यसम्बन्धत्वान्न शक्यतेऽधस्ताद् उपरिष्टाद्वा कर्षितुम्। यथाऽसौ वंसो ण णिव्वहति एवं भवतामपि इयं वाग् न निर्वोहिका, तत्र अनिर्वोहिका 'गिहिणो अभिहडं सेयं, भवन्तो हि सम्प्रतिपन्नाः 'निर्मुक्तत्वात् संसारान्तं करिष्यामः' तन्न निर्वहति, कथम्?, यद् भवतां ग्लायतामग्लायतां गृहस्थः कन्दादीनां मात्रेणाऽऽनयित्वा ददाति तत् किल भोक्तुं श्रेयः, न तु यद् भिक्षुणाऽऽनीतमिति, एषा हि वाग् भवतां न निर्वोहिका। कथम्? गृहस्था ईर्यां न शोधयन्ति, आगच्छतो चास्य कश्चिद् व्यापादः स्यात्। कश्चानुक्त एवं ब्रूयात्? यथा—गृहिणो अभिहडं सेयं, भुंजितुं ण तु भिक्खुणो ॥ १५ ॥ किञ्च—

२१८. धम्मपण्णवणा[8] एसा सारंभाण विसोधिया।
ण तु एताहिं दिट्ठीहिं पुव्वमासि पंकप्पितं[9][10] ॥ १६ ॥

२१८. धम्मपण्णवणा एसा० सिलोगो। धम्मस्स पण्णवणा एसा[11] हिया, इदाणिं धम्मपण्णवणा 'गिहत्थाणीयं सेयं, ण पव्वइताणीतं' इति। सारंभाण विसोधिया, सारंभा णाम गिहत्था तेषां पापविशोधिका, ते हि भवद्भ्यो ददतो विशुध्यन्ते, न तु प्रव्रजिताः दाणधम्मेण संयुज्यन्ते, स्वादानयन्ति ते गृहीभूत्वा यतयः पापेन सम्बध्यन्ते। ण तु एताहिं दिट्ठीहिं, नेति प्रतिषेधे, दृष्टि[भि]र्नाम ग्रहैः, न भवद्भिरेताभिर्दृष्टिभिः पूर्वं प्रकल्पितमासीत्। प्रकल्पितं प्रदर्शितमित्यर्थः। का दृष्टयः?, यादृशं किल गृहस्थानां तादृशमस्माकमपि अन्योन्यं किल सारयित्वा······:, न चानुकम्पताम्, अनुभवन्तोऽपि ग्लानकृत्य गृहस्थैः कारयन्ति, अत्र तावदावयोः साम्यम्, येन भवन्तो गृहस्थैः कारयन्ति प्रागुक्तं ग्लानस्य न कार्यम्, मा भूत् सम्बद्धसमकल्पाः अभविष्यन्। इदानीं स एव ग्लानो गृहस्थैः कारयन् तत्कृतमनुजानते, भवन्तश्च तत्कारिणः तद्द्वेषिणश्च एतां दृष्टिं भावयन्तः कथं सम्बन्धसमकल्पा न स्युः? इति ॥ १६ ॥ किञ्च त एवम्—

---

१ णियए मग्गे पु १ वृ० दी०। नितओ मग्गो ख १। निइओ मग्गो पु २ ॥ २ °सिक्खा खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ गिती पु १ ॥ ४ नितिको स० मा० मो० ॥ ५ एरिसा मे वई एसा अग्गे वेलु व्व चूपा०। एरिसा जा वई एसा अग्गे वेणु व्व ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। एरिसा ते वई एसा अग्गे वेणु व्व खं २ ॥ ६ गिहिणं खं १ पु १ पु २ चूपा० ॥ ७ भिक्खुणं खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ गिहिणी अभिहितं श्रेयं भवन्तो चूसप्र० ॥ ९ °णा जा सा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० पकप्पियं ख १ पु १ पु २। पगप्पियं ख २ ॥ ११ एरिसायियइंदाणिं पु०। एरिसाहियइंदाणि स०। एसिसाहियइंदाणि वा० मो० ॥

२१९. सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं अचएंता जवित्तए ।
ततो वादं [1]णिरे किचा ते भुज्जो वि[2] पगब्भिता ॥ १७ ॥

२१९. **सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं०** सिलोगो । योजनं युक्तिः, अनुयुज्यत इति अनुयुक्तिः, अनुगता अनुयुक्ता वा युक्तिः अनुयुक्तिः । सर्वैः हेतु-युक्तिभिः सतर्कयुक्तिभिर्वा **अचएंता** अशक्नुवन्तः **जवित्तए** त्ति णिज्जूढमित्यनर्थान्तरम् । कधं ण चएंति ? यथा कश्चित् कुवलीवर्दं भग्नं वाञ्चसयसरीरं विचिक्रीषुः परेणोच्यते—उत्थाप्यतां तावदयं गौः, ततो यदि शक्ष्यति तत एव ग्रहीष्यामि । स जानानः 'नैष शक्ष्यति' इति ब्रवीति—यदि ते रोचते एवमेवाय गृह्यताम्, नन्वेषोऽव्यङ्गशरीरो निरुपहतवपुर्न दृश्यते ? ॥

एवं सामयिक आह—**मरुको** वा समय इति । परैरुच्यते—येन [4]परीसहेन परीक्षामहे । ततो ब्रूते—किमत्र परीक्षया ?, प्रत्यक्ष एवायं दृश्यते बहुजनपरिगृहीतः, ईश्वरस्वामिनं प्रतिपन्नाः, यदि नैतं तत्त्वं स्याद् नैवात्र बहुजनोऽभिप्रसज्यते । लौकिका अपि ब्रुवते—

[5]आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः । भारतं मानवा धर्माः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् ॥ १ ॥

[ ]

एषामुत्तरः—

एरंडकट्ठरासी जधेह गोसीसचंदणपलस्स । मोल्लेण होज्ज सरिसो कत्तियमेत्तो गणिज्जंतो ? ॥ १ ॥

तध वि णिगरातिरेगो सो रासी जध ण चंदणसरिच्छो । तह [6]णिव्विण्णाण महाजणो वि सोज्झे विसंवदति ॥ २ ॥

एक्को सचक्खुगो जध अंधलयाणं सएहिं वहुएहिं । होति पहे गहियव्वो बहुगा वि ण ते अपेच्छंता ॥ ३ ॥

एव बहुगा वि मूढा ण पमाणं जे गतिं ण याणंति । ससारगमणगुविलं णिउणस्स य बंध-मोक्खस्स ॥ ४ ॥

[ ]

ततो वादं णिरे किचा, तत इति ततः कारणात्, **वादो** णाम छल-जाति-निग्रहस्थानवर्जितः, **निरं** णाम पृष्ठवः, **वादं निरे कृत्वा ते** इति ते आजीविकाद्याः सामयिकाः **मरुकाश्च** विविधाः **प्रगल्भिता** दृष्टीभूता इत्यर्थः ॥ १७ ॥

२२०. राग-दोसाभिभूतप्पा मिच्छत्तेण अभिद्रुया ।
अ[7]क्कोसे सरणं जंति टंकणा इव पव्वतं ॥ १८ ॥

२२०. **रागदोसाभिभूतप्पा०** [सिलोगो] । रज्यते येन आत्मपक्षे स **रागः**, परपक्षे **द्वेषः**, **अभिभूताः** पराजिता इत्यर्थः, राग-द्वेषाभ्याममभिभूतो येषामात्मा [8]तेमे **राग-दोसाभिभूयप्पा** । **मिच्छत्तेण अभिद्रुया** अभिभूया इत्यर्थः । त एवमुक्ताः रोपवशा लोहिताक्षाः भृगममर्पोद्गमप्रस्पन्दिताधरौष्ठाः जिता अवदातैर्हेतुभिर्निर्ग्रन्थसूत्रैः पराजिताः **अक्कोसे सरणं जंति,** प्रायेण दुर्वलस्य रोपो उत्तरं भवति आक्रोशश्च, रुदितोत्तरा हि स्त्रियः बालकाश्च, क्षान्त्युत्तराः साधवः । दृष्टान्तः—**टंकणा इव पव्वतं, टंकणा** णाम म्लेच्छजातयः पार्वतेयाः, ते हि पर्वतमाश्रित्य सुमहन्तमवि अस्सवलं वा हत्थिवलं वा प्रारभन्ते आगलिन्ति, पराजिताः सुगीवं पर्वतमाश्रयन्ति, [एवं] कुतीर्थाः पराजिताः आक्रोशयन्ति यष्टि-मुष्टिभिश्चो-त्तिष्ठन्ति, न ते प्रत्याक्रोष्टव्याः । इदमालम्बनं कृत्वा—

---

१ जहित्तते ख २ ॥ २ णिराकिच्चा ख १ ख २ पु २ वृ० दी० ॥ ३ विप्पगब्भियं ख १ ॥ ४ परीसहेन इति पु० स० नास्ति ॥ ५ "पुराणं मानवो धर्म साङ्गोपाङ्गचिकित्सक । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभि ॥" मनुस्मृतौ अ० १२ श्लो० ११० अनन्तरं प्रक्षेपक ॥ ६ निर्विज्ञान महाजन अपि ॥ ७ आमोसे ख २ पु २ । आतोसे ख १ ॥ ८ 'तेमे' ते इमे इत्यर्थ ॥

अक्कोस-हणण-मारण-धम्मब्भंसाण वालसुलभाणं । लाभं मण्णति धीरो जधुत्तराणं अलाभम्मि ॥ १ ॥

[ ] ॥ १८ ॥

२२१. बहुगुणप्पकप्पाइं कुज्जा आतसमाहितो ।
जेणऽण्णे ण विरुज्झेज्ज तेण तं तं समायरे ॥ १९ ॥

२२१. **बहुगुणप्पकप्पाइं०** सिलोगो । गुणा पकप्पिज्जंति जेहिं ताइ **गुणप्पकप्पाइं** । **गुणप्पकप्पो** णाम येनाऽऽत्मपक्षः प्रसाध्यते परपक्षश्चोभामीयते, अथवा सर्वपरीक्षकाविरुद्धो दृष्टान्तोऽवाध्यो हेतुर्वा । उक्तं हि—

"लौकिक-परीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः हेतु-प्रतिज्ञादयः ।" [ ] **आतसमाहितो** वत्तए । आत्मसमाधिर्नाम "दव्वं खेत्तं कालं सामत्थं चऽप्पणो वियाणित्ता ।" [ ] इति, अथवा "के अयं पुरिसे ? कं च णते ?" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ६ सू० ४] त्ति, एवं तथा तथा यथाऽऽत्मनो समाधिर्भवति । उक्त हि—"पडिपक्खो णायव्वो०" [ ] । अथवा आत्मसमाधिर्नाम यथा परतो न घातो भवति बाधा वा । किंच—**जेणऽण्णे ण विरुज्झेज्ज,** येन चोक्तेन अण्णस्स उवघातो ण भवति, तथा प्रतिज्ञादयो वक्तव्याः यथा च सिद्धान्तविरुद्धा न भवन्ति ॥ १९ ॥

कथं विरुध्यते ?, यो ब्रूयात्—त एव हि कृतोद्दिश्यभोजित्वाद् गृहितुल्याः, साधवस्तु मूलोत्तरगुणोद्यताः शरीरे चानपेक्षाः, ततश्चातिप्रसक्तस्य लक्षणस्य निवृत्तये त्वपदिश्यते—**इमं च धम्ममादाय०** सिलोगो ।

अथवा तैः परतन्त्रैरपदिष्टम्—नकृत्य हि न कर्तव्यम्, मा भूत् सम्वद्धसमकल्पः, तदेतमपदिश्यते—

२२२. इमं च धम्ममादाय कासवेण पवेदिदं ।
कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स अगिलाणेण समाधिए ॥ २० ॥

२२२. **इमं च धम्म०** [सिलोगो] । न यथा भवतां निरनुकम्पो धर्मः, अस्माकं हि **इमं च धम्ममादाए कासवेण पवेइयं** । अथवा ये ते उक्ता उपसर्गा एते हि अग्लायता सोढव्याः, ग्लायतो हि द्रव्यपरीषहा भवन्ति, नग्लायमानस्य न कर्त्तव्यम्, कधं ? **इमं च धम्ममादाय** इति यद् वक्ष्यामः तं धर्ममादाय गृहीत्वा **कासवेण पवेदिदं** कासवग्रहणात् तीर्थकरेणैवेदं स्वयं प्रवेदितम्, न तु स्थविरैः । किञ्चान्यत्—**कुर्याद् भिक्खू गिलाणस्स** ग्लायते रोगेणान्यतरेण वा प्रथमद्वितीयादिपरीषहादिना, **अगिलाणेण** अनार्दितेन अव्यथितेन राजाभियोगवत् **समाधिए** त्ति आत्मनः समाधिहेतोः कर्त्तव्यम् । ग्लानस्य वा अथवा समाधीए कायव्व, ण मणोदुक्कडेण ॥ २० ॥

किञ्च न केवलं उवसग्गा एव अहियासेयव्वा ज्ञात्वा सोढव्याः—

२२३. संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिणिव्वुडे ।
उवसग्गे अधियासेंतो अमोक्खाए परिव्वएज्जासि ॥ २१ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ उवसग्गपरिण्णाए ततिओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥ ३-३ ॥

२२३. **संखाय पेसलं धम्मं०** सिलोगो । **संखा** अट्ठविधा, त जधा—णामसखा ठवणसखा दव्वसंखा ओवम्मसखा परिमाणसखा गणणासखा जाणणासखा भावसखा । तत्थ जाणणासखाए अधियारो । **संख्याय** ज्ञात्वा । **पेसलं** दव्वे भावे य, दव्वे ज दव्व पीतिमुत्पादेति आहारादि, भावपेसलस्तु सर्ववचनीयदोषापेतो भव्याना धर्म एव । सो धर्मो दुविधो—सुत-

१ °प्पार्ति ख १ ॥ २ अत्तसमाहिते ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ जेणऽण्णो ण ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ °मायाय ख १ पु १ पु २ । °मादाए चूपा० ॥ ५ अगिलाए स ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ संखाए ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ °सग्गे नियासित्ता आमोक्खाए ख २ पु १ वृ० दी० । सग्गे नियाएत्ता आमोक्खाए ख १ । °सग्गे नियासित्ता आमुक्खाय पु २ ॥

धम्मो चरित्तधम्मो य। कस्य तौ प्रीतिमुत्पादयेयाताम्?, दृष्टिमानिति दृष्टिमतः। सम्यग्दृष्टिः **परिनिर्वृतः** शीतीभूत इत्यर्थः। **उवसग्गे अधियासेन्तो** उपसर्गा ये उक्ताः ये च वक्ष्यमाणाः तान् सर्वानधिया[सय]न् सहन्नित्यर्थः। **अ[मोक्खाए]** मोक्षापरिसमाप्तेः। समन्ता वयेज्जासि **परिवयेज्जासि**। मोक्षो द्विविधः—भवमोक्षो सव्वकम्ममोक्खो य। उभयहेतोरपि अमोक्षाय परिव्रजेः इति ब्रवीमि॥ २१॥

॥ उपसर्गपरिज्ञायां तृतीयोद्देशकः ४-३॥

[उवसग्गपरिण्णज्झयणे चउत्थो उद्देसओ]

वुत्तं निज्जुत्तीए "हेतुसरिसेहिं अहेउएहिं" [गा० ४२] हेत्वाभासैरित्यर्थः। कथमहेतवो हेतुसदृशाः?, वक्ष्यति हि— "सुहेण सुहमज्जेमो" वणिजवत् [श्लो० २२९]। तथा च "जधा गंडं पिलागं वा" [श्लो० २३३] एवं सीलक्खलिया अण्णउत्थिया तब्भावुकाश्च॥

२२४. आहंसु महापुरिसा पुव्विं तत्ततवोधणा।
[1]भोचा सीतोदगं सिद्धा [2]तत्थ मंदे विसीदंति॥ १॥

२२४. [आहंसु महापुरिसा० सिलोगो।] आहंसुरिति आहुः। के ते? **महापुरिसा** पहाणा पुरिसा, राजानो भूत्वा वनवासं गता पच्छा णिव्वाणं गताः। **पुव्विं तत्ततवोधणा, पुव्विमिति** अतीते काले केचित् त्रेतायां द्वापरे च, तप एव धनं तपोधनम्, तप्तं तपोधनं यैस्त इमे **तत्ततवोधणा** पञ्चाग्नितापादि। लोइयाणं तेते[3] **महापुरिसा**, अस्माकं तु यदा सामन्नं प्रतिपन्नाः तदा महापुरिसा। **भोचा सीतोदकं सिद्धा, सीतोदगं** णाम अपरिणतं, तेण सोयं आयरंता ण्हाण-पाण-इत्यादीणि अभिक्खणं सोएंता तथाऽन्तर्जले वसन्तः सिद्धिं प्राप्ताः **सिद्धाः**। एवं परम्परश्रुतिं श्रुत्वा अज्ञानादिपरीपहाजिताः **तत्थ मंदे विसीदंति,** तत्रेति तस्मिन्नस्नानकव्रते फासुगोदयपाणे व त्ति॥ १॥ तत्थ से—

२२५. अभुंजिय [4]णमी वेदेही [5]रामाउत्ते य भुंजिया।
[6]बाहुए उदयं भोचा तधा [7]नारायणे रिसी॥ २॥

२२६. [8]आसिले देविले चेव दीवायण महारिसी।
[9]पारासरे दगं भोचा बीताणि हरिताणि य॥ ३॥

२२७. एते [10]पुव्विं महापुरिसा [11]आहिता इह सम्मता।
भोचा [12]सीतोदगं सिद्धा जह मेतमणुस्सुतं॥ ४॥

---

१ उदएण सिद्धिमावन्ना ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। उदतेण ख २॥ २ तत्थ मंदे विसीयति ख १ पु २। तत्थ मंदो विसीयति ख २। तत्थ मंदाऽवसीयति पु १॥ ३ 'तेते' एते इत्यर्थ॥ ४ उत्तराध्ययनसत्के नवमे नमिपव्वज्जज्झयणे नमिराजर्षि॥ ५ रामउत्ते ख १ पु १। रामगुत्ते ख २ पु २ वृ० दी०। ऋषिभाषितेषु त्रयोविंशे रामपुत्तियज्झयणे रामपुत्ते इति नाम वर्त्तते॥ ६ ऋषिभाषितेषु बाहुकज्झयण चतुर्दशम्॥ ७ तारागणे ख १ ख २ पु १ पु २। तारायणिज्जज्झयण षट्त्रिंशत्तम ऋषिभाषितेषु। नारायणे वृ० दी०॥ ८ असिले खं १। "आसिले इत्यादि। आसिलो नाम महर्षि, तथा देविलो द्वैपायनश्च तथा पराशराख्य इत्येवमादय शीतोदक-बीज-हरितादिभोगादेव सिद्धा इति श्रूयते।" इति वृत्ति-दीपिकयोर्व्याख्याने आसिलो देविल इति च पृथगृषितया निर्दिष्टौ स्त, किञ्च ऋषिभाषितेषु तृतीयमध्ययन दविलज्झयणं नाम वर्त्तते तत्र "असिएण दविलेण अरहता इसिणा बुइत".इत्यत्र पाठे असिएणं इति गोत्रोक्तिर्वर्तते न पृथगृषिनाम, नापि ऋषिभाषितेषु आसिलनामकमध्ययनमन्यद् दृश्यत इत्यत्रार्थे तज्ज्ञैर्विचार्यम्॥ ९ पारासरियज्झयण ऋषिभाषितेषु नास्ति॥ १० पुव्वं महा° ख १ पु १ पु २। पुव्वमहा° ख २॥ ११ अक्खाया इह पु २॥ १२ वीओदगं सिद्धा इति मेतम° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥

२२५-२२७. एते पुव्विं महापुरिसा० [सिलोगो]। प्रधानाः पुरुषाः महापुरुषाः । आहिता आख्याताः । इह सम्मत त्ति इहापि ते इसिभासितेसु पढिज्जति । णमी ताव णमिपव्वज्जाए [उत्त० अ० ९], सेसा सव्वे अण्णे इसिभासितेसु । आसिले देविले चेव त्ति वंधाणुलोमेण गतं, इतरधा हि देविला-ऽऽसिल इति वक्तव्यम् । एतेसिं पत्तेयवुद्धाण वणवासे चेव वसंताणं वीयाणि हरिताणि य भुंजंताण ज्ञानान्युत्पन्नानि, यथा भरतस्य आदंसगिहे णाणमुप्पण्णं, तं तु तस्स भावलिंगं पडिवण्णस्स खीणचउकम्मस्स गिहवासे उप्पण्णमिति । ते तु कुतित्था ण जाणंति—कस्मिन् भावे वर्त्तमानस्य ज्ञानमुत्पद्यते ? कतरेण वा सघतणेण सिज्झति ? । अजानानास्तु ब्रुवते—ते नमी आद्या महर्षयः भोच्चा सीतोदगं सिद्धा, भोच्च त्ति भुञ्जाना एव सीतोदगं कन्दमूलाणि च जोइं च समारम्भन्ता । जह मेतमणुस्सुतं ति भारध-पुराणादिसु । एवं एताहि कुस्सुतीउवसग्गेहिं उवसग्गिज्जमाणाणं [ण] केवलं सारीरा एव उवसग्गा मानसा अपि उपसर्गा विद्यन्ते, यां श्रुतिं श्रुत्वा मनसा विनिपातमापद्यन्ते ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ कथम् ? उच्यते—

२२८. तत्थ मंदा विसीदंति वाहच्छिण्णा व गद्दभा ।
पिट्ठतो अणुधावंति पीढसप्पीव संभमे ॥ ५ ॥

२२८. तत्थ मंदा विसीदंति० । तस्मिन्निति कुश्रुतिउपसर्गोदये मंदा अबुद्धयः विसीतंति फासुएसणिज्जे छक्काएसु अ परिहरितव्वेसु । दिट्ठतो—वाहच्छिण्णा व गद्दभा भारेणेत्यर्थः, खन्धेन पृष्ठेन वा । एव ते परसामयिका कर्मगुरुगा "लुक्खमणुण्हमणियतं" [ ] एरिसेण लूहेण अजवेन्ता अन्नानादि-तव-संजमगुणे य गुरुए अचएन्ता वोढुं त्वरितमोक्षाध्वगानां साधूनां लघुभूतानां पीढाभ्यां परिसर्पतीति पीढसप्पी, सम्भ्रमन्ति तस्मिन्निति सम्भ्रमः, जनस्यान्यस्य त्वरितमग्गिभयात् णस्सितुकामो किल पीढसप्पी दूरातोज्झितोऽपि जणं धावंतं पिट्ठतोऽणुधावंति, एवं ते वि किल संसारभीरवो मोक्षप्रस्थिताः सीतोदगादिसङ्गात् संसार एव पडन्ति ॥ ५ ॥ इदानीं शाक्याः परामृश्यन्ते—

२२९. इहमेगे तु मण्णंते सातं सातेण विज्जती ।
जितं त्थ आयरियं मग्गं परमं ति समाधिता ॥ ६ ॥

२२९. इहमेगे तु मण्णंते सातं सातेण विज्जती० [सिलोगो] । सायं णाम सुखं श्रोतादि, तं सातं सातेणेव लभ्यते, सुखं सुखेन लभ्यत इत्यर्थः, वयं सुखेन मोक्षसुख गच्छामः, दृष्टान्तो वणिजः । तुब्भे पुण परमदुक्खितत्वात् जित त्थ आयरियं मग्गं, जिता नाम दुःखप्रव्रज्यां कुर्वाणा अपि न मोक्षं गच्छत, वयं सुखेनैव मोक्षसुखं गच्छाम इत्यतो भवन्तो जिताः, तेनास्मदीयार्यमार्गेण परमं ति समाधि[त] त्ति मनःसमाधिः परमा । असमाधीए शारीरादिना दुःखेनेत्यर्थः ॥ ६ ॥

२३०. मा एतं अवमण्णंता अप्पेणं बहु लुंपध ।
एतस्स अमोक्खाए अयहारीव जूरधा ॥ ७ ॥

२३०. मा एतं अवमण्णंता० सिलोगो । अ-मा-नो-नाः प्रतिषेधे, अथ तद् बुधप्रणीतं सुखात्मकं मार्गमवमन्यमानाः आत्मानमात्मना वञ्चयतेत्यर्थः, दूर दूरेण सुखातो छिन्दध । दिट्ठंतो—एतस्स अमोक्खाए अयहारीव जूरधा । त एवं वदन्तः प्रत्यङ्गिरादोषमापद्यते । कधं ?, इधमेगे तु मण्णंता सातं साते ण विज्जते, इहेति इह नैर्ग्रन्थशासने सातं साते न विद्यते । का भावना ?—न हि सुख सुखेन लभ्यते । यदि चेतमेवं तेनेह राजादीनामपि सुखिनां परत्र सुखेन भाव्यम्,

१ एतन् चूर्णिकृत्समाधान न सम्यगवगम्यते ॥ २ पिट्ठतो परिसप्पंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ पिट्ठिसप्पीव पु २ ॥ ४ भासंति ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० । मण्णंते चूपा० ॥ ५ जे तत्थ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ आरितं म° ख १ पु १ पु २ ॥ ७ च ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० २३० गाथाचूर्णौ ॥ ८ समाहिए ख १ । समाहितो ख २ । समाहियं पु १ पु २ ॥ ९ मा तेनं खं २ ॥ १० अवमतित्ता ख १ ॥ ११ अप्पेणं लुंपहा बहुं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १२ आमो° ख २ पु १ ॥ १३ अमोहारे व्व जूरहा ख २ । अयहारि व्व जूरहा ख १ पु १ पु २ ॥ १४ २२९ सूत्रगाथा पुनरावर्त्त्यते ॥

नारकाणां तु दुःखितानां पुनर्नरकेनैव भाव्यम्। तेन सायासोक्खसंगेन **जित त्थ आयरियं मग्गं, जिता** नाम शिरस्तुण्ड-मुण्डनमपि कृत्वा सम्यग्मार्गमास्थाय मोक्षं गच्छन्ति। **परमं च समाधिता** मोक्खसमाधिं, इह वा जाऽसंगसमाधि। उक्तं हि—

नैवास्ति राजराजस्य तत् सुखं नैव देवराजस्य। यत् सुखमिहैव साधोर्लोकव्यापाररहितस्य ॥ १ ॥

[प्रशम० आ० १२८]

मा एतं अवमण्णंता, अ-मा-नो-नाः प्रतिषेधे। **एतं** ति एतं आरुहंतं मग्गं अवमण्णंता आत्मानमात्मना **बहुं लुंपध** बहुं परिभविज्जध। को दृष्टान्तः?, **एयस्स अमोक्खाए अयहारि व्व जूरधा** ॥ ७ ॥ कथं?, जेण तुब्भेव—

२३१. पाणातिवादे वट्टंता मुसावादे वेऽसंजता।
अदिण्णादाणे वट्टंता मेहुणे य परिग्गहे ॥ ८ ॥

२३१. पाणातिवादे वट्टंता० सिलोगो। स्यात्—कथं प्राणातिपाते वर्त्तामहे?, येन पचना[नि] पाचनानि चानुज्ञातानि। उक्तं हि—

पचन्ति दीक्षिता यत्र पाचयन्त्यथवा परैः। औद्देशिकं च भुञ्जन्ति न स धर्मः सनातनः ॥ १ ॥

[ ]

मुसावादे वि असंजता संजत त्ति अप्पाणं भणध। अदत्तादाणे वि जेसिं जीवाणं सरीराइं आहारेंति तेहिं अदत्ताइं ऑएह। धेनूनां वत्सवृद्ध्यै नियुञ्जितुं मैथुनेऽपि प्रेष्य-गो-पशुवर्गाणाम्। परिग्रहेऽपि धन-धान्य-ग्रामादिपरिग्रहः। एवं कोध माण जाव मिच्छादंसणसल्ले इति। एवं तावत् शाक्याः अन्ये च तद्विधाः कुतीर्थाः ॥ ८ ॥

२३२. एवमेगे तु पासत्था पण्णवेंति अणारिया।
इत्थीवसगता बाला जिणसासणपरम्मुहा ॥ ९ ॥

२३२. एवमेगे तु पासत्था० सिलोगो। एवं अवधारणे। एते इति एते शाक्याः अन्ये च तद्विधाः। पार्श्वे तिष्ठन्तीति पार्श्वस्थाः, केषाम्?—अहिंसादीनां गुणानां णाणादीण वा सम्मदंसणस्स वा। किम्?, **पण्णवेंति** सुहेण सुहं। अथवा इमं पण्णवेंति दगसोयरियादयो सुखलिप्सा वा अजितेन्द्रियाः **इत्थीवसगता बाला जिणसासणपरम्मुहा**। किं पण्णवेंति?—विसणिग्घातणे तु कज्जमाणे णत्थि अधम्मो, अप्पणो परस्स वा सुखमुत्पादयतः अप्येवं धर्मो भवति, न त्वधर्मः ॥ ९ ॥ को दृष्टान्तः?—

२३३. जधा गंडं पिलागं वा णिप्पीलेत्ता मुहुत्तगं।
एवं विण्णवण त्थीसु दोसो तत्थ कुतो सिया? ॥ १० ॥

२३३. जधा गंडं पिलागं वा० सिलोगो। जधा कोइ अप्पणो परस्स वा गंडं पिलागं णिप्पीलेत्ता पूर्व सोणितं वा णिस्सावेति को अधम्मो?, एवं जो कोइ इत्थिशरीरे शुक्रविषनिर्घातं कुर्यात् तत्र को दोषः स्यात्?। **एवं विण्णवण त्थीसु,** एवं अनेन प्रकारेण विज्ञापना *नाम परिभोगः एकार्थिकानि,* आसेवनादोषः तत्र कुतः स्यात्? ॥ १० ॥ किञ्च—

२३४. जधा मंधातइ णाम थिमितं पियँति दगं।
एवं विण्णवण त्थीसु दोसो तत्थ कुओ सिया? ॥ ११ ॥

१ पाणादिवाए ख १ ॥ २ असंजता खं २ पु २ ॥ ३ आह च धेनूनां च सत्त्वध्या नियु° चूसप्र० ॥ ४ इत्थीवसगा वाला ख १ पु १। इत्थीसंगता वाला खं २ ॥ ५-६ 'एवे' एके इत्यर्थः ॥ ७ वा परिपीलेज्ज खं १ खं २ पु १ पु २। वा परि-पीलेत्ता वृ० दी० ॥ ८ °वणितथीसु खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ कओ सिता ख १ पु १ ॥ १० मंधादती ख १ ख २। मंधादए पु २ वृ० दी०। मंधायती पु १ ॥ ११ भुंजती ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १२ °वणितथीसु ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ १३ कयो ख १ पु १ ॥

२३४. जधा मंधातइ ण्णाम० सिलोगो । मंधातई णाम मेसो । सो जधा उदगं अकलुसेन्तो यण्णुएहिं णिसोढितुं (? णिसीदितुं) गोप्पए वि जलं अणाडुआलेंतो पियति, एवमरागो चित्तं अकलुसेन्तो जइ इत्थिं विण्णवेति को तत्थ दोसो ? । उक्तं च–"प्राप्तानामुपभोगः शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धानाम् ।" [ ] ॥ ११ ॥ किञ्च—

२३५. जधा विहंगमा पिंगा थिमितं पियंति[1] दगं ।
एवं विण्णवेण[2] त्थीसु दोसो तत्थ कुतो[3] सिया ? ॥ १२ ॥

२३५. जधा विहंगमा पिंगा० सिलोगो । विहायसा गच्छन्ती **विहंगमा पिंगा** पक्खिणी आगासेणऽवचरंती उदगे अभिलीयमाना अविक्खोभयंती तंज्जलं[4] चंचूए पिबति । **एवं विण्णवण त्थीसु,** एवमरज्जमाणो यदि सम्प्राप्तान् भोगान् भुञ्जीत अत्र को दोषः ? । उत्तरदाणं–णणु तेसिं आसेवणा चेव संगकरणं 'मेधुणभावं आसेवामि' त्ति ।

जंध[5] णाम मंडलग्गेणं[6] सीस छेत्तूण करसई पुरिसो । अच्छेज्ज पराहुत्तो किं णाम ततो ण घेप्पेज्ज ? ॥ १ ॥
जध वा विसगंडूसं कोई घेत्तूण णाम तुण्हिक्को । अण्णेण अदीसतो किं णाम ततो ण वि मरेज्ज ? ॥ २ ॥
जध वा वि सिरिघरातो कोई रयणाणि णाम घेत्तूणं । अच्छेज्ज पराहुत्तो किं णाम ततो ण घेपेज्जा ? ॥ ३ ॥
[ ] ॥ १२ ॥

२३६. एवं[7] तु समणा एगे मिच्छादिट्ठी अणारिया ।
अज्झोववण्णा कामेहिं पूयणा[8] इव तरुणए ॥ १३ ॥

२३६. एवं तु समणा एगे० सिलोगो । एवं अनेन प्रकारेण, तु विसेसणे, [-समणा] नास्मदीयाः परे, एक्के त्ति परेषामपि न सर्वे एके मिथ्यादृष्टयः अनार्या **मिच्छादिट्ठी अणारिया,** अथवा मिथ्यादृष्टित्वेऽपि कर्मभिरनार्याः । **अज्झोववण्णा कामेहिं,** दुविहेहि वि कामेहिं । दिट्ठंतो–**पूयणा इव तरुणए, पूयणा** णाम औरणीया, तस्या अतीव **तण्णगे** छावके स्नेहः । जतो जिज्ञासुभिः कतरस्यां कतरस्यां जातौ प्रियतराणि स्तन्यकानि ?, सर्वजातीनां छावकानि अनुदके कूपे प्रक्षिप्तानि । ताश्च सर्वाः पशुजातयः कूपतटे स्थित्वा संच्छावकानां[9] शब्दं श्रुत्वा रम्भायमाणास्तिष्ठन्ति, नाऽऽत्मानं कूपे मुञ्चन्ति, तत्रैकया पूतनया आत्मा मुक्तः ॥ १३ ॥ त एवं **पूतणा इव तरुणए** मुच्छिता गिद्धा कामेसु—

२३७. अणागतमंपासंता[10] पच्चुप्पण्णगवेसणा[11] ।
ते पच्छा अणुसोयंति[12] झीणाऽऽउम्मि जोव्वणे ॥ १४ ॥

२३७. अणागतमपासंता० सिलोगो । **अनागतकाले** किम्पाकफलाहारवद् विषयदोषानपश्यन्तः **पच्चुप्पण्णविसयगवेसणा** णाणाविहेहिं उवाएहिं विसयसुहं उप्पायंता **ते पच्छा अणुसोयंति, ते** इति अण्णउत्थिया परलोकं प्राप्ता अनुशोचन्ते देवदुर्गतौ, यत्र वाऽन्यत्रोपपद्यन्ते । दृष्टान्तः–**झीणाऽऽउम्मि जोव्वणे,** यथाऽतिक्रान्तवयसः क्षीणेन्द्रिय-शरीर-बुद्धि-बल-पराक्रमाः नानाविधैः क्रीडाविशेषैः तरुणान् क्रीडतो दृष्ट्वा वयमप्येवं क्रीडितवन्तः [इति] तीव्रमनुशोचन्ति, एवं तेऽपि परलोकं प्राप्यानुशोचन्ति, इह च मरणकाले–नास्माभिर्जितेन्द्रियत्वं भावितं वैराग्यं वा । उक्तं हि—

हतं मुष्टिभिराकाशं तुषाणां कुट्टनं[13] कृतम् । यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नाऽऽदरः कृतः ॥ १ ॥
उक्तं बहु चरित्रं च स्वार्थश्च [न] प्रहावितः । तत्रे(त्रै)त्र मन्ये शोचन्ते [ ] ॥ १४ ॥

---

१ भुञ्जती ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ °वणा थीसु ख २ । °वणित्थीसु ख १ पु १ पु २ ॥ ३ कओ ख १ पु १ ॥ ४ मेज्जल वभूए पु० सं० । मे जलं वभूए वा० मो० ॥ ५ एतास्तिस्रोऽपि गाथा वृत्तिकृता शीलाङ्केन निर्युक्तिगाथात्वेन निर्दिष्टा व्याख्याताश्चापि सन्ति, निर्युक्त्यादर्शेष्वपि च दृश्यन्ते, किन्तु चूर्णिकृता निर्युक्तिगाथात्वेन निर्दिष्टा व्याख्याता वा न सन्ति, तदत्र तज्ज्ञा एव प्रमाणम् ॥ ६ °ण सिरं छेत्तूण कस्सइ मणुस्सो ख १ ख २ पु २ ॥ ७ एवमेगे उ पासत्था सिं° खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ पूइणा खं २ ॥ ९ स्वशावकानामित्यर्थः ॥ १० °मपस्संता ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ °सगा खं १ ख २ पु २ वृ० दी० । °सए पु १ ॥ १२ परितप्पंति झीणे आउम्मि ख १ पु १ पु २ वृ० दी० । परितप्पंति झीणे अतीतम्मि खं २ ॥ १३ खण्डनं पु० । कण्डनं वृत्तौ ॥

यथा के ? उच्यते—

२३८. जेहिं काले परिक्कंतं[1] सुकडं तेसिं सामण्णं।
ते धीरा[2] बंधणुम्मुक्का[3] णावकंखंति जीवितं[4] ॥ १५ ॥

२३८. जेहिं काले परिक्कंतं० सिलोगो। जे इति अणिद्दिट्ठणिद्देशे। कालो नाम तारुण्यं मध्यमं वयः, यो वा यस्य कालो ध्यानस्वाध्ययनस्य तपसो वा। तेषामेकेषां सुकृतं नाम श्रामण्यम्, त एव च श्रमणाः त एव मोक्षाकाङ्क्षिणस्त एव साधवो साधर्मिका वा। ते धीरा बंधणुम्मुक्का त एव धीराः त एव बंधणविमुक्का। बन्धनं कलत्रादि कर्म वा। ये किं कुर्वन्ति ?, जे णावकंखंति जीवितं पुव्वरत-पुव्वकीलितादिअसंजमजीवितं [न] वाञ्छन्ति ॥ १५ ॥

२३९. जधा णदी वेतरणी दुत्तरा[5] इह सम्मता।
एवं लोगंसि[6] नारीओ दुरुत्तराओ[7] अमतीमया ॥ १६ ॥

२३९. जधा णदी वेतरणी० सिलोगो। यथेति येन प्रकारेण। वेगेन तस्यां तरन्तीति वेतरणी नाम परोक्षा श्रवादिषु। सा हि तीक्ष्णश्रोतस्त्वाद् विषमतटत्वाच्च दुःखमुत्तीर्यते इति दुत्तरा। सर्वलोकप्रतीतैवासौ, पाखण्डिनां च केषाञ्चित्, इहेति इह प्रवचने, वक्ष्यमाणमपि च "जहितं णदी वेतरणीति दुत्तरा" [ ]। एवं लोगंसि नारीओ दुरुत्तराओ, एवं अनेन प्रकारेण सर्वोपसर्गेभ्योऽनुलोमेभ्यः प्रतिलोमेभ्यश्च दुस्तरतरा नार्यः, ता हि नानाविधैर्हाव-भाव-विलासैरुत्तितीर्षूनभिभवन्ति, वैतरण्यां तत्रैव तत्रैव निमज्जापयन्ति। ता हि दुक्खं द्रव्य-भावतः परिह्रियन्ते अमतीमय त्ति न मतिमान् अमतिमान् तेनामतिमता ॥ १६ ॥

२४०. जेहिं[8] ते णारिसंजोगा पूयणा पिट्ठतो कता।
सव्वमेयं णिरे किच्चा[9] ते ठिता सुसमाधीए[10] ॥ १७ ॥

२४०. जेहिं ते णारिसंजोगा० सिलोगो। य इत्यनिर्दिष्टनिर्देशः। त्रिविधा नार्यः, नारीभिः संयोगा नारीसंयोगाः, मैथुनसंसर्गा इत्यर्थः। पूयणा पिट्ठतो कत त्ति, पूयणा नाम वस्त्रा-ऽन्न-पानादिभिः स्नाना-ऽङ्गरागादिभिश्च शरीरपूजना[11]। उक्तं हि—"णो सायासोक्खपडिबद्धे भवेज्जा" [ ]। अथवा त एव नारीसंयोगाः पूतनाः पातयन्ति धर्मात् पासयन्ति वा चारित्रमिति पूतनाः, पूतीकुर्वन्तीत्यर्थः। पृष्ठतो कृता नाम उज्झिता। सव्वमेवं णिरे किच्चा, सर्वमिति येऽन्ये उपसर्गाः क्षुत्-पिपासा-शीतोष्णादयः निरे नाम पृष्ठे कृत्वा, अथवाऽनुलोमाः प्रतिलोमाश्च। सोभणाए समाधीए ण उवसग्गेहिं खोहिज्जंति ॥ १७ ॥ किञ्च—

२४१. एते ओहं तरिस्संति समुद्दं[12] व ववहारिणो।
जत्थ पाणा विसण्णासी किच्चंती[13] सह[14] कम्मणा ॥ १८ ॥

२४१. एते ओहं तरिस्संति० सिलोगो। एते णाम जेहिं एते इत्थिपरीसहादयः उपसर्गा जिताः। द्रव्यौघः समुद्रः, भावौघस्तु संसारः। तरिस्संति ते, नान्ये, न वा भावेन। दृष्टान्तः—समुद्दं व ववहारिणो समुद्रतुल्यं समुद्रवत्, व्यवहरन्तीति व्यवहारिणो वणिजः पोतैस्तरन्ति। जत्थ पाणा विसण्णासी[15], यस्मिन् यत्र एते पाषण्डाः गृहस्थस्वभावं गताः विषयजिता विषण्णा आसते गृहिणश्च, इह परत्र च कच्चंती सह कम्मणा। कृत्यन्ते छिद्यन्त इत्यर्थः ॥ १८ ॥

---

१ परक्कंतं न पच्छा परितप्पए ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ वीरा ख १ पु १ पु २ ॥ ३ °णोमुक्का ख १ ॥ ४ जीवितुं ख १ वृ० ॥ ५ दुरुत्तरा पु २ ॥ ६ लोगम्मि पु १ ॥ ७ दुत्तरा अम° ख १ ख २ पु १ वृ० दी०। दुरुत्तरा पु २ ॥ ८ जेहिं नारीण सं° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ निराकिच्चा ख १ पु २ वृ० दी० ॥ १० °माहिए ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ °जनात् चूसप्र० ॥ १२ समुद्दं वव° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १३ किच्चंती पु १ ॥ १४ सयकम्मुणा खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १५ विसण्णेसी चूसप्र० ॥

२४२. तं च भिक्खू परिण्णाय सुव्वते समिते चरे।
मुसावादं विवज्जेज्ज अदिण्णादिं च वोसिरे ॥ १९ ॥

२४२. **तं च भिक्खू परिण्णाय०** सिलोगो। दुविहाए परिण्णाए **परिज्ञाय** जाणणापरिण्णाए उवसग्ग-परीसहे जाणित्ता पच्चक्खाणपरिण्णाए उट्ठितो ते अहियासेमाणो **सुव्वते समिते चरे,** समितग्रहणाद् उत्तरगुणा गृहीताः। मूलगुणा पुण इमे—**मुसावादं विवज्जेज्ज,** कस्मान्मृषावादः पूर्वमुपदिष्टः? न प्राणातिपातः? इति, उच्यते, सत्यव्रतो हि व्रतानि भवन्ति, नासत्यव्रतः, अनृतिको हि प्रतिज्ञालोपमपि कुर्यात्, प्रतिज्ञालोपे च सति किं व्रतानामवशिष्टम्?, तं **मुसावादं** विसेसेण वज्जए **विवज्जए। अदिण्णादिं च वोसिरे,** अदिण्णमादिर्यस्याऽऽश्रवगणस्य सोऽयं अदिण्णाद्याश्रवगणः, तं **अदिन्नादि विवज्जए।** तं जधा—पाणादिवादादि जाव परिग्गहम् ॥ १९ ॥ प्राणातिपातप्रसिद्धये त्वपदिश्यते—

२४३. उड्ढं अहे तिरियं वा जे केई तस-थावरा।
सव्वत्थ विज्जं विरतिं संति-णेव्वाणमाहितं ॥ २० ॥

२४३. **उड्ढं अहे तिरियं वा०** सिलोगो। ऊर्ध्वमधस्तिर्यगिति क्षेत्रप्राणातिपातो गृहीतः। **जे केई तसथावरा** इति द्रव्यप्राणातिपातः। **सर्वत्रेति** प्राणातिपातभावश्च सर्वावस्थासु, **विज्जं** विद्वान्, सर्वत्र **विरतिं** सर्वविरतिं विद्वान् कुर्याद् इति वाक्यशेषः। विरति एव हि **संतिणेव्वाणमाहितं,** विरतीओ वा विरतस्स वा **संतिणेव्वाणमाहितं,** शान्तिरेव निर्वाण-माख्यातं **संतिणेव्वाणमाहितं।** अहवा संति त्ति वा णेव्वाणं ति वा मोक्खो त्ति वा कम्मखयो त्ति वा एगट्ठं, तेनापदिश्यते **संति णेव्वाणमाहितं** ॥ २० ॥ उक्ता उपसर्गाः, ते च सर्व एव सोढव्याः। आत्मसञ्चेतनीयोपसर्गापवादस्तु नाऽशरीरो धर्मो भवतीति कृत्वा—

❀ २४४. इमं च धम्ममायाय कासवेण पवेदितं।
कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स अगिलाए समाहिते ॥ २१ ॥

❀ २४५. संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिणिव्वुडे।
उवसग्गे णिरे किच्चा आमोक्खाए परिव्वएज्जासि ॥ २२ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ उवसग्गपरिण्णा ततियं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ ३ ॥

॥ उपसर्गपरिज्ञाध्ययनं समाप्तम् ॥ ३ ॥ [ग्रन्थाग्रम्–३०००] ॥



१ विवज्जेज्जाऽदिण्णादाणाइ वो° ख १ पु २ वृ० दी०। च वज्जेज्जा अदिण्णादाणं च वो° खं २। विवज्जेज्जाऽदिण्णादाणं च वो° पु १ ॥ २ उड्ढमहे ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ °त्थ विरतिं कुज्जा संति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ °मायाए पु १ ॥ ५ संखाए ख १ पु १ ॥ ६ °सग्गे नियामेत्ता आ° पु २ वृ० दी०। °सग्गे नीयाएत्ता आ° ख १। °सग्गेऽहिया-सेत्ता आ° ख २। °सग्गे निययत्ता आ° पु १ ॥ ७ °ण्णज्झ° पु २ ॥

४

[चउत्थं इत्थीपरिण्णज्झयणं]

[पढमो उद्देसओ]

इदाणिं इत्थिपरिण्ण त्ति अज्झयणं । उवक्कमादि चत्तारि अणुयोगदारे परूवेऊणं अत्थाधियारो । सो दुविधो—अज्झयणत्थाधियारो उद्देसत्थाधियारो य । अज्झयणत्थाहियारो जाणणपरिण्णाए तिविधाउ वि अत्थिगाउ[1] जाणित्तु पच्चक्खाणपरिण्णाए ताओ परिहरितव्वाओ । उद्देसत्थाधियारे इमा गाहा—

> पढमे संथव-संलावाइएहिं[2] खलणा उ[3] होति सीलस्स ।
> बितिएँ[4] इहेव खलियस्सँ[5] विलंवणा कम्मवंधो य ॥ १ ॥ ४७ ॥

पढमे संथवसंलावाइएहिं० गाहा । पढमे उद्देसए यथा येन प्रकारेण संवाससंथवेण संवद्धवसधिर्मादीहि[6] य दोसेहिं गमणा-गमणमादिपुच्छाहि य उल्लाव-संलाव-भिण्णकधाहि य इत्थीहिं सार्द्धं सीलक्खलणं भवति पढमुद्देसे । विलंवणाओ लभति चोदिज्जंतो वितिउद्देसए खलितो[7] समणधम्माओ, विलंवणा पाविज्जति लिंगत्थओ होन्तो, स वा लिंगाओ अण्णं वा लिंगं वा सपक्ख-परपक्खातो य हीलणं पावति ॥ १ ॥ ४७ ॥

णामणिप्फण्णे णिक्खेवे इत्थिपरिण्णा । इत्थि परिण्णा य दुपदं णाम । तत्थित्थीए—

> दव्वाऽभिलाव चिंधे वेदे भावे य इत्थिणिक्खेवो ।
> अभिलावे[8] जह सिद्धी भावे वेदम्मि[9] उवउत्तो ॥ २ ॥ ४८ ॥

दव्वाऽभिलाव चिंधे० गाधा । जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्ता दुविधा—मूलगुणणिव्वत्तणाणिव्वत्तिया य उत्तरगुणनिव्वत्तणानिव्वत्तिया य । मूलगुणे इत्थिसरीरगं विप्पजढं जीवेणं, उत्तरगुणे कट्ठकम्मादिसु । अथवा दव्वत्थी तिविधा—एगभविया बद्धाउया अभिमुहणामा-गोता । अभिलावत्थी जधा साला माला वेला सिद्धी इत्यादि । चिंधित्थी अवगतवेतं इत्थीशरीरगं, तं पुण छउमत्थस्स केवलिस्स वा । वेदित्थी इत्थिवेद वेयमाणी । भावित्थी आगमतो णोआगमतो य । आगमतो इत्थिवेदजाणओ तदुवउत्तो । [णोआगमतो] इत्थिवेदणाम-गोताइं कम्माइं वेदयमाणो जीवो ॥ २ ॥ ४८ ॥

इत्थि भणिया । इदाणिं परिण्णा, सा जधा सत्थपरिण्णाए [आचा० नि० गा० ३७] । जधा संजताणं इत्थिपरिण्णा तधा संजतीणं पुरिसपरिण्णा । इत्थीपडिपक्खो पुरिसो तेण तस्स वि णिक्खेवो भाणितव्वो—

> णामं ठवणा दविए खेत्ते काले य पँजणणे[10] कम्मे ।
> भोगे गुणे य भावे दस एते पुरिसणिक्खेवा ॥ ३ ॥ ४९ ॥

णामं ठवणा दविए० गाधा । णामे जधा घडो पडो कलसो । ठवणापुरिसो कट्ठकम्मादिकता जिणपडिमा वासुदेवपडिमा एवमादि । दव्वे जाणगसरीरादि जधा इत्थी तधा भाणियव्वं । खेत्ते जो जत्थ खेत्ते पुरिसो, जधा सोरट्ठो सावगो मागधो वा एवमादि, यस्य वा यत् क्षेत्रं प्राप्य पुंस्त्वं भवति, अन्यत्र न भवति । कालपुरुषोऽपि यावन्तं कालं पुरुषो भवति, जधा—"पुरिसे णं भवते पुरिसो त्ति कालतो केवच्चिरं होति ?, जघण्णेणं एगं समयं उक्कोसेण सागरसयपुहुत्तं"

---

१ 'अत्थिगाउ' स्त्रिय इत्यर्थः ॥ २ संलवमाइएहिं ख २ पु २ ॥ ३ उ होज्ज ख १ ख २ वृ० ॥ ४ वीए खं १ ॥ ५ °स्सऽणवत्था कम्म° ख १ । °स्स अवत्था कम्म° ख २ पु २ ॥ ६ °धिमादी° वा० मो० ॥ ७ खलितो चूसप्र० ॥ ८ अभिलावो ख १ ॥ ९ वेयंसि ख १ ॥ १० पजणण पु २ ॥

[प्रज्ञा० पद० सू०]। यो वा यस्मिन् काले पुरुषो भवति, [जहा कोइ एगम्मि पक्खे पुरिसो,] एगम्मि पक्खे णपुंसगो। प्रजन्यते अनेनेति प्रजननम् तद् यस्य केवलमस्ति न पुंस्त्वं स प्रजननपुरुषः। कम्मपुरुसो नाम यो हि अतिपौरुषाणि कम्माणि करोति, यथा वासुदेवः, स कर्मपुरुषः। भोगपुरिसो चक्कवट्टी। गुणपुरिसो णाम यस्य पुरुषगुणा विद्यन्ते इमे। तद्यथा—

व्यायामो विक्रमो वीर्यं सत्त्वं च पुरुषे गुणाः। कान्तित्वं च मृदुत्वं च विक्लवत्वं च योषिताम् ॥ १ ॥
[ ]

भावपुरिसो आगमतो णोआगमतो य। आगमतो पुरिसो पुरिसजाणगो तदुवउत्तो। णोआगमतो पुरिसणाम-गोताइं कम्माइं वेदयंतो। दस एते पुरिसणिक्खेवा इति ॥ ३ ॥ ४९ ॥

पढमे संथव० गाधा, जे निहिता पढमे संथव-संलावादिगेहिं पुव्वुत्तं—

सूरा मो मण्णंता कइतवियाहि उवहि-नियडिप्पहाणाहिं।
गहिता तु अभय-पज्जोत-कूआधारादिणो बहवे ॥ ४ ॥ ५० ॥

सूरा मो मण्णंता० गाधा। सूरा मो मण्णंता, इत्थिहि अमडिविरत त्ति वाक्यशेषः। कैतवं नाम माया, कैतवयुक्ताः कैतविकाः। उवधी नाम अन्येषा वशीकरणम्। अधिका कृतिः निकृतिः नियडी। तत्प्रयोगाद् गहिता तु अभय-पज्जोत-कूआधारादिणो, सूरो पज्जोतो, कूवया(धा)रो तवस्सी, एवमादिणो जीवा इत्थिदोसेण इह परभवे य णाणाविधाइं दुक्खाइं पावंति हत्थ-पायच्छेदादीणि ॥ ४ ॥ ५० ॥

❀ तम्हा ण हु वीसंभो गंतव्वो णिच्चमेव इत्थीणं।
पढमुद्देसे भणिता जे दोसा ते गणंतेणं ॥ ५ ॥ ५१ ॥
❀ सुसमत्था वि असमत्था कीरंती अप्पसत्तिया पुरिसा।
दिस्संति सूरवादी णारीवसगा ण ते सूरा ॥ ६ ॥ ५२ ॥

धर्मं प्रति असमर्थाः। अप्पसत्तिया नाम परीसहभीरुणो। रणसूरवादिणो वि णारीवसगा दीसंति, जधा ते चेव पज्जोदादयो ॥ ५ ॥ ६ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ को पुण सूरो ?, उच्यते—

❀ धम्मम्मि जो दढमई सो सूरो सत्तिओ य वीरो य।
ण हु धम्मणिरुच्छाहो पुरिसो सूरो सुबलिओ वि ॥ ७ ॥ ५३ ॥

जो धम्मम्मि दढो सूरो सत्तिगो य, ण उ जो धम्मणिरुच्छाहो, धर्मं प्रति सूरो भवति। यद्यपि बलवानसौ सरीरेण तथाऽप्यसौ दुर्बल एव ॥ ७ ॥ ५३ ॥

❀ एते चेव य दोसा पुरिसपमादे वि इत्थिगाणं पि।
तम्हा तु अप्पमादो विरागमग्गम्मि तासिं पि ॥ ८ ॥ ५४ ॥

॥ चउत्थमज्झयणं सम्मत्तं ॥ ४ ॥

'पुरिसोत्तरिओ धम्मो' त्ति काउं तेण इत्थीपरिण्णा वुत्ता। इत्थीण वि एसा चेव विवरीता पुरिसपरिण्णा ॥ ८ ॥ ५४ ॥ गयो णामणिप्फण्णो। सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं अखलितादि जाव पंचधा विद्धि लक्षणमिति। सुत्तस्स सुत्तेण

---

१ कतियवियाहिं उयहिप्पहा° ख १ पु २ वृ० ॥ २ गहिया हु अभ° ख १ ख २ पु २ ॥ ३ °कूलवारादि° ख १। °कूलवालादि° ख २ पु २ वृ० ॥ ४ उ ख २ पु २ ॥ ५ इत्थीसुं ख २ पु २ ॥ ६ °त्था वऽसम° ख २ पु २ ॥ ७ दीसंति ख १ ख २ पु २ ॥ ८ °वायी नारी° ख १ ॥ ९ °मदी ख २ पु २ ॥ १० धम्मि णि° वा० मो० ॥ ११ य ख १ ॥ १२ पुरिससमाए वि ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ १३ इत्थिकाणं ख १ ॥ १४ °मग्गंसि ख १। °मग्गम्मि वासिंसु खं २ ॥

संबंधो—"आमोक्खाय परिव्वएज्जासि" [गा० २४५] त्ति पडिलोमे उवसग्गे अधियासेन्तो इमे इत्यन्ये अनुलोमाः। उपोद्घात एव तस्योपदिश्यते—पूर्वं प्रव्रजति पश्चादुपसर्गान् सहतीत्यतोऽपदिश्यते—

२४६. [1]ये मातरं च पितरं च, विप्पजधाय पुव्वसंजोगं।
एगे सहिते चरिस्सामि, आरतमेधुणो [2]विवित्तेसी ॥ १ ॥

२४६. ये मातरं च पितरं च० वृत्तम्। ये इति अणिद्दिट्ठणिद्देसो। चशब्दोऽधिकवचनादिषु, भ्रातरं भगिनी[मि]त्यादि। विविधं प्रधाय विप्रधाय तृणमिव पटान्तलग्नम्। पूर्वसंयोगो गृहसंयोगः, अथवा जातः सन् यैः सह पश्चात् संयुज्यते स संयोगः, स तु भार्या-श्वशुर-पुत्र-दुहित्रादि, अथवा सर्व एव पूर्वापरसहसम्बन्धः पूर्वसंयोगो भवति। अथवा द्रव्य-भावतः पूर्वसयोगः। द्रव्ये स्वजनसंस्तवो नोस्वजनसंस्तवश्च। स्वजने पूर्वापरसंस्तवः। नोस्वजनसंस्तवस्त्रिविधः—सचित्तादि। सचित्ते दुपद-चतुप्पदा-ऽपदं, द्विपदे दासी-दास-भृत्य-मित्रवर्गादि, चतुष्पदे हस्ति-अश्व-गो-महिष्यादि, अपदे आरामोद्यान-पुष्प-फलादि १। अचित्ते हिरण्णादि २। मिश्रे साधारणालङ्कार-प्रहरण-हस्त्यश्वादि ३। भावे मिच्छत्ता-ऽविरति-अण्णाणादि। एगे सहिते चरिस्सामि, एगो णाम राग-दोसरहितो, सहितो णाणादीहि, आत्मनो वा हितः स्वहितः, चरति गच्छति चर्य्यते चैकोऽर्थः। आरतमेधुणो णाम उपरतमैथुनः। कतर आरतः? विवित्तेसी, विवित्तं द्रव्ये शून्यागारं स्त्री-पशुवर्जितम्, भावे तत्सङ्कल्पवर्जनता, विविक्तान्येषतीति विवित्तेसी मार्गयतीत्यर्थः, विविक्तानां—साधूनां मार्गमेषतीति विवित्तेसी। अथवा—कर्मविवित्तो मोक्खो तमेवमेषतीति "विवित्तमेसी" ॥ १ ॥

२४७. सुहुमेण तं परक्कम्म, छण्णपदेण इत्थीओ मंदा।
[3]जाणंति ता उवायं च, जध लिस्संति भिक्खुणो एगे ॥ २ ॥

२४७. सुहुमेण तं परक्कम्म० वृत्तम्। सुहुमेनेति निपुणेन, उपायेनेति वाक्यशेषः। परक्कम्म त्ति पराक्रम्य अभ्यासमेत्य, वन्दनपूर्वकेन सूक्ष्मेणोपायेन। छन्नपदेनेति अन्यापदेशेन—

[4]पुत्तकिडगा य णत्तुय-मातीकिडगा य पीतिकिडगा य। एते जोव्वणकिडगा पच्छन्नपती महिलियाणं ॥ १ ॥

[ ]

अथवा छन्नपदेनेति छन्नतरैरभिधानैराकारैश्चैनं अभिसर्पति। तद्यथा—

काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य, मेघान्धकारासु च शर्वरीषु। मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे! ते, प्रत्यया ये प्रथमाक्षरेषु ॥ १ ॥

[ ]

जाणंति ता उवायं च, उपायो नाम विविक्तविश्रम्भरसो हि कामः, स तु एको आत्मद्वितीयो वा, गच्छन्तस्य किं करिष्यति?। तस्यैवं देश-कालं छक्कं च जध लिस्संति त्ति येन प्रकारेण लिश्यन्ते सम्बध्यन्त इत्यर्थः। एके, न सर्वे, अन्ये हि स्त्रीजनालिङ्गिता अपि न ताभिः सम्बध्यन्ते, पवनबलसमीरिता वह्निज्वाला इव चैनां मन्यन्ते ॥ २ ॥

ते तूपाया इमे—यथा यथा ह्यग्निः सन्निकृष्टो भवति तथा तथा दहति इत्येवं मत्वा—

२४८. पासे भिसं [5]णिसीयंति, अभिक्खणं पोसव[6]त्थं परिहिंति।
कायं अघे वि दंसेंति, [7]बाहुद्धट्टु [8]कक्खं परामुसे ॥ ३ ॥

---

१ जे ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ विवित्तेसु वृ० दी०। विविचेसी ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा०। विवित्तमेसी चूपा० ॥ ३ उवायं पि ताउ जाणंति जह वृ० दी०। उवायं पि ताउ जाणिंसु जह ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा०। ख १ पु १ ताउ स्थाने तातो ॥ ४ "पिय-पुत्त-भाइकिड्डगा णत्तुकिडगा य सयणकिडगा य।" इतिरूपं पूर्वार्धं वृत्तो वर्त्तते ॥ ५ निसीतंति ख १ ख २ ॥ ६ वत्थ° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ बाहुमुद्धट्टु ख १ पु २। बाहु उद्धट्टु पु १ ॥ ८ कक्खमणुव्वजे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

२४८. पासे भिसं णिसीयंति० वृत्तम् । भृशं नाम अत्यर्थे प्रकर्षे, ऊरुणा ऊरुं अक्कमित्ता, दूरगता हि नातिस्नेहमुत्पादयन्ति विश्रम्भदा तेण अद्धासणे णिसीदंति सन्निकृष्टा वा । परिभुज्जमाना पुसा पुष्यन्तेऽनेनेति पोषकम्, तन्निमित्तं वा कामिभिर्वस्त्रा-ऽन्न-पानादिभिः पुष्यत इति पोषकम्, पोसवत्थं णाम णिवसणं, तममीक्ष्णममीक्ष्णमायरवद्धमपि शिथिलीकृत्वा परिहिंति । णिविट्ठाउट्ठिताओ य आसन्नगताओ होइऊण कायं अधे वि दंसेंति जंघा वा दुन्निविट्ठलक्खेण वा जधणेण ट्ठिता वा संती णिवेसयंती गुह्यमिति प्रकाश्य पुनर्व्रीलामंचेति[1] । बाहुद्धट्टु उद्धट्टु नाम उत्सृज्य कक्षां परामृशति, एवमादीनि अन्यान्यपि भ्रूकटाक्षविक्षेपादीनाकारान् करोति ॥ ३ ॥ किञ्च—

२४९. सयणा-ऽऽसणेहिं[2] जोग्गेहिं, इत्थीओ एगता णिमंतेंति ।
एताणि चेव से जाणे, पासाइं[3] विरूवरूवाइं ॥ ४ ॥

२४९. सयणाऽऽसणेहि जोग्गेहिं० वृत्तम् । तमेकाकिनं व्याकुलसखीयं[4] वा मत्वा सयणे णिमंतेंति, सयणं नाम उवस्सयं, सीतं इदाणिं साहु अंतो, अतीव गिम्हे वा पत्राएण णिमंतेंति, धूलिं वा कतवरं वा उवस्सगाउ णीणंति, अण्णतरं वा सम्मज्जणा-ऽऽवरिसीयणाति उवस्सगपकम्मं करेंति । आसणेणं ति पीढएण वा कट्ठमएण आसंदएण वा णिमंतेंति । योग्यमिति यस्मिन् काले हितं निवातं प्रवातं वा । स्यात्—किमासां भिक्षुणा प्रयोजनम्? नन्वासामन्ये कामतन्त्रविदः तत्प्रयोजनिनश्च गृहस्था विद्यन्ते ?, उच्यते, कुयोपितो विधवा विप्रवसितधवाः, तासां हि विरूपोऽपि तावद् वयस्थोऽभिकाम्यो भवति, दुर्मुखोऽप्यायतार्थिकोऽपि एकान्तरुचिरपि, किमु यः सरलः सुरूपो विचक्षणः ? । उक्तं च—"माधुर्यं प्रमदाजने च ललितं" [ ] । ता हि सन्निरुद्धाः सधवा विधवा वा, आसन्नगतो हि निरुद्धाभिः कुब्जोऽन्धोऽपि च काम्यते, किमु यो सकोविदः ? । उक्तं हि—

अंबं वा निंबं वा अब्भासगुणेण आरुभति वल्ली । [एवं इत्थीतो वि य जं आसन्नं तमिच्छंति ॥ १ ॥)

[ ]

दूरस्थं चैनं मत्वा ब्रूयात्—अम्हे हि ण सक्केमो सकम्मादण्णाओ वंदितुं णमंसितुं वा, इमाणि अम्हं सयणाणि वा । अथवा योग्यग्रहणाद् उच्चार-पासवण-चंकमण-स्थाण-ज्झाण-ऽज्झयणभूमीओ घेप्पंति । सा जइ कदाइ सड्ढी भवेज्ज जाणइ जाइं साधुजोग्गाइ । इत्थी[ओ] एगता णिमंतेंति, एकस्मिन् काले एकदा, यदा यदा स एकाकी भवति व्याकुलसखायो वा, अथवा वरिसारत्तादिसु जत्थ सयणा-ऽऽसणोवयोगो भवति । सयणमिति संथारगो घेप्पति उवस्सओ वि । एताणि चेव से जाणे पासाइं विरूवरूवाइं, एतानीति यान्युद्दिष्टानि शयना-ऽऽसननिमन्त्रणानि । स भिक्षुः । पासयन्तीति पासा, त एव हि पासा दुश्छेद्याः, न केवलं हाव-भाव-भ्रूविभ्रमेङ्गितादयः न हि शक्यमुल्लङ्घयितुम्, न तु ये दान-मान-सत्काराः शक्यन्ते छेत्तुम् । उक्तं हि—

ज इच्छसि घेत्तु जे पुव्विं ते आमिसेण गेण्हाहि । आमिसपासणिबद्धो काही कज्ज अकज्जं पि ॥ १ ॥

[ ]

विविधरूवाइं ताणि पुण पासाणि विरूवरूवाणि सम्बाधन-उपगूहन-आलिङ्गनादीनि । जधा ताणि परिहरणीयाणि तथा तद्भयादेव सयणा-ऽऽसणणिमंतणादीणि परिहरितव्वाणि ॥ ४ ॥ ताणि पुण कथं परिहरितव्वाणि ?, उच्यते—

२५०. णो तासि[5] चक्खु संधेज्जा, णो वि य साहसं समणुजाणे[6] ।
णो सद्धियं[7] पि विहरेज्जा, एवमप्पा[8] रक्खितु सेओ ॥ ५ ॥

---

१ व्रीलामचेति व्रीडा प्राप्नोति इत्यर्थ ॥ २ °सणेण जोगे(ग्गे)ण इ° पु २ वृ० । °सणेहिं जोगे(ग्गे)हिं ख १ ख २ पु १ दी० ॥ ३ पासादिं ख १ । पासाणि पु १ पु २ ॥ ४ °संखायं चू० वा० मो० । °संख्यायं पु० ॥ ५ तासु ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ सममिजाणे खं १ खं २ पु १ पु २ ॥ ७ सद्धितं ख १ ॥ ८ °प्पा सुरक्खितो होति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

२५०. णो तासि चक्खु संधेज्जा० सिलोगो (? वृत्तम्) । चक्षुसंधणं णाम दिट्ठीए दिट्ठिसमागमो, अकुट्ठओ विकुट्ठओ विय तासु णिच्चं भवेज्जा, कार्येऽपि सति अस्निग्धया दृष्ट्या अस्थिरया अवज्ञया चैनामीषन्निरीक्षते । साहसमिति परदारगमनम्, न ह्यसाहसिकस्तत् करोति, सङ्ग्रामावतरणवत्, तत्र हि सद्यो मरणमपि स्यात्, हस्तादिच्छेद-वन्ध-घातो वा, स्वदारमपि तावद् दीक्षितस्य साहसम्, किमु परदारगमनम् ? । अथवा साहसं मरणम्, प्राणान्तिकेऽपि न कुर्यात् । अथवा यदसौ स्त्री चापल्यात् साहसं कुर्यात् तदस्या न समनुजानीयात् । उक्तं हि–“पुरुषे विद्यते सत्त्व” [ ] मिति । णो सद्धियं पि विहरेज्जा, नेति प्रतिषेधे, सद्धियं ति ताहिं सह गामाणुगामं विहरेज्ज, जत्थ वा ताओ ठाणे अच्छंति तत्थ ण चिट्ठितव्वं, कयाइ पुव्विं ठितस्स रत्तिं एज्ज ततो णिग्गंतव्व, क्षणमात्रमपि[1] न संवस्याः । एवमप्पा रक्खितु सेउ त्ति आत्मेति सरीरमात्मा च, स इह परे च लोके अतिरक्षितो भवति, ये इह मैथुनानाचारदोषास्तस्य न भविष्यन्तीत्यतोऽतिरक्षितो भवति ॥ ५ ॥ पुनरिदानीं पाशाः—

२५१. आमंतिय ओसवियं[2] वा, भिक्खुं आयसा[3] णिमंतेति[4] ।
एताणि चेव से जाणि[5], सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६ ॥

२५१. आमंतिय ओसवियं वा० वृत्तम् । काचित् सन्निकृष्टगृहवासिनी सेज्जायरी प्रातिवेशिकी वा अहनि विरहाद्यलम्भात् ब्रूयाद्–अहं निशयागमिष्यामि, नास्ति मेऽहनि क्षणो विरहो वा, तद् अस्या न समनुजानीयाद् धर्मं श्रोतुमितरप्रयोगेन वा । यदि चेद् मम भर्तुः शङ्कसे तत एनमहं आमन्त्र्य आगमिष्यामि, आमन्त्र्य नाम पुच्छितुं तत्प्रयोजनावसितं वा स्थापयित्वा । अथवा ब्रूयात्–असावहनि कृष्यादिकर्मपरिश्रान्तः भुक्तः सन् निष्पन्नमात्र एव मृतवच्छेते, भद्रक एवासौ, न मम रुस्सिहिति त्ति, जइ वि से परपुरिसेण सह गच्छमाणिं पेच्छति तधा वि न विरूसेज्ज, अथवा शङ्केत । ननु ते भर्त्ता न विरूप्येत[6] ?, सा ब्रवीति–आमंतिय ओसविया णं, आमंतिय ओसविया व तमहमागता, तुब्भे वीसत्था होह, विविक्तविश्रम्भरसो हि कामः । यच्च पृच्छसि किमागता विकाले ? इति, नं धर्मं श्रोतुम् । ब्रूयाद्वा–ममाऽऽणत्तियं देध यन्मया कर्त्तव्यमिति शुश्रूषा-पादशौच-म्रक्षणादि, यद् वा किञ्चिदसद्गृहेऽस्ति तत् सर्वमहं च भवत्सन्तकं आयसा नाम आत्मसा[7], अप्पएण वि णिमंतेति–तुब्भंचयं इमं शरीरगं, अह ते चलणोवधातकारिया, एवं भिण्णकधादीहिं सम्वन्धः । सम्बाधना-ऽऽलिङ्गन-उपगूहन-कंठावलम्बणादीणि[8] वा कुर्वती निवारिता ब्रूयात्–कुत्र वा ममान्यत्रोपयोगः, एताणि चेव से जाणि सद्दाणि, एतानीति यान्युद्दिष्टानि से इति स भिक्षुः, शब्दा नाम ये शब्दादिविषयाः कथिताः, न केवलं गीताऽऽतोद्यशब्दा वर्ज्याः, आत्मनिमन्त्रणादयो हि सुदुस्तराः शब्दाः । अथवा यानि सीत्कारादीनि सद्दाणि कज्जंति तान्येवैतानि विद्धि निमन्त्रणादीनि शब्दानि, पठन्ति च–सद्दाणि विरूवरूवाणि, तासु हि पंचलक्खणा विसया संति विभासितव्वा । विविधं विसिट्ठं वा रूव विरूवं, विरूवाणि रूवाणि जेसि ताणिमाणि विरूवरूवाणि ।

णाह ! पिय ! कंत ! सामिय ! दइत ! वसुल ! होल ! गोल ! गुललेहि ।
जीए जियासि तुब्भं पभवसि तं मे सरीरस्स ॥ १ ॥
[ ] ॥ ६ ॥

इमानि चान्यानि च शब्दानि—

२५२. मणबंधणेहिं[9] णेगेहिं, कलुण-विणीयमुपक्कमित्ता[10] णं ।
अदु मंजुलाइं भासंति, आणमयंति[11] भिण्णकधाहिं ॥ ७ ॥

---

१ क्षेत्रमात्र° चूसप्र० ॥ २ °ओसविया णं, भि° चूपा० ॥ ३ आतसा ख २ । आयया पु २ ॥ ४ णिमंतेंति पु १ वृ० दी० ॥ ५ जाणे ख १ ख २ पु २ वृ० दी० ॥ ६ विरूप्येत पु० ॥ ७ आत्मना इत्यर्थ ॥ ८ °कंठोवलंव° स० वा० । °कंठोलंव° मो० ॥ ९ °धणेहऽणे° ख १ ॥ १० °मुवगसित्ताणं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ आणवयंति भि° ख २ वृ० दी० । आणमंति तेणं भि° ख १ । आणमयंति णं भि° पु १ । आणवयंति णं भि° पु २ ॥

२५२. मणबंधणेहि णे० वृत्तम्। मनसो बन्धनानि मनोबन्धनानि, तानि तु गतयश्च निरन्तरोरूमन्दा यस्मिन्। करुणमाकारतो वाक्यतश्च, विनीतवद् वन्दन-पूजनं पादादिसम्बाधनं उपकमित्ता अल्लिइत्ता अदु मंजुलाइं भासंति, मणसि लीयते मनोऽनुकूलं वा मञ्जुलम्, मदनीयं वा मञ्जुलम्।

मित-मधुर-रिभितजंपुल्लएहि ईसिंकडक्खहसितेहिं। सविकारेहि विरागं हितयं पिहितं मयच्छीए॥ १॥

[ ]

भेदकरी कथा भिण्णकथा। तं जहा—तुमं सि किं वत्तवीवाहो पव्वइतो ण व? त्ति, वृत्तवीवाह इति चेत् कथं सा जीवति त्वया विनैवंविधरूपेण? इति, कुमार इति चेद् अनपत्यस्य लोका न सन्ति, किं ते तरुणगस्स पव्वज्जाए?, दारिका वरिल्लासु, मया वा सह भुञ्ज भोए, स्यात् कथं वैराग्य वा?। कामभोगपरम्पराज्ञः भुक्तभोगः कुमारगो वा तत्प्रयोजनात्यन्तपरोक्षः आनम्यते॥ ७॥ कथम्?—

२५३. सीहं जधा व कुणिमेणं, निब्भयमेगचरं पासेणं।
एवेत्थियाउ बंधंती, संवुडमेगतियमणगारं॥ ८॥

२५३. सीहं जधा व कुणिमेणं० वृत्तम्। येन प्रकारेण यथा सहस्तिकोऽपि स्कन्धावारः सिंहेनैकेन भज्यते, कश्चिच्च पन्थाः सिंहेन दुर्गाश्रयेण निःसञ्चरः कृतः, स च तद्ग्रहणोपायविद्भिः पुरुषैश्छगलकं मारयित्वा तद्गोचरे निक्षिप्य पाशं च दद्यात्, तेन कुणिमकेन वध्यते, एकचरो नाम एक एवासौ चरति, न तस्य सहायकृत्यमस्ति। उक्तं च—“न सिंहवृन्दं भुवि दृष्टपूर्वं०” [ ]। एवेत्थियाउ बंधंति, भावबन्धेन। द्रव्यसवुतो हि समुद्रकूर्मो। “पिहिता आश्रवा यस्य भावतः स तु सवृतः।” [ ] भावैकचरः द्रव्यतो भाज्यः। भावपाशास्त्विमे—गति-विभ्रमेङ्गिताकार-हास्यादयः, यैर्भावो वध्यते। सवृतोऽपि तावद् वध्यते किमु योऽल्पवृत्तिरिति॥ ८॥

२५४. अह तत्थ पुणो नमयंति, रहकारो[1] व णेमिं[2] आणुपुव्वीए।
बद्धे मिए व पासेणं, फंदंतो[3] वि ण मुच्चती ताहे॥ ९॥

२५४. अह तत्थ पुणो नमयंति० [वृत्तम्]। तस्मिन्निति तत्र, मूर्च्छित इति वाक्यशेषः। असयमनतं पुनरनेकैरुपायैर्नमयन्ति यद् यदिच्छन्ति तत् तत् कारयन्ति, यथा रथकारः नेमिकाष्ठ तक्षन् क्रमशः। यदि स एवं नतः बद्धे मिए व पासेणं, यथाऽसौ मृगः पाशेन बद्धः मुमुक्षुः स्पन्दमानोऽपि न मुच्यते एवमसावपि विषमदामैर्बद्धः कुकुटुम्बे कुतत्तीहिं व्याप्रियमाणोऽपि पुनर्विजिहीर्षुरपि न शक्नोत्यवसर्पितुं क्रव्यगृद्ध इव सिंहः। भावगाढ्यं कुकुटुम्बव्यापारैः स कृष्यादिभिः व्याप्तः कर्मभर्च्छितः॥ ९॥

२५५. अह सेऽणुतप्पती पच्छा, भोचा पायसं व विसमिस्सं।
एवं विवागमण्णिस्सा,[4] संवासो ण कप्पते दविए॥ १०॥

२५५. अह सेऽणुतप्पती पच्छा० वृत्तम्। यथा कश्चिद् जानन् अजानन् वा विषमिश्रं पायसं भुक्त्वा तत्परिणामे वेदनोदये भृशमनुशोचते। एवं विवागमण्णिस्सा, एवमिति योऽयमुक्तः विवागो [वि]पाकः दारभरणादिपरिक्लेशः। “विवेग” इति चेद् भवति विविच्यते येन भवः कर्म वा स विवेगः सयमः। “एवं विवेगमाताते” स्त्रीभिः सङ्गमो न कार्यः, काष्ठकर्मादिस्त्रीभिरपि तावत् संवासो न कल्पते, किमु सचेतनाभिः?। दविओ नाम राग-दोसरहितो, एगतो वासः संवासः, तदासण्णे वा सवसतो संथव-सलावादिदोसा असुभभावदर्शनं भिन्नकथा वा स्यात्। उक्त हि—“तदिन्द्रियालोचनसक्तद्रव्याः०” [ ]॥ १०॥

---

१ °कारु व्व ख १ पु २॥ २ णेमि खं १ खं २ पु २॥ ३ फंदंते वि ण मुच्चई ख २ पु १ पु २॥ ४ विवागमादाय वृ० दी०। विवेगमण्णिस्सा चूपा०। विवेगमाताते ख १ खं २ चूपा० वृपा०। विवेगमायाए पु १ पु २॥

२५६. तम्हा हु[1] वज्जए इत्थी[2], विसलित्तं व कंटगं णच्चा।
ओये कुलाणि वसवत्ती, आघाति[3] ण से वि[4] णिग्गंथे ॥ ११ ॥

२५६. तम्हा हु वज्जए इत्थी० वृत्तम्। तस्मादिति तस्मात् कारणात्। इत्थी तिविधा। कथं वज्जए? **विसलित्तं व कंटगं णच्चा,** विषेण दिग्धो विषदिग्धः आगन्तुना सहजेन वा, अविषदिग्धोऽपि तावत् परिह्रियते किं पुनः सविष इति, स तु मरणभयात् परिह्रियते, स्त्रियस्तु संयममरणभयात्। किञ्च–**ओये कुलाणि वसवत्ती, ओयो** णाम राग-दोसरहितो। वसे वर्त्तत इति वशवर्त्तीति, पूर्वाध्युषितत्वाद् यदुच्यते तत् कुर्वन्ति ददति वा, स्त्रियो वा येषां वशे वर्त्तन्ते, किं पुनः स्वैरस्त्रीजनेषु, वश्येन्द्रियो वा यः स वशवर्त्ती, गुरूणां वा वशे वर्त्तते इति वशवर्त्ती। **आघाति** नाम आख्याति गत्वा गत्वा धर्मं निष्केवलानां स्त्रीणां सहितानां पुंसाम् असावपि तावन्न **निर्ग्रन्थो** भवति, किमु यस्ताभिर्भिन्नकथां कथयति? । यदा पुनर्वृद्धा सहागता पुरुषमिश्रा वा वृन्देन वाऽऽगच्छेयुः तदा स्त्रीनिन्दां विषयजुगुप्सां अन्यतरां वा वैराग्यकथां कथयति। कदाचिद् ब्रूयात्–यदि वा गृहमागन्तु न कथयसि तो भिक्ख-पाणगादिकारणेणं एज्जध, दृष्टिविश्रामतामपि तावत् त्वां दृष्ट्वा करिष्यामः, अपश्यन्त्या हि मे त्वां शून्यमेव हृदयं भवति ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा वा–

२५७. जे एयं उंछंतऽणुगिद्धा[5], अण्णयरा हु ते कुसीलाणं।
सुतवस्सिए[6] वि से भिक्खू, णो विहे[7] सहणमित्थीसु ॥ १२ ॥

२५७. जे एयं उंछंतऽणुगिद्धा० वृत्तम्। जे इति अणिद्दिट्ठणिद्देसो। एतदिति यदुक्तं गिहिणिसेज्जा, जे वा एवंविधाणि इच्छन्ति (?उञ्छन्ति) गवेसतेत्यर्थः, अणुप्रयायंते, एतदपि तावद् भवतु यदि रहो नास्ति समागमो वा, **अण्णयरा हु ते कुसीलाणं** पासत्थादीण। कुत्सितसीला कुशीला पासत्थादयः पंच णव वा। पंच त्ति–पासत्थ-ओसण्ण-कुसील-ससत्त-अधाछंदा। णव त्ति–एते य पंच, इमे य चत्तारि–काधिय-पासणिय-संपसारग-मामगा। एतेषां हि ते अन्यतरा भवन्ति। स्याद्–गृहिनिपद्यातः स्त्रीसमागमाद्वा को दोषः?, उच्यते, **सुतवस्सिए वि से भिक्खू,** अथवा अन्यतरो वा भवति कुशीलाना सुट्ठु तपस्सितः सुतपस्सितः, योऽपि तावत् तपोनिष्टप्तविग्रहः स्याद् मासोपवासी वा द्विमासोपवासी वा अथवा श्रुतमाश्रितः **"सुतमस्सितो[8]"** गणी वायगो वा, **नो** अतिपेवे, **विरहो** नाम नक्तं दिवा वा शून्यागारादि पइरिक्कजणे वा स्वगृहे, **सहणं** ति देसीभासा सहेत्यर्थः। एवं ज्ञात्वा स्त्रीसम्बद्धा वसघी वर्ज्या। **कूयवारो** दृष्टान्तः ॥ १२ ॥

कतराः स्त्रियो वर्ज्याः[9]?, उच्यते, असङ्कनीया अपि तावद् वर्ज्याः, किमु शङ्कनीयाः?। तद्यथा–

२५८. अवि धूअराहिं[10] सुण्हाहिं, धातीहिं अदु व दासीहिं।
महल्लीहिं[11] वा कुमारीहिं, संथवं से ण[12] कुज्जा अणगारे ॥ १३ ॥

२५८. अवि धूअराहिं सुण्हाहिं० [वृत्तम्। अवि संभावणे। धूयरो पुत्तिया। पुत्तवहुयाओ] नाम सुण्हा। धीयत इति धाती। दासीग्रहणं व्यापारकेणोवतप्ताः दास्योऽपि वर्ज्याः, किमु स्वतन्त्राः स्वैरसुखोपेताः। **महल्लीहिं वा कुमारीहिं, महल्ली** वयोऽतिक्रान्ताः वृद्धाः, **कुमारी** अप्राप्तवयसा भद्रकन्यकाः। **संथवो** उल्लाव-समुल्लाव-हास्य-कन्दर्प-क्रीडादि।

मातृभिर्भगिनीभिश्च नरस्यासम्भवो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामः पण्डितोऽप्यत्र मुह्यति ॥ १ ॥

[ ] ॥ १३ ॥

स्यात् किमत्र?–

१ उ ख १ खं २ पु २ वृ० दी० ॥ २ इत्थि ख २ ॥ ३ आघाते ण ख २ पु १ । अक्खाइ ण पु २ ॥ ४ व णिग्गंथो ख १ ख २ पु १ ॥ ५ उंछं अणुगि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ सुतमस्सिए चूपा० ॥ ७ विहरे सह णं इ° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ °मस्सिमतो स० वा० मो० ॥ ९ °र्ज्याः ? श्रृण्वते, अस° वा० मो० ॥ १० धूतराहिं ख १ ख २ पु १ ॥ ११ महतीहिं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १२ णेव कु° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

२५९. अदु ण[1]ातीणं व सुहीणं वा, अप्पियं दट्ठुं एकदा हो[2]ति।
गिद्धा सत्ता कामेहिं, रक्खण-पोसणे मणुस्सो सि ॥ १४ ॥

२५९. **अदु णातीणं व सुहीणं वा०** वृत्तम्। अदुरिति अथवा। **णातीणं वा, णातयो** णाम कुलघरे वसंतीए पितृ-भ्रात्रादयः, अथवा स्त्री येषां दीयते त एव तस्याः सगोत्रा भवन्ति ज्ञातकाश्च। **सुहिणो** णाम जे सण्णायका मित्राः तेषाम**प्रियं** भवति, यद्यपि न प्रतिषेधयन्ति। **एकदा** कदाचिद् उ[3]भ्रामिकेयं उक्ता वा ब्रूयात्–एष पुत्रमस्तको यथा, नैतत् सत्यम्। सा च तस्मिन् रूपवति मूर्च्छिता ब्रूयात्–मा मे पुनरेवं वक्ष्यसि। **गिद्ध** त्ति वा सत्त त्ति वा मुच्छिय त्ति वा एगट्ठं, ब्रूयादिति वाक्यशेषः, ब्रूयात्–अहो! इमीसे वयं **रक्खण-पोसणे** करेमो, इमो पुण सेसमणुओ मणुस्सकज्जं करेइ। भणिज्ज वा–हे खमण! इमीसे रक्खण-पोसणं करेहि, त्वमेवास्या मनुष्य इति, एस तुमे सद्धिं दिवसं उल्लावेंती अच्छइ। अयमपरः कल्पः–हे खमण! रक्खण-पोसणे मणुस्सो भवति, न कधाहिं किञ्चन, "अन्यो नाप्युदरे कृत्ये दण्डायासोऽपदिश्यते।" [ ] तत् त्वमेवास्या रक्षणपोषणं कुरु, मनुष्योऽसि, राउले च ते कड्ढामो। अथवा भणेज्ज–हे साधु! एसा अम्हच्चिया **गिद्धा सत्ता** तुमंसि अम्हे णो आढाति णो परिजाणाति, नै[4]रकस्त्वमेनां रक्षणेन, पोषणस्त्वमेनां पोषणेन, मनुष्यस्त्वमस्याः ॥ १४ ॥ किञ्च–

२६०. [5]समणं पि दट्ठुदासीणं, तत्थ वि ताव ए[6]गे कुप्पंति।
[7]अदु भोयणेहिं णत्थेहिं, इत्थीदोससंकिणो [8]भवंति ॥ १५ ॥

२६०. **समणं पि दट्ठुदासीणं०** वृत्तम्। कदाचिदसौ तस्मिन् रूपवति साधौ गृद्धा स्वरसौष्ठवोपेते वा गृद्धा तच्चित्ता तम्मणा अच्छेज्ज, अभिक्खणं वा अभिक्खणं तम्मतेण दीसेज्ज, पडिचोदिज्जंती वा अच्छीयमाणी तथैवाऽऽह। **समणं पि दट्ठुदासीणं,** तमपि तथैव तच्चित्तं तम्मणं स्वाध्याय-ध्यान-प्रत्युपेक्षणादिसंयमकरणोदासीणं तिष्ठन्तं दृष्ट्वा जानानाश्च 'यथैषोऽस्याः निमित्तेण संयमकरणोदासीणो चिट्ठति' **तत्थ वि ताव एगे कुप्पंति,** भणंति वा–किमेवं अ[9]ज्ज लक्खसि?। अन्यथा च पठ्यते **"समणं पि दट्ठुदासीणा" उदासीणा** णाम येषामप्यसौ भार्या न भवति बान्धवी वा, **अपि** पदार्थादिषु, तां च पोषितुम्, किमु यस्यासौ भार्या बान्धवी वा तामगणयंती?। अथवा **उदासीन**मिति उदासीनमपि भावात् श्रमणं दृष्ट्वा स्त्रीसहगतं एके कुप्यन्ते, किमु सविकारप्रायम्? इति। **अदु भोयणेहिं णत्थेहिं, न्यस्तानि** उपनीतानि उपेत्य नीतानीत्यर्थः, न गृहिणो, तस्स हत्थातो वा, सो य धण्णगसमणगो गिहिणिसेज्जवाही वा भिक्खाए आगतो, अथवा **न्यस्त**मिति वद्गतमनसं दट्ठुं कूरो दत्तो न तावद् व्यञ्जनम्, स चाऽऽगतः, सा तत्रातिसम्भ्रमेणाऽऽतुरीभूता सद्योतकस्यान्यस्य वा दातव्यं तं न प्रयच्छति, अन्यस्मिन् वा दातव्ये कर्त्तव्ये वा अन्यत् प्रयच्छति करोति वा। **निदर्शनं** जधा–

कहिंचि गामे पदोसे णट्टे णट्टेण तालिते मद्दले काइ वधू ससुरादीए परिवेसंती भोयणेसु दिण्णेसु कूरमानेति। ताए य तण्डुला इति कातूण राइआओ अवस्सायाओ। ततो णाए कूरो त्ति काउं ससुरस्स उक्किण्णाओ। सो य आणक्खेत्तुं तुसिणीओ महत्थिया संचिट्ठति। पतिणा से आसादेतुं पिट्टिता॥

एव तं पि साधुणिमित्तं समंतं दट्ठूण गृहिषु आत्मसु वाऽनादृतां तस्याः भोतकाद्या **इत्थीदोससंकिणो भवंति, इत्थीदोसो** णाम व्यभिचारिणी ॥ १५ ॥ स्याद्–एवंविधाः अपि दोषाः कस्यचिद् दृष्टा अभूवन् भवन्ति वा?, ओमित्युच्यते–

२६१. कुव्वंति संथवं ताहिं, पब्भट्ठा समाधिजोगेहिं।
तम्हा [10]समणा! तु जधाहि, आतहिओ सण्णिसेज्जाओ ॥ १६ ॥

---

१ णातिणं व सुहिणं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ होही ख १ ॥ ३ उभ्रामत्वियं चूसप्र० ॥ ४ कुत्सितो नर नरक इत्यर्थ ॥ ५ समणं दट्ठूणुदासीणं ख १ पु २ वृपा० । समणं पि दट्ठुदासीणा चूपा० ॥ ६ एगे पकु° पु १ ॥ ७ अदुवा भो° ख २ । अहवा भो° ख १ । अह भो° पु १ पु २ । "अथवा" इति वृत्तौ ॥ ८ होंति ख १ ख २ । हुंति पु १ पु २ ॥ ९ उज्ज चूसप्र० ॥ १० समणा ण समेंति आतहिताए सण्णि° ख १ ख २ वृ० दी० । समणा ण समेंति आयहिताय सण्णि° पु १ पु २ । समणा! उ जहाहि आअहिताओ सण्णि° वृपा० । समणा ण सामिति आतहिओ सण्णि° चूपा० । सामिति स्थाने समेंति इत्यपि चूपा० ॥

२६१. कुव्वंति संथवं ताहिं० वृत्तम् । **संथवो** णाम गमणा-ऽऽगमण-दाण-सम्प्रयोग-प्रेक्षणादिपरिचयः । **ताभिरिति** ताभिः स्त्रीभिः । **पब्भट्ठा** णाम णाण-दंसण-चरित्तजोगेहिं । जतो एते दोसा **तम्हा समणा! तु जधाहि, तस्मादिति** तस्मात् कारणात् **श्रमण!** इत्यामन्त्रणम्, अथवा श्रमणस्त्वम्, किं तवैवंविधैर्व्यापारैः ?, एते गार्हस्थानामेव युज्यन्ते, **तुर्विशेषणे, जहाहि।** पठ्यते च–"**तम्हा समणा ण समिन्ति आतहिओ" न** इति प्रतिषेधे, **समिति** समन्तात्, न समग्रमित्यर्थः, अथवा **ण समेन्ति** ण समुपागच्छन्ति, आत्मने हितं आत्महितम्, आत्मनि वा हितं आत्महितम्, तासिं पि अविरतियाणं तं हितं इह परलोगे य । **सण्णिसेज्जा** णाम गिहिसेज्जा संथव-संकथाओ य ॥ १६ ॥
स्यात्–प्रव्रज्यामुपेत्यापि एवं कुर्यात् ?, ओमित्युच्यते–

२६२. बहवे गिहाणि अवहट्टु, मिस्सीभावपण्हया[1] ।
धुवमग्गमेवे[2] भासिंसु, वायावीरियं कुसीलाणं ॥ १७ ॥

२६२. बहवे गिहाणि अवहट्टु० वृत्तम् । प्रभूताः अपहृत्यापहृत्य उत्सृज्येत्यर्थः । दव्वलिंगेण अच्छमाणा वि **मिस्सीभावपण्हया, मिश्रीभावो** नाम द्रव्यलिङ्गमिति, न तु भावः, अथवा पव्वज्जा गिहवासो वि, **पण्हता** णाम गौरिव प्रस्नुता, एवमेषां कर्मभयाद्वा मिश्रीभावः । प्रियतत्वे कतरः पक्षः ? विसय-सायासोक्खपडिबंधेणं भणंति लिंगच्छत्तणमेव वधाणं चिरपम्होमित्ता वि (?) कंखामोहणिज्जकम्मदोसेण कयाइ अघेसत्त[मीआ]उअं बंधेज्जा इति । अण्णे पुण अट्टदुहट्टवसट्टा असमाधिगता त एवं पंडितत्तणेण **धुवमग्गमेव भासिंसु, धुवमग्गो** णाम सजमो विरागमग्गो वा, तं जधा–बहुमोहा वि णं पुव्विं विहरित्ता अह पच्छा सवुडे कालं करेज्जा आराधए भवति, तं तेसिं **वायावीरियमेव** केवलं ढक्करिपुत्ताणं, न तु करणवीरियं । उक्तं हि–"जो जत्थ होति भग्गो ओवासं०" [ ] गाधा । **वायावीरियं** णाम जो भणति ण य करेति **भिलङ्गशकुनवत्** ॥ १७ ॥ अथवेदं वायावीरियं–

२६३. सुद्धं रवति परिसाए, अध रहस्सम्मि दुक्कडं करेति[3] ।
जाणंति य णं तधावेता[4], माइल्ले[5] महासढेऽयं ति ॥ १८ ॥

२६३. सुद्धं रवति परिसाए० वृत्तम् । सुद्धमिति वेरग्गं, अथवा शुद्धमिति शुद्धमात्मानम्, ततः पूजा-सत्कारहेतोः **परिषदि रौति** भाषत इत्यर्थः । **अध रहस्सम्मि दुक्कडं करेति** त्ति, एवमुक्त्वा रहस्सम्मि दुक्कडं करेइ त्ति । **दुक्कडं** णाम पाव, अथवा दुक्खं तद् लिङ्गस्थैः क्रियत इति दुक्कडं । किञ्च–**जाणंति य णं तधावेता**, स हि जाणीते–न मां कश्चित् जानाति, अथ चैनं **तथावेदा** जाणंति । तथा वेदयन्तीति **तथावेदाः**, कामतन्त्रविद इत्यर्थः, ते हि कामयमानं आकार-विकारैर्जानन्ति । उक्तं हि–

अकामिनां कामविपाण्डुराणि, तनूनि गात्राणि च कामुकानाम् । [ ]

नख-दशनच्छेदनैर्वा सूच्यन्ते यथैतेऽकृत्यकारिणः । यथा अन्धो उच्चारादुत्सृजन् दृश्यमानोऽपि परैर्मन्यते 'न मां कश्चित् पश्यति' एवमसावपि राग-द्वेषान्धो जानीते 'न मां कश्चित् पश्यति' ज्ञायते च परिव्रजन्नूनजलभृतवत् । अथवा यो यथावस्थितो भावतः तं **तथावेदाः** प्रत्यक्षज्ञानिनः, ते हि आवीकम्मं रहोकम्मं सव्वं जाणंति । ये पुनस्ते तद्विद्यास्ते ब्रुवते–अहो ! **इमो माइल्लो महासढो** जो णाम इच्छति अम्हे वि पत्तियावेतुं ।

ण वि लोणं लोणिज्जति ण य तोप्पिज्जइ घय व तेल्लं वा । किह सक्का वंचेतुं अत्ता अणुहूयकल्लाणो ? ॥ १ ॥
[ ] ॥ १८ ॥

---

१ °भावं पत्थुया वृ० । °भावं पणता दी० । °भावं पणता एगे । धुव° पु १ । °भावं पत्थुया एगे । धुव° ख १ ख २ पु २ ॥ २ °मेव पवदंति ख १ पु १ । °मेव पवयंती ख २ पु २ ॥ ३ कुणति ख १ पु १ पु २ ॥ ४ तहावेदा ख १ पु १ । तहावेया ख २ पु २ । "तथाविद" वृत्तौ ॥ ५ मातिल्ले पु १ । मायिल्ले पु २ ॥

२६४. सयदुक्कडं अवदते, आउट्ठो वि पकत्थति बाले।
वेदाणुवीयी मा कासि, चोइज्जंतो गिलाति से भुज्जो ॥ १९ ॥

२६४. सयदुक्कडं अवदते० वृत्तम्। एवं तावदसौ स्वयं दुक्कडकारिणं आत्मानं न वदति—यथाऽहं दुक्कडकारीति। जो वि य गूढायारं प्रवचनवात्सल्यात् तद्धितमिच्छन् वा चोदयति तत्थ वि णिण्हवति। आकुट्ठो नाम चोदितः आघ्रातः अभिशप्तो वा "कत्थ श्लाघायाम्" भृशं कत्थयति श्लाघयात्मानमित्यर्थः, अहं नाम अमुगकुलप्पसूतो अमुगो वा होंतओ एवं करेस्सामि?, येन मया कनकलता इव वातेरिता मदनवशविकम्पमाना भार्या परित्यक्ता सोऽहं पुनरेवं करिष्यामि?।

यदि सम्भाव्यपापोऽहमपापेनापि किं मया?। निर्विषस्यापि सर्पस्य भृशमुद्विजते जनः ॥ १ ॥

[ ]

अथापि ब्रूयाद्वा—को ब्रवीति यथाऽऽहमेवङ्कारी? इति, स भावेन च ह्येवङ्कारी। उक्तं हि—"स्वेनानुमानेन परं मनुष्याः०" राउले व णं कड्ढावेमि। वेदाणुवीयी मा कासि, वेदः प्रवेदः तस्य अनुवीचिः अनुलोमगमनं मैथुनगमनमित्यर्थः, तस्यानुलोमं मा कार्षीः प्रतिलोमं कुरु। एवं चोदितो माणुक्कडताए सम्मचिट्ठो विव [गिलाति] किलामिज्जति, "ग्लै हर्षक्षये" दैन्यमायातीत्यर्थः, किमेष मामेवं चोदयति? इत्यर्थः ॥ १९ ॥

२६५. उसिता वि इत्थिपोसेहिं, पुरिसा इत्थिवेदखेदण्णा।
पण्णासमण्णिता एगे, णारीण वसं उवणमंति ॥ २० ॥

२६५. उसिता वि इत्थिपोसेहिं० वृत्तम्। उसिता नाम वसिता। पोषयन्तीति पोषाः भगं स्त्रियो वा। पुष्णन्तीति पोषकाः भुक्तभोगिनः। इत्थिवेदो हि फुंफुमअग्गिसमाणो अवितृप्तः।

नाग्निस्तृप्यति काष्ठाना नापगानां महोदधिः। नान्तकृत् सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥ १ ॥

[ ]

स्त्रियो वा येन वेद्यन्ते स स्त्रीवेदो भवति। वैशिकतन्त्रेऽप्युक्तम्—

एता हसन्ति च रुदन्ति च अर्थहेतोः, विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति।
[तस्मान्नरेण कुल-शीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥
समुद्रवीचीव चलस्वभावाः, सन्ध्याभ्ररेखेव मुहूर्त्तरागाः।]
स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति ॥ २ ॥ [ ]

तथा—

अण्ण भणति पुरतो अण्णं पासे णिवज्जमाणीओ। अण्णं च तासि हिअए जं च खमे त करेंति महिलाओ ॥ १ ॥

[ ]

प्रज्ञया समन्विताः लोक-लोकोत्तरशास्त्रविदः उत्पत्त्यादिबुद्धियुक्ताः एके न सर्वे णारीण वसं उवणमंति। दृष्टान्तो वैशिकपाठकः—

एगो किल जुआणो वेसियअहिज्जणणिमित्तं गिहातो णिग्गतो। पाडलिपुत्तं गच्छंतो अन्तरा एगम्मि गामे एगाए इत्थीए भणति—सुकुमालसरीरो तुमं कत्थ वचसि?। तेण भणति—वेसियसत्थसिक्खगो वचामि। ताए भण्णइ—अधिज्जितुं [मम] मज्झेण एज्जाधि। सो त अधिज्जितुं तीए समीवमागतो। सा य संभमेण उट्ठिता, तत्प्रयोजनार्थीनि चाकाराणि दर्श-

१ °डं च अवयंति आइट्ठो वि ख १। °डं च अवयंते आइट्ठे वा पु १। °डं च न वदंते आयट्ठो वि ख २। °डं च न वयइ आइट्ठे वि पु २ ॥ २ उलियावेइ इ° खं २ ॥ ३ °पोसेसु पु° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ खेतण्णा ख १ पु १ ॥ ५ वेगे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ उवकसंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

यति, अब्भंगुव्वलण-ण्हाणाणि उव्वरगे कातुं जहिट्ठपाण-भोयणं भुंजावेन्ती ते आगारे करेति। तेण 'मं इच्छति' त्ति काउं हत्थे गहिता। तीए धाहाकतो। जणो पुच्छितो गताउलो। गलंतिओ उदगं तस्सुवरिं पक्खिविऊण भणति—एसऽग्गगले लग्गएणं [1]मण ण मतो। पच्छा जणे गते भणति—किं ते अधीतं? को इत्थीणं भावं जाणितुं समत्थो?—त्ति विसज्जितो गतो ॥ २० ॥

२६६. [2]अदु हत्थ-पादच्छेज्जाइं, अदुवा वद्धमंसं उक्कंते।
[3]अदु तेयसाऽभितवणाइं, [4]तच्छेतुं खारसिंचणाइं च ॥ २१ ॥

२६६. अदु हत्थ-पादच्छेज्जाइं० वृत्तम्। अथ इति आनन्तर्ये। परदारप्रसक्ता हि नरा नार्यश्चापि हस्त-[पाद]च्छेदम्। अदुवा वद्धमंसं ति पृष्ठीवद्धाणि उत्कृत्यन्ते, मांसानि चोत्कृत्य काकिणीमासानि खाविज्जंति। अदु तेयसाभितवणाइं, तेयसाभितवणं ति तेजः—अग्निः तेनाभितप्यन्ते। तच्छेतुं वासीए सत्थएण वा खारेण ओसिच्चति कलकलेण वा ॥ २१ ॥

२६७. [5]अदु [6]कण्णच्छेज्जं णासं वा, कंठकिज्जणं तितिक्खंति।
इति एत्थ पावसंतत्ता, ण य बेंति पुणो ण [7]करिस्सामो ॥ २२ ॥

२६७. अदु कण्णच्छेज्जं० वृत्तम्। कण्णा छिज्जति, णासाउ छिज्जंति, कंठे किज्जंति त्ति गलच्छेदः, तितिक्खंति पुरुषो वा ता वा स्त्रियः सहन्त इत्यर्थः। एवं विलंविज्जंता वि इति एत्थ पावसंतत्ता अस्मिन् पापे सतप्ताः, पापं मैथुनं परदार वा। ण य बेंति पुणो ण करिस्सामो, का तर्हि भावना? अपि मरणमभ्युपगच्छन्ति, न च ततः पापाद् विनिवर्त्तन्ते।

अपरः कल्पः—यदाऽसौ स्त्री केनचिदुक्ता भवति 'त्वमेवं अकार्षीः' इति। पश्चादसौ ब्रवीति—"अदु हत्थ-पादच्छेज्जाइं" [वृत्त २६६] इमेते पादे छिंदाहि, जीवितस्सापि, मा च मेत वयणं ब्रूहि, पट्ठीवज्झाणि व मे उक्कंताहि, कागणिमंसाणि व मे खावेहि, मा या मे असब्भावं भणाहि, "अदु तेयसाऽभितवणाइं" [वृत्तं २६६] कडग्गिणा व मे डहाहि उम्मुएण वा मे डंभेहि, कुमिपाएण मे पयाहि, तच्छेऊण वा मे गाताइं खारेण सिंचाहि, कण्णं णासं कंठं वा मे छिंदाहि, मा एतं बितियं भणाहि, एत्तो वि मे विब्भंगणाओ वेदणातो वा खलियतरं अब्भाइक्खणं।

तृतीयो विकल्पः—अभिशप्ता वाऽसौ ब्रूयात्—हस्तौ वा मे पादौ वा मे छिंदाहि, पृष्ठीवद्धाणि वा मे उत्कृत्य काकणिमासाणि वा मे खावय वा, अदु तेयसाऽभितवणाइं तेयसा वा मां तृणैरावेष्ट्य अभितावय, शस्त्रेणान्यतरेण वा मे गात्राणि तक्षित्वा खारेण सिञ्च, अदु कण्णच्छेज्जं कर्णौष्ठौ वा नासां वा छिन्द, कंठं वा छिन्द।

इति एत्थ पावसंतत्ता, पापं तदेव परदारगमनं तत्राऽऽसक्ताः। स्त्रियः ण य बेंति पुणो न काहं ति, अतीव हि ममासौ मनोऽनुकूलः, तस्य वाऽहं, नाहं तेण विना क्षणमात्रमपि जीवितुमुत्सहे, तं पुण मे वसयसि, ज जाणसि त करेहि ॥२२॥

एवमेव पुरुषा अपि कामसंतप्ताः निवार्यमाणा ब्रुवते—

२६८. [8]सुतमेवमेतमेगेसिं, [9]इत्थीवेदे वि हु सुयक्खायं।
एवं पि ता वदित्ताणं, [10]अध पुण कम्मुणा अवकरेंति ॥ २३ ॥

२६८. सुतमेवमेतमेगेसिं० वृत्तम्। श्रूयते स्म श्रुतम्। श्रुतमिति विज्ञानं लोकश्रुतिष्वपि तत् श्रूयते, यथा—स्त्रियश्चलस्वभावा दुष्परिचया अदीर्घाप(र्घप्रे)क्षिण्यो लहुसिकाः गर्विताः, एवं लोके आख्यायिकासु आख्यानकेषु च श्रूयते। इत्थिवेदो नाम वैशिकम् तत्राप्युपदिष्टम्—"दुर्विज्ञेयो हि भावः प्रमदानाम्" [ ] इति।

---

१ मणस्स ण गतो वा० मो० ॥ २ अवि हत्थ-पादच्छेदाए, अदु वा वद्धमंस उ° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ अवि ते° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ तच्छिय खा° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ अह पु १ ॥ ६ कण्णणासियाछेज्जं, कंठच्छेदणं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। ख २ णासिया स्थाने णास इति वर्त्तते ॥ ७ कार्हिं(हं) ति ख १ ख २ पु १ पु २ चूपा० ॥ ८ सुतसेतमेवमे° खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ इत्थीवेदम्मि य सु° पु १ ॥ १० अदु वा क° ख १ ख २ पु २ वृ० दी०। अहवा क° पु १ ॥

दुर्ग्राह्यं हृदयं यथैव वदनं यद् दर्पणान्तर्गतं, भावः पर्वतमार्गदुर्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते ।
चित्तं पुष्करपत्रतोयचपलं नैकत्र सन्तिष्ठते, नार्यो नाम विषाङ्कुरैरिव लता दोषैः समं वर्द्धिताः ॥ १ ॥

[ ]

अपि च–

सुट्ठु वि जितासु सुट्ठु वि पियासु सुट्ठु वि य लद्धपसरासु । अडईसु य महिलासु य वीसभो भे ण कायव्वो ॥ १ ॥
इक्खुवउ अंगुलिं ता पुरिसो सव्वम्मि जीवलोअम्मि । कामेंतएण लोए जेण ण पत्तं तु वेमणस ॥ २ ॥
अह एताण पगतिया सव्वस्स करेंति वेमणस्साइ । तस्स ण करेज्ज मंतुअं जस्स अलं चेय कामतंतएण ॥ ३ ॥

[ ]

एवं पि ता वदित्ताणं, यदा तु प्रस्थिता निवारिया भवति–मैवं कार्षीः, तदा 'न भूयः करिष्यामि' इति एवं पि ता वदित्ताणं अध पुण कम्मुणा अवकरेंति, अपकृतं नाम यद् यथोक्तं यथा प्रतिपन्नं वा न कुर्वन्ति ॥ २३ ॥

तासां हि अयमेव स्वभावः–

२६९. अण्णं मणेण चिंतेंति, [1]अण्णं वायाइ कम्मुणा अण्णं ।
[2]तम्हा णो सद्दहेतव्वं, बहुमायाओ इत्थिओ णच्चा ॥ २४ ॥

२६९. अण्णं मणेण चिंतेंति॰ वृत्तम् । कथम् ? क्षणरा[3]गत्वात् । तद्यथा–

आचार्या मर्कटा बालाः स्त्रियो राजकुलानि च । मूर्खा भण्डाश्च नीचाश्च विज्ञेयाः क्षिप्ररागिणः ॥ १ ॥

[ ]

यतश्चैवं तम्हा णो सद्दहेतव्वं, यदि नाम हाव-भावादीनाकारान् कुर्यात्, वायाए वा पत्तियावेज्ज, एवमादि तासा विज्ञाप्यं न श्रद्धेयम् ।

दत्तो वैशिकः किल एकया गणिकया तैस्तैः प्रकारैर्निमन्त्रीयमाणोऽपि नेष्टवान् तदाऽसावुक्तवती–त्वत्कृतेऽग्निं प्रविशामीति । तदाऽसौ यद् यत् तयोच्यते तत्र तत्रोत्तरमाह 'एतदप्यस्ति वैशिके' । तदाऽसौ पूर्वसुरुङ्गामुखे काष्ठसमूह कृत्वा तं प्रज्वाल्य तत्रानुप्रवेश्य सुरुङ्गया स्वगृहमागता । दत्तकोऽपि च–एतदप्यस्ति वैशिके । एवं विलपन्नपि धूर्त्तैर्वार्त्तिकैश्चितकाया प्रक्षिप्तः । एवं तम्हा तु णो सद्दहितव्वं ॥ २४ ॥

२७० जुवती समणं बूया[4], चित्तवत्था-ऽलंकारविभूसिया ।
विरता चरिस्स [5]हं लूहं, धम्ममाइक्ख [6]णे [7]भयंतारो ! ॥ २५ ॥

२७०. जुवती समणं बूया॰ वृत्तम् । **चित्राणि** अन्यतरवर्णोज्ज्वलानि अनेकवर्णानि वा । सा हि **वस्त्राद्यलङ्कारविभूषिता** श्रमणसमीपमागत्य **विरता चरिस्स हं लूहं,** णिव्विण्णाऽहं समणा' घरवासेणं, भर्त्ता मेऽन्यप्रशक्तः, तस्य चाहमनिष्टा, स च ममेति, तेन विरता भूत्वा चरिष्याम्यहं **लूहं** । **लूहो** नाम सयमः । तं **धम्मं** तावदाचक्ष्वेति । भयात् त्रायतीति भयत्रारः । एवं सम्भाषमाणा प्रीति-विश्रम्भावुत्पादयति ॥ २५ ॥

२७१. अदु सावियापवादेण, [8]अधगं साधम्मिणी य तुब्भं ति ।
जतुकुंभे जधा [9]उवज्जोति, संवासे[10]णं विदू वि सीदेज्जा ॥ २६ ॥

---

१ वाया अण्णं च क° ख २ ॥ २ तम्हा ण सद्दहे भिक्खू, बहु° खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ °रागित्वा° पु० स० ॥ ४ बूया उ चित्तऽलंकार-वत्थगाणि परिहेत्ता ख २ पु २ । बूया य चित्तलवत्थाणि परिहेत्ता ख १ पु १ ॥ ५ हं मोणं ध° ख १ पु २ वृपा० । हं रुक्खं ध° पु १ ॥ ६ मे पु १ ॥ ७ भवंतारो ख १ ॥ ८ अहगं साहम्मिणी य समणाणं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ वुवज्जोति ख १ ॥ १० °से विदू ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

२७१. अदु साविया पवादेण० वृत्तम्। श्राविकासु विश्रम्भ उत्पद्यते, नीपिधिकयाऽनुप्रविश्य वन्दित्वा विश्रामणालक्षेण सम्वाधनादि कूयवारकवत्। काइ तु लिंगत्थिगा सिद्धपुत्ती वा भणति–अयं साधम्मिणी तुब्भं ति, स एवमासन्नवर्तिनीभिः श्लिष्यते। दृष्टान्तो यतुकुम्भः, जतुमयः कुम्भः यतुकुम्भः जतुलिप्तो वा, ज्योतिषः समीपे उपज्योति, गलतीति वाक्यशेषः। एवं संवासेण विदुरपि सीदति, किं पुनरविद्वान्? इति। उक्तं हि–

तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं स तपः स च निश्चयः। सर्वमेकपदे नष्टं सर्वथा किमपि स्त्रियः॥ १॥

[ ]॥ २६॥

एवं तावदासन्नाभ्यः प्रातिवेशि[1]किस्त्रीभ्यो दोषः। एकतस्तु सवासे शीघ्रमेव विनाशः। जधा–

२७२. जतुकुंभे जोति[2]मुवगूढे, आसुऽभितत्ते णासमु[3]वजाति।
एवित्थिगासु अणगारा, संवासे[4]णाऽऽसु विणस्संति॥ २७॥

२७२. [जतुकुंभे जोतिमुवगूढे० वृत्तम्।] जतुकुंभे जोतिं उपगूढः अग्नावाहितः अग्निमध्यमितो वा समन्ततो भस्त्रिभिः प्रज्वलितेन आशु अभितप्तो नाशमुपयाति, एवित्थिगासु अणगारा आत्म-परोभयदोषैः आशु चारित्रतो विनश्यन्ति॥ २७॥ किञ्च–

२७३. कुव्वंति पा[5]वकम्मं, पुट्ठा वेगे[6]वमाहंसु।
णाहं करेमि पा[7]वं ति, अंकेसाइणी ममेस त्ति॥ २८॥

२७३. कुव्वंति पावकम्मं० वृत्तम्। पापमिति मैथुन परदारं वा। [पुट्ठा] एगपुरिसेण संघसमितीय वा आहंसुरिति आख्यान्ति–णाहं करेमि पावं ति, एषा हि मम दुहिता भगिनी नप्ता वा। अङ्के शेत इति अङ्कशायिनी, पूर्वाभ्यासादेवैषा मम अङ्के शेते निवार्यमाणा पर्यङ्के वा॥ २८॥

२७४. बालस्स मंदयं वितियं, जं च कडं अवजाणती भुज्जो।
दुगुणं करेति से पावं, पूयणकामए विसण्णेसी॥ २९॥

२७४. बालस्स मंदयं वितियं० वृत्तम्। द्वाभ्यामाकलितो बालो। मंदो दव्वे य भावे य, दव्वे शरीरेण उपचयाऽपचये, भावमन्दो मन्दबुद्धी अल्पबुद्धिरित्यर्थः। मन्दता नाम अवलतैव। कोऽर्थः? तस्य बालस्य वितिया बालता यदसौ कृत्वाऽवजानाति नाहमेवंकारीति, ण वा एवं जाणामि। दुगुणं करेति से पावं, मेधुणं पावं, वितिय पुणो पूया-सक्कारणिमित्तं, अवि य अवलवति सक्कारणिमित्त मा मे परो परिभविस्सति। विसण्णो असजमो तमेसति विसण्णेसी॥ २९॥

२७५. संलोकणिज्जमणगारं, आतगतं णिमं[8]तणेणाऽऽहंसु।
वत्थं व तो[9]ति! पातं वा, अ[10]ण्णं पाणगं पडिग्गाहे॥ ३०॥

२७५. संलोकणिज्जमणगारं० वृत्तम्। संलोकणिज्जो णाम द्रष्टव्यो दर्शनीयो वा। तत्थ काइ मुच्छिता आ[11]तगतं णाम अप्पाणएणं णिमंतेत्ति, अथवा आत्मगतः तस्या अशुभो भावः 'सवधामि ताव णं, ततो काहिति वयण'। आहसुरिति आहुः। वत्थं व ताति! पातं वा, त्रायतीति त्राती। अण्णं वा पाणं वा यच्चान्यदिच्छसि तत्तदहं सदैव दास्यामीति, एवं सबद्धो ण तरति उव्वरितुं॥ ३०॥ भगवन् भवति (भगवान् भणति)—

---

१ °वेश्मक° वा० मो०॥ २ °तिमव° ख २। °तिसुव° ख १ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ३ °मुवयाति। एवित्थियाहिं अण° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ४ °सेण णासमुवयंति ख २ वृ० दी०। °सेण णासमुवेंति ख १ पु १ पु २॥ ५ पावगं कम्मं खं १ ख २ पु १ पु २॥ ६ वेगे एव° ख १ ख २ पु १ पु २॥ ७ पावगं अंके पु १॥ ८ °तणाऽऽहंसु ख १ ख २ पु १ पु २॥ ९ ताय! ख २॥ १० अण्ण-पाणयं ख १ पु २॥ ११ आगतागतं चूसप्र०। "आतमगत आत्मज्ञम्" इति वृत्तौ व्याख्या॥

२७६. णीयारमेव वुज्झेज्ज, णो इच्छेज्ज अगारं गंतुं।
संवद्धो विसयदामेहिं, मोहमावज्जति पुणो मंदे ॥ ३१ ॥ त्ति वेमि ॥
॥ इत्थिपरिण्णाए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ ४-१ ॥

२७६. णीयारमेव पुच्छेज्ज (वुज्झेज्ज)० वृत्तम् । निकरणं निकीर्यते वा निकिरः, यदुक्तं भवति निकीर्यते गोरिव चारी, जधा वा सूकरस्स धण्णकुंडगं कूडादि णिगिरिज्जति पुट्ठो य वहिज्जति, गलो वा मत्स्यस्य यथा क्रियते, एवमसावपि मनुष्यशूकरकः वस्त्रादिनिकिरणेन णिमंतिज्जति, पच्छा संयमजीवियाओ ववरोइज्जति, वक्ष्यमाणमपि च नानाविधानि अकृत्यानि कारयन्ति । यतश्चैवं तेण संसारवंधं ससारपासं च भावनिकारमेतद् बुद्धा दूरतोऽपि तद् ग्रामं णगरं वा जत्थ णिमंतिज्जति तं परिहरतो णो इच्छेज्ज अगारं गंतुं इति अगारत्वम् । अधवा "अगारमावत्तं" अगारमेव आवर्त्तः अगारमावर्त्तः, कारणे कार्यवदुपचारात् ससारावर्त्तः । यः पुनरत्र सम्बध्यते संवद्धो विसयदामेहिं, महिस-सूयरादीणं वध्रादीनि दामकानि, नरसूकराण तु विसयदामगाणि । दाम्यन्ते एभिरिति दामकानि वन्धनानीत्यर्थः, तैः बद्धः मोहमावज्जति पुणो मंदे, मोहः संसारस्तमेवाऽऽगच्छतीति । अथवाऽनुकम्पया मन्दः, स वराको मन्दो विषयपराजितः प्राप्यापि प्रव्रज्यां पुनरपि मोहमागच्छतीति ॥ ३१ ॥

[॥ इत्थीपरिण्णज्झयणे पढमुद्देसओ सम्मत्तो ॥ ४-१ ॥]

[इत्थीपरिण्णज्झयणे विइओ उद्देसओ]

स एवाधिकारोऽनुवर्त्तते । प्रथमोद्देशकोक्तैराकारैराकृष्टा इहैव स्खलितधर्माणो णाणाविधाइं खलीकरणाइं पाविज्जंति, वक्ष्यमाणमपि "सुहिरीमणा वि ते संता" [गा० २९३] । सम्बन्धो हि द्विविधः, तद्यथा—अनन्तरसूत्रसम्बन्धः परम्परसूत्रसम्बन्धश्च । [तत्रानन्तरसूत्रसम्बन्धः] "णीयारमन्तं वुज्झेज्जा" बुद्धा ओयाभूतो भवेज्जासि त्ति, ओजो विषमः, यदा बद्धस्तु "भोगकामी पुणो विरज्जेज्ज" [सूत्र २७७] । परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु "संलोकणिज्जमणगारं" [सूत्र २७५] कदाचिन्निमन्त्रयति तत्र य ओजः स सदा न रज्जेज्ज, अनोज इतरस्तु कदाचिद् रज्जेज्ज । द्रव्य-भावसम्बद्धस्य तु इहैव वाहन-ताडनादयो विलम्बनाप्रकारा भवन्ति, तादृशस्य वा वन्धनादयो दोषाः, कर्मवन्धाच्च नरकादिविपाकः । एवं विपाकं मत्वा—

२७७. ओए सदा ण रज्जेज्ज, भोगकामी पुणो वि-रज्जेज्जा।
भोगे समणाण सुणेधा, एगे किल जधा भुंजंते ॥ १ ॥

२७७. ओए सदा ण रज्जेज्ज० वृत्तम् । द्रव्यौजो हि असहायत्वात् परमाणुः । भावोजो राग-दोसरहितो । स एवमोजः पूर्वापरसस्तवं जधाय ण तेसु अण्णत्थ वा पुणो रज्जेज्ज । भोगकामी पुणो वि रज्जेज्ज गिज्झेज्जा, अथवा यद्यपि भोगकामी स्यात् तयापि पुणो विरज्जेज्ज, मा भूद् अत्यन्तरागवान् स्यात् । ते य समभोगे समणाण सुणेधा भोगान् किलैषाम्, ते निश्चयेन गृहिणामपि भोगा विलम्बना, किमु लिङ्गिनाम् ?, ते य सुणेध । एगे किल जधा भुंजंते, एगे न सव्वे, केइ आउक्कायरियसायासोक्खपडिवधेणं लिंगगच्छत्तणं करेंति, ण तु मोहदोसेणं ॥ १ ॥

२७८. अध तं तु भेदमावण्णं, मुच्छियं भिक्खुं कामेसु अतिअट्टं।
पलिभिंदियाण तो पच्छा, पादुद्धट्टु मुद्धि पहणति ॥ २ ॥

---

१ णीवारमेव ख १ ख २ पु १ पु २ । णीयारमंतं चूपा० ॥ २ इच्छे अगारमागंतुं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ अगारमावत्तं चूपा० वृपा० ॥ ४ वद्धे य विसयपासेहिं ख १ ख २ पु २ वृ० दी० । वद्धे य विसयदामेहिं पु १ ॥ ५ °मागच्छती पुणो ख १ पु २ वृ० ॥ ६ सुणेह, जह भुंजंति भिक्खुणो एगे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सुणेह स्थाने सुणेहा ख २ पु १ ॥ ७ °कारिय° पु० ॥ ८ काममतिवट्टं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

२७८. अध तं तु भेदमावण्णं० वृत्तम् । अथेत्यानन्तर्ये । तुः विशेषणे । भावभेदं चरित्रभेदमावण्णं, ण तु जीवितभेदं शरीरभेदं लिंगभेदं वा । मुच्छियं कामेसु दव्वभिक्खुं, कामेसु अतिअट्टं कामेसु अतिगतं कामेसु वा अतिवत्तमाणं पलिभिंदियाण पडिसारेऊण—'मए तुज्झ अप्पा दिण्णो, सर्वस्वजनश्चावमानितः, ण इमो लोगो जातो ण परलोगो, तुमं पि णवरिं खीलगप्पातो मज्जायं जातिं वा ण सारेति, अप्पयं ताव अप्पएण जाणाहि, कस्स णाम अण्णस्स मए मोत्तूण तुमे कज्जं कतं लुत्तसिरेण जल्लमइलितंगेणं दुग्गंधेणं पिंडोलएण कक्षा-वक्षो-वस्तिस्थानयूकावसथेन ?' । स एवं पडिभिण्णो तीसे चलणेसु पडति, ताधे सा पंडंतं 'मा मे अल्लियसु' त्ति वामपादेणं मुद्धाणे पहणति । अणोयिंघणो वि ताव तस्मिन् काले हन्यते, किं पुण ओयिंघणो ? । उक्तं च—

व्याभिन्नकेसरबृहच्छिरसश्च सिंहाः, नागाश्च दानमदराजिकृशैः कपोलैः ।
मेधाविनश्च पुरुषाः समरे च शूराः, स्त्रीसन्निधौ कचन कापुरुषा भवन्ति ॥ १ ॥

[   ] ॥ २ ॥

कयाइ सा अगारी भणेज्ज, पुव्वमज्जा व से अण्णा वा कायि—

२७९. जइ केसियाए मए भिक्खू !, णो विहरे सहणमित्थीए ।
केसे वि अहं लुंचिस्सं, णऽण्णत्थ मए विचरेज्जासि ॥ ३ ॥

२७९. जइ केसियाए मए भिक्खू !० वृत्तम् । केशाः अस्याः सन्तीति केशिका । जइ मए केसइत्तीए हे भिक्खू ! णो विहरे सहणं ति सह मया, कोऽर्थः ? जइ मए सवालिआए लज्जसि ततो केसे वि अहं लुंचिस्सं, णऽण्णत्थ मए विचरेज्जासि त्ति मा पुणाइं मे छड्डेऊण अण्णत्थ विहरेज्जासि त्ति ॥ ३ ॥

एवमसौ ताए संवद्धो तदनुरक्तः तीसे णिद्देसे चिट्ठति ततोऽसौ—

२८०. अध णं से होति उवलद्धे, ततो णं देसेति तधारूवेहिं ।
अलाउच्छेदं पेहेहि, वग्गुफलाणि आहराहि त्ति ॥ ४ ॥

२८०. अध णं से होति उवलद्धे० वृत्तम् । उवलद्धो नाम यथैषो मामनुरक्तो णिच्छुभंतो वि ण णस्सइ त्ति । ततो णं देसेति तहारूवेहिं, तधारूवाइं णाम जाइ लिंगत्थाणुरूवाइं, न तु कृष्यादिकर्माणि गृहस्थानुरूपाणि । अलाउच्छेदं णाम पिप्पलगादि, जेण भिक्खाभायणस्स मुखं छिज्जति, जेण वा णिमोइज्जइ वाहिरा वा तया अवणिज्जत्ति । वग्गुफलाणि त्ति वग्गू णाम वाचा तस्याः फलाणि वग्गुफलाणि, धर्मकथाफलानीत्यर्थः, तुमं दिवसं लोगस्स वोल्लेण गलएण धम्मं कहेसि, जेसिं च कहेसि ते ण तरसि मग्गितूणं ?, अथवा जोइस-कोंटल-वागरणफलाणि वा ॥ ४ ॥

२८१. दारूणि अण्णपायाय, पज्जोतो वा भविस्सती रातो ।
पाताणि य मे रयावेहि, एहि य ता मे पट्टिं उम्महे ॥ ५ ॥

२८१. दारूणि अण्णपायाय० वृत्तम् । दारुगाणि आणय, आनीय विक्रीणीहि अण्णपागाय पढमालिया वा उवक्खडिजिहित्ति, दोच्चगं वा परितावेज्जिहिति सीतलीभूतं, तेहिं पज्जोतो वा भविस्सति रातो भृशमुद्योतः, दीवतेल्लं पि णत्थि, तेहिं उज्जोते सुहं हत्थी(व्वी)हामो वियावेहामो वा । पाताणि य मे रयावेहि, काममयणिअल्लियाए इह पाताणि,

---

१ अनुपबृंहण इत्यर्थः ॥ २ उपबृंहण इत्यर्थः ॥ ३ °यामए ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ णं इत्थीए ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ केसाणि वि हं लुंचिसु, णऽण्णत्थ मए चरेज्जासि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ तो पेसेंति तहाभूतेहिं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । स्थाने पेसेति ख १ ॥ ७ लाउ° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ पेहाहिं ख २ ॥ ९ दारूणि सागपागाए ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । दारूणि अण्णपागाए वृपा० ॥ १० उम्मद्दे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ आनीत्य चूसप्र० ॥ १२ पक्को ताव भवि° चूसप्र० ॥

तेतेण तुमं चेय आलत्तगं आणेहि, अधवा पादाइं[1] ति भायणाइ, लेवो घट्टगो, एव कस्स अण्णेमि सेयं वाऽणंतरंगेहिं ?, लिंपावेहि ठाणं। एहि य ता मे पट्ठि उम्मद्दे, पुरिल्लं कायं अहं सक्केमि उव(म्म)हेतुं पिट्ठं पुण ण तरामि ॥ ५ ॥

२८२. वत्थाणि य मे पडिलिहे[2], अण्ण-पाणं वा मे आहराहि।
गंधं[3] च रयोहरणं[4] च, कासवगं च[5] मे आणयाहि ॥ ६ ॥

२८२. वत्थाणि य मे पडिलिहे० वृत्तम्। इमाणि वत्थाणि पेच्छ सुत्तदरिद्दयं[6] गयाणि, णग्गिया हं जाया। अहवा किण्ण पस्ससि मइलीभूताणि तेण धोवेसि ?, रयगस्स वा ण णेहि। अहवा वत्थाणि मे पेहाहि त्ति जतो लभेज्ज। अहवा एयाइं वत्थाइं वेंटियाए पडिलेहेहि, मा से पुगारियाइं खज्जेज्ज। वेहाँरुवगवातएण[7] वा भणेज्ज—मम वत्थाणि पडिलेहेहि, अण्ण-पाणं वा मे आहराहि, णाह सक्केमि हिंडिउं। गंधं च रयोहरणं च, गंधाणि ताव कोट्ठादीणि आहोहि (?आणेहि) चुण्णाणि वा जेण गायाइं भुरुकुडेत्ता। पठ्यते च—"गंधं व रयोहरणं वा" ग्रन्थ इति ग्रन्थः संघाडी रयहरणं सुन्दरं मे आणेहि। कासवगं ण्हावियमाणयाहि, ण तरामि लोयं कारवेत्तए ॥ ६ ॥

२८३. अदु अंजणिं अलंकारं, कुक्कुहगं[8] च मे पयच्छाहि।
लोद्धं च लोद्धकुसुमं च, वेलुंपलासीं[9] च गुलियं च ॥ ७ ॥

२८३. अदु अंजणिं अलंकारं० वृत्तम्। अंजणभाणियम्मि अ अंजियं आणेहि। अलंकारे हार-न्नकेशाद्यलङ्कारं वा सकेसियाण। कुक्कुहगो णाँम[10] तववीणा। लोद्धं च लोद्धकुसुमं च, लोध्रं कपायणिमित्तं, लोद्धस्सेव कुसुमं,तं तु गंधसंजोए उवउज्जति। वेलुपलासी णाम वेलुमयी सण्हिका कविगा, सा दतेहि य वामहत्थेण य घेत्तूणं दाहिणहत्थेण य वीणा इव वाइज्जइ, पिच्छोला इत्यर्थः। [गुलिया णाम] एका ताव ओसहगुलिया अत्थगुलिया अगतगुलिया वा ॥ ७ ॥

२८४. कोट्ठं तगरं अगरुं[11] च, संपिट्ठं समं[12] हिरिवेरेणं।
तेल्लं मुहे[13] भिलंगाय, वेलुंफलाइं[14] सण्णिधाणाए ॥ ८ ॥

२८४. कोट्ठं तगरं अगरुं च० वृत्तम्। हिरिवेरं णाम उसीरं। सेसाणि कंठाणि। एतानि हि प्रत्येकशः गंधंगाणि भवंति[15]। समं हिरिवेरेणं ति सयोगश्च भवति। तेल्लं मुहे भिलंगाय मुहमक्खणयं तेल्लं आणेहि। भिलिंगाय त्ति देसीभासाए मक्खणमेव। वेलुफलाइं ति वेलुमयी सवलिका सकोसको पेलिया करण्डको वा सण्णिधाणाए त्ति तत्थ सण्णिवेस्सामो किंचि पोत्तं वा कत्तं वा ॥ ८ ॥

२८५. णंदीचुण्णगाइं पाऽऽहराहि, छत्तगं[16] जाणाहि उवाहणाउ वा।
सत्थं च सूवच्छेदाए, आणीलं च वत्थयं[17] रावेहि ॥ ९ ॥

२८५. [णंदीचुण्णगाइं पाऽऽहराहि० वृत्तम्।] णंदीचुण्णगं नाम जं सजोइम[18] ओट्ठमक्खणगं येन तेन वा प्रकारेण भृश आहराहि, अधवा चुण्णाइं वट्टमाणाइ। वरिसारत्ते वा गिम्हे वा छत्तगं जाणाहि उवाहणाउ वा, जाणाहि त्ति आणेहि जतो जाणासि ततो त्ति, किं मए एतमवि जाणितव्वं जधा णत्थि ? त्ति। सत्थं च सूवच्छेदाए, सत्थं आसि-

---

१ पादेहिं इति चूसप्र० ॥ २ पडिलेहेहि, अण्णं पाणमाह° ख २ वृ० दी०। पडिलेहेहि, अण्णं पाणं च मे आह° ख १ पु १ पु २ ॥ ३ गंधं व वृपा० चूपा० ॥ ४ रतोहरणं ख २ ॥ ५ च समणुजाणाहि ख १ खं २ पु १ पु २। च सम[णऽ]णुजाणाहि वृ० दी० ॥ ६ सुत्तदरिद्दय गयाणि जीर्णानीत्यर्थ ॥ ७ वैहारिकवाटेन वैहारिकवातेन वा इत्यर्थ ॥ ८ कुक्कयं वृ० दी०। कुकुकयं पु २ ॥ ९ वेणुपलासियं च ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० णामित्तंवधीणा चूसप्र०। "कुक्कयय' खुङ्खुणक 'मे' मम प्रयच्छ येनाह सर्वालङ्कारविभूपिता वीणाविनोदेन भवन्त विनोदयामि।" इति वृत्तौ। "कुक्कयय घर्घरम्" इति विशेपप०। खुंखुणओ प्राणसिरा इत्यर्थ ॥ ११ अगुरुं ख १ ख २ पु १ ॥ १२ समं उसीरेण ख २ वृ० दी०। सह उसीरेण ख १ पु १ पु २ ॥ १३ मुहं भिलिंजाए ख १ पु १ वृ० दी०। मुहं सिभिंजाए पु २। मुहं सिलिंगाए ख २ ॥ १४ वेणुपडाइ ख १ ॥ १५ भणं(ण्णं)ति पु० स० ॥ १६ छत्तोवाहणं च जाणाहि। सत्थं ख १ ख २ वृ० दी० ॥ १७ वत्थयं रयावेहि ख २। वत्थं रयावेहि ख १ पु १ पु २ ॥ १८ संजमोइमं उउट्ठम° चूसप्र०। "नदीचुण्णगाइ' ति द्रव्यसयोगनिष्पादितोष्ठम्रक्षणचूर्णोऽभिधीयते" इति वृत्तिकृतः ॥

यगादि, सूवं णाम पत्रशाकम्, जेण तं छिज्जति । आनीलो नाम गुलिया सावलिया, एतेण साडिगा सुत्तं कंचुगं वा रावेहि णीलीरागे वा इमं वत्थं छुहाहि । अधवा सा सयमेव कुसुंभगादिरागेण जाणति वत्थाणि रावेतुं तेण अप्पणो वा कज्जे वत्थरागं मग्गति, जेसिं वा रइस्सति मोल्लेण ॥ ९ ॥

२८६. सुफणितं[1] सूवपाताए, आमलगा[2] दगाहरणिं च ।
तिलकरणिं[3] अंजणिसलागं, घिंसु मे विधूवणं[4] जाणाहि ॥ १० ॥

२८६. सुफणितं सूवपाताए० वृत्तम् । **फणितं** णाम पक्कं रद्धं वा, सुखं फणिज्जति जत्थ सा भवति **सुफणी,** लाडाणं जहिं कड्डुत्ति त **सुफणि** त्ति वुच्चति, **सुफणी** वराडओ पत्तुल्लओ थाली पिहुडगो वा । तत्थ अप्पेण वि इंधणेणं सुहं सीतंकुसुणं उप्फणेहामो । **सूवपागाए** त्ति सूवमादी कुसुणप्पगारा सिज्झिहिंति, सुक्खकूरो णाम हिंडंतेहि वि लब्भति । **आमलगा** सिरोधोवणादी-भक्खणार्थं वा । उक्तं हि-"भुक्तो फलाणि भक्षे विल्वा-ऽऽमलकवर्जानि" [ ] । **दगाहरणी** णाम कुडो कलसिगा वा । "**दगधारणी**" आलुगा अरंजरगो वा । चशब्दात् तेल्ल-घताहरणिं च । तेसिं चाउक्काइयाणं सव्वं णवग-संठप्पं कातव्वं ति तेण सव्वस्स घरोवक्खरस्स कारणा तं चट्टेइ, सो य त सव्वं हट्ठपहट्ठो करेति । **तिलकरणिं अंजणि-सलागं** ति, **तिलकरणी** णाम दंतमइया सुवण्णगादिमइया वा, सा रोयणाए अण्णतरेण वा जोएणं तिलगो कीरइ, तत्थ छोढुं भमुगासगतगस्स उवरिं ठविज्जति तत्थ तिलगो उट्ठेति, अथवा रोचनया तिलकः क्रियते, स एव **तिलककरणी** भवति, तिला वा जत्थ कीरंति पिस्संति वा । **अञ्जनं** अञ्जनमेव श्रोताञ्जन जात्यञ्जनं कज्जलं वा, **अंजनसलागा** तु जाए अक्खि अंजिज्जंति । **घिंसुरिति** गिम्हासु मम घर्मार्त्ताया वीजनार्थं **विधूवणं जाणाहि,** वधूयतेऽसौ विधी(धू)यते वा अनेनेति **विधूवनः** तालियंटो वीयणको वा ॥ १० ॥

२८७. संडासगं च फणिगं[6] च, सीहलिपासयं च आणाहि ।
आतंसगं[7] पयच्छाहि, दंतपक्खालणं पवेसेहि[8] ॥ ११ ॥

२८७. **संडासगं च फणिगं च सीहलिपासयं च०** वृत्तम् । **संडासओ** कप्परुक्खओ कज्जति सोवण्णिओ, जस्स वा जारिसो विभवो । अधवा **संडासगो** जेण णासारोमाणि उक्खणंति । **फणिगाए** वाला जमिज्जंति ओलिहिज्जंति जूगाओ वा उद्धरिज्जंति । **सीहलिपासगो** णाम कंकणं, त पुण जधाविभवेण सोवण्णिगं पि कीरति । **सिहली** णाम सिहंडओ, तस्स पासगो **सिहलीपासगो** । **आतंसगं पयच्छाहि, आयंसगं** ता मे "केजणा पाडिवेसिगघराओ वा, जत्थ अप्पाण मंडेत्ता मुहं पेसामि (? पेच्छामि), पेच्छंती वा मुहं सुहं मंडेहामि त्ति । **दंतपक्खालणं** दंतकट्ठाणं **पवेसेहि** त्ति अडईओ घर पवेसेहि, अथवा सोवणे चेव ठिता भणति-**दंतपक्खालणं** वा इहेव **पवेसेहि,** वरं सुहं खाइतुं णिगच्छंती हं ॥ ११ ॥

२८८. पूयप्फलं[9] तंबोलं च, सूचिं[11] जाणाहि सुत्तगं ।
कोसं च मोयमेहाए[12], सुप्पुक्खलं[13] मुसल खार गलणं च ॥ १२ ॥

२८८. **पूयप्फलं तंबोलं च०** वृत्तम् । पूयफलग्रहणात् पञ्चसौगन्धिकं गृह्यते । **सूचिं जाणाहि** [**सुत्तगं**], **सुत्तगं** णाम सिव्वणादोरगं, अप्पणो कंचुगं साडिं वा सिवामि, कदाइ सा कंचुगासीविगा चेव होज्जा तो परेसिं । **कोसे** णाम मत्तओ,

---

१ सुफणिं च सागपागाए ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ °गाणि दगाहरणं च ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । दगधारणिं चूपा० ॥ ३ तिलगकरणिमंजणस° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ विधूणयं विजाणाहिं ख २ वृ० दी० । विधुयणं विजाणाहि ख १ पु १ पु २ ॥ ५ °तकूणं चूसप्र० ॥ ६ फणिहं च, आणाहि सीहलिपासगं च ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ आदंसगं ख २ । आयंसगं ख १ पु १ पु २ ॥ ८ पवेसेहिं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ च पसगं च पसलियं च चूसप्र० ॥ १० क्रयणादित्यर्थं ॥ ११ सूती सुत्तगं च जाणाहि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ मोतमे° ख १ ॥ १३ सुप्पुक्खलगं च खारगलणं च ख २ । सुप्पुक्खलं च गोरगलणाए ख १ । सुप्पुक्खलगं च खारगलणाए पु १ । सुप्पुदुखलं च खारगालणं च पु २ वृ० दी० ॥

मुच्यत इति **मोयं** कायिकम्, "मिह सेचने" मेहं मोचं च मोघं मोयं मेखं तं कोसकोसं मोयमेहार्थं मेयमेहार्थं मेयमेह(?) **सुप्पं** णाम सूर्पम्, **उक्खलं मुसलं च खारगलणं** च जाणाहि ॥ १२ ॥

२८९. [1]वंदालगं च करगं च, वच्चघरगं च आउसो! खणाहि।
सरपादगं च [2]जाताए, गोरधगं च सामणेराए ॥ १३ ॥

२८९. **वंदालगं च करगं च०** वृत्तम्। **वंदालको** नाम तंवमओ करोडओ येनाऽर्हदादिदेवतानां अच्चणियं करेहामि, सो **मधुराए वंदालओ** वुच्चति। **करकः** करक एव, सोयकरको मद्यकरको वा चक्करिककरको वा। **वच्चघरगं** ण्हाणिगा, तं वच्चघरं पच्छन्नं करेहिं कूविं चऽत्थ खणाहि, **आउसो!** त्ति आमन्त्रणं हे आयुष्मन्!। **सरपादगं च जाताए,** सरो अनेन पात्यत इवि **शरपातकं** धणुहुल्लकम्, जायत इति जातः पुत्रः, जातार्थः जाताया वरं मे एस पुत्तो धणुहुल्लएण रमंतो। **गोरहगो** णाम सगडिला भेल्लिया पुत्तिगा, श्रमणस्यापत्यं श्रामणेरः तस्मै **श्रामणेराय** कुरु, रधे सुद्धे (? रधमुद्धे) तत्थ विलग्गो चेडरूवेहिं समं रमंतो, एवमादि रधकारकता भवति ॥ १३ ॥

२९०. [3]घडिकं सह डिंडिमएणं, चेलगोलं कुमारभूयाए।
[4]वासं इममभिआवण्णं, आव[5]सधं जाणाहि भत्ता! ॥ १४ ॥

२९०. **घडिकं सह डिंडिमएणं०** [वृत्तम्]। **घडिगा** णाम [6]कुंडिल्लगा चेडरूवरमणिका। **डिण्डिमगो** णाम पडहिका डमरूगो वा। **चेलगोलो** णाम चेलमओ गोलओ तन्तुमओ। स तेनापदिश्यते–किमेसो रायपुत्तो?। सा भणति–माता हता रायपुत्तस्स, एसो मम देवकुमारभूतो, देवतापसादेण चेवाहं देवकुमारसच्छहं पुत्तं पसूता, मा हु मे एवं भणेज्जासु। **वासं इममभियावण्णं,** अभिमुखं आपन्न **अभिआवण्णं,** तेण णिवायं णिप्पगलं च **आवसधं जाणाहि भत्ता!,** जेणं चत्तारि मासा चिक्खल्लं अच्छंदमाणा सुहं अच्छामो। उक्तं च–

"मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽऽयुषा। तत् कर्त्तव्यं मनुष्येण यस्यान्ते सुखमेधते ॥ १ ॥

[ ]

इधइं वा इमो आवसहो सडित-पडितो एतं संठवेहि त्ति ॥ १४ ॥

२९१. आसंदियं च णवसुत्तं, [7]पाउल्लगाइं संकमट्ठाए।
अदु [8]पुत्तदोहलट्ठाए, [9]आणप्पे भवति दासमिव ॥ १५ ॥

२९१. **आसंदियं च णवसुत्तं०** वृत्तम्। **आसंदिगा** णाम वेसणगं। **णव[10]सुत्तगो** णवएण सुत्तेण उणट्टिया (उण्णुट्टिया)-पट्टेण चम्मेण वा। **पाउल्लगाइं** ति कट्ठपाउगाओ, ताहि सुहं चिक्खल्ले संकमिज्जत्ति, रत्तिंविरत्तेसु संकमं वा करेसि चिक्खल्लस्स उवरिं। **अदु पुत्तदोहलट्ठाए,** जाहे सा गब्भिणी तइयमासे दोहिलणिगा भवति तो णं दासमिव आणवेति, आगलफलाणि वि मग्गइ त्ति, भत्तं मे ण रुच्चइ, अमुगं मे आणेहि, जइ णाऽऽणेहिं तो मरामि गब्भो वा पडेति, स चापि दासवत् सर्वं करोति आणत्तियं। जे वि इह ण कारिज्जंति ते वि संसारे णाणाविधाइं दुक्खाइं पाविज्जंति विलंवणाओ य ॥ १५ ॥

२९२. जाते फले समुप्पण्णे, गे[11]ण्हाहि व णं छड्डेहि व णं।
[12]अध पुत्तपोसणो एगे, भरवाहो भवति उट्टो वा लद्दितओ ॥ १६ ॥

---

१ चंदालगं पु १ वृ० दी० ॥ २ जाताते ख २ ॥ ३ घडियं च सडिंडिमय च, चेल° ख २ पु १ पु २ ॥ ४ वासं समभिआ° ख २ पु २। वासं समणाहिआ ख १ पु १ ॥ ५ °सहं च जाण भत्तं च ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ कुंडुल्लिगा स०। कुंडुल्लिगा वा० मो०। "घटिका मृन्मयकुल्लडिका" इति वृत्तौ ॥ ७ पाउल्लाइं ख १ पु १ पु २ ॥ ८ पुत्तस्स डोह° ख १ पु १ पु २ चूपा० २९४ सूत्रचूर्णौ ॥ ९ आणप्पा हवंति दासा वा ख १ ख २ वृ० दी० ॥ १० °सुत्ता णाणवराण सुत्तेण चूसप्र० ॥ ११ गेण्हसु वा णं अहवा जहाहि ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। गेण्हसु वा णं वा णं जहाहि खं २ ॥ १२ अह पुत्तपोसिणो एगे, भारवहा हवंति उट्टा वा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। एगे स्थाने चेगे ख २ ॥

२९२. जाते फले समुप्पण्णे० वृत्तम्। फलं किल मनुष्यस्य कामभोगाः, तेषामपि पुत्रजन्म। उक्तं च—

इदं तु स्नेहसर्वस्वं सममाढ्य-दरिद्रिणाम्। अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम्॥ १॥

यत् तत् थ-प-न-केत्युक्तं बालेनाव्यक्तभाषिणा। हित्वा साङ्ख्यं च योगं च तन्मे मनसि वर्त्तते॥ २॥

लोके पुत्रमुख नाम द्वितीयं मुखमात्मनः। [ ]

साऽथ जाधे किंचि आणत्ता भवति ताधे भणति–दारके वामहत्थे तुमं चेव करेहि। अतिणिव्वंधे वा तस्स अप्पेतुं भणति–एस ते, **गेण्हाहि व णं छड्डेहि वा णं**। अण्णत्थ व रोसिता भणति–एस मए णव मासे कुच्छीए धारितओ, तं दाणिं एस ते, **गेण्हाहि व णं छड्डेहि व णं**, एतस्स पेयाल गहिएल्लयं। एवं वुच्चमाणो एस णिब्भच्छिज्जमाणो वा ण णासति। **अध पुत्तपोसणो एगे**, पुत्र पोषयतीति पुत्रपोषणः, जाहे गामतरं कयाइ गच्छति भावदंतारगं उवक्खरं वा वहंतो **भरवाहो भवति उट्टो वा लद्दितओ**, गामंतराओ धण्णं वा भिक्खं वा बड्डाहिं करकाहिं गोरसं वा वहंतो लद्दितगो भरवाहो भवति उट्टो वा। अण्णे पुण केइ अणंतसंसारिया तं पुरिसाडेतुं वा उट्ठवेतुं वा अप्पसागारियं णिक्खणितुकामा वा वहंतका भारवधा भवति॥१६॥

पूर्वं हि प्रतिपालनोक्ता। इदानीं तत्प्रतिपक्षभूता अप्रतिपालना, एतं पुण पडिपक्खेण गतं। "अध पुत्तपोसणो एगे" त्ति–

२९३. राओ[1] वि उट्ठिता संता, दारगं सण्णवेंति[2] धाव इवा।
सुहिरीमणा वि ते संता, वत्थाधुवा[3] भवंति हंसो वा॥ १७॥

२९३. राओ वि उट्ठिता संता दारगं सण्णवेंति धाव इवा० [वृत्तम्]। यदा सा रतिभरश्रान्ता वा प्रसुप्ता भवति, इतरधा वा पसुत्तलक्खेण वा अच्छति, चेएन्तिया वा गव्वेण लीलाए वा दारगं रुअंतं पि णण्णति (ण गेण्हति) ताधे सो तं दारगं अंकधावी विव णाणाविधेहिं उल्लावएहिं परियंदन्तो ओसोवेति—

सामिओ मे[4] णगरस्स य णक्कउरस्स य, हत्थवप्प[5]-गिरिपट्टण-सीहपुरस्स य।
अण्णतस्स[6] भिण्णस्स य कंचिपुरस्स[7] य, कण्णउज्ज-आयामुह-सोरिपुरस्स य॥ १॥

सुहिरीमणा वि ते संता, "ह्री लज्जायाम्" लज्जालुगा वि ते भूत्वा कोट्टवातिगामस्पृगिनो वा **शौचवादिका** गृहवासे प्रव्रज्यायां वा सुट्ठु वि आतट्ठिया होऊण एगतसीला वा सूयगवत्थाणि धोयमाणा **वत्थाधुवा भवंति हंसो वा, हंसो** नामा रजकः, दारु(र)गरूवेण वा ओहण्णविउहण्णा सम्मुद्दमाणा धुवमाणा य॥ १७॥

२९४. एतं[8] बहूहिं कडपुव्वं, भोगत्थाए[9] इत्थियाभिआवण्णा[10]।
दासे मिए व पेस्से वा, पसुभूते व से ण वा केयि[11]॥ १८॥

२९४. एतं बहूहिं कडपुव्वं० वृत्तम्। एतदिति यदुक्त तीसे णिमित्तेण दारगणिमित्तेण वा। तीसे णिमित्तेण ताव "वंदालय च करग च० सरपादय च जाताए" [सूत्रं २८९] त्ति, दारगणिमित्तं जधा–"पुत्तस्स दोहलट्ठाते" [सूत्रं २९१] "जाते फले समुप्पण्णे० अध पुत्तपोसिणो एगे" [सूत्र २९२] "रातो वि उट्ठितो संतो० सुहिरीमणा वि" [सूत्र २९३] एतं पुत्तणिमित्तं, अधवा सव्वं पि तण्णिमित्तमेव। **बहूहिं** ति बहूहिं कृतपूर्वमेतत्, तथा कुर्वन्ति करिष्यन्ति च। ते तु के?, जे **भोगत्थाए इत्थियाभिआवण्णा,** अभिमुखं आवण्णा। सो पुण जो तासु अभितावण्णो सो तेसिं **दासे मिए व पेस्से वा,** दासवद् भुज्यते, मृगवच्च भवति, यथा मृगो वशमानीतः पच्यते मार्यते वा मुच्यते वा, प्रेष्यवच्च प्रेष्यते णाणाविधेसु कम्मेसु, **पसुभूते** इति पशुवद् वाह्यते, न च मदान्धत्वात् कृत्याभिज्ञो भवति। पशुभूतत्वान्मृगभूतत्वाच्च **न वा केयि** त्ति,

---

१ एगे राओ वि उट्ठिता दारगं ख १ पु १ पु २॥ २ संठवेंति धाती वा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ३ वत्थधुवा हवंति हंसा वा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ४ सि वृत्तौ॥ ५ हत्थकप्प° वृत्तौ॥ ६ उण्णतस्स वृत्तौ॥ ७ कुच्छिपुर° वृत्तौ॥ ८ एवं बहूहिं कयपुव्वं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ९ भोगत्ताए ख १ वृप्र०। "भोगत्वाय" इति वृत्तिप्रत्यन्तरे पाठ॥ १० °ए जेऽभियावन्ना ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ११ केइ ख २ पु १। के वि ख १ पु २। केति चूपा०॥

एभ्योऽप्यसौ पापीयान् संवृत्तः, यस्य न केनचिच्छक्यते औपम्यं कर्त्तुम्। अथवा ण वा केति त्ति नासौ प्रव्रजितो न वा गृहस्थो जातः, नापि इहलोके नापि परलोके ॥ १८ ॥

२९५. एतं खु तासि[1] वेण्णप्पं, संथवं संवासं[2] च चतेज्ज।
तज्जाइया इमे कामा, वज्जकरा एवमक्खाता ॥ १९ ॥

२९५. एतं खु तासि वेण्णप्पं० वृत्तम्। एतदिति एतद् ज्ञात्वा इहलोग-परलोगिए दोसे। तेण संथवं संवासं च ताहि चतेज्ज। संथवो णाम उल्लाव-समुल्लावा-ऽऽदाण-ग्गहण-संपयोगादि। संवासो एगगिहे तदासन्ने वा। एतदेव तासि वेण्णप्पं जो ताहिं सथवो सवासो वा। सथव-सवासेहिं चेव इतरा वि विण्णत्ती भवति–तज्जाइया इमे कामा, तज्जातिया णामा तव्विधजातिया। चतुर्विधा कामा, तं जधा–सिंगारा १ कलुणा २ रोद्दा ३ वीभच्छा तिरिक्खजोणियाणं पासडीणं च ४। एतदुक्तं भवति–वीभच्छवेसाना तेषा वीभच्छा एव कामा, आकारीहि वि समं तं चेव, अथवा तदेव जनयन्तीति तज्जातिया मैथुनं ह्यासेवते तदिच्छा एव पुनर्जायते। उक्तं हि–

"आलस्यं मैथुनं निद्रा सेवमानस्य वर्द्धते।" [ ] वज्जकर त्ति वज्जमिति कम्मं, वज्ज ति वा पातं ति वा चोण्ण ति वा, तत् कुर्वन्तीति वज्जकरा एवमाख्याताः तीर्थकरैः ॥ १९ ॥

२९६. एतं[3] भयण्ण सेयाए, इह सेयऽप्पगं णिरुंभित्ता।
णो इत्थि णो पसू भिक्खू, णो सयपाणिणा णिलेज्जं[4] ॥ २० ॥

२९६. एतं भयण्ण सेयाए० वृत्तम्। इहलोकेऽपि तावद् भयमेतत्, कुतस्तर्हि परलोके?। यत एव च भयंकरा इत्यतो श्रेयसे न भवन्ति, तेन श्रेयः कामेभ्यः अप्पाणं निरुंभित्ता, इहलोकेऽपि तावद् णिरुद्धकामेच्छस्स श्रेयो भवति, कुतस्तर्हि परलोकः?। उक्तं हि–

नैवास्ति राजराजस्य तत् सुखं नैव देवराजस्य। यत् सुखमिहैव साधोर्लोकव्यापाररहितस्य ॥ १ ॥

[प्रश० आ० १२८]

तणसथारणिवण्णो वि मुणिवरो भग्गराग-मय-दोसो। जं पावति मुत्तिसुहं ण चक्कवट्टी वि तं लभति ॥ १ ॥

[सस्तारकप्र० गा० ४८]

स तु कथ निरुध्यते आत्मानं कामेभ्यः?, उच्यते–णो इत्थि णो पसू भिक्खू, इत्थी मणुस्सी, पसू त्ति सव्वा एव तिरिक्खजोणीओ। णो सयपाणिणा णिलेज्जं ति हत्थकम्मं न कुर्यात्, निलंजनं नाम करणं, अथवा स्वेन पाणिना तं प्रदेशमपि न लीयते जहा पाणिसहरिसो वि न स्यादिति, कुतस्तर्हि करणम्? ॥ २० ॥

२९७. सुविसुद्धलेस्से मेधावी, परकिरियं च वज्जते णाणी।
मणसा वयसा[5] कायेणं, सव्वफाससहे अणगारे ॥ २१ ॥

२९७. सुविसुद्धलेस्से० वृत्तम्। सुविसुद्धलेस्से नाम सुक्कलेस्से। परकिरिया नाम नो इत्थीपाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा सवाहण त्ति जाव छत्तमउडं ति चशब्दादात्मक्रियां च वर्जयेत्। सिया से इत्थी पाए आमज्जेज वा [पमज्जेज्ज वा] तत्थ वि दोसो। मणसा वयसा कायेणं ति ओरालिए कामभोगे मणसा ण गच्छति ण गच्छावेति गच्छंतं णाणुमोदति ३, एव वायाए ३ काएण वि ३, एवं दिव्वे वि ९ एते अट्ठारस भेदा। एव जधा इत्थिपासं मणसा वयसा काएणं ति वज्जेति। एवमन्येऽपि फासे सितोसिण-दंसमसगादि अधियासेज्जासि ॥ २१ ॥

---

१ तासु विण्णप्पं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। तासि वृपा० ॥ २ च वज्जेज्जा ख १ ॥ ३ एवं भयं ण सेयाए, इति से अप्प° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ णिलिंजेज्जा ख १ ख २ पु २। णिलिज्जेज्जा पु १ वृ० दी० ॥ ५ वयस ख १ पु १ पु २ ॥

२९८. इच्चेवमाहु से वीरे, धूतरायमग्गे सभिक्खू।
तम्हा अज्झत्थविसुद्धे, आमोक्खाए परिव्वएज्जासि ॥ २२ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ इत्थिपरिण्णा चउत्थमज्झयणं समत्तं ॥ ४ ॥

२९८. **इच्चेवमाहु से वीरे॰** वृत्तम्। इति एवं इच्चेवं आहुः। क एवमाहुः? स भगवान् **वीरः** स्त्र्यादिषु रागवस्तुषु धूतमेवेति **धूतरागमार्गमेवाहुः**। सोभणो भिक्खू **सभिक्खू**। अथवा भिक्खुग्गहणा असावपि भगवान्, न तु यथा **पंडरंगाणं** महेश्वरः सराग आसीत् समार्यश्च, ते किल निर्युक्ताः। उक्त च—"क्षितौ वासः सुरेष्वाज्ञा॰" [ ] यतश्चैवं **तम्हा अज्झत्थविसुद्धे**, अज्झत्थं णाम सकप्पातो विसुद्ध, सकप्पविसुद्धं राग-द्वेपविप्रमुक्तम्, समो माना-ऽवमानेषु समदुःखसुखं पश्यति आत्मानं च परं च मन्यते तुल्यम्। तथा चोक्तम्—

कस्य माता पिता चैव? स्वजनो वा कस्य जायते?। न तेन कल्पयिष्यामि, ततो मे न भविष्यसि ॥ १ ॥
[ ]

आमोक्खाए परिव्वएज्जासि त्ति॰ यावन्मोक्षं न प्राप्नोपि ताव विहरेज्जासि त्ति ॥ २२ ॥

॥ स्त्रीपरिज्ञाध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥ छ ॥

---

१ धुयरए धुयमोहे से भिक्खू ख १ ख २ पु १ पु २ वृ॰ दी॰ । धूतरायमग्गे स भिक्खू वृपा॰ ॥ २ °सुद्धे सुविमुक्के, आमोक्खाय परि° ख १ ख २ पु २ वृ॰ दी॰। वृत्तौ सुमुक्के पाठानुसारेण व्याख्याऽस्ति । °सुद्धे, सुविमुक्के विहरे आमुक्खाए ॥ त्ति बेमि पु १ ॥

५

[पंचमं णिरयविभत्ती अज्झयणं]

[पढमो उद्देसओ]

णिरयविभत्तीए अज्झयणस्स चत्तारि अणुयोगद्दारा । ते परूवेऊण अज्झयणत्थाधिगारो णरगावासा जाणितव्वा णेरइया य, जो य णरगाणं णेरइयाणं संधावो । उद्देसत्थाधिगारो दोसु वि उद्देसएसु णेरइयाणं णाणाविधाओ वेदणाओ ॥ णामणिप्फण्णो णिक्खेवो णरगस्स छक्को । तथा चाह—

णिरए छक्कं दव्वणिरया उ इहमेव जे भवे असुभा ।
खेत्तं णरगावासा कालो णिरएसु चेव ठिती ॥ १ ॥ ५५ ॥

णिरए छक्कं० गाधा । दव्वणिरओ तु इहेव जे तिरिय-मणुएसु असुद्धठाणा चारगादि खडा-कडिल्ल-कंटगा वंसकरिल्लादीणि असुभाइं ठाणाइं, जाओ य णरगपडिरूवियाओ वेयणाओ दीसंति, जधा सो **कालसोअरिओ** मरितुकामो वेदणासमण्णागओ अट्ठारसकम्मकम्मकारणाओ वा वाधि-रोग-परपीलणाओ वा एवमादि । अधवा कम्मदव्वणरगो [णोकम्मदव्वणरगो] य । तत्थ कम्मदव्वणरगो णरगवेदणिज्जं कम्मं बद्धं ण ताव उदिज्जत्ति, तं पुण एगभविय-बद्धाउय-अभिमुहणामगोयं । णोकम्मदव्वणरगो णाम जे असुभा इहेव सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधा । खेत्तणरगा **णरगावासा** चतुरासीतिणरयावाससतसहस्सा । कालणरगा वा जस्स जेच्चिरं णरगेसु ट्ठिती ॥ १ ॥ ५५ ॥

भावे उ णरयजीवा कम्मं वेदंति णरगपायोगं ।
सोऊण णरयदुक्खं तव-चरणे होति जइतव्वं ॥ २ ॥ ५६ ॥

[**भावे उ णरयजीवा०** गाधा ।] भावणरगा जे जीवा णरगाउअं वेदंति **णरगपायोगं** वा जं कम्मं उदिण्णं, अधवा [सद्द-] रूव-रस-गंध-फासा इहेव कम्मुदयो णेरइयपायोग्गो, जधा **कालसोअरियस्स** इहभवे चेव ताइं कम्माइं नेरइयभावभाविताइं भावनरकः । **सोऊण णरयदुक्खं तवचरणे होति जइतव्वं** ॥ २ ॥ ५६ ॥

उक्ता नरकाः । इदाणिं विभत्ती । सा णामादि छव्विधा । तं जधा—

णामं ठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावे य ।
एसो उ विभत्तीए णिक्खेवो छव्विधो होति ॥ ३ ॥ ५७ ॥

[**णामं ठवणा दविए०** गाधा ।] णामविभत्ती ठवणविभत्ती० । णामविभासा कंठ्या । ठवणविभत्ती कट्ठकम्मभासावत्तव्वता । दव्वविभत्ती दुविधा—जीवविभत्ती य अजीवविभत्ती य । जीवविभत्ती दुविधा, तं जधा—संसारत्थजीवविभत्ती असंसारत्थजीवविभत्ती य । असंसारत्थजीवविभत्ती दुविधा—दव्वे काले य । दव्वतो तित्थसिद्धादि पंचदसभेदा, कालतो वि पढमसमयसिद्धादि । संसारत्थजीवविभत्ती तिविधा, तं जधा—इंदियविभत्ती जातिविभत्ती भवतोविभत्ती । से समासतो—[इंदियविभत्ती] एगिंदियविभत्ती०, जातिविभत्ती पुढविकायियादि, भवतो णेरइतभवादि । अजीवविभत्ती दुविधा—रूवियाजीवपविभत्ती य अरूवियाजीवपविभत्ती य । रूवियाजीवपविभत्ती चतुव्विधा, तं जधा—खंधा खधदेसा खधपदेसा परमाणुपोग्गला । अरूविअजीवपविभत्ती धम्मत्थिकाए १ धम्मत्थिकायस्स देसे २ धम्मत्थिकायस्स पदेसे ३, एवं अधम्म० ३ आगास० ३ अद्धासमये य, धम्मत्थिकायादि दसविधा । खेत्तविभत्ती चतुव्विहा—ठाणतो दिसतो दव्वतो सामित्ततो ।

---

१ स्वभाव इत्यर्थ ॥ २ **णिरओगासो** खं १ ख २ पु २ वृ० ॥ ३ **णिरय°** खं १ ख २ पु २ ॥ ४ **कम्मुदओ चेव निरयपाउग्गो** ख १ खं २ पु २ वृ० ॥ ५ **निरय°** खं २ ॥

ठाणतो वि लोगविभत्ती विमाणिंदग-णिर-इंद-जंबुद्दीव-समुद्दकरणायि विभासा। दिसतो पूर्वस्यां दिशि०। क्षेत्रं चतुर्विधम्—दव्वतो सालिखेत्तादि। सामित्ते देवदत्तस्य क्षेत्रं यज्ञदत्तस्य वेति। अधवा क्षेत्रं आयरिअं अणारिअं च। अणारिअं सग-जवणादि। आयरियं अद्धछव्वीसतिविधं रायगिहमगहादि। कालविभत्ती तीता-ऽणागत-वट्टमाणसुसमसुसमादि फुंदिवस-रत्ति युगपदयुगपत् क्षिप्रमक्षिप्रमित्यादि, अथवा समयादिया। समयस्स परूवणा तुण्णागदारगादि। भावविभत्ती दुविधा—जीवभावविभत्ती य अजीवभावविभत्ती य। जीवभावविभत्ती उदइगादि ६। तत्थोदइओ—गति-कसाय-लिङ्ग-मिच्छादंसण-ऽण्णाणा-ऽसंजता-ऽसिद्ध-लेस्साओ लधासंखेण चतु-चतु-तिण्णि-एक्केक्केक्क-छभेदा, गती णारगादि चतुव्विधा, कसाया कोधादि ४क, लिङ्गभेदा थी-पुरिस-णपुंसगा, लेस्सा कण्हलेस्सादि ६, सेसा एगभेदा, एसो एक्कवीसतिभेदो उदइओ भावो। उवसमिओ दुविधो—उवसमिओ य उवसमणिप्फण्णो य, औपशमिके सम्यक्त्व-चारित्रे तूपशमश्रेण्याम्। [खओवसमिओ]—ज्ञाना-ऽज्ञान-दर्शन-दानलब्ध्यादयश्चतुस्त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः क्क-३-३-५ सम्यक्त्व-चारित्रे संयमासयमश्च, णाण चतुव्विधं—मति-सुता-ऽवधि-मणणाणाणि, अण्णाणं तिविहं—मति-सुतअण्णाण-विभंगाणि, दंसणं त्रिभेदम्—चक्षुः-अचक्षुः-ओहिदंसणाणि, लद्धी पंचभेदा—दान-लाभ-भोगोपभोग-वीरियलद्धिरिति, सम्मत्तं चारित्तं संयमासंयम इति, एस अट्ठारसविधो खओवसमिओ भावो। जीव-भव्या-ऽभव्यत्वादीनि, जीवत्व भव्यत्वं अभव्यत्वं चेत्येते त्रयः पारिणामिका भावा भवन्ति, आदिग्रहणेन अस्तित्वं अन्यत्वं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं गुणवत्त्वं असर्वगत्वं अनादिकर्मसन्तानवद्धत्वं [स]प्रदेशकत्वं अरूपित्वं नित्यत्वं एवमादयोऽप्यनादिपारिणामिका जीवस्य भावा भवन्ति। सण्णिवातिको दुसंयोगादीओ। गता जीवभावविभत्ती। अजीवाणं मुत्ताणं वण्णादि ४, अमुत्ताणं गति-ठिति-अवगाहादि। एताए एव छव्विधाए विभत्तीए जं जत्थ जुज्जति तं जोएतव्वं ॥ ३ ॥ ५७ ॥

केरिसं तत्थ वेदणं वेदेंति ?, उच्यते—

पुढविप्फासं अण्णाणुवक्कमं णिरयपालवधणं च ।
तिसु वेदेंति अताणा अणुभावं चेव सेसासु ॥ ४ ॥ ५८ ॥

पुढविप्फासं अण्णाणुवक्कमं० गाधा। केरिसं पुण पुढविप्फासं ?, "से जधाणामते असिपत्ते त्ति वा०" [जीवाभि० प्रति० ३ सू० ८३] विभासा। तीसु पुढवीसु णेरइया उसिणपुढविफासं वेदेंति। **अण्णाणुवक्कमो** णामा "मोग्गर-मुसुंढिकरकय०" [जीवाभि० संग्र० पत्र १२०-१] अधवा लोहितकुंथुरूवाणि छट्ठी-सत्तमीसु पुढवीसु विउव्वंति। **णिरयपाला** णाम "अंबे अम्बरिसे चेव०" [नि० गा० ५९] ते पुण जाव तच्चा पुढवी, सेसासु णत्थि। **सेसासु** पुण **अणुभाववेदणा चेव वेदेंति**। **अणुभावो** णाम "इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं फासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?, से जहाणामए असिपत्ते ति वा०, गंधे वि से जहाणामए अहिमडे ति वा गोमडए इ वा, वण्णा काला कालोभासा, एवं उस्सासे अणुभावे सव्वासु पुढवीसु" [जीवाभि० प्रति० ३ सू० ८३ आदि] ॥ ४ ॥ ५८ ॥

णिरयपालवधणं ति वुत्तं ते इमे पण्णरस परमाधम्मिया णिरयपाला। तं०—

❀ अंबे १ अंबरिसे २ चेव सामे ३ सबले ४ त्ति यावरे ।
रुद्दो ५ वरुद्दो ६ काले ७ य महाकाल ८ त्ति यावरे ॥ ५ ॥ ५९ ॥
❀ असि ९ पत्तधणुं १० कुंभे (असि ९ असिपत्ते १० कुंभी) ११ वालू १२ वेतरणी १३ ति य ।
खरस्सरे १४ महाघोसे १५ एते पण्णरसाऽऽहिते ॥ ६ ॥ ६० ॥

---

१ फु इति पट्सङ्ख्याद्योतकोऽक्षराङ्क ॥ २ ष्क इति चतु सङ्ख्याद्योतकोऽक्षराङ्क ॥ ३ उवसमणिप्फण्णो य। ज्ञाना-ऽज्ञान-दर्शन-दानादिलब्ध्यादयश्चतुस्त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः सम्यक्त्व-चारित्रे तूपशमश्रेण्याम् क्क-३-३-५ संयमाश्च। णाणं चतुव्विधं इतिरूप पाठ सर्वासु चूर्णिप्रतिषूपलभ्यते, किन्त्वायं पाठो लेखकप्रमादजोऽसङ्गतश्चापि वर्तते ॥ ४ क्क इति चतु सङ्ख्याद्योतकोऽक्षराङ्क ॥ ५ °लसहणं ख १ ॥ ६ °भागं चेव ख १ ख २ पु २ ॥ ७ अवरिसी ख १ ख २ पु २ वृ० आस० ॥ ८ सामे य सवले वि य ख २ पु २ ॥ ९ रोद्दो ५ वरुद्द ६ ख १ ख २ पु २ आस० ॥ १० असिपत्ते ९ धणु १० कुंभे ११ ख १ खं २ पु २। असि ९ [असि]पत्तधणुं १० कुंभी ११ वृ० ॥

जो जारिसवेदणकारी सो तेण अभिधाणेण अभिधीयते अंबरादीणं ति ॥ ५ ॥ ५९ ॥ ६ ॥ ६० ॥ तत्थ अंबरं आगास विउव्वंति, तत्थ णेरइए—

धाडेंति पधाडेंति य हणंति विंधिंति तह णिसुंभंति[1] ।
पाडिंति अंबरतले अंबा खलु तत्थ णेरतिए १ ॥ ७ ॥ ६१ ॥

धाडेंति पधाडेंति य० गाधा । विंधिंति णस्समाणे य सरेहिं । णिंसुंभंति त्ति आघदूरपतिट्ठाणे अन्धतमसे । केइ पुण साभाविगे चेव आगासे अंबरतले वा सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उव्वहित्ता पाडिन्ति १ ॥ ७ ॥ ६१ ॥ अंबरिसा—

ओहतहते य[2] णिहते णिस्सण्णे कप्पणीहिं कप्पेंति ।
विदलक-चतुलगछिण्णे अंबरिसा[3] तत्थ णेरतिए २ ॥ ८ ॥ ६२ ॥

ओहतहते य णिहते० गाधा । उपेत्य हता ओहता । हता ताडिता । णिस्सण्णा नाम मूर्च्छावशान्निःसंज्ञीभूताः, तावे णिच्चेयणे विव भूमितलगते कप्पणीहिं मंसमिव कप्पेन्ति । सागडिका वा रधकारा वा जधा कुहाडेहिं तच्छंति । विदलको नाम विदलं जहा फाडेति दिग्घग, चतुलगच्छिण्णे कडेति २ ॥ ८ ॥ ६२ ॥ सामा—

साडण[4] तोडण तुत्तण विंधण[5] रज्जू-लत-प्पहारेहिं ।
सामा णेरतियाणं पवत्तयंती अपुण्णाणं ३ ॥ ९ ॥ ६३ ॥

साडण पाडण तोडण० गाधा । ते अंगोवंगाइं साडेन्ति, संधीओ त्रोडंति, तुत्तएण तुदंति, सूईहिं विज्झणीहि य विंधंति, रज्जेहिं [बंधति], तालेंति लताहिं लउडेहि य, करतल-कोप्परपहारेहि य संभग्गमहिए करेंति ३ ॥ ९ ॥ ६३ ॥

सबला पुण सबलगुणरूवाइं विउव्विऊण विउव्वावेंति वा णेरइए—

अंतगय-फिप्फिसाणि य हियियं कालेज्ज फुप्फुसे वक्के ।
सबला णेरतियाणं कड्ढ[6]-विकड्ढंतऽपुण्णाणं ४ ॥ १० ॥ ६४ ॥

अंतगयफिप्फिसाणि य० गाधा । कण्ठ्या ४ ॥ १० ॥ ६४ ॥ रुद्दा णाम—

❁ असि-सत्ति-कोंत-तोमर-सूल-तिसूलेसु[7] सूईसु हलीसु ।
पोएंति कंदमाणे रुद्दा खलु तत्थ णेरइए ५ ॥ ११ ॥ ६५ ॥

५ ॥ ११ ॥ ६५ ॥ तहिं उवरुद्दा णाम—

❁ भंजंति अंगमंगे[8] ऊरू बाहू सिराणि कर-चरणे ।
कप्पंति कप्पणीसु[9] य उवरुद्दा पावकम्मरया ६ ॥ १२ ॥ ६६ ॥

लउल-मुसुंढीसु ६ ॥ १२ ॥ ६६ ॥ काला पुण कालं कालोभास अग्गिं विउव्वित्ता—

❁ सीतेसु(? मीरासु) सुंठएसु य कंडूसु[10] य पयणगेसु य पयंति ।
कुंभीसु य लोहीसु य पयंति काला तु णेरइए ७ ॥ १३ ॥ ६७ ॥

खीलगेण णिक्खित्ता णेरइए मीरासु पयंति ७ ॥ १३ ॥ ६७ ॥ महाकाला पुण—

---

१ मुंचंति ख २ वृ० आहात्र० । मुच्चंति ख १ ॥ २ य तहियं णि° ख १ ॥ ३ अबरिसी खं १ ख २ वृ० ॥ ४ साडण पाडण तोदण खं १ ख २ पु २ वृ० आहात्र० ॥ ५ विघणा र° ख १ ॥ ६ कड्ढेंति तहिं अपुण्णाणं खं २ पु २ वृ० ॥ ७ °लेसु सूइच्चियगासु । पोएंति रुद्दकम्मा उ णरगपाला तहिं रोद्दा ५ ख २ पु २ वृ० आहात्र० । सूइच्चियगासु स्थाने सूइयग्गेसु इति सशोधितोऽपि पाठ ख २ दृश्यते । °लेसु य बहुस्स पोएंति । रुद्दा य रोद्दकम्मा रुद्दा(? ट्ठा) खलु तत्थ नेरइया ख १ ॥ ८ अगमंगाणि ऊ° ख १ ख २ पु २ ॥ ९ °णीहिं उव° खं १ ख २ पु २ वृ० आहात्र० ॥ १० °सु पयंडएसु ख १ वृ० ॥

❀ कप्पेंति कागिणिमंसगाणि छिंदंति [1]सीसपुंच्छाणि ।
खावेंति य णेरइए महकाला पावकम्म[2]रेता ८ ॥ १४ ॥ ६८ ॥

महल्ले चवगे चुलीसु य दहंति, अच्छिण्णे अभिण्णे य णेरइए तत्थाऽऽरुभेत्ता महादवाग्गाविव दुद्धिगेव पउलेत्ता पच्छा कप्पणीहिं कप्पेऊण कप्पेऊण कागिणिमंसाणि खावेंति । कागिणिमंसा णाम कागिणिमेत्तं मंसं छेत्तुं पउलेउं खावेंति ८ ॥ १४ ॥ ६८ ॥ असी णाम—

हत्थे पादे ऊरू वाहु [3]सिरा पास अंगमंगाणि ।
छिंदंति पगामं तू असि णे[4]रईए णिरयपाला ९ ॥ १५ ॥ ६९ ॥

हत्थे पादे ऊरू० गाधा । ते असीओ विउव्वेत्ता तोसिं णेरइयाणं हत्थ-पादमादीणि अंगोवंगाणि छिंदंति ९ ॥ १५ ॥ ६९ ॥ असिपत्ता णाम—

[5]कण्णोट्ठ-णास-कर-चरण-दसण-थ[6]ण-फिग्ग-ऊरु-वाहूणं ।
छेयण भेयण साडण [7]असिपत्त धणूहिं (? वणेहिं) पाडेंति १० ॥ १६ ॥ ७० ॥

कण्णोट्ठणास० गाधा । ते असिपत्तवणं विउव्वित्ता, तओ ते तत्थ छायाबुद्धीए पविसंति, पच्छा वातं विउव्वंति, पच्छा वातकंपितेहिं असिपत्तेहिं छिज्जति । ण केवलं तत्थ असिसरिसाणि चेव पत्ताणि, अण्णाणऽवि खुरुप्प-फरुसमादिसरिसाइं । तेसिं कण्ण-णास-ओट्ठे छिंदंति । उक्तं हि—

छिन्नपाद-भुज-स्कन्धाः छिन्नकर्णौष्ठ-नासिकाः । भिन्नतालु-शिरो-मेण्ढ्राः भिन्नाक्षि-हृदयोदराः ॥ १ ॥

१० ॥ १६ ॥ ७० ॥ कुंभी णाम—

कुंभीसु य पयणेसु य लोहीसु य कंडुलोहिकुंभीसु ।
कुंभी [8]य णरयपाला हणंति [9]पांडंति णरएसु ११ ॥ १७ ॥ ७१ ॥

कुंभीसु य पयणेसु य लोहीसु य० गाधा । ते कुंभकारा विव णाणाविहाइं कुंभि-लोहिमाइगाइं भायणाणि विउव्वित्ता कलगलतउअपुण्णेसु नेरइये पक्खिवंति ११ ॥ १७ ॥ ७१ ॥ वालुगा णाम—

तडतडतड[10]स्स [11]भज्जंति भायणे कलंववालुगापट्ठे ।
वालुगा णेरइया लोलेंती अंबरतलम्मि १२ ॥ १८ ॥ ७२ ॥

तडतडतडस्स भज्जंति० गाधा । ते कलंववालुगं विउव्वंति । कलंववालुगा णाम कलंवगपुप्फमिव उद्धुसिताओ, सो जधा उप्फुरुहंसिगा मुम्मुरभूता, तत्थ घोसाए दुक्खं खुप्पंति वाउद्धुताए य अंगमंगेसु, णिवयमाणेसु, णिवयमाणीए मुम्मुरेण व अंगमंगाइं डज्झंति, पाडेऊणं च तत्थेव लोलाविज्जंति १२ ॥ १८ ॥ ७२ ॥ वेतरणी णाम—

[वस-]पूय-रुहिर-केस-ऽट्ठिवाहिणी कलकलंतजलसोया ।
वेयरणि णि[12]रयपाला णेरइए ऊ पवाहंति १३ ॥ १९ ॥ ७३ ॥

[वस]पूयरुहिरकेसट्ठि० गाधा । वेगेन तरन्ति तामिति वेतरणी, ते अणोरपारं गंभीरतडं णदिं विउव्वंति । तीसे पुण पाणिय पूय-रुहिरं १३ ॥ १९ ॥ ७३ ॥ खरस्सरा णाम—

---

१ सीहपुच्छाणि खं २ पु २ वृ० आहात्र० । "सीहपुच्छाणि' त्ति पृष्ठिवर्ध्रो" इति वृत्तिकृतः ॥ २ °रए खं २ पु २ आहात्र० ॥ ३ सिराऽऽपाय अग° ख २ पु २ । सिरा तह य अग आहात्र० ॥ ४ °इगा उ नेरइए ख १ ख २ ॥ ५ कंठोट्ठ° ख १ वृ० ॥ ६ °थणपुतोरु° ख २ पु २ । °थण-पूअ-ऊरु° आहात्र० ॥ ७ "असिप्रधाना पत्रधनुर्नामान नरकपालां" इति वृत्तिकृत ॥ ८ उ ख १ ॥ ९ पार्चिति खं १ वृ० । पायंति आहात्र० ॥ १० °ड त्ति भ° ख १ ॥ ११ भज्जेति भज्जणे कलवु° खं २ पु २ आहात्र० ॥ १२ °णरय° ख १ ॥

कप्पंति करकएहिं [1]कड्ढेंति परोप्परं [2]फरुसएहिं ।
सिंवलितमारुभंती खरस्सरा तत्थ णेरइए १४ ॥ २० ॥ ७४ ॥

कप्पंति करकएहिं० गाधा । ते जंतेऊणं च कट्ठं जधा फाडेंति **कप्पेंति करकएहिं** ति । परोप्परं च जुज्झावेंति । सिंवलिगिं विउव्वित्ता तत्थाऽऽरुभिऊणं **कड्ढेंति** । अंछमाणेसु य खर रसंतो [खरस्सरा] १४ ॥ २० ॥ ७४ ॥

महाघोसा णाम–

[3]भीते पलायमाणे समंततो तत्थ ते [4]णियत्तेंति ।
पसुणो जधा पसुवहे महघोसा तत्थ णेरतिए १५ ॥ २१ ॥ ७५ ॥

॥ पञ्चमाध्ययनं समाप्तम् ॥ ५ ॥

भीते पलायमाणे समंततो० गाधा । गोवाले विय गाविओ **णियत्तेंति** य पिट्टेंति य, एक्कतोखुत्तो य धाडेंति, चारे य पक्खिवंति १५ ॥ २१ ॥ ७५ ॥ णामणिप्फण्णो गतो । इदाणिं सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं ति–

२९९. [5]पुच्छिंसु हं केवलियं महेसिं, [6]कहंऽभितावा णरगा पुरत्था ? ।
[7]अविजाणओ मे मुणि ! ब्रूहि जाणं !, कहं णु बाला णरयं उवेंति ? ॥ १ ॥

२९९. **पुच्छिंसु हं केवलियं महेसिं०** वृत्तम् । सुधम्मसामी किल जंबुसामिणा णरगे पुच्छितो–केरिसा णरगा ? केरिसेहिं वा कम्मेहिं गम्मति ? केरिसाओ वा तत्थ वेदणाओ ? । ततो भणति–**पुच्छिंसु हं** पृष्टवानहं भगवन्तं यथैव भवन्तो मां पृच्छन्ति । केवलमेवैकं तस्य ज्ञानमित्यतः **केवली** । अथवा कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलमित्यर्थः, संपूर्णज्ञानी **केवली** । **महरिसी** तित्थगरो । कथमिति परिप्रश्ने । अभिमुखं भृशं वा तापयन्तीति अलोपाद् **भितावा** । नीयन्ते तस्मिन् पापकर्माण इति नरकाः, न रमन्ति वा तस्मिन्निति नरकाः । **पुरस्तादिति** इह पापकर्तुस्ते पुरस्ताद् भवन्ति, भावनरकान् पृच्छति, द्रव्यनरकास्तु इहैव दृश्यन्ते । **अविजाणतो मे मुणी ! ब्रूहि [जाणं !]**, हे ज्ञानिन् ! नाहं जाने–कैः कर्मभिः कथं वा नरकेषूपपद्यन्ते ?, तद् यैः कर्मभिर्यथा चोपपद्यन्ते तमजानतो ममोच्यताम् ॥ १ ॥

३००. एवं [8]मया पुट्ठे महाणु[9]भागे, इणमव्ववी कासवे आसुपण्णे ।
[10]पवेदइस्सं दुह[11]मट्ठ दुग्गं, [12]आदाणियं [13]दुक्कडिणं पुरत्था ॥ २ ॥

३००. **एवं मया पुट्ठे महाणुभागे०** वृत्तम् । एवमनेन प्रकारेण, **पुट्ठो** णाम पुच्छितो, महानस्यानुभागः । द्रव्यानुभागो हि आदित्यस्य प्रकाशः, तदनुभागाद्धि चक्षुष्मन्तः अहि-कण्टका-ऽग्नि-प्रपातादीनि च परिहरन्ति । भावानुभागस्तु केवलज्ञानं श्रुतं वा, तदनुभावादेव च साधवोऽकुशलानि परिहरन्ति मोक्षसुखं चानुभवन्ते । अनुभवनमनुभावः, महान्ति वा ज्ञानादीनि भजति सेवत इत्यर्थः । **इदमब्रवीत्** यद् [14]वक्ष्यामः, **काश्यपगोत्रो** भगवान्, [15]**आसुपण्णे** त्ति न पुच्छितो चिंतेति, आशु एव प्रजानीते आशुप्रज्ञः । एव पृष्टो मया आह–**पवेदइस्सं दुहमट्ठ दुग्गं**, साधु वेदयिष्ये प्रवेदयिष्ये, प्रदर्शयिष्यामीत्यर्थः । दुःखस्यार्थं दुखमेवार्थः दुःखप्रयोजनो वा दुःखनिमित्तो वा अर्थः **दुहमट्ठं** । तस्य दुःखस्य कोऽर्थः ?, वेदना, शरीरादिसुखार्था हि देवलोकाः, दुःखार्था नरकाः । **दुर्गं** नाम विषमम् । **आदानिकं** अथवा "आदीनं नाम" पापं **दुक्कडिणं** ति दुक्कडकारिणं दुःखोत्पादकाना **पुरस्तादिति** अग्रतः । अथवा **आदीणिकं दुक्कडिणं पुरत्थेति**, तेसिं आदीणिगपावकम्मदुक्कडकारिणं **पुरस्तात्** पूर्वभवदुक्कडकारिणामित्यर्थः । **दुक्कडं** ति महारंभादीहिं ॥ २ ॥

---

१ तच्छेंति ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ २ परसुएहिं ख १ पु २ वृ० आहात्र० ॥ ३ भीते य पलायंते ख १ ख २ पु २ आहात्र० ॥ ४ णिरुंभंति ख १ ख २ पु २ वृ० आहात्र० ॥ ५ पुच्छिस्स हं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ कहेहि ता वा णरया ख १ ॥ ७ अजाणओ ख १ ख २ पु २ वृ० दी० ॥ ८ मते ख २ । मए खं १ पु १ पु २ ॥ ९ °भावे इणमोऽ° ख २ पु २ वृ० दी० ॥ १० पवेतइस्सं ख १ । पवेयइस्सं पु १ पु २ ॥ ११ °मट्ठ-दुग्गं वृ० ॥ १२ आदीणियं ख १ ख २ पु १ वृ० दी० चूपा० । आईणियं पु २ ॥ १३ दुक्कडियं वृ० दी० । दुघडिणं पु १ वृपा० ॥ १४ वक्ष्यमाणः का° वा० मो० ॥ १५ असपुण्णे चूसप्र० ॥

३०१. जे केइ बाला इह [1]जीवितट्ठी, कूराइं[2] कम्माइं करेंति रोद्दा।
ते घोररूवे तिमिसंधयारे, तिव्वाणुभावे[3] णरए पडंति ॥ ३ ॥

३०१. जे केइ बाला इह जीवितट्ठी० वृत्तम्। जे त्ति अणिदिट्ठणिद्देसो। द्वाभ्यामाकलितो बालः। ये केचन बाला इहेति तिरिय-मणुएसु असंजमजीवितट्ठी तत्प्रयोगजीवितार्थी च। **कूराइं कम्माइं करेंति रोद्दा,** कूराइं हिंसादीणि रौद्राध्यवसायाः रौद्राकाराश्च **रौद्राः। ते घोररूवे तिमिसंधयारे, कुंभी वेतरणी** यत्र 'हण छिन्द भिन्द' इत्यादिभिर्भयानकैर्घोररूपैर्घोररूपो घोररूपा वा ते नरका जत्थ सो उववज्जति। **तिमिसंधकारो** नाम जत्थ घोरविरूविणं पस्सति, जं किंचि ओहिणा पेक्खंति तं पि कागदूसणियासरिसं पेच्छं पेच्छंति तैमिरिका वा। "कण्हलेसे णं भंते! णेरइए कण्हलेस्स णेरइयं पणिधाय ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणा केवतियं खेत्तं जाणंति? केवतियं खेत्तं पासंति?, गोयमा! णो बहुतरयं खेत्तं जाणइ णो बहुतरयं खेत्तं पासति, तिरियमेव खित्तं पासति जह लेसुद्देसए" [प्रज्ञा० पद १७ सू० २२३ पत्र ३५५-१]। **तिव्वाणुभावे** त्ति अनुभवनमनुभावः, तीव्रवेदनानुभावाः ॥ ३ ॥

कथमुपैति? "से जधाणामए पवगे पवमाणे" [ ]। ते तु कैः कर्मभिर्यान्ति—

३०२. तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य, जे हिंसती आयसुहं[4] पडुच्चा।
जे लूसए[5] होति अदत्तहारी, ण सिक्खती सेवियस्स किंचि ॥ ४ ॥

३०२. तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य० वृत्तम्। तीव्राध्यवसिता जे तस-थावरे पाणे हिंसंति न चानुतप्यन्ते, ये तु मन्दाध्यवसायाः त्रस-स्थावरान् प्राणान् हिंसति ते त्रिषु नरकेषूपपद्यन्ते। अथवा **तीव्रमिति** तीव्राध्यवसायाः तीव्रमिथ्यादर्शनिनश्चातीव्रमिथ्याध्यवसिताश्च **संसारमोचक-याज्ञिकादयः** थावरे पूरदाहगादिः आत्मसुखार्थं **आत्मसुखं पडुच्च,** यदपि हि परार्थं हिंसति तत्रापि तेषां मनःसुखमेवोत्पद्यते पुत्र-दारे सुखिन्यपि। अत्र वा **जे लूसए होति अदत्तहारी, लूसको** नाम हिंसक एव, जो वा अंग-पच्चंगं भिन्दति भंजति वा, अदत्तं हरतीति **अदत्तहारी,** सो य विगयसंयमः। सिक्खा गहणसिक्खा आसेवणासिक्खा य, **न किंचिदपि** आसेवते सयमठाणं, तस्स एगपाणाए वि दंडेण णिक्खित्तो ॥ ४ ॥

३०३. पागब्भि पाणे बहुणं तिवादि[6], अणिव्वुडे[7] घातगतिं उवेंति[8]।
णिधोणतं गच्छति अंतकाले, अहो सिरं कट्टु उवेति दुग्गं ॥ ५ ॥

३०३. पागब्भि पाणे बहुणं ति० वृत्तम्। न तस्य कर्तुकामस्य कृत्वा वा किञ्चन मार्दवमुत्पद्यन्ते, यथा सिंहस्य कृष्णसर्पस्य वा। **बहूणं तिवादि** मत्स्यबन्धाद्याः स्वयम्भुरमणमत्स्या वा येषां चाऽन्या वृत्तिरेव नास्ति वक-सिंहादीनाम्, त्रिभ्यः पातयति त्रिभिर्वा पातयति मनो-वाक्काययोगैरित्यर्थः, एवं परिग्रहोऽपि वक्तव्यः। **अणिव्वुडे** अणुवसते आसवदारेहिं, स एवं दाहिणगामिए अधम्मा पक्खिएसु बहुं पावकम्म कलिकलुस समज्जिणित्ता[9] "से जधाणामए अयगोले ति वा" इत्तो चुत्ता **घातगतिं उवेंति,** घातगतिर्नाम व्यथतिर्वेदनागतिरित्यर्थः, घातकानां वा गतिः, घंतगतिं गच्छति। **अंतकाले निधोगतिः** अधोगतिः अधोभवद्भिः शिरोभिर्न्यग्भवद्भिः शिरोभिः, **ओनतं** अप्रकाशं अधोगच्छद् अधःकारमित्यर्थः। **अन्तकालो** नाम जीवितान्तकालः। **अधोशिरा** इति, उक्तं हि—

जयतु वसुमती नृपैः समग्रा, व्यपगतचौरभया वसन्तु देशाः।
जगति विधुरवादिनः कृतघ्नाः, [ग्रं० ३५००] नरकमवाङ्शिरसः पतन्तु शाक्याः ॥ १ ॥

[ ]

---

१ जीवियट्ठा पु १ ॥ २ पावाइं क° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ तिव्वाभितावे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ याऽऽयसुहं खं २ पु १ ॥ ५ लूसते ख १ पु १ ॥ ६ तिवाटी ख १ ख २। तिपाती पु १। तिवाई पु २ ॥ ७ अणिव्वुते ख २ ॥ ८ घातमुवेति बाले। णिहो णिसं ग° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ समज्जाणित्ता चूसप्र० ॥

दूरात् पतने हि शिरसो गुरुत्वाद् अवाङ्शिरसः पतन्ति, स एवोपचारः इहानुगम्यते, न तेषां तस्यामवस्थायां शिरो विद्यत इति ॥ ५ ॥ एकसमयिक-दुसमयिग-तिसमएण वा विग्गहेण उववज्जंति, अंतोमुहुत्तेण अशुभकर्मोदयात् शरीराण्युत्पादयन्ति, निर्लूनाण्डजसन्निभा निजपर्याप्तिभावमागताश्च शब्दान् शृण्वन्ति—

३०४. हण छिंदध भिंदध णं [1]दहह, सद्दे [2]सुणेत्ता परधम्मियाणं ।
ते णारगा तू भयभिण्णसण्णा, कंखंति कं णाम दिसं वयामो ? ॥ ६ ॥

३०४. हण छिंदध भिंदध णं दहह० वृत्तं कण्ठ्यम् ॥ ६ ॥ ततस्तान् शब्दानकर्णसुखान् भैरवान् श्रुत्वा तद्भयात् पलायमानाः—

३०५. इंगालरासिं जलितं सजोतिं, ततोवमं [3]भूमि अणोक्कमंता ।
ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तत्थ चिरट्ठितीया ॥ ७ ॥

३०५. इंगालरासिं जलितं सजोतिं० वृत्तम् । जधा इंगालरासी जलितो धगधगेति एवं ते नरकाः स्वभावोष्णा एव, ण पुण तत्थ बादरो अग्गी अत्थि, णऽण्णत्थ विग्गहगतिसमावण्णएहिं । ते पुण उसिणपरिणता पोग्गला जंतवाडचुल्लीओ वि उसिणतरा । ततोवमं भूमि अणोक्कमंता तत्राऽऽयसकभल्लतुल्लं ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, कलुणं दीणं, स्तनितं नाम अप्रततश्वासमीपत्कूजितं यद् लाडानां निस्तनिस्तनितम् । अरहस्सरा णाम अरहतस्वराः अनुबद्धा सरा इत्यर्थः । चिरं तेसु चिट्ठंतीति चिरट्ठितीया, जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ॥ ७ ॥ त एवं प्रतिपद्यमाना नदीं पश्यन्ति—

३०६. जइ ते सुता वेतरणीऽभिदुग्गा, [4]खुरो जधा णिसितो तिक्खसोता ।
तरंति ते [5]वेतरणीऽभिदुग्गं, [6]असिचोइता सत्तिसु हम्ममाणा ॥ ८ ॥

३०६. जइ ते सुता वेतरणीऽभिदुग्गा० वृत्तम् । यदि त्वया श्रुतपूर्वा वैतरणी नाम नदी, लोकेऽपि ह्येषा प्रतीता । वेगेन तस्या तरन्तीति वैतरणी, अभिमुखं भृशं वा दुर्गा अभिदुर्गा गम्भीरतटा परमाधार्मिककृता, केचिद् ब्रुवते—स्वाभाविकैवेति । खुरो जधा णिसितो यथा क्षुरो निशितश्छिनत्ति एवमसावपि जइ अंगुली छुभेज्ज ततः सा तीक्ष्णश्रोतोभिः छिद्यते, तीक्ष्णता वा गृह्यते यथा क्षुरधारा तीक्ष्णवेगा । ततस्ते तृष्णार्दिता प्रतप्ताङ्गारभूतां भूमिं विहाय खिण्णासवः पिपासवश्च तत्रावतरन्तीति, अवतीर्य चैनां मार्गाभिदुर्गां प्रतरन्ति । नरकपालैरसिभिः शक्तिभिश्च पृष्ठतः प्रणुद्यमाना उत्तितीर्षवश्च ततः शक्तिभिः कुन्तैश्च तत्रैव क्षिप्यन्ते ॥ ८ ॥

३०७. [7]कीलेहिं विज्झंति असाधु[8]कम्मा, णावं [9]उवेंती सइविप्पहूणा ।
[10]भिंण्णेत्थ सूलाहिं तिसूलियाहिं, दीहाहि विद्धूण अधे करेंति ॥ ९ ॥

३०७. कीलेहि विज्झंति असाधुकम्मा० वृत्तम् । तत्थ परमाधम्मिएहिं णावाओ वि विउव्विताओ लोहखीलगसंकुलाओ, ते ताओ अल्लियंता पुव्वविलग्गेहिं णिरयपालेहिं विज्झंति । कीलं नाम गलओ । उक्तं हि—"कीलेनानुगतं विलम्" भुजङ्गवदसाधूनि कर्माणि येषा ते इमे असाधुकर्माणः, णावं उवेंति उवल्लियंति । तेसिं तेण चेव पाणिएण कलकलकलभूतेण सव्वसोत्ताणुपवेसणा स्मृतिः पूर्वमेव नष्टा, पुनः कीलैर्विद्धाना भृशतरं नश्यति । भिन्नेत्थ सूलाहि तिसूलियाहिं त्रिशूलिकाभिर्दीर्घाभिर्विद्धाः अधे हेट्ठतो जलस्स अधोमुखे वा ॥ ९ ॥

---

१ डहह खं १ । डहेह पु २ । डहा पु १ ॥ २ सुणंती खं २ पु १ ॥ ३ भूमिमणुक° ख १ ख २ पु २ ॥ ४ णिसितो जहा खुर इव तिक्ख° ख १ ख २ पु १ ॥ ५ वेयरणि भि° ख २ पु १ ॥ ६ उसुचो° ख १ खं २ पु १ वृ० दी० ॥ ७ कीलेहिं पु १ ॥ ८ °कम्मी खं २ पु १ ॥ ९ उवेंते पु १ वृ० दी० ॥ १० अण्णे उ सू° पु १ वृ० दी० । अण्णेत्थ सू° ख १ ख २ ॥

ततः कथञ्चिदेव चिरादुत्तीर्णाः सन्तः नरकपालैर्विकुर्वितां(?तं) नरकमुपयान्ति । कतरम् ?—

३०८. असूरियं णाम म[2]हाभितावं, अंधंतमं दुप्पतरं महंतं ।
उड्ढं अधे या तिरियं दिसासु, स[3]माहितो जत्थऽगणी झि[4]याति ॥ १० ॥

३०८. **असूरियं णाम०** वृत्तम् । यत्र सूरो नास्ति, अथवा सर्व एव नरकाः असूरिकाः । **महाभितावं** णाम कुम्भीपाकसदृशो महान् अभितापो यस्मिन् । **अन्धतमो**भूतम्, यथा जात्यन्धस्य अहनि रात्रौ च सर्वकालमेव तम एवं तत्रापि स तु अगाधगुहासदृशः । दुःखं तत्थ पयरंति त्ति **दुष्प्रतरम्** । **महान्त** इति विस्तीर्णाः, **उड्ढं अधे या तिरियं दिसासु**, ऊर्ध्वमिति उवरिल्ले तले अधे भूमीए तिरियं कुड्डेसु, तत्थ कालोभासी अचेयणो अगणिक्कायो **समाहितो** सम्यग् आहितः समाहितः एकीभूतः, निरन्त[5]र इत्यर्थः । **पठ्यते च—"समूसिते जत्थऽगणी झियाति"** समूसितो नाम उच्छ्रूवः, सो पुण जंतचुल्लीतो उसिणतरो ॥ १० ॥

३०९. जंसी गुहाए ज[6]लणातियट्टे, अ[7]विजाणतो डज्झति लुत्तपण्णे[8] ।
स[9]दा कलुणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीतं अतिदुक्खधम्मं ॥ ११ ॥

३०९. **जंसी गुहाए जलणातियट्टे०** [वृत्तम्] । **गुहाए** [ए]गतोदारा विउव्विता किण्हा[10]गणी हुहूयमाणी हुहूयमाणी चिट्ठति । जलणं अति[यट्टति] अतो **जलणातियट्टे** । **अविजाणतो डज्झति लुत्तपण्णे**, **अविजाणतो** णाम नासौ तस्यां विजानाति 'कुतो द्वारम् ?' इति । अथवाऽसौ जानाति 'अध (? इध) मे उसिणपरित्राणं भविष्यति' इह चासौ अविज्ञायक आसीद् यस्तद्विधानि कर्माण्यकरोत् । लुप्ता प्रज्ञा यस्य स भवति **लुत्तपण्णो** न जानाति 'कुतो निर्गन्तव्यम् ?' इति, वेदनाभिर्वाऽस्य प्रज्ञा सर्वा हृता, अथवा "अहिते हितपण्णाणे" [सू० ३५] । इदमन्यद् वेदनास्थानम्—**सदा कलुणं पुण घम्मठाणं**, **सदे**ति नित्यम्, न कदाचिदपि तस्मिन् हर्षः प्रहासो वा, घर्मणः स्थानं **घर्मस्थानम्**, सर्व एव हि उण्हवेदना नरकाः घर्मस्थानानि, विशेषतस्तु विकुर्वितानि स्थानानि दुःखनिष्क्रमण-प्रवेशानि । **गाढं** उण्हं **दुक्खोवणितं** **गाढैर्वा** दुर्मोक्षणीयैः कर्मभिस्तत्र **उपनीतः**, स वा तेषामुप**नीताः**, अथवा गाढमिति निरन्तरमित्यर्थः, गाढवेदणं **अतिदुक्खधम्मं** ति, धर्मः स्वभाव इत्यर्थः, स्वभावप्रतप्तेष्वेव तेषु ॥ ११ ॥ तत्थावि—

३१०. चत्तारि अ[11]गणीओ समारभित्ता, जहिं कूरकम्माऽभितविंति मंदा[12] ।
ते तत्थ चिट्ठंत[13]ऽभितप्पमाणा, मच्छा व [14]जीवं उवजोति पत्ता ॥ १२ ॥

३१०. **चत्तारि अगणीओ समारभित्ता०** वृत्तम् । अथवा इदमेव तद् घर्मस्थानम्, यदुत **चत्तारि अगणीओ समारभित्ता** चउद्दिसिं अग्गिं **समारभित्ता** णाम समुद्दीवेत्ता, **जहिं** ति यत्र क्रूराणि कर्माणि यैः पूर्वं कृतानि ते **क्रूरकर्माणः** नारकाः, अथवा ते क्रूरकर्माणोऽपि णरयपाला जे णरयग्गितत्ते वि पुनरपि **अभितापयन्ति**, यत एव हि **मंदा** नरकपाला मन्दबुद्धय इत्यर्थः, नरकप्रायोग्यान्येव कर्माण्युपचिन्वन्ति भृशं तप्यमाना **अभितप्पमाणा** । **जीवं** नाम जीवन्त एव । ज्योतिषः समीपे **उपजोति पत्ता** समीपगताभितापवद् मत्स्यास्तप्यन्ते, किमंग पुण तत्ते त एव छूढा अयोकवल्ले वा, सीतयोनित्वाद्धि मत्स्यानां उष्णदुःखानभिज्ञत्वाच्च अतीवाग्नौ दुःखमुत्पद्यते इत्यतो मत्स्यग्रहणम् ॥ १२ ॥ किञ्चान्यत्—

---

१ नवमगाथानन्तर वृत्ति-दीपिकाकृद्भ्यां व्याख्याता ख १ ख २ पु १ सूत्रप्रतिषु एका सूत्रगाथाऽधिका उपलभ्यते । सा चेयम्—
केसिंचि वंधित्तु गले सिलाओ, उदगंसि वोलेंति महालयंसि ।
कलंबुयावालुय मुम्मुरे या, लोलेंति पच्चंति य तत्थ अण्णे ॥

अत्र केसिंचि स्थाने केसिंच तथा पच्चंति स्थाने पउलिंति इति पाठभेद ख १ वर्त्तते ॥ २ महब्भितावं ख १ पु १ ॥ ३ समूसिते जत्थ चूपा० वृपा० ॥ ४ झियायती पु १ ॥ ५ °न्तरमित्य° वा० मो० ॥ ६ जलणेऽतिवट्टे पु १ वृ० दी० । जलणाइउट्टे ख २ ॥ ७ अजाणतो ख १ वृ० दी० ॥ ८ लूयपन्ने पु १ ॥ ९ सया य कलुणं ख १ ख २ पु १ वृ० दी० । सया य कसिणं वृपा० दीपा० ॥ १० °गणाणा हुहू° पु० सं० । °गणणा हुहू° वा० मो० ॥ ११ अगणीयो पु १ ॥ १२ वालं ख १ ख २ वृ० दी० । बाला पु १ ॥ १३ चिट्ठंतिऽभि° ख १ । चिट्ठंति अभि° पु १ ॥ १४ °जीवंतुव° ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥

३११. संतच्छणं णाम महंति तावं, ते णारया जत्थ असाधुकम्मी।
हत्थेहि पादेहि य बंधिऊणं, फलगं व तच्छेंति कुहाडहत्था ॥ १३ ॥

३११. **संतच्छणं णाम०** वृत्तम्। समस्त तच्छणं **संतच्छणं णाम** जत्थ विउव्वियताणि वासि-परसु-पट्टिसाणि, तंव-लिओ जहा खइरकट्ठं तच्छेति एवं ते वि वासीहिं तच्छिज्जंति, अण्णे कुहाडएहिं कट्ठमिव तच्छिज्जंति। **महन्ति तावं** णाम महंताणि वि तत्ताणि तच्छणाणि भूमी वि तत्ता। असाधूणि कम्माणि जेसिं ते **असाधुकम्मी**। **हत्थेहि पादेहि य बंधिऊणं,** रज्जूहि य णियलेहि य अंदुआहि य किडिकिडिगावंघेणं बंधिऊणं मा पलाइस्सति उद्वेस्सेंति वा चलेस्सेंति वा ताघे पुरकवाड-**फलग इव कुहाडहत्था तच्छेंति** ॥ १३ ॥ स एवं सतच्छित्ता—

३१२. रुहिरे पुणो वच्चसमूसितंगो, भिण्णुत्तिमंगे परियत्तयंता।
पयंति णं णेरइए फुरंते, सज्जो व्व मच्छे व अयोकवल्ले ॥ १४ ॥

३१२. **रुहिरे०** वृत्तम्। **रुहिरे पुणो वच्चसमूसितंगो,** रुधिरं जंते छिज्जंताणं परिगलति। पुव्वं च तेपां वर्चस्युपिता-न्यङ्गानि, ते वर्चसा आलित्तगे कुहाडपहँरेहिं **भिण्णुत्तिमंगे** अयकवल्लेसु तम्मि चेव णियए रुधिरे उव्वत्तेमाणा **परियत्तेमाणा य पयंति णं णेरइए फुरंते,** उक्कारिगा व धूव वा जधा सिलिसिलेमाणा फुरुफुरुते य, **सज्जो ज्ज(व्व) मच्छे व अयोकवल्लेसु** पयंति। **सज्जोमच्छे** त्ति जीवंते। अथवा "**सज्जोकमत्थे**" सज्जो हते, अप्पणिज्जिगाए चेव वसाए। **अयोकवल्लाणी**ति अयो-मयाणि पत्राणि ॥ १४ ॥ एवमपि ते छिन्नगात्रास्ताड्यमानास्तक्ष्यमाणाः पच्यमानाश्च—

३१३. नो चेव ते तत्थ मसीभवेंति, ण मिज्जती तिव्वऽतिवेदणाए।
कम्माणुभागं अणुवेदयंती, दुक्खंति सोयं इह दुक्कडेणं ॥ १५ ॥

३१३. **नो चेव ते तत्थ मसीभवेंति०** वृत्तम्। छारीभवति वा। **ण** वा **म्रियन्ते,** तिव्वा अतीव वेदणा, बन्धानु-लोम्यादेवं गतम्, इतरधा तु 'अतितिव्ववेदणाउ' त्ति पठ्येत। **कम्माणुभागं** णरगाणुभागं सीत उसिणाणुभागं वेदिंती, भूयो वेदयन्ति **अणुवेदयंति,** तेण दुक्खेणं **दुक्खंति सोयं** जूरति **इह दुकडेण** हिंसादीहिं अट्ठारसहिं ठाणेहिं ॥ १५ ॥

३१४. तेहिं पि ते लोलुअसंपगाढे, गाढं सुतत्तं अगणिं वयंति।
ण तत्थ सादं लभंतीऽभिदुग्गे, अरहिताभितावे तध वी तविंति ॥ १६ ॥

३१४. **तेहिं पि ते लोलुअसंपगाढे०** वृत्तम्। तस्मिन्नपि **ते** पुनः **लोलुगसंपगाढे वि** अण्णं पगाढतरं **सुतत्तं** विउव्वि-एल्लयं **अगणिट्ठाणं वयंति।** लोलति येन दुःखेन तद् लोलुगं, भृशं गाढं प्रगाढ निरन्तरमित्यर्थः। गाढतर सुट्ठुतरं **गाढं सुतत्तं,** तत्तो वि साभाविगातो णरगउसिणग्गीओ अधिकतरं, अथवा साभाविगअगणिणा तत्तं सीतवेदणिज्जा वि लोलुगा तेसु वि णेरइया सीएण हिमुक्कडअट्टणपक्खित्ताइं व भुजंगा लल्लकारेण सीतेणं लोलाविज्जति। अण्णेसिं पुण णरगाणं चेव लोलुअग्गि त्ति णामं, जधा लोलुए महालोलुए। [**ण**] **तत्थ सादं लभंतीऽभिदुग्गे,** निरयपालानन्तरेणापि तावत् ण तत्थ सासं(? सातं) लभंति। उक्तं हि—

"अच्छिणिमीलियमेत्त णत्थि सुहं किंचि कालमणुवद्धं।" [जीवा० प्रति० ३ सु० ९५ पत्र १२९-१] **अतिदुग्गे** वा भृशं

---

१ महब्भितावं ख १ ख २ पु १। महाहितावं सा० ॥ २ °कम्मा ख १ पु १ वृ० दी० ॥ ३ रज्जेहिं पु० ॥ ४ °मूसितं-तो वृ०। °मूसितंगो वृपा० ॥ ५ परिवत्ततंता ख २ ॥ ६ सज्जोकमत्थे चूपा०। सजीवमच्छे ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ७ °हारपहिं वा० मो० ॥ ८ भिण्णंतिमंगे चूसप्र० ॥ ९ णिमज्जती खं २ ॥ १० तिव्वभिवे खं १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ११ तमाणुभागं अणुवेदयंता वृ० दी०। तमाणुभावं अणुवेदयंता खं १। तमाणुभागं परिवेतयंता खं २। तमाणुभागं परिवेद-यंति पु १ ॥ १२ °ति दुक्खी इह ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ १३ "तथा तत्तीव्राभिवेदनया नापरमभिप्रक्षिप्तमत्स्यादिकमप्यस्ति यद् 'मीयते' उपमीयते, अनन्यसदृशी तीव्रां वेदना, वाचामगोचरामनुभवन्तीत्यर्थ" इत्यपि व्याख्यानं वृत्तौ ॥ १४ तहिं च ते लोलणसंप° खं २ पु १ वृ० दी०। तहिं च ते लोलुतसंप ख १ ॥ १५ लभतीऽतिदुग्गे ख २ ॥ १६ °रहिभितावे ख १। °रहिब्भियावा पु १ ॥ १७ सुतिव्वं विउ° पु० ॥ १८ °णिगाढं ट्ठाणं वा० मो० ॥

दुर्गे वा, ण चेव तत्थ काइ समा भूमी अत्थि । अरहिता अभितावं तस्मिन्नपि **अरहिते अभितावे तधावि तविज्जंति** अयोकवल्लादिसु तेषां चरकाणां गण्डस्योपरि पिटका इव जातास्ते ते स्वाभाविकेन नरकदुक्खेण विशेषतश्च नरकपालोदीरितेन पुनः पुनः समोहन्यमानाः प्रायं वेदनासमुद्घातैरिव काल गमयन्ति ॥ १६ ॥

तत्र पुनर्महाघोपनरकपालोदीरितैस्तेषां च परस्परतो हन-छिन्दभिन्द-मारयाऽतिकूयित-स्तनितशब्दैश्च—

३१५. से सुव्वती [1]गामवधे व सद्दे, उदिण्णकम्माए पयाय तत्थ।
उदिण्णकम्माण उदिण्णकम्मा, पुणो पुणो ते [2,3]सहरिसं दुहंति ॥ १७ ॥

३१५. से [4]सुव्वती गामवधे व सद्दे० वृत्तम् । से जधानामए इध गामघाते वा णगरघाए वा सर्वस्वहारे च वन्दिग्गहे वा महाणगरडाहे वा डकुरिज्जतेसु वा णगर-गामेसु वा समंता हाहाकाररवा [5]अमातृ-पुत्राः श्रूयन्ते, एवं तेष्वपि **उदिण्णकम्माए पयाय** त्ति णरगपयाए णरगलोगस्स महाभैरवसद्दो सुव्वते । **उदिण्णकम्माण** तेसिं असातावेदणिज्जादिगाओ ओसण्ण असुभाओ कम्मपगडीओ उदिण्णाओ, असुरकुमाराण वि तेसिं मिच्छत्त-हास-रतीओ उदिण्णाओ इति, अतस्ते **उदिण्णकम्मा** णेरइयाणं शरीराणीति वाक्यशेषः, उदीर्णकर्माणोऽसुराः **पुनः पुनरिति** अनेकशः, सघात-मारणाणि सह हरिसेण **सहरिसं** दुःखापयंति **दुहंति** । "**विधंति**" वा पठ्यते ॥ १७ ॥

३१६. पाणेहिं णं पाव विजोजयंति, तं भे पवक्खामि जधातधेणं।
[6]दंडेहिं तत्था सरयंति [7]बालं, सव्वेहिं दंडेहिं पुराकतेहिं ॥ १८ ॥

३१६. पाणेहिं णं पाव विजोजयंति० वृत्तम् । **प्राणाः** शरीरेन्द्रिय-बलप्राणाः, तान् ते **पावा** तैस्तैर्वेदनाप्रकारैः छेद-भेदप्रकारैश्च **वियोजयंति** विश्लेषयन्तीत्यर्थः । स्यात्—किमर्थं ते तेषा वेदनामुदीरयति ? कीदृशीं वा ?, उच्यते, **तं भेऽहं पवक्खामि जधातधेणं**, भृश साधु वा वक्ष्यामि **जधातधं** ति जहिं इध येन प्रकारेण पावाइं कम्माइ कताइं ते तहिं तहेव वेयणाओ पाविज्जति । का तर्हि भावना ?—तीव्रोपचितैस्तीव्रा वेदना भवन्ति मन्दैर्मन्दा मध्यैर्मध्या नरकविशेषतः स्थितिविशेषतश्च । अथवा **जधातधं** ति राजत्वे वा राजामात्यत्वे चारकपालत्वे लुब्धकत्वे वा सौकरिक-मत्स्यबन्धत्वे वा वध-घात-मांसोपरोध-पारदारिक-याज्ञिक-ससारमोचक-महापरिग्रहेत्येवमादयो दण्डा यैर्यथा [8]कृतास्तान् तथैव **दंडे तत्थ सरयंति बालं**, तैरेव यथाकृतैर्दण्डैः स्मारयन्ति यातयमानाः **सरयंति** त्ति स्मारयन्ति । न तथा छिद्यन्ते एव मार्यन्ते वध्यन्ते विध्यन्ते सह्यन्ते, एवं यावन्तो यथा च दण्डप्रकाराः कृतास्तावद्भिस्तथा च सारयन्ति ॥ १८ ॥

३१७. ते हम्ममाणे णरगं उवेंति, पुण्णं दुरूअस्स महब्भितावं।
ते तत्थ चिट्ठंति दुरूवभक्खी, तुट्टंति कम्मो[10]वसगा किमीहिं ॥ १९ ॥

३१७. ते हम्ममाणे णरगं उवेंति० वृत्तम् । त एवं बालाः **हन्यमाना** इतश्चेतश्च पलायमाणा णिलुक्कणपधं मग्गंता नरकमेवान्यं भीमतरवेदन प्रविशन्ति, जध इह चोरेहिं चोरा चारिज्जता कडिल्लमनुप्रविशन्ति, तत्रापि सिंह-व्याघ्रा-ऽजगरादिभिः खाद्यन्ते, एवं ते बाला पलायमाणा नरकपालभया त नरकं पतति । अण्णं **पुण्णं दुरूअस्स**, दुरूयं णाम उच्चार-पासवणकद्दमो, "से जधाणामए अहिमडे ति वा" [जीवा० प्रति ३ सू० ८३ पत्र १०६] मत-कुहित-विणिट्ठकिमीणं, तदपि दुरूवं तसं महब्भितावं । [ते] **तत्थ चिट्ठंति दुरूवभक्खी**, दुरूवं [11]भक्खयन्तीति **दुरूवभक्खी**, ते णिरयपालेहि दुरूवं खाविज्जंति । **तुद्यन्त** इति तुद्यमानाः खाद्यमानाः **कृमिभिः कम्मोवसगा** णाम कर्मयोग्या कर्मवशगा वा, तत्थ दुरूवे विष्ठाकृमिसंस्थाना विउव्विया किमिगा तेहि खज्जमाणा चिट्ठति, गुणमाणा य तत्थ किच्छाहिं गच्छंति, परिस्सता य तत्थेव

१ नगरवधे ख १ वृ० दी० ॥ २ दुहोवणीताण पदाण तत्थ ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ३ सरहं दुहेंति ख १ ख २ पु १ वृ० दी० । सहरिसं विधंति चूपा० ॥ ४ सन्धती पु० । सव्वती स० वा० मो० ॥ ५ आमात्यपुत्रा॰ चूसप्र० ॥ ६ डंडेहिं तत्था सरतंति ख १ ॥ ७ वाला ख १ ख २ पु १ ॥ ८ कृतस्थानतच्छेव चूसप्र० ॥ ९ °माणा णरए पडंति, पुण्णे दुरूवस्स महब्भितावे ख १ ख २ पु १ वृ० दी० । णरए स्थाने णरते ख १ ॥ १० °वगता किं° ख १ ख २ वृ० दी० ॥ ११ भक्षय° वा० मो० ॥

लोलमाणा किमिगेहिं खज्जंति, "छट्ठ-सत्तमासु णं पुढवीसु णेरइया मुं[1]त्तमुहन्ताइं लोहितकुंथुरूवाइं विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं समतुरंतेमाणा अणुखायमाणा चिट्ठंति" [अर्थतः जीवा० प्रति ३ सू० ८९ पत्र ११७-१] ॥ १९ ॥

किञ्चान्यत्—

३१८. [2]सदा कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीतं अतिदुक्खधम्मं ।
अंदूसु पक्खिप्पं[3] हणंति बालं, [4]वेधेहिं विंधंति सिराणि तेसिं ॥ २० ॥

३१८. सदा कसिणं [पुण] घम्मठाणं० वृत्तम् । सदेति नित्य कसिणं णाम सम्पूर्णं तत्रोष्ण [घम्मठाणं] कुंभीपाग-अणंतगुणाधियं । जो वि तत्थ वातो सो वि लोहारधमणीं व अणतगुणउसिणाधिको । गाढेहिं कम्मेहिं तत् तेषामुपनीतम्, ते वा तत्थुवणीता । आवायानीह गाढान्युष्णस्थानानि इष्टकापाकादीनि तैस्तदुपमीयते उपनीयते त्ति वा उवपदरिसितं ति वा एगट्ठं । अतिदुःखस्वभावं अतिदुःखधर्मम्, तधा वि अतिदुक्खधम्मे अंदूसु पक्खिप्पं हणंति बालं हत्थंदूसु पक्खिविऊण विहण्णंति । विणिहणित्ता खीलगेहिं चम्ममिव ततो वितडियसरीराणं वेधेहिं विंधंति सिराणि तेसिं, वेध्यस्थानानि येषु वा ते वेधाः, तद्यथा—अक्षि-कर्ण-[6]नासा-मुखानि । अदान्तेन्द्रियाणां पूर्वत एव एतानि पूर्वमदान्तान्यभूवन्, साम्प्रतं दाम्यन्ते । अधवा सीसावेढेण तावेन्ति सीस दुक्खावेंति ॥ २० ॥ किञ्चान्यत् तत्राऽसिपत्रा नाम नरकपालाः—

३१९. छिंदंति बालस्स खुरेण [7]णक्कं, ओट्ठे वि छिंदंति दुवे वि कण्णे ।
जिब्भं विणिक्कस्स विहत्थिमेत्तं, तिक्खाहिं सूलाहिं[8] निपातयंति ॥ २१ ॥

३१९. छिंदंति बालस्स खुरेण णक्कं ओट्ठे वि छिंदंति दुवे वि कण्णे० [वृत्तम्] । एतानि हि पूर्वमच्छिन्नदोषान्यभूवन् अच्छिन्नतृष्णानि चाऽऽसन् तत् साम्प्रतं स्वयमेव छिद्यन्ते । जिब्भं विणिक्कस्स विहत्थिमेत्तं, एषा हि पूर्वं मांसासिनी अलीकभाषिणी चाऽऽसीत् । परस्परं च विकुव्वितेहिं छिंदंति बालस्स खुरेण णक्कं । तिक्खाहिं सूलाहि ति, लोहखीलगा सूवका य, यावत् कृकाटिकातो निर्गता निपातयंति त्ति विंधति ॥ २१ ॥ त एवं विद्धा—

३२०. ते तिप्पमाणा तलसंपुड[9]ऽच्चा, रातिंदियं [10]तत्थ थणाति [11]मंदा ।
[12]समीरिता सरुधिर-मंसदेहा, पज्जोविता खारपयच्छितंगा ॥ २२ ॥

३२०. ते तिप्पमाणा तलसंपुडऽच्चा० वृत्तम् । विनि[13]तप्यमानाः तिप्पमाणाः कंदमाणाः पीड्यमाना हेरिकादिषु । तलसंपुलिता णाम अयतवंधता हस्तयोः कृता, यथैषां करतलं चैकत्र मिलति एवं पादयोरपि, अथवा करतलेन किञ्चित् पीड[14]यन्ते । एवं तेषां चप्पडगेहिं जतेहि य तलसंपुडियच्चा, अच्चा सरीरं भण्णति । रातिंदियं तत्थ थणंति मंदा, रात्रिंदिनप्रमाणमात्रं कालं णित्थणंति अच्छति, मंदा नाम मन्दबुद्धयः ग्लाना वा । समीरिता सरुधिर-मंसदेहा पज्जोविता खारप[15]यच्छितंगा, त एवं समन्तोदीरिता समीरिता सर्वतो रुधिरं गलाविता इत्यर्थः, सर्वतश्च मांसैरवकृष्टैः अण्णायभूमीय [16]थरथरायंतो अण्णा[17]वकयलंचगाइ देहो वि खंडखंडाइं केसिंच कातो पज्जोविततो, सर्वतो पलीविता वेढेऊण केइ खारेण पतच्छितंगा वासीमादीहिं तच्छेतुं खारेण सिंचंति ॥ २२ ॥ किञ्च—

३२१. जइ ते सुता लोहि[18]तपागपायी, बालागणी तेयगुणा परेणं ।
कुंभी महंता[19]ऽहियपोरुसीया, समूसिता लोहितपूयपुण्णा ॥ २३ ॥

---

१ मभूमुहत्ताइं स० । मत्तमुहत्ताइं वा० मो० । "वहूमहताइं" इति जीवा भिगमसूत्रे पाठः । २ सया य क° पु १ ॥ ३ °प्प विहत्तु देहं, वेहेण सीसं सेऽभितावयंति ख २ वृ० दी० । °प्प विहन्न देहं, वेहेण तं सेऽभितवेंति सीसं ख १ पु १ ॥ ४ वेढेण तावेंति सि° चूपा० ॥ ५ °प्पयंति वा° चूसप्र० ॥ ६ मुख-नासानि पु० ॥ ७ णासं ख १ पु १ ॥ ८ °हि भितावयंति वृ० दी० । °हिं तिवातयंति ख १ पु १ वृप्र० । °हिं निवायतंति खं २ ॥ ९ °ड व्व रा° ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ १० जत्थ ख १ ॥ ११ बाला ख २ पु १ वृ० दी० ॥ १२ गलंति ते सोणित पूति-मंसं, पज्जोविता खारपदिद्धितंगा ख १ पु १ वृ० दी० । गलंति ते सोणिअ-पूइ-मंसं, पज्जोविया खारपतच्छितंगा ख २ ॥ १३ विमितप्प° चूसप्र० ॥ १४ पीड्यमानाः । एवं वा० मो० ॥ १५ °यत्थिमगा चूसप्र० ॥ १६ थरथरा° पु० स० ॥ १७ °चक्कावलिंच° पु० स० ॥ १८ लोहितपूतपाती, वा° ख १ खं २ पु १ वृ० दी० ॥ १९ °ताऽधियपोरिसीणा ख १ पु १ ॥

३२१. जइ ते सुता लोहितापागपायी बालागणी तेयगुणा परेणं० [वृत्तम्] । यदि त्वया कदाचित् श्रुता, लोकेऽपि ह्येषा श्रुतिः प्रतीता—तत्र कुंभीओ विज्जंति । लोहितस्याऽऽपाकः लोहितापाकः, पच्यते यस्यां सेयं लोहिता[पाक]पायी । बालस्य ह्यग्नेः अधिकस्तापो भवति, परिशुष्केन तस्याभिनवप्रज्वालितस्य, स हि अधिकं दीप्यते दहति च, तेयगुणा एत्तो वि परं अणतगुणउण्हो अग्गी । कुंभी महंता कुम्भप्रमाणाधिकप्रमाणा कुम्भी भवति, जाघे वि चउसु वि पासेसु प्रज्वालितेनाग्निना तप्ता लोहिका त्रपु-ताम्रपूर्णो(र्णा) दुरासया, एवं ताओ वि कुंभिकेहिं निरयपालेहिं विउव्विताओ कुंभीओ महंति-महंतीओ पुरुषप्रमाणातीता अधियपोरुसीया, यथाऽस्यां प्रक्षिप्तो नारकः पश्यतीति, ण वा चक्केइ कण्णेसु अवलविउं उत्तरित्तए । समूसिता अद्दहिता लोहित-पूयमादीण असुभाणं सरीरावयवाणं पुण्णा । अधवा कुंभी उट्टिगा, अधियपोरिसुच्चा ऊणा [वा] कीरति तत्थ विच्छोभणा भवति ॥ २३ ॥

३२२. पक्खिप्प तासुं पपयंति बाले, [1]अट्टस्सरं ते कलुणं रसंते ।
तण्हाइया ते तउ-तंबतत्तं, पज्जिज्जमाणऽट्टतरं रसंति ॥ २४ ॥

३२२. पक्खिप्प तासुं० वृत्तं कंठं । णवर—अट्टस्सरं ति आर्त्तस्वरमिति, आर्त्तो हि यावत्प्रमाणं रसति, नासौ लज्जां धैर्यं वा तस्मिन् काले गणयति ॥ २४ ॥

३२३. अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता, भवाधमे [3]पुव्वा सतसहस्से ।
चिट्ठंति तत्था बहुकूरकम्मा, जधाकडे [4]कम्मे तधा सि भारे ॥ २५ ॥

३२३. अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता० वृत्तम् । अप्पं णाम आत्मानं इहेति इह मनुष्यलोके वंचइत्ता कूडतुलादीहिं । अधवा "अप्पाण" परोवघातसुहेण अप्पाणं वंचइत्ता भवाधमे भवानामधमः अतस्तस्मिन् भवाधमे पुव्वा सतसहस्से त्ति जाव तेत्तीस सागरोवमे चिट्ठंति । तत्था बहुकूरकम्मा जधाकडे कम्मे तधा सि भारे, बहूणि कूराणि कम्माणि येषां ते बहुकूरकम्मा, जे य पयंति जे य पचंति सव्वे ते बहुकूरकम्मा । जधाकडे कम्मे त्ति यथा चैषां कृतानि कर्माणि तथैवैषां भारो वोढव्य इत्यर्थः, बिभर्त्ति भ्रियते वाऽसौ भारः । का तर्हि भावना ?—यादृशेनाध्यवसायेन कर्माण्युपचिनोति तथैवैषां वेदनाभारो भवति, उत्कृष्टस्थितिर्वा मध्यमा जघन्या वा, ठितिअणुरूवा चेव वेदना भवति, अथवा यादृशानीह कर्माण्युपचिनोति तथा तत्रापि वेदनोदीर्यंते तेषां स्वयं वा परतो वा उभयतो वा ।

उभयकरणेण तद्यथा—मांसादाः स्वमांसान्येवाग्निवर्णानि भक्ष्यन्ते । रसकपायिनः पूय-रुधिरं कलकलीकृतं तउ-तंबादीणि य द्रवीकृतानि । व्याध-चौत-सौकरिकादयस्तु तथैव छिद्यन्ते मार्यन्ते च । चारकपाला अष्टादशकर्मकारिणः कार्यन्ते च । आनृतिकाना जिह्वास्तक्ष्यन्ते तुद्यन्ते च । चौराणां अङ्गोपाङ्गान्यपह्रियन्ते, पिण्डीकृत्य चैनान् ग्रामघातेष्विव वधयन्ति । पारदारिकाणां वृषणाश्छिद्यन्ते अग्निवर्णाश्च लोहमय्यः स्त्रियः अवगाहाविज्जंति । महापरिग्रहारम्भैश्च येन येन प्रकारेण जीवा दुःखापिताः सन्निरुद्धा जातिता अभियुक्ताश्च तधा तधा वेयणाओ पाविज्जंति । क्रोधनशीलानां तत् तत् क्रियते येन येन क्रोध उत्पद्यते—ण एवं रुसिज्जति, एवं रुसिज्जति, इदानीं वा किं न क्रुध्यसे ? किं वा क्रुद्धः करिष्यसि ? । माणिणो हीलिज्जंति । मायिणो असिपत्तमादीहिं शीतलच्छायासरिसेहि य तउअ-तंवएहिं प्रवंचिज्जंति । लोभे जधा परिग्गहे । एवमन्येष्वपि आश्रवेष्वायोज्यमिति । अतः साधूक्त जधा कडे कम्मे तधा से भारे इति ॥ २५ ॥

३२४. समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा, इट्ठेहि कंतेहि य [6]विप्पहीणा ।
ते दुब्भिगंधे कसिणे य फासे, कम्मोवगा कुणिमे आवसंति ॥२६॥ त्ति बेमि ॥

॥ नरगविभत्तीए पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥ ५-१ ॥

---

१ अट्टस्सरे वृ० दी० । अट्टस्सलं ख १ ॥ २ अप्पाण चूपा० ॥ ३ पुव्वसते स° ख १ ख २ पु १ ॥ ४ कम्म खं १ ॥ ५ °घातास्वकरि° चूसप्र० ॥ ६ विप्पहूणा ख १ ख २ पु १ ॥

३२४. समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा० वृत्तम् । जधा अधम्मपक्खे वुज्झिहिन्ति अधम्मिए अधम्माणुए त्ति हण-छिंद-भिंदवयंतए त्ति जाव णरगतलपतिट्ठाणे भवति । कलुषमिति कर्मैव, चिरस्य हि तत् प्रसीदेति । हिंसादिअणारिया कम्मा अणारिया, इष्टाः शब्दादयः, कामनीयाः कान्ताः, त एव विषयाः, अथवा कान्ता बान्धवा[1], तैर्विप्रहीणाः । अहवा जन्ति-आइ इह इट्ठाणि य कंताणि य पियाणि य तेहि विप्पहीणा ते दुरभिगंधे दुरूतकद्दमे य पूग-वसा-रुधिरकद्दमे य, "से जधा-णामए अहिमडे ति वा" [जीवा० प्रति० ३ उ० १ सू० ८३ पत्र १०६]। कसिणे संपुण्णे असुभभावेण स्पृशन्तीति स्पर्शाः, चशब्दात् सद्दे रूवे रसे गंधे फासे त्ति, रयणप्पभाते अणिट्ठा फासादयो, सेसासु कमेण अणिट्ठतरा । कर्मयोग्याः कर्मोपगाः जारिसा कम्मा कता, तिव्वेहिं तिव्वा । कुणिमे त्ति न कश्चित् तत्र मेध्यो देशः, सव्वे चेव मेद-वसा-मंस-रुधिरपुव्वाणु-लेवणतला । आ स्थितिपरिसमाप्तेः वसन्तीति आवसंत इति ॥ २६ ॥

॥ [पञ्चमे] प्रथमोद्देशकः ॥

[णिरयविभत्तीए विइओ उद्देसओ]

स एव भावनरकाधिकारः । यानि दुःखानि प्रथमे उक्तानि द्वितीयेऽपि तादृशान्येवोक्तानि । नरकपालकृतैश्च[2] परस्पर-कृतैश्च विशेष उच्यते—

३२५. अहावरं सासतदुक्खधम्मं, तं भे पवक्खामि जहातहेणं ।
बाला जधा दुक्कडकम्मकारी, वेदेंति कम्माणि[3] पुरेकडाइं ॥ १ ॥

३२५. अहावरं सासतदुक्खधम्मं० वृत्तम् । अथेत्यानन्तर्ये । अपर इत्यन्यो विकल्पः । शाश्वतमिति नित्यकालं यावदायुः । "अच्छिणिमीलितमेत्तं०" [जीवा० प्रति० ३ उ० ३ सू० ९५ पत्र १२९-१] गाधा । दुःखस्वभावं दुःखधम्मा । तं भे पवक्खामि भृशं प्रकारैर्वा वक्ष्यामि पवक्खामि, अथवा आदितः इदानीं वक्ष्यामि प्रवाचयिष्यामि । यथेति येन सर्वज्ञो हि यथैवावस्थितो भावः तथैवैनं पश्यति भाषते च । बाला यथा दुक्कडकम्मकारी, येन प्रकारेण यथा, कुत्सित कर्म दुक्कडं, दुक्कडाइं कम्माइं करेंति दुक्कडकम्मकारिणः, हिंसादीनि महारम्भादीनि च । वेदेंति त्ति अणुभवंति, पुरेकडाइ तिर्यङ्मनुष्यत्वे त्रिविधकरणेनापि निकाचितानि, तानि तु स्वय वेदयन्ति निरयपालैश्च वेदाविज्जति ॥ १ ॥

३२६. हत्थेहिं पादेहि य बंधिऊणं, उदराइं[4] फोडेंति खुरेहिं[5] तेसिं ।
गेण्हित्तु बालस्स विहण्ण[6] देहं, वज्झं थिरं पिट्ठतो उद्धरंति ॥ २ ॥

३२६. हत्थेहिं पादेहि य बंधिऊणं० वृत्तम् । जधा इह राया रायपुरिसा वा अवकरिसा वा अवकारिणो खंधे बंधित्ता सरेहिं विंधंति, एवं ते वि णिरयपाला खंधेसु बद्धाणं पाडिताण वा हत्थ-पादद[7]दुयिताणं उदराइं फोडेंति खुरेहिं तेसिं । "खुरासितेहिं" वा, असिता णिसिता तिण्हा, अथवा ण सिता मुण्डा इत्यर्थः । कृष्णावातेहिं (?) मुडेहिं दुःखाविज्जति मारि-ज्जति वा—त्वया उदरनिमित्तं सत्त्वानि घातितानि । अधवा—"खुरा-ऽसिगेहिं" खुरेहिं असिगएहि य । अण्णे पुण गेण्हित्तु बालस्स विहण्ण देहं, गृहीत्वेति णस्यमाणं वा वशमानयित्वा विहण्णेति विहणित्ता खीलएहिं वज्झं थिरं पिट्ठतो उद्धरति, स्थिरो नाम अत्रोटयन्तः, पृष्ठतो नाम पण्हिगाओ आरद्धं जाव कृगाडिगातो उद्धरति उप्पाडेंति । एवं पार्श्वतोऽपि अग्रतोऽपि ॥२॥

किञ्चान्यत्—

३२७. बाहू[8] पकत्तंति य मूलतो से, थूलं[9] वियासं मुहे आडहंति ।
रहंसि जुत्तं सरयंति बालं, आरुब्भ[10] विंधंति तुदेण्ण[11] पिट्ठे ॥ ३ ॥

१ वन्धेवा चूसप्र० ॥ २ °पालकृतैस्तु परस्परकृतैः सपरस्परकृतैश्च विशे° चूसप्र० ॥ ३ पावाइं पुरे° ख १ पु १ ॥ ४ उदरं विकत्तंति खुरासिएहिं ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ५ खुराऽसितेहिं चूपा० । खुरा-ऽसिगेहि चूपा० । "क्षुरप्र-ऽसिभि' नानाविधैरायुधविशेषै" इति वृत्तिकृत् ॥ ६ विहत्तु देहं पु १ । विभित्तुं ख २ ॥ ७ °पादंतदु° चूसप्र० ॥ ८ बाहा पकत्तंति य मू° ख १ । बाहू पकप्पंति य मू° ख २ । बाहू पकप्पंति समू° पु १ ॥ ९ थुल्ल ख १ पु ॥ १ ॥ १० आरुस्स विज्झति ख १ पु १ वृ० दी० । आरुस्स विंधंति ख २ । ११ °ण पेट्टी ख २ । °ण पट्टे ख १ पु १ ॥

३२७. बाहू पकत्तंति य मूलतो से० वृत्तम्। बाधयति तेनेति बाहू। मूलतो नाम उद्गमादारभ्य उवकच्छगमूलतो प्रारभ्य। लोहकीलएणं चतुरंगुलप्रमाणाधिकेणं थूलं मुहं विगसावेतूणं। थूलमिति महत्, मा संवुडेहिंति वा रडिहिंति व त्ति, आरसतोऽपि न तस्य परित्राणमस्ति, तथाप्यातुरत्वादारसति। आडहंति त्ति बु(?ड)ज्झंति। किंच—रहंसि जुत्तं सरयंति बालं, सरयंति त्ति गच्छंति वाहेंतीत्यर्थः, पापकर्माणि च स्मारयन्ति। त एव च बालास्तत्र युक्ता ये चैनां वाहयन्ति त्रिविधकरणेनापि तेयस्सरूविणो रवे सगडे वा, गुरुगं विउव्वितं रध अवधंता य तत्तारैरिव आरुब्भ विंधंति आरुह्य विंधति। तुदन्तीति तुदा तुत्रकाः, गलिवलीवर्दवत् पृष्ठे ॥ ३ ॥ सा च भूमी—

३२८. अयं व तत्तं जलितं सजोतिं[1], तदोवमं भूमिमणोक्कमंता[2]।
ते डज्झमाणा कलुणं थणंति[3], उसुचोदिता तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ ४ ॥

३२८. अयं व तत्तं० वृत्तम्। तप्तं हि किञ्चिदयः कृष्णमेव भवति, सा तु भूमी ज्वलितलोहभूता सज्योतिषा सज्योतिः, ज्वलितेन ज्योतिषा तप्ता, न तु केवलमेपोष्णा। ज्वलितज्योतिषाऽपि अणंतगुणं हि उष्णा सा, तदस्या औपम्यं तदोपमा। अणोक्कमंता णाम गच्छता। ते डज्झमाणा कलुणं [थणं]ति, ते तं इंगालतुल्लं भूमिं पुणो पुणो खुंदाविज्जंति, आगत-गताणि कारविज्जता य अतिभारोक्कता डज्झमाणा कलुणाणि रसति। इषुभिः तुत्रकैश्च प्रदीप्तमुखैश्चोदिताः तप्तेषु युगेषु युक्ताः, तप्तानि वा युगानि येषां रथानां त इमे तप्तयुगाः, अतस्तेषु तप्तयुगेषु युक्ताः ॥ ४ ॥ त एवम्—

३२९. बाला बला भूमिं अणोक्कमंता[4], विपज्जलं[5] लोहपहं व तत्तं।
जंसीऽभिदुग्गे[6] बहुकूरकम्मा, पेसे व दंडेहिं पुराकरेंति ॥ ५ ॥

३२९. बाला [बला] भूमि अणोक्कमंता० वृत्तम्। बाला मन्दा बालादिति। बलादणुक्कमंता बलात्कारेण, अथवा बला घोरबला इत्यर्थः। विविधेण प्रज्जलं नाम पिच्छलेण पूय-सोणिएण अणुलित्ततला। विगतं ज्वलं विज्जलं जलेज्ज, विज्जैलाविष्टतेन जलेर्ण वसाय पूय-सोणितेणं। लोहमयः पथः लोहपथः, यथा लोहमयः पथः तप्तः तथा सोऽपि। जंसीऽभिदुग्गे बहुकूरकम्मा, अभिदुग्गं भृशं दुर्गं वा, दंड-लउडमादीहिं हत्वा हत्वा। पुनः पुनः प्रेष्यन्त इति प्रेस्याः दासा भृत्या वा, पुरतः कुर्वन्तीति अग्रतः कृत्वा वाह्यन्ते गोणा इव, अणिच्छंता पिट्टिज्जति तुद्यन्ते च ॥ ५ ॥ किञ्च—

३३०. ते संपगाढम्मि पवज्जमाणा, सिलाहिं हम्मंतिऽभिपातिमाहिं[10]।
संतावणी णाम चिरट्ठितीया, संतप्पंते[11] जत्थ असाधुकम्मी[12] ॥ ६ ॥

३३०. ते संपगाढम्मि पवज्जमाणा० वृत्तम्। नानाविधाभिर्वेदनाभिर्भृशं गाढं सम्प्रगाढं निरन्तरवेदनमिति वा। अथवा सम्बाधः पथः सम्प्रगाढः, ते अतिभारभराक्रान्ताः शर्करा-पाषाणपथं प्रपद्यमानाः सिलाहिं हम्मंतिऽभिपातिमाहिं शिलाभिर्विस्तीर्णाभिर्वैक्रियादिभिरभिमुखं पतन्तीभिः, अभिपात्यमाना नान्यत्र पतन्तीत्यर्थः। किञ्च संतावणी नाम चिरट्ठितीया, सर्व एव नरकाः सन्तापयन्ति, विशेषेण तु वैक्रियाग्निसन्ता[पिता]। चिरं तिष्ठन्ति ते हि चिरट्ठितीया, जधण्णेण दस वाससहस्साइ उक्कोसेणं तेत्तीससागरोवमाणि संतप्पंते शरीरेण मणसा च। असाधूणि कर्माणि येषां ते इमे असाधुकर्मी, तम्हि चेव संतावणीसञ्ज्ञके नरके ॥ ६ ॥

३३१. कंडूसु पक्खिप्प पयंति बालं[13], ततो विडड्ढा[14] पुण उप्फिडंति[15]।
ते उड्ढकाएहिं विलुप्पमाणा, अवरेहिं खज्जंति सणप्फतेहिं ॥ ७ ॥

१ सजोयं पु १ ॥ २ तत्तोवमं भूमिमणोक्कमेत्ता पु १। तत्तोवमं भूमि अणोक्कमेत्ता ख १ ॥ ३ कणंति पु १ ॥ ४ °मिमणुक्क° ख २ पु १ पु २ ॥ ५ पविज्जलं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ °दुग्गंसि पवज्जमाणा पेस व्व ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ७ विजला विपुतेन जलेन साय पु० ॥ ८ °ण पवसाय वा० मो० ॥ ९ °ढसि प° ख १ पु १ पु २ ॥ १० °पातिणीहिं खं २ पु १ वृ० दी०। °पातियाहिं ख १ पु २ ॥ ११ °प्पती ज° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १२ °कम्मा पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ याले खं १ ॥ १४ विउट्टा ख १ पु २ ॥ १५ पुणरुप्पतंति। ते उड्ढकाएहिं पखज्जमाणा ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। पुण उप्पयंति इति खं २ पाठा ॥

३३१. कंदूसु पक्खिप्प पयंति वालं० वृत्तम् । अयकोट्ठ-पिट्ठ-पयणग[1]मादीसु पयणगेसु पक्खिप्प । वाला ते भयतो भुज्जिगा इव डज्झमाणा उप्फिडंति, "णेरइयाणोप्पातो उड्ढं[2] पंचेव जोअणसयाइं।" [जीवा० प्रति० ३ उ० ३ सू० ९५ पत्र १२९-१]। ते उड्ढकाएहिं विलुप्पमाणा, उड्ढकाया णाम द्रौणिकाकाः, ते उप्फिडिता वि सन्ता उड्ढकाएहिं विविवेहिं अयोमुहेहिं खज्जंति। खज्जमाणा भक्खितसेसा भूमिसंपत्ता अवरेहिं खज्जंति सणप्फतेहिं, न शक्यते धारयितुमित्यर्थः, सिंघ-व्याघ्र-मृ(?वृ)ग-शृगालादयः विविधाः ॥ ७ ॥

३३२. समूसितं णाम विधूमठाणं[3], विगिच्चमाणा कलुणं थणंति ।
अधोसिरं कट्टु [4]विगंतिऊणं, अयं व सत्थेहिं [5]समूसवेंति ॥ ८ ॥

३३२. समूसितं णाम विधूमठाणं० [वृत्तम्]। तत्थ ते णेरइया समूसविज्जंति, ओसवितं असवितं विनागितमित्यर्थः। विधूमोऽग्निस्थानम्, विधूमो नामाग्निरेव, विधूमग्रहणाद् निरिन्धनोऽग्निः स्वयं प्रज्वलितः, सेन्धनस्य ह्यग्नेरवश्यमेव धूमो भवति। अथवा विधूमवद्, विधूमानां हि अङ्गाराणामतीव तापो भवति, यदि त्वया तनुतं (?) वा न वा यस्मिन् विकृत्यमानाश्च छिद्यमानाश्च कलुणं थणंति, कलुणमिति अपरित्राणं निराक्रन्दमित्यर्थः, सपरित्राणा हि यद्यपि स्तनन्ति कूजन्ति वा तथापि तन्नातिकरुणम्। अथवा "यत्र उवियंता" छुभमाना इत्यर्थः। अथवा "जंसि विउकंता" विविधमनेकप्रकारं उत्क्रान्ता विउक्कंता। अधोसिरं कट्टु विगंतिऊण, अधोसिर काउं केइ विगित्तति, केइ विगंतिऊण पच्छा अधोसिरं वंधंति। अयो छगलगो, अयेन तुल्यं अयवत्, यथा अय इव कप्पणी-कुहाडीहिं केइ कुसितं कधंचि चक्कम्ममाणं फुरुफुरेंतं वा कप्पणि-कुहाडीहिं सत्थेहिं समूसवेंति छिंदति, एवं ते एवं कुसितं अकुसितं वा छिंदति। अधवा अयमिति लोहं, जधा लोहं तत्तेल्लयं छिज्जति एवं वा ॥ ८ ॥ किञ्च—

३३३. समूसिता तत्थ विसूणितंगा, पक्खीहिं खज्जंति अयोमुहेहिं ।
[6]संजीवणा णाम चिरट्ठितीया, जंसी पया हम्मति पापचेता ॥ ९ ॥

३३३. समूसिता तत्थ विसूणितंगा० वृत्तम्। समूसिता नाम खंभेसु उड्ढा वद्धा, तत्थ विसूणिताणि अंगाणि जेसिं तेमे विसूणितवदनाः, तएवं सरसविसूणितंगा काक-गृध्रादिभिर्भक्ष्यन्ते। संजीवणा णाम चिरट्ठितीया, एवं यथोद्दिष्टवेदनाप्रकारैर्भक्ष्यमाणाश्च स्वाभाविकैर्निरयपालकृतैर्वा पक्ष्यादिभिः छिन्नाः कथिता वा मूर्च्छिताः सन्तो वेदनासमुद्घातेन समोहता सन्तो मृतवदवतिष्ठन्ति। यथेह मूर्च्छिता उदकेन सिक्ताः पुनरुज्जीविता इत्यपदिश्यन्ते एवं ते मूर्च्छिताः सन्तः पुनः पुनः सञ्जीवन्तीति सञ्जीविनः, सर्व एव नरका सजीवणा। चिरट्ठितीया णाम जधण्णेण दस वाससहस्साणि उक्कोसेणं तेत्तीससागरोवमाणि। अथवा चिरं मृता हि ठतीति चिरट्ठितीया, नरकानुभावात् कर्मानुभावाच्च यद्यपि पिष्यन्ते सहस्रशः क्रियन्ते तथापि पुनः संहन्यन्ते, इच्छन्तोऽपि मँत्तुं[7] तथापि न म्रियन्ते। पापचेत त्ति पूर्वं पापचेता आसीत् सा प्रजा, साम्प्रतमपि न तत्र किञ्चित् कुशलचेता उत्पद्यते येनापापचेता सा प्रजा स्यादिति ॥ ९ ॥ अयं चापरो यातनाप्रकारः—

३३४. तिक्खाहिं [8]सूलाहिं वधेंति वाला, [9]वसोवगं सोवरिया व लद्धुं ।
ते [10]सूलविद्धा कलुणं थणंति, एगंतदुक्खं दुहतो गिलाणा ॥ १० ॥

३३४. तिक्खाहिं सूलाहिं वधेंति वाला० वृत्तम्। लोहमयैः शूलैस्त्रिशूलैश्च यथा नामनिष्पन्ने निक्षेपे वधयन्तीति विधवि, वशं उपगता वशोपगाः, शाबरिका इव वशोपगं महिषं वधयन्ति। पठ्यते च—"वसोपगं सावरिया व लद्धुं" सवरा

१ °णगमणादीसु चूसप्र० ॥ २ उक्कोसं पंच जो° इति जीवा० पाठ ॥ ३ °ठाणं, जं सोयतत्ता कलुणं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। °ठाणं, जंसि उवियंता कलुणं चूपा०। °ठाणं, जसि विउक्कंता कलुणं चूपा० ॥ ४ वियत्तिऊणं ख १ पु १। विगत्तिऊणं ख २ पु २ ॥ ५ समोस° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ संजीवणी ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ मृत्युं त° वा० मो० ॥ ८ सूलाहिऽतिवाययंति, वसोगयं सावययं व लद्धुं वृ० दी०। सूलाहिऽभितावयंति, वसोवगं सोअरियं व लद्धुं खं १ पु १। सूलाहि निवाययंति, वसोवगं सोवरियं व लद्धुं ख २ पु २ ॥ ९ वसोपगं सावरिया व लद्धुं चूपा० ॥ १० सूलभिन्ना ख १ पु २ ॥

म्लेच्छजातयः, ते यथा कन्दर्पात् कर्पाटकमादि विंधंति छगलगमादिं वा एवं ते वि तं नेरइयं छिंदंति भिंदंति। सौकरिक-
ग्रहणं ते हि तत्कर्मनित्यसेवित्वाद् निर्दया भवन्तीत्यतः। ते सूलविद्धा कलुणं थणंति, कलुणं णाम दीणं, थणंति नाम
कन्दन्ति। एकान्तेनैव दुक्खं दुहओ त्ति अंतो वहिं च, जमकाइएहिं नेरइएहिं च न तत्र समाश्वासोऽस्ति। नित्यग्लाना इति
महाज्वराभिभूता इव निष्प्राणा निर्बला नित्यमेव च नारका दसविधं वेदणं वेदेंति ॥१०॥ इदं चान्यदसातदुक्खधम्म—

३३५. सदाजलं[1] णाम णिहं महंतं, जंसी जलंती[2] अगणी अकट्ठा।
चिट्ठंति तत्था[3] बहुकूरकम्मा, अरहितस्सरा[4] केति चिरट्ठितीया ॥ ११ ॥

३३५. सदाजलं णाम णिहं महंतं० वृत्तम्। सदा ज्वलतीति सदाज्वलम्। अधिकं तस्यां हन्यत इति निहं
[ग्रन्थाग्रम्—४०००] ज्वरोदुपानवस्थितम् महदिति गम्भीरं विस्तीर्णं च। यस्मिन्निति यत्र। विना काष्ठैः अकाष्ठा वैक्रिय-
कालभवा अग्नयः अघट्टिता पातालस्था अप्यनवस्था। चिट्ठंति तत्था बहुकूरकम्मा, नरकपालैः प्रक्षिप्ताः, बहूणि कूराणि
कम्माणि जेसिं ते बहुकूरकम्मा। कूरं णाम निरनुक्रोशं हिंसादि कर्म, यत् कृत्वा कृते च नानुतप्यन्ते। अरहितः स्वरो येषां
कूजतां याचतां उत्तारयत उत्तारयतेति अन्यैश्च बहुविधैर्विलापैर्विलपन्तो अरहितस्वराः। चिरं तिष्ठन्तीति चिरट्ठितीया,
विविधेन सन्निरुद्धा वेदनार्दिताः ताहिं ताहिं चिरा तिट्ठंति ॥ ११ ॥ किञ्च—

३३६. चिया महंतीउ समारभित्ता, छुब्भंति ते तं कलुणं रसंतं।
आवट्टती तत्थ असाधुकम्मा, सप्पी[5] जधा छूढं जोतिमज्झे ॥ १२ ॥

३३६. चिया महंतीउ समारभित्ता० वृत्तम्। चीयन्त इति चितकाः। महंतीओ नाम नारकशरीरप्रमाणाधिक-
मात्राः यत्र चानेके नारका मायन्ते। समारभंति त्ति तिविधेण वि डज्झंति। स एव प्रक्षिप्तः आवट्टती तत्थ असाधु-
कम्मा, असाधूणि कम्माणि जेसिं पुरा आसीत् ते असाधुकम्मा। सप्पि[6] त्ति घतं, यथा सर्पि छूढं जोतिम्मि णिद्धूमए
खइरिंगालाणं खड्डाए भरिताए अग्गिवण्णे वा अयोकवल्लेणं चणंतीव। सर्पिग्रहणं तु इतरोऽपि सर्पो गृह्यते मत्स्यो वा ॥ १२ ॥
अयमपरो यातनाकल्पः—

३३७. सदा कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीतं अतिदुक्खधम्मं।
हत्थेहि पादेहि य बंधिऊणं, सत्तु[7] व डंडेहि समारभंति ॥ १३ ॥

३३७. सदा कसिणं पुण घम्मठाणं० वृत्तम्। सम्पूर्णदुःखस्वभावेन गाढैः कर्मभिस्ते तत्रोपनीताः, तद्वा तेषामुप-
नीतं अतिदुःखस्वभावम्। हत्थेहिं पादेहि य बंधिऊणं, चउरंकप्पादं बद्ध्वा शत्रुमिव निर्दयं हन्यते वशीकृतः यथा न
जीवतीति न चाऽऽशु म्रियते, मा भूद् वेदनां न प्राप्स्यतीति। समारभंति त्ति पिट्टेंति ॥ १३ ॥ त एवं हणंतो णिरयपाला—

३३८. भंजंति बालस्स वधेण पट्ठिं, सीसं पि[8] भंजंति अयोघणेहिं।
ते भिण्णदेहा फलगावतट्ठा, तत्ताहि आराहि णिजोजयंति ॥ १४ ॥

३३८. भंजंती बालस्स वधेण पट्ठिं० वृत्तम्। लउडादिघातैर्यथा[9] तैरन्यत्र भग्नानि पृष्ठानि एवं तेषामपि। सीसं पि भंजंति
अयोघणेहिं, अपिः पदार्थादिषु, पट्ठिं पि भंजंति सीस पि विंधंति, अण्णाणऽवि अंगोवंगाणि संचुण्णित-मोडितानि करेंति। ते
भिण्णदेहा फलगावतट्ठी, त एव भग्नाङ्ग-प्रत्यङ्गाः फलका इव उभयथा प्रकृष्टाः करकयमादीहिं तच्छिता मोग्गरेहि य पहता
शीताभिरुष्णाभिर्वा वेदनाभिरभिभूतास्तप्ताभिः दीर्घाभिराराभिर्विध्यन्ते, उत्तिष्ठोत्तिष्ठेति गच्छ गच्छेति ॥ १४ ॥ किञ्च—

३३९. अभियुंजिया रोद्दअसाधुकम्मा, उसुचोइया हत्थिवहं[10] वहंति।
एगं दुरूहित्तु दुवे[11] तयो वा, आरुब्भ[12] विंधंति किंकाणतो सि ॥ १५ ॥

१ सताजलं ठाण निहं ख २ पु १ वृ० दी० ॥ २ जलंतो अगणी अकट्ठो वृ० दी० ॥ ३ बद्धा व° ख २ वृ० दी० ॥
४ अरहस्सरा ख १ ख २ वृ० दी० ॥ ५ जहा पडितं जोइ° ख २ पु १ वृ० दी०। जहा पतितं जोति° ख १। जहा पइयं
जोति° पु २ ॥ ६ सप्पति घनां यथा चूसप्र० ॥ ७ सत्तुं व ख १ पु १ पु २ ॥ ८ पि भिंदंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥
९ लउलादि° पु० स० ॥ १० °त्थिवहं व° ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ११ दुए ततो वा ख २ पु १ पु २ ॥ १२ आरुस्स
विज्झंति ककाणओ से ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

३३९. **अभियुंजिया रोद्दअसाधुकम्मी०** वृत्तम्। अभियुंजिता तिविधेण वि रौद्रादीनि कर्माणि असाधूनि येषां ते **रोद्दअसाधुकम्मा** अभियुञ्जते रौद्रैः। ते च रौद्राः पूर्वमभवन्, तत्रापि रौद्रा एव परस्परतो वेदनां उदीरयन्तः **हत्थितुल्यं** वहन्तीति हस्तिवत्, हस्तितुल्यं भार वहन्तीत्यर्थः, हस्तिरूपं वा कृत्वा वाह्यन्ते, अश्वोष्ट्र-खरादिरूपं वा, यैर्यथा वाहिताः। किंच **एगं दुरूहित्तु दुवे तयो वा,** हस्त्यादिरूपं विकुर्वितमविकुर्वितं वा एकं वराकं अन्यो वा अन्ये वा **गुरुत्वादवहतश्च** गलिवलिवर्दानिव यातारो आरोह्य किं न वहसीति **किंकाणतो सि** त्ति ककाटिकाए **विंधंति** ॥ १५ ॥ किञ्च—

३४०. वाला बला [1]भूमि अणोक्कमंता, पविज्जलं कंटइलं महंतं।
विबद्ध तप्पेहि वि[2]सण्णचित्ते, समीरिता [3]कोट्टबलिं [4]करेंति ॥ १६ ॥

३४०. **वाला वला भूमि अणोक्कमंता०** वृत्तम्। **वालाः** इत्यजानकाः। **वाल** इति न स्ववशाः, **बलादनुक्राम्यन्ते।** **भूमिं** पूय-वसा-शोणितप्रविज्वलं लोहकंटकचितं। महतीति अनोरपारा, न तत्रान्या भूमिर्विद्यते या एवंविधा न स्यादिति। **विबद्ध तप्पेहिं** अन्ये पुनरगाधेषूदकेषु प्रगाहिताः पश्चाद् विबध्यन्ते त्रप्पकेषु। त्रप्पका नदीमुखेषु विदलया वंशफालीमया पिंडिगासंठिता कज्जंति, ताधे ओसरंते उदगे ठविज्जति हेट्ठाहुत्ता, पच्छा मच्छगा जे तेहिं अक्कंता ते गलिते उदगे सपुंजिता घेप्पंति, एवं तेऽपि बहवः त्रप्पकैराक्रम्यन्ते, ततः निसृते उदके **समीरिता** नाम सम्पिण्ड्य **कुट्टयित्वा** कल्पनीभिः खण्डशो **बलिं क्रियन्ते।** अथवा **कोट्टं** णगरं वुच्चति, णगरबली वि क्रियन्ते ॥ १६ ॥ किञ्चान्यद्—

३४१. वेतालिए णाम [5]महाभितावे, एगायते पव्वतमंतलिक्खे।
हम्मंति तत्था बहुकूरकम्मा, परं सहस्साण मुहु[6]त्तगस्स ॥ १७ ॥

३४१. [**वेतालिए णाम महाभितावे०** वृत्तम्। ... .] अन्तरिक्षः छिन्नमूल इत्यर्थः, आकाशस्फाटिकत्वाद् न दृश्यते, अन्धकारत्वाद्वा न दृश्यते, केवलमारुभणमार्गो दृश्यते, हत्थपरिमोसका एव ततस्ते नाऽऽरुभन्ति, आरुभणपथेण विलग्नाश्चेत् स च पर्वतः सहन्यते। अन्ये पुनः ब्रुवते—दृश्यत एवासौ, भूमिबद्ध एव चोपलक्ष्यते, न च सम्बद्धः, ततस्तेन सहतीभूतेन **हम्मंति तत्था बहुकूरकम्मा** बहूणि कूराणि हिंसादीनि कर्माणि जेसिं। **परं सहस्राणामिति** पर सहस्रेभ्योऽनेकानि सहस्राणीत्यर्थः, **मुहूर्त्तस्येति** मुहूर्त्तस्य हन्यन्ते पुनः पुनः संहन्यमानेन वियुज्यमानेन च ॥ १७ ॥

तएवं ते सहन्यमानाः—

३४२. [7]संबाधिता दुक्कडिणो थणंति, अहो [8]य रातो परितप्पमाणा।
एगंतकूडे णरए महंते, कूडेण तत्था विसमे हता तु ॥ १८ ॥

३४२. **संबाधिता दुक्कडिणो थणंति०** वृत्तम्। **सम्बाधिता** नाम स्पृष्टाः। **अहश्च रात्रौ** च विरहो नास्ति वेदणाए। त्रिभिस्तप्यमानाः **परितप्यमानाः।** अथवा—"**आदीणियं दुक्कडिणो थणंति**" अत्यर्थं दीनं आदीनम्, दुष्कृतानि येषा सन्ति ते इमे **दुक्कडिणो,** अरहितस्वर चिरं तिष्ठन्तीति, तत्थ य चिट्ठति चिरं संहाविता। किञ्च—**एगंतकूडे णरए महंते, एगंतकूडो** णाम एकान्तविषमः, न तत्र काचित् समा भूमिर्विद्यते यत्र ते गच्छन्तो न स्खलेयुरिति न प्रपतेयुर्वा। **महदिति** क्षेत्रतः कालतश्च, खेत्ततो जहण्णेण जंबुद्दीवप्रमाणमात्रा उक्कोसेण असंखेज्जाइं जोयणाइं, कालतो जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाणि। तधावि तम्मि विसये कूडाणि तत्थ देसे से उत्तारोत्तार-णिग्गम-पवेसेसु य अदृश्यानि यत्र ते 'वध्यन्ते' मृगा इवासकृद् वध्यन्ते, तत इतरे कप्पणि-कुहाडिहत्थगता मृगानिवैतान् कल्पयन्ति, ये इह व्याघ्रादयो आसीरन्, विषमः स एव नरकः। यत्र वा तानि कूडानि रयिताणि, उत्तारोत्तारपथ-निर्गमणपथा वा हता इति ता ॥ १८ ॥ किञ्च—

---

१ भूमिमणुक्क° ख २ पु १ पु २॥ २ विवण्ण° खं १ ख २ पु १ पु २॥ ३ कट्टु (? कुट्ट) बलिं पु २ वृ० दी०। कोट्टबलिं चूपा०॥ ४ किरेंति खं २ पु २॥ ५ महब्भितावे ख १ ख २ पु १ पु २॥ ६ °त्तगाणं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ७ आदीणियं दु° चूपा०॥ ८ त ख १॥ ९ सहातिता पु० स०॥

३४३. [1]अणासिया णाम महासियाला, [3]पगब्भिता तत्थ [4]सदा वऽकोप्पा।
[5]खायंति तत्था बहुकूरकम्मा, अदूरगा संकलियाहि बद्धा॥ १९॥

३४३. अणासिया णाम महासियाला० वृत्तम्। तानहिकूडैः बध्नन् (?वर्ध्रेण) बद्धान्, न अशितः **अनशितः**, क्षुधित इत्यर्थः। यथा इह क्षुधिताः शृगालाः किञ्चित् सिंहादिशेषं मृगादिरूपं भक्षयन्ति लकलकार्हि, एवं तेऽपि। महानिति अतिमहच्छरीरा। **पगब्भिता** अतिधृष्टा रौद्ररूपा निर्भयाः सदेति भक्षयित्वा न तृप्ता भवन्ति। **सदा वा अकोप्पा** अनिवार्या अप्रतिपेध्या इत्यर्थः, 'कर्षापणो अकोप्पा' इत्यपदिश्यते। अथवा–"अकोप्पं" ति [न] कुप्पितुं इत्युक्तं भवति। **खायंति तत्था बहुकूरकम्मा**, बहुकूरकम्मा इत्युभयावधारणार्थम्, ये च खादयन्ति ये च खाद्यन्ते। लोहसकलावद्धाः खादन्ति के वि स्वैराः प्रधावन्तोऽनुधावन्तो, अनुधावितुं पाटयित्वा खादन्ति, महाघोषा छिच्छिकरंति, अण्णे सलक्खगं धारेंति॥ १९॥ किञ्च—

३४४. सयाजला णाम णदीऽभिदुग्गा, [6]पविज्जला लोहविलीणतत्ता।
जंसीऽभिदुग्गंसि पवज्जमाणा, [7]एकाणिकाऽणुक्कमणं करेंति॥ २०॥

३४४. सयाजला० वृत्तम्। सतज्जला णाम णदीऽभिदुग्गा, सदा ज्वलतीति सदाज्वला। भृशं दुर्गा अभिमुखं दुर्गा वा अभिदुर्गा। प्रविसृतजला पविजला, विस्तीर्णजला उत्तानजलेत्यर्थः, न तु यथा **वैतरणी** गम्भीरजला वेगवती च, सा हि उत्तानकूला **लोहविलीन**सदृशोदका। **लोहानि** पञ्च काललोहादीनि। **जंसीऽहिदुग्गंसि पवज्जमाणा**, अभिमुखं दुग्गा भृशं दुग्गा वा अभिदुग्गा, प्रपद्यमाना गच्छन्त इत्यर्थः। **एकानिका** असहाया इत्युक्तम्, अल्पसहाया इत्यर्थः अद्वितीया वा। अनुक्रमन्तीति अनुक्रमणम्॥ २०॥

३४५. एताणि फासाणि फुसंति बालं, णिरंतरं तत्थ [8]चिरट्ठितीयं।
[9]णं हम्ममाणस्स [10]तु अत्थि ताणं, एगो सयं पच्चणुहोति दुक्खं॥ २१॥

३४५. एताणि फासाणि फुसंति० वृत्तम्। एतानीति यान्युद्दिष्टानि द्वयोरप्युद्देशकयोः। फुसंतीति **फासाणि**, एगग्गहणे गहणं, सद्दाणि वि रूव-रस-गंध-फासाणीति। स्पर्शग्रहणं तु ते तत्रोत्कटा दुःखतमाश्च। **निरन्तर**मिति—

अच्छिणिमीलियमेत्तं णत्थि सुहं णिच्चमेव अणुबद्धं। णरए णेरइयाणं अधोणिसं पच्चमाणाणं॥ १॥
[जीवा० प्रति० ३ उ० १ सू० ९५ पत्र १२९-१]

चिरट्ठितीय त्ति उक्ताः। **ण हम्ममाणस्स तु अत्थि ताणं**, न तत्र हन्यमानस्य वा किञ्चित् त्राणमस्ति, पच्छुलं भणंति–हण छिन्द भिन्दध त्ति मारे त्ति पच पचे त्ति। एवं यां यां कारणां कश्चित् कारयति तां तामनुबृंहयन्ति बुभूषन्ति च। **एगो सयं पच्चणुहोति दुक्खं**, एक एवासौ स्वयं अशुभकर्मफलमनुभवति, अनु पश्चाद्भावे, पूर्वं तन्निमित्तं तदन्येषु भवति, पश्चादसावनन्तगुणं तदनुभवति, तं पूर्वकृतं प्रत्यनुभवति॥ २१॥

३४६. जं जारिसं [11]पुव्वमकासि कम्मं, तधेव आगच्छति संपरागे।
एगंतदुक्खं भवम[12]ज्जिणित्ता, [13]वेदेति एगो तमणंतकालं॥ २२॥

३४६. जं जारिसं० वृत्तम्। **जं जारिसं पुव्वमकासि कम्मं**, जारिसाणि तिव्व-मंद-मज्झिमअज्झवसाएहिं जघण्ण-मज्झिमुक्किट्ठठितीयाणि कम्माणि कताणि तं तधा अणुभवंति। **संपरागो** णाम संसारः, संपरीत्यस्मिन्निति **सम्परायः**, कर्म-

---

१ अष्टादशगाथाया अनन्तरं वृत्तिकृता एका गाथाऽधिका व्याख्याताऽस्ति, सूत्रादर्शेष्वपि सोपलभ्यते। सा चेयम्—
भंजंति णं पुव्वमरी सरोसं, समुग्गरे ते मुसले गहेउं। ते भिन्नदेहा रुहिरं वमंता, ओमुद्धगा धरणितले पडंति॥
२ °सिताला खं १॥ ३ पगब्भिणो ख १ ख २ पु १। पागब्भिणो पु २॥ ४ सतायकोवा ख १ ख २ पु १ पु २। सदा वऽकोवा वृ० दी०। सदा वऽकोप्पं चूपा०॥ ५ खज्जंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ६ पविज्जलं वृ० दी०। पविज्जला वृपा०॥ ७ एगायऽताणु° खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ८ °तीतं ख १। °तीयं ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ९ नो ख १ पु २॥ १० तु होति ताणं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ११ पुव्वकयाऽऽसि कम्मं, तमेव ख २ पु १ वृ० दी०॥ १२ °मज्जइत्ता पु २॥ १३ वेदेंति दुक्खी तमणंतदुक्खं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥

फलोदयेन वा नरगं संपरागिज्जतीति सम्परागः । ततः कर्मविशेषात् तिर्यग्-मनुष्येष्वपि एगंतदुक्खं भवमज्जिणित्ता, कतरं भवम् ?, णरगभवो, पच्छा सो वेदेतेगो अणंतकालं प्रभूतम् ॥ २२ ॥ तम्हा—

३४७. एताणि सोच्चा णरगाणि धीरो[1], णो हिंसए[2] कंचण सव्वलोए[3] ।
एगंतदिट्ठी अपरिग्गहे य[4], वुज्झेज्ज लोभस्स[5] वसं ण गच्छे ॥ २३ ॥

३४७. एताणि सोच्चा णरगाणि धीरो० वृत्तम् । एतानीति यान्युद्दिष्टानि । दधातीति धीरः । श्रुत्वोपदेशात् तद्भयाच्च णो हिंसए कंचण सव्वलोए, किञ्चिदिति सव्वं, हिंसका हि नरकं गच्छन्तीत्यतः । सव्वलोके त्ति छज्जीवणिकाय-लोके णवएण भेदेण प्राणवधं न कुर्यात् । एगंतदिट्ठी अपरिग्गहे य, एकान्तदृष्टिरिति इदमेव णिग्गंथं पावयणं । अपरिग्गहे त्ति पंचमहव्वयग्रहणम्, तद्ग्रहणान्मध्यमान्यपि गृहीतानि । वुज्झेज्ज त्ति अधिज्जेज्ज, अधीतुं च सुणेज्ज, सोतुं वुज्झेज्ज । लोभस्स वसं ण गच्छेज्ज त्ति कसायणिग्गहो गहितो, सेसाण वि कोधादीणं वसं ण गच्छेज्जा । अट्ठारस वि ट्ठाणाइं एताइं सोच्चा णरगाइं धीरे दुक्खाइं मणुस्सेसु वि देवेसु वि ॥ २३ ॥

३४८. एवं तिरिक्खेसु[6] वि चातुरंते, अणंतकालं तदणुव्विवागं ।
स सव्वमेवं[7] इध वेदइत्ता, कंखेज्ज कालं धुंतमायरंति[8] ॥ २४ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ नरगविभत्ती[9] सम्मत्ता ॥

३४८. एवं तिरिक्खेसु वि चातुरंते अणंतकालं तदणुव्विवागं० [वृत्तम्] । कर्मणां स सव्वमेवं इध वेदइत्ता, स इति स साधुः जो पुव्वं वुत्तो "वुज्झेज्ज तिउट्टेज्ज" त्ति [सू०१], सर्वमिति यैः कर्मभिः नरकं गम्यते संसारो वा याश्च तत्र वेदनाः, सावशेषकर्मोद्वर्त्तस्य वा पुनरपि हिंसादिप्रसङ्गान्नरको वेदनाश्च, एवमिदं सव्वं वेदयित्वा ज्ञात्वेत्यर्थः, अथवा वेदयित्वेति क्षपयित्वा नरकप्रायोग्यं कर्म, कंखेज्ज कालं धुतमायरंति त्ति बेमि, सर्वकर्मक्षयकालं, यो वाऽन्यो पण्डित-मरणकालः, धूयतेऽनेन कर्म इति धुतं चरित्रमित्युक्तम्, आचार इति क्रियायोगे, आचरन् आचरते वेति चरणमिति ॥ २४ ॥

॥ नरकविभक्त्यध्ययनं पञ्चमं समाप्तम्[10] ॥ ५ ॥

---

१ वीरे ख १ ॥ २ न ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ °लोते ख २ पु १ ॥ ४ उ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ लोगस्स खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ °क्खे मणुतामरेसुं, चतुरंतऽणंतं तदणुव्विवागं ख १ पु २ वृ० दी० । तयणूविवागं खं २ पु १ ॥ ७ व्वमेयं इति खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ वेदयित्ता खं १ ॥ ९ धुतमाचरंति ख १ । धुयमायरंते ख २ पु १ वृ० दी० । धुतमायरेज्ज सा० ॥ १० नरकविभक्त्यध्ययनं पञ्चमम् पु १ पु २ ॥

६

[छट्ठं महावीरत्थवज्झयणं]

इदाणीं **महावीरत्थवो** त्ति अज्झयणं। तस्स चत्तारि अणुयोगद्दाराणि। एगसिरं ति कातुं अज्झयणत्थाहिगारो, उद्दे-सत्थाहिगारो णत्थि। अज्झयणत्थाहिगारो तु **महावीरवद्धमाणगुणत्थयेणेति**। णामणिप्फण्णे **महावीरत्थयो**। महं णिक्खि-वितव्वो, वीरो णिक्खिवियव्वो, थवो निक्खिवेयव्वो॥

पाधण्णे मॅहासद्दो दव्वे खेत्ते य काल भावे य।
वीरस्स उ णिक्खेवो चउक्कओ होति णायव्वो॥ १॥ ७६॥

पाधण्णे महासद्दो० गाथा। महदिति प्राधान्ये बहुत्वे च, प्राधान्येनाधिकारः। तस्स णामादि छव्विधो णिक्खेवो। णाम-ठवणाओ गताओ। दव्वे वतिरित्तो तिविधो—सचित्तादि ३। सचित्तो तिविधो—दुपदेसु तित्थगरः चक्कि-बलदेव-वासुदेवा १ चतुष्पदेसु सीहो हत्थिरयणं अस्सरयणं २ अपदेसु परोक्खेसु "रुक्खेसु णाता अदुकूडसामली" [सूत्रगा० ३६६], प्रत्यक्षे इहैव ये वर्ण-गन्ध-रसस्पर्शैरुत्कृष्टाः, वर्णे तावत् पौण्डरीकम् वक्ष्यमाणमपि च, पुप्फेसु य अरविंदं वदन्ति, त एव च गन्धतो गोशीर्षचन्दनादीनि वा, रसतः पणसादि, स्पर्शतः बालकुमुदपत्र-शिरीषकुसुमादि ३। अचेतणेसु वेरुलियादयो मणिप्रकाराः, वनस्पतिद्रव्याणि च अचेतनानि वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शैरायोज्यानि। मीसगाणं संयोगेण भवति, अधवा अलंकितविभूसितो तित्थगरो। खेत्ततो सिद्धिखेत्तं, धम्मचरणं वा प्रति **महाविदेहं**, स्वतन्त्रसौख्यं शब्दादिसौख्यं च प्रति मनुष्येषु **देवकुर्वादौ** भवति। काले सुसमादि, जहिं वा काले धम्मचरणं पवत्तति। भावमहं खाइगो भावः, औदयिकभावमपि, तीर्थकरादिशरीरादि औदयिको भावः। भावमहताऽधिकारः क्षायिकेनौदयिकेन च।

वीरः—वीर्यमस्यास्तीति वीर्यवान्। वीरस्स पुण णिक्खेवो चतुर्विधो। वतिरित्तो दव्ववीरो यद् यस्य द्रव्यस्य वीर्यं सचेतनस्याचेतनस्य मिश्रस्य वा। द्विपदस्य यथा तीर्थकरस्यैव, असद्भावस्थापनातः स हि तिन्दुकमिव लोकं अलोके प्रक्षि-पेत्, मन्दरं वा दण्डं कृत्वा रत्नप्रभां पृथिवीं छत्रकवद् धारयेत्। चक्कवट्टिस्स—

दो सोला बत्तीसा सव्वबलेणं तु संकलणिबद्धं। अंछंति चक्कवट्टिं अगडतडम्मि य ठितं संतं॥ १॥
घेत्तूण संकलं सो वामगहत्थेण अंछमाणाणं। भुंजेज्ज विलिंपेज्ज व चक्कहरं ते ण चाएंति॥ २॥
सोलस रायसहस्सा सव्वबलेणं तु संकलनिबद्धं। अंछंति वासुदेवं अगडतडम्मि य ठितं संतं॥ ३॥
घेत्तूण सकलं सो वामगहत्थेण अंछमाणाणं। भुंजेज्ज विलिंपेज्ज व मधुमहणं ते ण चाएंति॥ ४॥
जं केसवस्स उ बलं तं दुगुणं होइ चक्कवट्टिस्स। तत्तो बला बलवगा अपरिमितबला जिणवरिंदा॥ ५॥
[आव० नि० गा० ७३-७४-७१-७२-७५]

संगमएण वि भगवतो कालचक्कं मुक्कं, तं पि भगवता शारीरविरिएणं चेव सोढं। चउप्पददव्ववीरियं यथा सिंह-सरभाणं। अपदाणं पसत्थं अपसत्थं च। अपसत्थ विसमादीणं, पसत्थं संजीवणिओसधिमादीणं। अचित्तं खीर-दधि-घृता-ऽऽहारविसेसादीण य, सजोइमं अगदादीणं। एवमादि जस्स वीरियं अत्थि स द्रव्यवीरो भवति। खेत्तवीरो यत्र स एव वीरोऽवतिष्ठति वर्ण्यते वा, यद्वा यस्य क्षेत्रमासाद्य वीर्यं भवति। एवं काले वि तिण्णि पगारा। भाववीरस्तु क्षायिकवीर्यवान् भाववीरः, असौ भावः क्षायिकः परीषहैरुपसर्गैर्वा शक्यते नान्यथा कर्तुम्।

अधवा दव्वादि चतुव्विधो वीरो। दव्वे वतिरित्तो एगभवियादि। खेत्ते जत्थ वण्णिज्जति तिट्ठति वा। काले यस्मिन् काले यश्चिरं कालं वा कालं०। भाववीरो दुविधो—आगमतो णोआगमतो य। आगमतो जाणए उवयुत्तो। णोआगमतो भाववीरो वीरणाम-गोत्ताइ कम्माइं वेदयंतो, तेण अधियारो, स तु भगवानेव॥ १॥ ७६॥

---

१ महसद्दो ख २ पु २॥

थयणिक्खेवो चउद्धा[1] आगंतुअ-भूसणेहि दव्वथयो[2] ।
भावे संब्भूतगुणाण[3] कित्तणा जे जहिं भणिया ॥ २ ॥ ७७ ॥

[थयणिक्खेवो चउद्धा० गाधा ।] थयो णामादि चतुर्विधो—आगंतुअभूसणेहिं केसा-ऽलंकारादीहिं । अधवा सचित्ता-ऽचित्त-मीसो । सचित्ते पुप्फादि, अचित्ते हार-ऽद्धहारादि, मिश्रे स्रग्-दामादि । भावे सब्भूतगुणकित्तणाए अधियारो ॥ २ ॥ ७७ ॥

॥ पुच्छिंसु जंवुणामो अज्जसुधम्मो[5] ततो कहेसी य ।
एव महप्पा वीरो जतमाहु तधा जतेर्ज्जाध[6] ॥ ३ ॥ ७८ ॥

॥ महावीरत्थओ समत्तो ६ ॥

॥ ३ ॥ ७८ ॥ णामणिप्फण्णो गतो । सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं जाव—

३४९. पुच्छिंसु[7] णं समणा माहणा य, अकारिणो[8] या परतित्थिगा य ।
से के इमं णितियं धम्ममाहु,[9] अणेलिसं ? साधु समिक्ख दाए[10] ॥ १ ॥

३४९. पुच्छिंसु णं समणा माहणा य० वृत्तम् । एतान् नरकान् श्रुत्वा भगवदार्यसुधर्मसकाशात् तद्दुःखोद्विग्नमानसाः कथमेतान्न गच्छेयाम इति ते पार्षदा भगवन्तमार्यसुधर्माणं पुच्छिंसु णं समणा माहणा य अनेनाभिसम्बन्धेन पदच्छेद-विग्रह-समासान् कृत्वा अयमर्थः—पुच्छिंसु णं ति पृष्टवन्तः, पुच्छिसु त्ति वत्तव्वे णंकारः पूरणे देसीभापातो वा । समणा जम्बुनामादयः, जेसिं (? जेहिं) भगवं ण दिट्ठो, दिट्ठो व ण पुच्छितो, न य तग्गुणा यथार्थत उपलब्धाः । माहणाः श्रावकाः ब्राह्मणजातीया वा । अकारिणस्तु क्षत्रिय-विट्-शूद्राः । परतीर्थकाश्चरकादयः । चग्रहणाद् देवाश्च । से के इमं णितियं धम्ममाहु, से इति सः परोक्षनिर्देशे, कोऽसाविमं धर्ममाख्यातवान् ?, इममिति योऽयं भगवद्भिः कथितः यत्र च भगवान् अवस्थित इति । नितिकं नित्यं सनातनमित्यर्थः । "हितंगं"[11] च पठ्यते । धारयतीति धर्मः । आहुरिति एके अनेकादेशाद् "आत्मनि गुरुषु च वहुवचनम्" वन्धानुलोम्याद्वा । अथवा[12] के इममाहुः ?, एकारोऽपि हि वहुत्वे भवति यथा—के ते, एकत्वेऽपि यथा—के से । अनेलिसमिति स्वरेऽक्षरविपर्ययः, न एलिस अनेलिसं, अतुल्यमित्यर्थः । धर्म इति वर्त्तते । साधु प्रशंसायाम् । सम्यग् ईक्षित्वा समीक्ष्य केवलज्ञानेन दाए दरिसति ॥ १ ॥ [अत्राह—ननु भवान्] सुख(?श्रुतं) समीक्ष्य देशकः ? साधु समीक्ष्य देशकः ? उत आत्मागमादेवेद कथयसि ?, स आह—नन्वागमात् कथयामि, आप्तागमात्, आप्तो भगवान् श्रीवर्द्धमानस्वामी तेन भापितमनुभापयामि । ततस्ते जम्बुनामाद्याः श्रोतारः पुनरूचुः—परोक्षो नः स भगवान्, तद्गुणांस्तावत् कथयस्व—

३५०. कधं व णाणं ? कध दंसणं से ?, सीलं कधं णायसुतस्स[13] आसी ? ।
जाणासि णं भिक्खु ! जधातधेणं,[14] अधासुतं ब्रूहि जधा णिसंतं ॥ २ ॥

३५०. कधं व णाणं कध दंसणं से० वृत्तम् । कथं इति परिप्रश्ने । कथमसौ ज्ञातवान् ? केन वा ज्ञानेन ज्ञातवान् ? एवं दर्शनेऽपि कथं दृष्टवान् ? इति । शीलमिति चारित्रम् । एतान् यथोद्दिष्टान् जाणासि णं भिक्खु ! जधातधेणं, हे भिक्षो ! त्वया ह्यसौ दृष्टश्चाऽऽभापितश्च इत्यतो यथा तद्गुणा वभूवुः तथा त्वं जानीपे । जानानस्तान् अधासुतं ब्रूहि जधा णिसंतं यथा दृष्टं यथा निशान्तं च, निशान्तमित्यवधारितम् । किञ्चित् श्रूयते न चोपधार्यते इत्यतः अधासुतं ब्रूहि जधा णिसंतं ॥ २ ॥ 'तद् यथा भवता श्रुत्वा निशामितं तथाऽपदिश्यताम्' इति भगवान् पृष्टः भव्यपुण्डरीकानामुन्मुखीभूतानां कथितवान् । स हि भगवान्—

---

१ थुतिणि° ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ २ चउहा ख २ पु २ ॥ ३ दव्वथुती ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ४ संताण गुणाण ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ५ °सुहम्मा ख २ पु २ ॥ ६ °ज्जाहि ख २ । °ज्जाहिं पु २ ॥ ७ पुच्छिस्सु ख २ । पुच्छिस्सु वृ० दी० ॥ ८ यगारिणो ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ के इणेगतहिय धम्ममाह पु २ वृ० दी० । के तिमं णिहियं धम्ममाह ख १ । के इमं णितियं धम्ममाहु ख २ पु १ । के इमं हितगं धम्ममाहु चूपा० ॥ १० °क्खयाए पु १ पु २ वृ० दी० । °क्ख दाए ख १ । °क्ख दासे ख २ ॥ ११ हितिगं पु० सं० ॥ १२ °वा किमेकमाहुः चूसप्र० ॥ १३ णातसु° ख १ ॥ १४ अहातहेणं पु २ ॥

३५१. 'खेत्तण्णे कुसले आसुपण्णे महेसी, अणंतणाणी य अणंतदंसी।
जसंसिणो चक्खुपधे ठितस्स, जाणाहि धम्मं च धितिं च² पेधं ॥ ३ ॥

३५१. खेत्तण्णे कुसले आसुपण्णे० वृत्तम्। क्षेत्रं जानातीति क्षेत्रज्ञः। कुशलो द्रव्ये भावे च। द्रव्ये कुशान् लुनातीति द्रव्यकुशलः। एवं भावे वि, भावकुशास्तु कर्म। अथवा कुत्सितं शलति कुत्सिताद्वा शलति कुशलः। केवलज्ञानित्वाद् आशुप्रज्ञो आशु एव प्रजानीते, न चिन्तयित्वा इत्यर्थः। महेसी महरिसी, महान्तं वा एसतीति महेसी। अनन्तज्ञानीति केवलज्ञानी। अनन्तदर्शनीति केवलदर्शनी। जसंसिणो चक्खुपहे ठितस्स, यशः अस्यास्तीति यशस्वी सदेव-मणुआ-ऽसुरे लोगे जसो। पश्यतेऽनेनेति चक्खु, सर्वस्यासौ जगतश्चक्षुष्पथि स्थितः, चक्षुर्भूत इत्यर्थः। यथा तमसि वर्तमाना घटादयः प्रदीपेनाभिव्यक्ता दृश्यन्ते, न तु तदभावे, एवं भगवता प्रदर्शितानर्थान् भव्याः पश्यन्ति, यद्यसौ न स्यात् तेन जगतो जात्यन्धस्य सतोऽन्धकारं स्यात्, तेनाऽऽदित्यवदसौ जगतो भावचक्षुष्पथे स्थितः। स्यादनुक्तमपि जानीहि जानस्व, किंविधो धर्मः धृतिः प्रेक्षा वा? अचिन्त्यानीत्यर्थः, चारित्रधर्मः क्षायिकः, धिति वज्जकुड्डसमा, पेक्खा केवलणाणं। अथवा किञ्चित् सूत्रमतिक्रान्तं निकाचयतीति कृत्वा ते पुत्तका (? पुच्छका) भवंति अज्जसुधम्मं-भगवं! तुमं तस्स जसंसिणो चक्खुपथे थितस्स जाणाहि धम्मं च धितिं च पेधं जारिसो तस्स सव्वलोगचक्खुभूतस्स। उक्तं च—"अभयदए [चक्खुदए] मग्गदए" [ ] इत्यतश्चक्षुर्भूतः, तस्स जारिसो धम्मो वा धिती वा पेहा वा तं तुमं अवितधं जाणाहि, जाणमाणो कवेहि त्ति, णे [त्ति] वाक्यशेषः ॥ ३ ॥ स च कथयत्येवम्—

३५२. उड्ढं³ अधे वा तिरियं दिसासु, जे थावरा जे य तसा य पाणा।
स णिचऽणिचे य समिक्ख पण्णे, [? समियाएवं दीवसमो तहाऽऽह] ॥ ४ ॥

३५२. उड्ढं अधे वा तिरियं दिसासु० वृत्तम्। येषामूर्ध्वलोके स्थानं यतः प्रभृति वोर्ध्वं भवति, एवमधः, तिर्यगिति चतस्रो दिशस्तासु दीव-समुद्रा इति। अस्मिन् त्रिलोकेऽपि ये स्थावराः त्रि⁴प्रकारा ये च त्रसाः त्रिप्रकारा एव। स णिच्चऽणिच्चे य समिक्ख पण्णे, स इति स भगवान्, नित्याऽनित्य इति भावा अपि हि केनचित् प्रकारेण नित्याः केनचिदनित्याः। कथम्? इति चेत्, द्रव्यतो नित्या भावतोऽनित्याः, द्रव्यं (? उभयं) प्रति नित्यानित्याः। एवमन्यान्यपि द्रव्याणि यथा नित्यान्यनित्यानि च तथा सम्यग् ईक्ष्य प्रज्ञया तथा आहेति वक्ष्यमाणान्। दीवसमो दीवभूतः। दीवो दुविधो—आसासदीवो पगासदीवो य, उभयथाऽपि जगतः, आसासदीवो ताणं सरणं गती, प्रकाशकरो आदित्यः सव्वत्थ समं पगासयति चंडालादिसु वि। एवं भगवान् दीवेण समो दीवसमो। समियाए त्ति सम्यक्, ण पूया-सक्कार-गारवहेतुं, "जधा पुण्णस्स कँच्छती तधा तुच्छस्स कच्छती" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ६ सू० ५] ॥ ४ ॥

३५३. से सव्वदंसी अभिभूय णाणी, णिरामगंधे धितिमं ठितप्पा।
⁶अणुत्तरं सव्वजगं सि विज्जं, गंथा⁷तीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥

३५३. से सव्वदंसी अभिभूय णाणी० वृत्तम्। सव्वं ⁸पासति त्ति सव्वदंसी, के⁹वलदर्शनीत्युक्त भवति, चत्वारि

१ खेयण्णे से कुसले आसुपण्णे, अणंत° पु २ वृ०। खेयण्णए से कुसले महेसी, पु १ वृपा० दी०। खेयण्णे से कुसले महेसी, ख १ ख २ ॥ २ च पेहे ख १ वृ०। च पेहा ख २ पु १। च पेह पु २। च वेहि वृपा० दी०। तहेव दीपा० ॥ ३ उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा। से णिच्च-ऽणिच्चेहि समिक्ख पण्णे, दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। उड्ढे ख १। अहेयं पु १। णिच्च-ऽणिच्चे य स° ख १ पु २ ॥ ४ त्रिप्रकारा स्थावरा पृथिव्यम्बु-वनस्पतय। त्रिप्रकारास्त्रसा तेजोवायु-विकलेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिया इति ॥ ५ "मच्छत' त्ति मथ्यमान हृदय येषां ते तथा, इह च थकारस्य छकारादेश छान्दसत्वात्, यथा 'पुण्णस्स कच्छइ' इति, अत्र पूर्णस्य कथ्यते इति" इत्यभयदेवसूरिपादा प्रश्नव्याकरणाङ्गवृत्तौ तृतीयेऽधर्मद्वाराध्ययने व्याख्यातवन्त इति, सूत्र १२ पत्र ५७-१ ॥ ६ अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। °जगम्मि ख १ ॥ ७ गंथादीए अभए अणाऊ ख १ पु २। गंथाअदीते अभते अणाऊ ख २ पु १॥ ८ पासत्ति त्ति पु० स० ॥ ९ केवलज्ञानी केवलदर्श° पु० ॥

ज्ञानानि त्रीणि दर्शनानि, भास्कर इव सर्वतेजांस्यभिभूय केवलदर्शनेन जगत् प्रकाशयति । ज्ञानीति एवं केवलज्ञानेनापि अभिभूय इति वर्तते, उभाभ्यामपि कृत्स्नं लोका-ऽलोकमवभासते । अथवा लौकिकानि अज्ञानान्यभिभूय केवलज्ञान-दर्शनाभ्यां खद्योतकानिवाऽऽदित्यः एकः प्रकाशते । **णिरामगंधे धितिमं ठितप्पा,** निरामोऽसौ निर्गन्थश्च, आम इति उद्गमकोटि । धृतिरस्यास्तीति **धृतिमान्** संयमे धृतिः । संयम एव यस्य स्थित आत्मा धर्मे वा सो **ठितप्पा । अणुत्तरं सव्वजगं सि विज्जं,** नास्योत्तरं सर्वलोके यः कश्चिद् विद्वानित्यतः सर्वलोकं स विद्वान् । **विज्जं** नाम विद्वान् । ग्रन्थादतीते ति **गंथातीते ।** दव्वगंथो सचित्तादि, भावे कोधादि, द्विधाऽप्यतीतः, निर्ग्रन्थ इत्यर्थः । अथवा ग्रन्थनं ग्रन्थः स्वाध्याय इत्यर्थः तमतीतः, कोऽर्थः ? नासौ श्रुतज्ञानेन जानीत इत्यर्थः । **अभए** इति अभयं करोत्यन्येषां न च स्वयं बिभेति । **अनायुरिति** नास्याऽऽगमिष्यं जन्म विद्यते आगमिष्यायुष्कबन्धो वा ॥ ५ ॥

३५४. से भूतिपण्णे अणिएतचारी, ओघंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरं तवति[1] सूरिए व, वैरोयणेंदो व तमं पगासे ॥ ६ ॥

३५४. से भूतिपण्णे अणिएतचारी० वृत्तम् । **भूतिर्हि** वृद्धौ[2] रक्षायां मङ्गले च भवति । वृद्धौ तावत्—प्रवृद्धप्रज्ञः अनन्तज्ञानवानित्यर्थः, रक्षायाम्—रक्षाभूता[3]ऽस्य प्रज्ञा सर्वलोकस्य सर्वसत्त्वानां वा, मङ्गलेऽपि—सर्वमङ्गलोत्तमोत्तमाऽस्य प्रज्ञा । अनियतं चरतीति **अनियतचारी ।** ओघो द्रव्यौघः समुद्रः, भावौघः ससारः, तं तरतीति **ओघंतरः ।** दधातीति **धीरः । अणंतचक्षुरिति अणंतं** केवलदर्शनं तदस्य चक्षुरिति अनन्तचक्षुः, अनन्तस्य वा लोकस्यासौ चक्षुर्भूतः । **अणुत्तरं तवति सूरिए व,** न हि सूर्यादन्यः कश्चित् प्रकाशाधिकः, एवं भट्टारकादपि नान्यः कश्चिद् ज्ञानाधिकः, णाणेणं चेव ओभासति तवति भासेति, अवसेसं च कर्म तवति, आदित्य इव सरांसि तपति औषधयो वा । **वैरोयणेंदो व** "रुच दीप्तौ" विविधं रुचतीति **वैरोचनः** अग्निः, स हि सर्वदीप्तिवतां द्रव्याणामिन्द्रभूत इत्यतो वैरोचनेन्द्रः, स यथा आज्याभिषिक्तः तमः प्रकाशयति एवं भगवानप्यज्ञानतमांसि प्रकाशयति ॥ ६ ॥

३५५. अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेता मुणी कासवे आसुपण्णे ।
इंदे व देवाण महाणुभावे, सहस्सणेत्ता[4] दिविणं[5] विसिट्ठे ॥ ७ ॥

३५५. अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं० वृत्तम् । नास्योत्तरा अन्ये कुधर्मा इत्यनुत्तरम् । **जिनानामिति** अन्येषामपि जिनाना अयमेव **धर्मः,** अतीतानामागमिष्यतां च एष भगवतां धर्मः । अयमेव भगवान् नयतीति **नेता,** कोऽर्थः ?, जधा ते भगवन्तो नीतवन्तः तथाऽयमपि नयति । **काश्यपगोत्रः काश्यपमुनिः ।** केवलज्ञानित्वाद् **आशुप्रज्ञः** आशुरेव प्रजानीते, न चिन्तयित्वेत्यर्थः । **इंदे व देवाण महाणुभावे,** इंदेण तुल्यं इंदवत् । अनुभवनमनुभावः, सौख्यं वीर्यं माहात्म्यं **चानुभावः ।** सहस्रमस्य नेत्राणां **सहस्सनेत्ता,** अनेकानां **वा** सहस्राणां **"नेता"** नायक इत्यर्थः । दिवि भवा **दिविनः ।** सर्वेभ्यो दिविभ्यः स्थान-रिद्धि-स्थिति-जुति-कान्त्यादिभिर्विशिष्यते इति **विशिष्टः,** किमुतान्येभ्यः ? ॥ ७ ॥ किञ्च—

३५६. से[6] पण्णसा अक्खये सागरे वा, महोदधी वा वि अणंतपारे ।
अणाइले[7] से अकसाय भिक्खू, सक्केव देवाधिपती जुतीमं ॥ ८ ॥

३५६. से पण्णसा अक्खये सागरे वा० वृत्तम् । ज्ञायतेऽनेनेति **प्रज्ञा** ज्ञानसम्पत्, न तस्य ज्ञातव्ये[8]ऽर्थे बुद्धिः परिक्षीयते प्रतिहन्यते वा, सादीअपज्जवसितो कालतो, दव्व-खेत्त-भावेहिं अणंते, दृष्टान्तः **स्वयम्भूरमणः** सागरः, एकदेशेन हि औपम्यं क्रियते, यथाऽसौ विस्तीर्ण-गम्भीरजलो अक्षोभ्य एवमस्यानन्तगुणा प्रज्ञा विशाला गम्भीरा अक्षोभ्या च । **अणाइले से अकसाय[9] भिक्खू, अणाइलो** णाम परीषहोपसर्गोदयेऽप्यनातुरः । **अकसाय** इति क्षीणकषाय एव, न तूपशान्त-

---

१ तप्पति सूरिए वा, वइरोयणिंदे व ख १ ख २ पु १ पु २ । सूरिते ख २ पु १ ॥ २ वृद्धौ मङ्गले रक्षायां च चूसप्र० ॥ ३ °भूतस्य चूसप्र० ॥ ४ °णेता ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० ॥ ५ दिवि णं इति पृथक्पदतया वृत्तौ व्याख्या—"दिवि स्वर्गे, ण इति वाक्यालङ्कारे" इति ॥ ६ पण्णया पु १ पु २ ॥ ७ °इले या अकसादि मुक्के, सक्के ख १ पु २ वृ० दी० । °इले या अकसाय भिक्खू ख २ पु १ वृपा० दीपा० ॥ ८ ज्ञातव्येत्यर्थे चूसप्र० ॥ ९ अकसाए य चूसप्र० ॥

कषायः, निरुत्साहवत्, इह कश्चित् सत्यपि बले निरुद्यमत्वादुपचारेण निरुत्साहो भवति, अन्यस्तु क्षीणविक्रमत्वान्निरुत्साहः, एवमसौ क्षीणकषायत्वान्निरुत्साहः । सत्यप्यसौ क्षीणान्तरायिकत्वे सर्वलोकपूज्यत्वे च भिक्षामात्रोपजीवित्वाद् भिक्षुरेव, नाक्षीणमहानसिकादिसर्वलब्धिसम्पन्नोऽपि स्यात्[1] तामुपजीवतीत्यतो भिक्षुः । सक्के व देवाधिपती जुतीमं ति द्युतिमानित्यर्थः, स हि तुल्यस्थित्याऽपि सामानिक-त्रायस्त्रिंशकेभ्यः इन्द्रनाम-गोत्रस्य कर्मण उदयात् स्थानविशेषाच्चाधिकं दृश्यते ॥८॥

३५७. से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे ।
सुरालए[2] वा वि मुदाकरे से, विरायए[3] णेगगुणोववेए[4] ॥ ९ ॥

३५७. से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए० वृत्तम् । वीर्यं औरस्यं धृतिः ज्ञानवीर्यं च सर्वैरपि प्रतिपूर्णवीर्यः, क्षायोपशमिकानि हि वीर्याणि अप्रतिपूर्णानि, क्षायिकत्वादनन्तत्वाच्च प्रतिपूर्णम् । सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे, शोभनमस्य दर्शनमिति सुदर्शनः, मेरुः सुदर्शन इत्यपदिश्यते, यथा असौ सुदर्शनः सर्वपर्वतेभ्यो विशिष्यते तथा भगवानपि वीर्येण सर्ववीर्येभ्यो विशिष्यते । इदानीं सर्व एव सुदर्शनो वर्ण्यते—सुरालए वा वि मुदाकरे से, सुराणां आलयः, "मुद हर्षे" सुरालयः स्वर्गः, स यथा शब्दादिविषयसुखः एवमसावपि स्वर्गतुल्यः शब्दादिभिर्विषयैरुपेतः, देवा अपि हि देवलोकं मुक्त्वा तत्र क्रीडास्थानेषु क्रीडन्ते, न हि तत्र किञ्चिच्छब्दादिविषयजातं यदिन्द्रियवतां न मुदं कुर्यादिति । विविधं राजति अनेकैः वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-प्रभाव-कान्ति-द्युति-प्रमाणादिभिर्गुणैरुपपेतः सर्वरत्नाकरः । तस्य हि प्रभावे गाथा भवति—

सुंदरजणसंसग्गी सीलदरिद्दं पि कुणइ सीलड्ढं । जह मेरुगिरिविच्छूढं[5] तणं पि कणयत्तणमुवेति ॥ १ ॥
[ओघनि० गा० ७८४ पत्र २२४-२] ॥ ९ ॥

तस्य तु प्रमाणम्—

३५८. सतं सहस्साण तु जोअणाणं, तिकंडि[6] से पंडगवेजयंते ।
से जोअणे[7] णवणउतिं[8] सहस्से, उड्डुस्सिते[9] हेट्ठ सहस्समेगं ॥ १० ॥

३५८. सतं सहस्साण तु जोअणाणं० वृत्तम् । त्रीणि कण्डान्यस्य सन्तीति त्रिकण्डी । तं जधा—भोम्मे वज्जे कंडे १ जंबूणते कंडे २ वेरुलिए कडे ३ । पंडगवेजयंते, पंडगवणेण चान्यपर्वतान् वनानि च विजयत इति पण्डगवेजयन्तः । से जोअणे णवणउतिं सहस्से ऊर्ध्वं उच्छ्रत उड्डुस्सिते । पठ्यते च—"उड्ढं थिरे" तिष्ठतीति स्थिरः, शाश्वतत्व गृह्यते निश्चलत्वं च । अधे सहस्सावगाढो ॥ १० ॥

३५९. पुट्ठे णभे चिट्ठति भूमिए[10] ट्ठिए, जं सूरिया अणुपरियट्टयंति ।
से हेमवण्णे बहुणंदणे य[11], जंसी रतिं वेदयंती महिंदा ॥ ११ ॥

३५९. पुट्ठे णभे चिट्ठति० वृत्तम् । भूमिए ट्ठिए उड्ढलोगं च फुसति अहलोगं च, एवं तिण्णि[12] वि लोगे फुसति । जं सूरिया अणुपरियट्टयंति । से हेमवण्णे, हेममिति जं प्रधानं सुवर्णम्, निष्टप्तजम्बूनदरुचि इत्युक्तं भवति । बहुनन्दन इति बहून्यत्राभिनन्दजनकानि शब्दादिविषयजातानि बहूनां वा सत्त्वानां नन्दिजनकः । महान्तो इन्द्रा महेन्द्राः शक्रेशानाद्याः, ते हि स्वविमानानि मुक्त्वा तत्र रमन्ते ॥ ११ ॥

३६०. से[13] पव्वते सद्दमहप्पगासे, विरायते[14] कंचणमट्ठवण्णे ।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरीवरे से जलिते व भोम्मे[15] ॥ १२ ॥

---

१ सान् (? सन्) स० वा० मो० । स्यात् कदाचिदर्थेऽव्ययम् ॥ २ °ए वासिमुदा° वृ० दी० ॥ ३ °यते ख १ ख २ पु १ ॥ ४ °वेते ख १ ख २ पु १ ॥ ५ मेरुगिरीजायं तणं ओघनिर्युक्तौ पाठ ॥ ६ तिगंड से पं° ख १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ जोयणाणं णव° ख १ पु २ ॥ ८ °णवते स° ख २ पु १ । °णउते स° खं १ पु २ ॥ ९ उड्ढं थिरे चूर्णा० । उड्डुस्सिओ पु २ । उड्ढं सितो खं १ ॥ १० भूमिऽवट्ठिए वृ० दी० ॥ ११ या ख १ ॥ १२ तिण्णऽवि पु० स० ॥ १३ से खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १४ °यती खं १ ख २ पु १ ॥ १५ भोमे ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

३६०. स पव्वते सद्दमहप्पगासे० वृत्तम् । मन्दरो मेरुः पर्वतराजेत्यादिभिः शब्दैः प्रकाशः सर्वलोकप्रतीतैः ओरालायतस्स सद्दा सव्वलोए परिभमंति । विरायते कंचणमट्ठवण्णो, मट्ठेति "अट्ठे (अच्छे) सण्हे लण्हे जाव पडिरूवे" [जीवा० प्रति० ३ उ० १ सू० १२४ पत्र १७७-२], ण फरुसफासो विसमो वा इत्यर्थः । अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, सर्वपर्वतेभ्योऽनुत्तरः, दुःखं गम्यत इति दुर्गः, अनतिशयवद्भिर्न शक्यते आरोढुम् । गिरीवरे से जलिते व भोम्मे, से जधाणामए खइरिंगालाणं[2] रत्तिं पज्जलिताणं, अधवा जधा पासातो पज्जलिन्तो के पि पचंतो वा अड्डुरत्ते ॥ १२ ॥

३६१. महीय मज्झम्मि ठिते णगिंदे, पण्णायते सूरियलेस्सभूते[3] ।
एवं सिरीए[4] उ स भूतिवण्णे, मणोरमे अच्चीसहस्समालिणी (? णो) ॥ १३ ॥

३६१. महीय मज्झम्मि ठिते णगिंदे० वृत्तम् । रयणप्पभाए महीए मज्झे ठिते । प्रज्ञायते नाम ज्ञायते सर्वलोकेन, अध सूरियलेस्सभूते त्ति ज्ञायते अतिरुगयहेमंतिसूरियलेस्सभूतो, यदि मध्याह्नार्कलेश्याभूतोऽभविष्यत् तेन दुरासओऽभविष्यत् । एवं सिरीए उ स भूतिवण्णे कायश्रिया पर्वतश्रिया, भूतिवर्ण इति प्रभूतवर्ण इत्यर्थः । मणोरमे मणांसि अत्र मनस्विनां रमन्त इति मणोरमे भवति । अच्चीसहस्समालिणी (? णो), एस दस दिसो द्योतयति । एस दिट्ठंतो ॥ १३ ॥

३६२. सुदंसणस्सेस[5] जसो गिरिस्स, पवुच्चते[6] महतो पव्वतस्स ।
एतोवमे समणे णातपुत्ते, जाती-जसो-दंसण-णाण-सीले ॥ १४ ॥

३६२. सुदंसणस्सेस जसो गिरिस्स० वृत्तम् । यशः प्रतीतः सर्वलोकप्रकाशः । भृशं उच्यते पवुच्चते । महांतः स महन्तः । एतोवमे समणे णातपुत्ते जात्या । सर्वजातिभ्यः, यशसा सर्वयशस्विभ्यः, दर्शनेन सर्वदृष्टिभ्यः, ज्ञानेन सर्वज्ञानिभ्यः, शीलेन सर्वशीलिभ्य एव भावात् ॥ १४ ॥

सर्वपर्वतेभ्यो मन्दरः श्रेष्ठः । अवशेषाणां त्वायतत्वं प्रति—

३६३. गिरीवरे वा निसढायताणं[7], रुयगे व सेट्ठे वलयायताणं[8] ।
ततोवमे से जगभूतपण्णे[9], मुणीणमावेदमुदाहु पण्णे[10] ॥ १५ ॥

३६३. गिरीवरे वा णिसढायताणं० वृत्तम् । न हि कश्चित् तस्मादायततमो वर्षधरोऽन्य इह वाऽन्येषु वा द्वीपेषु । वलयायताणं तु रुयगपव्वतो, स हि रुयगस्स दीवस्स बहुमज्झदेसभागे माणुसुत्तर इव वट्टे वलयागारसंठिते असंखेज्जाइं जोअणाइं परिक्खेवेणं । ततोवमे से जगभूतपण्णे, ताभ्या निषध-रुचकाभ्यामौपम्यं क्रियते ततोवमे, से इति स भगवान्, जायत इति जगत्, भूता प्रज्ञा यस्य जगत्यसावेको भूतप्रज्ञः, नान्ये कुतीर्थ्याः । आवेदयन्ति तेनेति आवेदः, यावद् वेद्यं तावद् वेदयतीति आवेदः, श्रुतज्ञानमित्यर्थः । त उदाहु मुणीण आवेदं उदाहु पण्णे प्रगतो ज्ञः प्रज्ञः ॥ १५ ॥

३६४. अणुत्तरं धम्ममुदीरइत्ता, अणुत्तरं झाणं[11] चिरं झियाति[12] ।
सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं, अपेव[13] संखेंदुवदातसुद्धं ॥ १६ ॥

३६४. अणुत्तरं धम्ममुदीरइत्ता० वृत्तम् । नास्योत्तरा अन्ये कुधर्माः । उदीरयित्वा कथयित्वा प्रकाशयित्वा ।

---

१ अत्र जावशब्दसूचितो मलयगिरिपादैर्जीवाभिगमोपाङ्गटीकायामुल्लिखित पूर्णपाठ एवम्—"अच्छे सण्हे लण्हे जाव पडिरूवे' इति, यावच्छब्दकरणात् 'घट्ठे मट्ठे णीरए णिम्मले णिप्पंके णिक्कंकडच्छाये सप्पभे सस्सिरीए समिरीए सउज्जोए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे' इति परिग्रह ।" पत्र १७८-२ ॥ २ खइलिंगा° वा० मो० ॥ ३ सूरियसुद्धलेसे ख १ पु २ वृ० दी० । सूरियसुद्धलिस्से ख २ पु १ ॥ ४ सिरीते उ स भूरिवण्णे, मणोरमे जोयति अच्चिमाली ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । जोयतिस्थाने पु १ जूयति ॥ ५ °स्सेव ज° ख २ पु १ पु २ ॥ ६ °च्चती ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ७ णिसहाय° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ वलताय° खं १ ॥ ९ भूतिपण्णे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । "भूतिप्रज्ञः' प्रभूतज्ञान" इति वृत्तौ ॥ १० °ण मज्झे तमु° ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ११ झाणवरं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ झिताादी ख १ ॥ १३ संखेंदु वेगतवदातसुक्क ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० ॥

अणुत्तरं झाण चिरं झियाति, उत्पन्नज्ञानो हि भगवान् द्वे ध्याने ध्यायितवान्[1], यावत् सयोगी तावत् सुहुमकिरियं अणियट्टिं, रुद्धयोगी तु समुच्छिण्णकिरियं अप्पडिवादि । तत्र वर्णतः एवंप्रकारम्—सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं, सुद्धं सुक्कं सुसुक्कं । यथा किं सुक्कं स्यात्?, यथा अपगंडं अपां गंडं अपगंडं, उदकफेनवदित्यर्थः, शरन्नदीप्रपातोत्थं अपेव[2] । संखेन्दु एकान्तेन अवदातसुक्कं सखेंदु व एगंतावदातसुक्कं, अवदातं अतिपण्डरं स्निग्धं वा निर्मलं च । पठ्यते च—"संखेंदु वेगंतवदातसुक्कं" इव औपम्ये, संखेंदु व एगंतवदातसुक्कं तदेव ध्यानम् ॥ १६ ॥ एवंविधं झाणवर झियातित्ता—

३६५. [3]अणुत्तरग्गं परमं महेसी, णाणेण सीलेण य दंसणेणं ।
असेसकम्मं स विसोधइत्ता, सिद्धीगतिं सातियणंत पत्ते ॥ १७ ॥

३६५. अणुत्तरग्गं परमं महेसी णाणेण सीलेण य दंसणेणं० [वृत्तम्] । अणुत्तरं च तद् अग्गं च अणुत्तरग्गं, सर्वसुखानामभ्यभूतं सर्वस्थानानां चाणुत्तरम् । अग्रे च लोकाग्रे । महाँश्चासौ ऋषिश्च महरिषिः । तत् केन गतः?, णाणेण सीलेण य दंसणेणं । अथवा अणुत्तरं अग्राणां परमं सुखानां सिद्धिमिति । असेसं णिरवसेस कम्मं । स इति भगवान् । अथवा अट्ठविहं कम्मं खवगसेढीए विसोधइत्ता णाम खवइत्ता सिद्धीगतिं सातियणंत पत्ते, सेधनं सिद्धिः, सिद्धेर्गतिः सिद्धिगतिः अतः तं सादिअणंत पत्ते सादिअपज्जवसितं प्राप्तः । केण? णाणेण सीलेण य [दंसणेणं] । चशब्दात् शीलं दुविधं—तवो संजमो य । णाण-दंसणे णिब्भेदे ॥ १७ ॥

३६६. [4]रुक्खेहि णाता मह कूडसामली, जंसी रतिं वेदे[5]यंती सुवण्णा ।
वणेसु या[6] णंदणमाहु [7]सिट्ठं, णाणेण सीलेण [8]उ भूतिपण्णे ॥ १८ ॥

३६६. रुक्खेहि णाता मह कूडसामली० वृत्तम् । [णाता] ज्ञायत इति सर्ववृक्षेभ्योऽधिका, लोकेनापि ज्ञातम् । अहवा णातं आहरणं ति य एगट्ठं, सर्ववृक्षाणामसौ दृष्टान्तभूता—अहो! अयं शोभनो वृक्षः ज्ञायते सुदर्शना जम्बू कूडसामली वेति, कूडभूताऽसौ शाल्मली च, यस्यां रतिं वेदयंती [सुवण्णा], शोभनानि एषां पर्णानि, पर्णमिति पिच्छस्याख्या, एवं ताव लोकसिद्ध्या, अस्माकं तु—शोभनवर्णा सुवर्णा, तत्थ वेणुदेवो वेणुदाली य वसंति, तयोर्हि तत् क्रीडास्थानम् । वणेसु या णंदणमाहु सिट्ठं, नन्दन्ति तत्रेति नन्दनम्, सर्ववनानां हि नन्दनं विशिष्यते प्रमाणतः पत्रोपगाद्युपभोगतश्च । तथा भगवानपि शीलेनानुत्तरज्ञानेन तु भूतिप्रज्ञः ॥ १८ ॥

३६७. थणितं व सद्दाण अणु[9]त्तरे तु, चंदे व ताराण महाणुभा[10]गे ।
गंधेसु वा[11] चंदणमाहु [12]सेट्ठं, सेट्ठे मुणीणं अपडिण्णमाहु ॥ १९ ॥

३६७. थणिते व सद्दाण अणुत्तरे तु० [वृत्तम्] । थणंतीति थणिताः, प्रावृट्काले हि सजलानां घनानां स्निग्ध गर्जितं भवति अभिनवशरद्धनानां च । उक्तं च—"सारतणिद्धथणितगंमीरघोसि" [ ] । चंदे व ताराण महाणुभागे कण्ठ्यम् । चंदणं तु गोसीसचंदणं मलयोद्भवम् । सेट्ठे मुणीणं अपडिण्णमाहु, श्रेष्ठो मुनीनां तु अप्रतिज्ञः । नास्येहलोकं परलोकं वा प्रति प्रतिज्ञा विद्यत इति अप्रतिज्ञः ॥ १९ ॥

३६८. जधा सयंभू उदधीण सेट्ठे, णागेसु वा [13]धरणमाहु सेट्ठं ।
[14]खोतोदए[15] रसतो वेजयंते, [16]तधोवहाणे मुणि वेजयंते ॥ २० ॥

---

१ "उत्पन्नज्ञानो भगवान् योगनिरोधकाले सूक्ष्म काययोग निरुन्धन् शुक्लध्यानस्य तृतीय भेद सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं तथा निरुद्धयोगश्चतुर्थं शुक्लध्यानभेद व्युपरतक्रियमनिवृत्ताख्य ध्यायति" इति वृत्तिकाराः ॥ २ अप्पेव चूसप्र० ॥ ३ अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेस कम्मं स विसोहइत्ता । सिद्धिं गतिं साइमणंत पत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेणं ॥ इतिरूप सूत्रवृत्त खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । साइयणंत° ख १ ॥ ४ रुक्खेसु णाते जह सामली वा, जंसी ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । कूडसामली ख १ । रुक्खेसु णाता अदु कूडसामली चूपा० [नि० गा० ७६ चूर्णौ] ॥ ५ वेतयंती ख १ पु २ । वेययती ख २ पु १ ॥ ६ आ खं १ । वा ख २ ॥ ७ सेट्ठं ख २ । सेट्ठे ख १ पु १ पु २ ॥ ८ य ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ °त्तरं तु, चंदु व्व पु २ वृ० दी० ॥ १० °भावे ख २ पु १ ॥ ११ ता ख २ । या ख १ । आ पु २ ॥ १२ सेट्ठे, सेट्ठे मु° ख १ पु २ । सेट्ठे, एवं मु° ख २ पु १ वृ० दी० ॥ १३ धरणेंदमाहु सेट्ठे खं १ ख २ पु २ वृ० दी० । धरणिंदे आहु सेट्ठे पु १ ॥ १४ खोदोदए ख १ पु २ ॥ १५ °ए वा रसवेज° ख १ ख २ वृ० दी० ॥ १६ तवोव° खं १ पु १ पु २ वृ० दी० । ततोव° ख २ ॥

३६८. जधा सयंभू उदधीण सेट्ठे० वृत्तम् । स्वयम्भूरिति स्वयम्भूरमणः, स्वयं भवति स्वयम्भूः, तत्र रमन्त इति स्वयम्भूरमणः, उदकं दधातीति उदधिः, न तस्मादन्योऽधिकः । णागेसु वा धरणमाहु, न तेषां किञ्चिज्जलं थलं वा अगम्यमिति नाम । खोतोदए रसतो वेजयंते, खोतोदगं णाम उच्छुरसोदगस्य समुद्रस्य, अधवा इहापि इक्षुरसो मधुर एव, सव्वे रसे माधुर्येण विजयत इति वेजयन्तः । तधोवधाणे मुणि वेजयंते, तथेति तेन प्रकारेण, उपदधातीत्युपधानम्, तपोपधानेन हि भगवान् सर्वतवोवधानतो विजयत इत्यतः वेजयन्तः, तपःसयमोपधानं जं कुणाति । मुनिरिति भगवानेव । विजयन्तो जयन्त इत्यर्थः ॥ २० ॥

३६९. हत्थीसु ऐरावणमाहु[1] णाते, सीहो मिगाणं[2] सलिलाण गंगा।
पक्खीसु आ[3] गरुले वेणुदेवे, णेव्वाणवादीणिह णातपुत्ते[4] ॥ २१ ॥

३६९. हत्थीसु एरावणमाहु णाते० वृत्तम् । सर्वहस्तिभ्यो हि ऐरावणः प्रज्ञायतेऽधिकः, तेन चान्येषामुपमानं क्रियते । सिंहस्तु मृगेभ्योऽधिको ज्ञायते । सलिलाभ्यो गङ्गा, सलिलवत्यः सलिलाः गाढगतो गच्छन्ति वा गङ्गा । पक्खीसु आ गरुले वेणुदेवे, लोकरूढोऽयं शब्दः—विनताया अपत्य वैनतेयः । णेव्वाणवादीणिह णातपुत्ते श्रेष्ठ इति वर्त्तते ॥ २१ ॥

३७०. जोधेसु णाते जध वीससेणे, पुप्फेसु वा[5] अरविंदं वदंति।
खत्तीण सेट्ठे जध दंतवक्के, इसीण सेट्ठे तध वद्धमाणे ॥ २२ ॥

३७०. जोधेसु णाते जध वीससेणे० वृत्तम् । युध्यत इति योधः, विश्वा—अनेकप्रकारा सेना यस्य स भवति विश्वसेनः, हस्त्यश्व-रथ-पदात्याकुला विस्तीर्णा, स तु चक्रवर्ती, अथवा विष्वक्सेनः वासुदेवः । पुप्फेसु वा अरविंदं वदंति, अरविन्दमिति पद्मं सहस्रपत्रं शतसहस्रपत्रं वा, तद्धि वर्ण-गन्धादिभिः पुष्पगुणैरुपेतं न तथाऽन्यानि । खत्तीण सेट्ठो क्षतात् त्रायन्त इति क्षत्रियाः । दम्यन्ते यस्य वाक्येन शत्रवः स भवति दान्तवाक्यः चक्रवर्त्ती, चक्रवर्त्तिनो हि शत्रवो वचसा दम्यन्ते, दान्तं वाक्यं यस्य स भवति दान्तवाक्यः । [किल्वा हि] अनृत-पिशुन-पारुष-किल्वा[6]दिभिः वाक्यदोषैः संयुज्यते । उक्तं हि—"मित-मंजुल-पुलावहसित जाव सच्चवयणा" [ ] । इसीण सेट्ठे तध वद्धमाणे ॥ २२ ॥

३७१. दाणाण सेट्ठं अभयप्पदाणं, सच्चेसु आ अणवज्जं वदंति।
तवेसु आ[7] उत्तम बंभचेरं, लोगुत्तमे[8] भगवं णातपुत्ते ॥ २३ ॥

३७१. दाणाण सेट्ठं अभयप्पदाणं० वृत्तम् । दीयत इति दानम् । "जो देज्ज मरंतस्सा धणकोडिं०" [ ] गाधा । "राया वि मरणभीतो०" गाधा । [ ] अत्र वध्यचोरदृष्टान्तः—

जधा कोई राया चउहिं पत्तीहिं परिवितो पासादावलोअणे णगरमवलोयंतो अच्छति । एगो य चोरो रत्तं एगसाडगं परिहितो रत्तचंदणाणुलित्तगत्तो रत्तकणवीरकण्ठेगुणो वज्झयाणऽप्पितो वज्जंतवज्झपडहो बहुजणपरिकरितो अवउडुयबंधेण बद्धो रायपुरिसेहिं पितुवणं जतो णिज्जति । ततो ताहिं राया भणितो—को एस ? त्ति । रायणा भणियं—एस चोरो वहणाय णीणिज्जत्ति । तत्थेगा भणति—महाराय ! तुब्भेहिं मम पुव्वं वरो दत्तो तं देह । रण्णा 'आमं' ति पडिस्सुतं । ततो ताए सो चोरो चतुव्विधेणावि ण्हाणादिअलंकारेण अलंकितो । वितियाए सव्वकामगुणभोयणं भोयावितो । ततियाए से बहुधणं दिण्णं, भणितो य—जस्स ते रोयति तस्स देहि त्ति । चउत्था तुसिणीता अच्छति । राइणा भणिता—तुमं पि वरं वरेहि, जं एतस्स दादव्वं[9] ति । सा भणति—णत्थि मे विभवो, जेण से पियं करेहामि त्ति । राइणा भणिता—णणु ते सव्वं रज्जं अहं च आयत्तो त्ति, तं जं ते रोयति तमेव तस्स देहि त्ति । ताए अभयो दत्तो पतिपितुणामं सादेतुं । तासिं चउण्ह वि कलहो जातो । एक्केक्का भणति—मए बहुं दत्तं ति । राया भणति—एस चेव पुच्छिज्जतु । ततो सो पुच्छितो भणति—ण याणामि केण वि मे किंचि दत्तं, मुक्को यया मे अभयो दत्त इति । अतो दाणाण सेट्ठं अभयप्पदाणमिति ॥

---

१ तेरावण° ख २ पु १ ॥ २ मिताणं ख १ ॥ ३ या ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ णायउत्ते पु १ ॥ ५ या जह अरविंदमाहु ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ कल्वा° स० वा० मो० ॥ ७ या उत्तिम ख १ ख २ पु २ । ता खं २ । वा पु १ ॥ ८ °त्तमे समणे णा° खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ दातव्यम् ॥

सव्वेसु आ अणवज्जं वदंति अनवद्यमिति यदन्येषामनुपरोधकृतं, सावद्यं हिंसेत्यपि गरहितं, **कौशिकरिषिवत्**— लोगे वि पयरति सुती जध किर सच्चेण **कोसिउ** त्ति रिसी। णिरए णिराभिरामे पडितो वधसंपयुत्तेणं ॥ १ ॥ अण्णं च—

तहेव काणं काणे त्ति पंडगं पंडगे त्ति वा। वाहियं वा वि रोगि त्ति तेणं चोरो त्ति णो वदे ॥ १ ॥
[दशवै० अ० ७ गा० १२]

इत्यादि सत्यमपि गर्हितम्, किमेवंविधेन सत्येनापि यत् परेषां परितापनम् ? । **तवेसु आ उत्तम बंभचेरं**, येन तपोनिष्टप्तदेहस्यापि मोहनीयं भवति, तेन सर्वतपसां उत्तमं ब्रह्मचर्यम्। अन्ये त्वेवं सम्प्रतिपद्यन्ते—

एकरात्रोषितस्यापि या गतिर्ब्रह्मचारिणः। [न सा क्रतुसहस्रेण वक्तुं शक्या युधिष्ठिर ! ॥ १ ॥]
तथा सर्वलोकोत्तमो भगवान् ॥ २३ ॥

३७२. ठितीण सिट्ठा लवसत्तमा वा, सभा सुधम्मा व सभाण सेट्ठा।
णेव्वाणसिट्ठा जध सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि [1]णाणी ॥ २४ ॥

३७२. ठितीण सिट्ठा लवसत्तमा वा० वृत्तम्। जे सव्वुकोसियाए ठितीए वट्टंति अणुत्तरोववातिगा ते **लवसत्तमा** इत्यपदिश्यन्ते, जति णं तेसिं देवाणं एवतियं कालं आउए पहुप्पंते तो केवलं पाविऊण सिज्झंता। पंचण्हं पि **सभाणं सभा सुधम्मा विसिट्ठा,** सा हि नित्यकालमेवोपभुज्यते, तत्थ माणवग-महिंदज्झय-पहरणकोसचोपाला, ण तधा इतरासु नित्यकालोपभोगः। **णेव्वाणसिट्ठा जध सव्वधम्मा,** निव्वाणश्रेष्ठा हि सर्वधर्माः, निर्वाणफला निर्वाणप्रयोजना इत्यर्थः, कुप्रावचनिका अपि हि निर्वाणमेव काङ्क्षन्ते इति। **ण णातपुत्ता परमत्थि णाणी,** जधा वा एते भाव(? भव)लोकश्रेष्ठा अणुत्तराः एवं ज्ञातपुत्रान्न परोऽस्ति कश्चित् ज्ञानी, स एव सर्वज्ञानिभ्योऽधिकः ॥ २४ ॥ स एव भगवान् सर्वलोकेऽपि भूत्वा—

३७३. पुढोवमे [2]धुणती विगयगेधी, ण [3]सण्णिहिं कुव्वति आसुपण्णे।
[4]तरित्ता समुद्दं व महाभवोघं, अभयंकरे वीरे अणंतचक्खू ॥ २५ ॥

३७३. पुढोवमे धुणती विगयगेधी० वृत्तम्। जधा पुढवी सव्वफाससहा तधा सो वि धुणीते अष्टप्रकारं कर्मेति वाक्यशेषः। बाह्या-ऽऽभ्यन्तरेषु वस्तुषु विगता यस्य ग्रेधी स भवति **विगतग्रेधी**। सन्निधानं सन्निधिः, द्रव्ये आहारादीनाम्, भावे क्रोधादीनाम्। कर्म वा सन्निधिः, यत् साम्परायिकं बध्नातीत्यर्थः। **तरित्ता समुद्दं व महाभवोघं,** यथा तीर्त्वा समुद्रं कश्चिन्निर्भयो भवति, एवं स भगवान् कर्मसमुद्रोत्तीर्ण इति। अभयं करोतीति **अभयङ्करः**, केषाम् ?, सत्त्वानाम्। विराजयति विदालयतीति वा **वीरः**। **अणंतचक्खुरिति** अनन्तदर्शनवान् ॥ २५ ॥

३७४. कोधं च माणं च तधेव मायं, लोभं चतुत्थं अज्झत्थदो[5]सा।
एताणि [6]चत्ता अरहा महेसी, ण कुव्वती [7]पावं ण कारवेइ ॥ २६ ॥

३७४. कोधं च माणं च तधेव मायं० वृत्तम्। आध्यात्मिका ह्येते **दोषाः**, बाह्या गृहादयः। **एताणि चत्ता अरहा महेसी,** एते जे उद्दिट्ठा, चत्ता णाम उज्झित्वा क्षपयित्वेत्यर्थः, अर्हतीत्यर्हा, महांश्चासौ रिषिः। **न स्वयं पापं** हिंसादि साम्परायिकं वा **करोति न कारयत** इति ॥ २६ ॥ किञ्च—

३७५. [8]किरियं अकिरियं वेणइगाणुवातं, अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं।
[9]से सव्ववादं इध वेदइत्ता, उवट्ठिते सम्म स दीहरायं ॥ २७ ॥

१ णाणं खं १ पु २ वृ० दी० ॥ २ धुणति ख १ ख २ ॥ ३ सन्निही ख २ पु १ ॥ ४ तरितुं स° ख १ ख २ पु २। तरित्तु पु १ ॥ ५ °दोसं ख २ पु १ ॥ ६ वता ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ पावं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ किरिया-ऽकिरियं खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ से सव्ववायं इति वेयइत्ता, उवट्ठिए संजम दीहरायं पु १ वृ० दी०। °ट्ठिए धम्म स दीह° खं १ पु २। °ट्ठिए सम्म स दीह° ख २ ॥

३७५. किरियं अकिरियं वेणइगाणुवातं० वृत्तम् । एतेषां वादिनामुपरिष्टात् कांश्चिद् विशेषान् वक्ष्यामः। दुवालसंगं गणिपिडगं **वादो,** सेसाणि तिण्णि तिसट्ठाणि **अणुवादो,** थोवं वा **अणुवादो** । **स सव्ववादं इध वेदइत्ता, स** इति स भगवान्, सर्वे वादाः **सर्ववादाः,** इह अस्मिंल्लोके **वेदयित्वा** ज्ञात्वेत्यर्थः । **उवट्ठिते सम्म स दीहरायं,** उपस्थितो मोक्षाय सम्यगुपस्थितः, न तु यथाऽन्ये । उक्तं हि—

[1]यथा परे सङ्कथिका विदग्धाः, शास्त्राणि कृत्वा लघुतामुपेताः ।
शिष्यैरनुज्ञामलिनोपचारैर्वक्तृत्वदोषास्त्वयि ते न सन्ति ॥ १ ॥ [सिद्ध० द्वा० ५ श्लो० २७]

दीहरातं णाम जावज्जीवाए ॥ २७ ॥

३७६. [2]स वारिया इत्थि स[3]राइभत्तं, उवहाणवं दुक्खखयट्ठ[4]याए ।
लोगं विदित्ता [5]अपरं परं च, सव्वं पभू वारिय सव्व[6]वारी ॥ २८ ॥

३७६. स वारिया इत्थि सराइभत्तं० [वृत्तम्] । **वारिया** णाम वारयित्वा, प्रतिषेध्यते च । इत्थिग्रहणे तु मैथुनं गृह्यते । **सराइभत्ते** त्ति वारयित्वेति वर्त्तते, एतचाऽऽत्मनि वारयित्वा, न ह्यस्थितः स्थापयतीति कृत्वा, पश्चात् शिष्यान् वारितवान्, अट्ठितो ण ठवेति परं । **उपधानवानिति** न केवलं निरुद्धाश्रवः, पूर्वकर्मक्षयार्थं तपोपधानवान[7]प्यसौ अतः । स्यात्—किंनिमित्तं तवोवधानवानासीत् ?, उच्यते—**दुक्खक्खयत्थं । लोगं विदित्ता अपरं परं च,** अपरो लोको मनुष्यलोकः, परस्तु नरक-तिर्यग्-देवलोकः, यत्स्वभावावेतौ लोकौ यैश्च कर्मभिः प्राप्येते इति । **सव्वं पभू वारिय,** प्रभवतीति प्रभुः, [**वारिय**] वशयित्वेत्यर्थः । अथवा **सव्वं** पाणादिवादाति दव्वतो, **प्रभुः** ज्ञेयं प्रति, प्रधानत्वाच वारितवान् शिष्यान् हिंसा-ऽनृत-स्तेय-परिग्रहेभ्य इति, मैथुन-रात्रिभक्ते तु पूर्वोक्ते । सर्वस्मादकृत्यादात्मानं शिष्यांश्च वारितवानिति **सर्ववारी,** सर्ववारणशील इत्यर्थः ॥ २८ ॥

इदानीं सुधर्मा तीर्थंकरगुणान् कथयित्वा श्रोतॄनाह—

३७७. सोचा य धम्मं अरहंतभासितं, समाहितं अट्ठपदोवसुद्धं ।
तं [8]सद्दहंताऽऽय जणा [9]अणाऊ, इंदा व देवाधिव [10]आगमिस्से ॥ २९ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ महावीरत्थतो सम्मत्तो ॥ ६ ॥

३७७. सोचा य धम्मं अरहंतभासियं० वृत्तम् । श्रुत्वेति निशम्य । इमं **धम्ममिति** योऽयं कथितः अर्थतो वा भाषितः गणधराणामित्यर्थः । सम्यग् आहितः **समाहितः,** सम्यगाख्यात इत्यर्थः । अत्थवंति पदानि, अथवाऽर्थैश्च पदैश्च उपेत्य शुद्धम् । **तं सद्दहंताऽऽय,** तमिति योऽयमुपदिष्टः, श्रुत्वा श्रद्धानपूर्वकमादाय, आदाय नाम गृहीत्वा च कृत्वा च **जना** नाम बहवो जनाः **अनायुषः** संवृत्ता इति वाक्यशेषः, सिज्झन्तीत्यर्थः । जे तु ण सिज्झंति ते **इंदा** भवंति **देवाधिपतयः आग-मि[11]ष्यति** आगमिस्सेण भवेण सुकुलुप्पत्तीए सिज्झिस्संति ॥ २९ ॥

॥ महावीरस्तवाध्ययनं षष्ठं समाप्तम् ॥ ६ ॥

---

१ यथा परे लोकसुखप्रियाणि इतिरूप चरण द्वात्रिंशिकायां दृश्यते । **यथा परेषां कथिका विदग्धाः** वृत्तौ ॥ २ **से** ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ३ °**रायिभ**° ख १ । °**रायभ**° ख २ पु १ ॥ ४ °**ट्ठताते** ख २ पु १ ॥ ५ **आरं पारं** ख २ वृपा० । **आरं परं** ख १ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ °**वारं** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ °**प्यसावसावत स्यात्** चूसप्र० ॥ ८ **सद्दहाणा य** सा० दी० । **सद्दहंता य** ख १ ख २ ॥ ९ **अणायू, यंदा** ख १ ॥ १० **आगमिस्संति ॥ त्ति बेमि** ख २ पु १ वृ० दी० । **आगमेस ॥ त्ति बेमि** ख १ । **आगमिस्सं ॥ ति बेमि** पु २ ॥ ११ °**सिष्येतेति** चूसप्र० ॥



[सत्तमं कुसीलपरिभासियज्झयणं]

इदानीं कुशील[1]परिभासितं ति जत्थ कुसीला सुसीला य परिभासिज्जंति। कुसीला—गिहत्था अण्णउत्थिगा य पासत्थादिणो य तेषां कुत्सितानि शीलानि अनुमत-कारितादीणि परिभासिज्जंति, जधा य संसारं परिभमंति। तस्सिमाणि चत्तारि अणुयोगद्दाराणि। पुव्वाणुपुव्वीए सत्तमं। अत्थाधिगारो [सु]सीलाणं कुसीलाणं च सब्भावं जाणित्ता कुत्सिता कुत्सितसीलाइं असीलाइं च वज्जेतव्वाइं, जे य तेसु वट्टति ते वज्जेतव्वा॥ णामणिप्फण्णे सीलं ति एगपदं णामं ति, तत्थ गाधा—

❀ [2]सीले चतुक्क दव्वे पाउरणा-ऽऽभरण-भोयणादीसु।
भावे तु ओघसीलं अभिक्ख[3]आसेवणा चेव॥ १॥ ७९॥

सीलं णामादि चतुव्विधं। णाम-ट्ठवणाओ गताओ। दव्वे वतिरित्तं दव्वसीलो यथा—प्रावरणसीलो देवदत्तः प्रलम्बप्रावरणशीलो वा, तथा नित्यभूषणशीलः। नित्यमण्डनशीला ते भार्या, अपि च चोद्यतेऽशीलवती वा। तथा नित्यभोजनशीलोऽसि, तथा मृष्टभोजनशीलो न चोपार्जनशीलोऽसि। यो वा यस्य द्रव्यस्य स्वभावः तद् द्रव्यं तच्छीलं भवति, यथा—मदनशीला मदिरा, मेध्यं घृतं सुकुमारं चेत्यादि। भावशीलं दुविधं, तं०—ओहसीलं अभिक्खासेवणसीलं च॥ १॥ ७९॥

तत्थ ओहसीलं—

[4]ओघे विरती सीलं विरताविरती य अविरति असीलं।
धम्मे णाण-तवादी अपसत्थ अधम्म कोधा[5]दी॥ २॥ ८०॥

ओघे विरती सीलं॰ गाधा। ओहो णाम अविसेसो, जधा सव्वसावज्जजोगविरतो विरताविरतो वा, एयं ताव पसत्थं ओहसीलं। अप्पसत्थं ओहसीलं तु तद्विधर्मिणी अविरतिः सर्वसावद्यप्रवृत्तिरिति। अधवा भावसीलं दुविधं—पसत्थं अप्पसत्थं च। एक्केक्कं दुविधं—ओहसीलं अभिक्खासेवणसीलं च। प्रशस्तौघशीलो धर्मशीलो। अभिक्खासेवणाए णाणसीलो तवसीलो। णाणे पंचविधे सज्झाए उवयुत्तो, अभिक्खणं अभिक्खणं गहण-वत्तणाए अप्पाणं भावेति एस णाणसीलो। तवसीलो तवेसु आतावण अणसणादिकरणसीलो। एवं दुविधे वित्थरेणं जोएतव्वमिति। अप्पसत्थभावओ ओहसीलो पावसीलो डड्डसीलो एवमादि। अप्पसत्थअभिक्ख[आसेवणा]भावसीलो कोधसीलो जाव लोभसीलो चोरणसीलो पियणसीलो पिसुणसीलो परोवतावणसीलो कलहसीलो इत्यादि॥ २॥ ८०॥

अथ कस्मात् कुसीलपरिभाषितमित्यपदिश्यते?, उच्यते, जेण एत्थ—

परिभासिता कुसीला य एत्थ जावंति अविरता केयं[6]।
सु त्ति पसंसा सुद्धे दुं[7] त्ति दुगुंछा अपरिसुद्धे॥ ३॥ ८१॥

परिभासिता कुसीला॰ गाधा। येनेह सपक्खे परपक्खे य कुसीला परिभासिता। सपक्खे पासत्थादि, परपक्खे अण्णउत्थिया। जावंति अविरता केय त्ति, सव्वे गिहत्था असीला एव। सु त्ति पसंसा सुद्धे, सुरिति प्रशंसायां निपात इति, यः शुद्धशील इत्यपदिश्यते। दुः कुत्सायाम्, अशुद्धशीलो दुःशील इत्यपदिश्यते॥ ३॥ ८१॥ कथं कुसीला?—

अप्फासुयपडिसेवी य णाम भुज्जो य सीलवादी य।
फासुं वदंति सीलं अफासुगा मो अभुंजंता॥ ४॥ ८२॥

---

१ °लपसितंसितं ति चूसप्र०॥ २ सील चउक्कं दव्वे ख १ खं २ पु २॥ ३ °क्खमासे° ख २ पु २॥ ४ ओघे सीलं विरती ख १। ओहे सीलं विरती ख २ पु २ वृ०॥ ५ कोहाई खं १ खं २॥ ६ केति ख २ पु २। केई ख १॥ ७ कु त्ति ख १ ख २ पु २ वृ०॥

अप्फासुयपडिसेवी य० गाधा। जे **अफासुयं** कय-कारियं अणुमतं वा भुंजंति ते यद्यपि ऊर्ध्वपादा अधोमुखा धूमं पिवन्ति मासान्तश्च भुञ्जते तधा वि कुसीला एव, जे अफासुगाइं आहारोवधिमादीणि पडिसेवंति असंजता असयमरता।

[उक्तं च—]

अणगारवादिणो पुढविहिंसगा णिग्गुणा अगारिसमा। णिद्दोस त्ति य मइला[1] साधुपदोसेण मइलतरा ॥ १ ॥

[आचा० नि० गा० १००]

फासुं वदंति सीलं, जे संजमाणुपरोघेण फासुयं भुंजंति अफासुयं परिहरंता ते फासुभोअणसीला इत्यपदिश्यन्ते ॥४॥८२॥ जे पुण ते अफासुयगभोई असीला कुसीला य ते इमे—

जह णाम गोतमा [2]रंडदेवता वारिभद्दगा चेव।
जे अग्गिहो[3]मवादी जलसोयं [4]केइ (? जे इ) इच्छंति ॥ ५ ॥ ८३ ॥

॥ कुसीलपरिभासा ॥ ७ ॥

जह णाम गोतमा रंडदेवता० गाधा। **गोतमा** णाम पासंडिणो **मसगजातीया,** ते हि गोणं णाणाविधेहि उवाएहिं दमिऊण गोणपोतगेण सह गिहे गिहे धण्णं ओहारेंता हिंडंति। **गोव्वतिगा** वि **धीयार**प्राया एव, [5]ते च गोणा इव णत्थि-तेल्लगा रंभायमाणा गिहे गिहे सुप्पेहि गहितेहि धण्णं ओहारेमाणा विहरंति। अवरे [6]**रंडदेवगा**वरप्राया। **वारिभद्दगा** प्रायेण जलसक्ता हत्थ-पादपक्खालणरता ण्हायंता य आयमंता य [7]संझातिसु तिसु य जलणिवुड्डा अछंपरिग्गायवादि। अण्णे **अग्गिहोमवादी** तावसा धीयारायारा अग्गिहोत्तेण सग्गं इच्छंति। **जलसोयं केइ (? जे इ) इच्छंति, भागवत-दग-सोयरियादि** तिण्णि तिसट्ठा पावादिगसता, जे य सलिंगपडिवण्णा कुसीला अफासुयगपडिसेवी ॥ ५ ॥ ८३ ॥

गतो णामणिप्फण्णो। सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं जाव "पंचधा विद्धि लक्खणं" [कल्पभाष्यगाथा ३०२] ति इदं सूत्रम्—

३७८. पुढवी य आऊ अगणी य वायू, तण-रुक्ख-बीया[8] य तसा य पाणा।
जे अंडया जे य जराउ पाणा, संसेयया जे र[9]सयाभिहाणा ॥ १ ॥

३७८. पुढवी य आऊ अगणी य वायू तण-रुक्ख-बीया य तसा य पाणा० [वृत्तम्]। **तण-रुक्ख-बीय** त्ति वणस्सतिकायभेदो गहितो। एक्केको द्विविधो–[अबीजाद्] बीजाद्वा प्रसूतिः। पच्छाणुपुव्वी वा गहिया, जधा वणस्सति-काइयाणं भेदा तधा पुढविमादीण वि भेदो भाणितव्वो। तं जधा—"पुढवी य सक्करा वालुगा य०" [प्रज्ञा० पद १ सू २२ गा० ८ तथा आचा० नि० गा० ७३] एवं सेसाण वि भेदा भाणितव्वा। तसकाइयाणं तु इमो भेदो सुत्ताभिहित एव, तं०— **जे अंडया जे य जराउ पाणा,** अण्डेभ्यो जाता अण्डजाः पक्ष्यादयः, **जरायुजा** णाम जरावेढिया जायंते गो-महिष्य-ऽजा-ऽविका-मनुष्यादयः। **संस्वेदजाः** गोकरीपादिषु कृमि-मक्षिकादयो जायन्ते जूगा-मकुण-लिक्खादयो य। **रसजा** दधि-सोवीरक-मद्यादिषु रसजा इत्यभिधानं जेसिं रसजा इत्यभिधानं(? ना) वा ॥ १ ॥

३७९. एताइं कायाइं पवेदिताइं, एतेसु जा[10]णं पडिलेह सायं।
ए[11]तेसु काएसु तु आतदंडे, पुणो पुणो विप्परियासुवेति ॥ २ ॥

३७९. एताइं कायाइं पवेदिताइं० वृत्तम्। **एतानि** यान्युद्दिष्टानि कायविधानानि **प्रवेदितानीति** प्रदर्शितानि अर्हद्भिः। **एतेसु जाणं** एतेष्विति ये उक्ताः, जानन्निति जानकः, **प्रत्युपेक्ष्य सातं** सुखमित्यर्थः। कधं **पडिलेहेति** ?–जधं

१ °ला विरइदुगुंछाइ म° आचाराङ्गनिर्युक्तौ पाठ ॥ २ चंडिदेवगा वा° ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ३ °होत्तवा° ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ४ जे य इच्छंति ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ५ ते वि गोणा इवाणत्थि° पु० सं० ॥ ६ "चंडिदेवय' त्ति चक्रधरप्राया" इति वृत्तिकृत. ॥ ७ सङ्क्रान्तिसु तिसु य जलणिवुड्डा अच्छंति परिव्वायगादि मु० ॥ ८ बीता त तसा ख २ पु १ ॥ ९ रस-ताभिधाणा ख १ ॥ १० जाण ख १। जाणे ख २ पु १ पु २ ॥ ११ एतेहि काएहि य आतदडे, एतेसु या विप्परियासुवेंति ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। एतेण काएण य सा०। °यासुवेदी ख १ ॥

मम न पियं दुक्खं सुहं चेट्ठं एवमेषां पडिलेहित्ता दुःखमेषां न कार्यं णवएण भेदेण । जे पुण **एतेसु काएसु तु आतदंडे,** यः कुशीलः अशीलो वा एषां कायानां आताओ दंडेन्ति, अथवा स एवाऽऽत्मानं दण्डयति य एषां दंडे णिसिरति स आत्मदण्डः । एतेष्वेव **पुनः पुनः विप्परियासुवेति, विपर्यासो** नाम जन्म-मरणे, संसारो वा **विपर्यासो** भवति । अथवा सुखार्थी तानारभ्य तानेवानुप्रविश्य तानि तानि दुःखान्यवाप्नुते, सुखविपर्यासभूतं दुःखमवाप्नोति । विपरीतो भावो **विपर्यासः**, धर्मार्थी तानारभ्याधर्ममाप्नोति, मोक्षार्थी तानारभमाणः संसारमाप्नोति ॥ २ ॥

एवं सो अविरतो लोगो अव्रतलोकः कुशीललोकाद् मनुष्यलोकात् प्रच्युतः तानेव कायान् प्राप्य—

३८०. जाई[1]-वहं अणुपरियट्टमाणे, तस-थावरेसुं[2] विणिग्घातमेति ।
से जातिजातिं बहुकूरकम्मे, जं कुव्वती मिज्जंति[3] तेण बाले ॥ ३ ॥

३८०. जाई-वहं अणुपरियट्टमाणे० वृत्तम् । जातिश्च वधश्च जाति-वधौ, जन्म-मरणे इत्युक्तं भवति । समन्ताद् वर्त्तते [**अनुपरिवर्त्तते**] । ते पुण छ वि काया समासओ दुविहा भवंति, तं जधा—तसा थावरा य । थावरा तिविहा—पुढवी आऊ वणस्सई । तसा तिविहा—तेऊ वाऊ उराला य तसा । तेसु **तस-थावरेसुं विणिग्घातमेति,** अधिको णियतो वा घातः निघातः, विविधो वा **घातः** शारीर-मानसा दुःखोदया अट्ठपगारकम्मफलविवागो वा । **से जातिजाती** परियट्टमाणे, **से** इति स कुसीललोकः, **जातिजाती**ति वीप्सार्थः, तासु तासु जातिसु त्ति तस-थावरजातिसु अणुसंचरं **कूराणि** हिंसादीणि **कम्माणि बहूनि** अस्य सः । कूरकम्मो वि बहुआरंभो वि क्कं[4] भंगा । **यद् यदकरोत् तेन तेन** कर्मणा **मीयते,** "मी हिंसायां" वा, मार्यत इत्यर्थः, गण्यत इत्यर्थः, **"मज्जते" वा** निमज्जइत्यर्थः ॥ ३ ॥

भावमन्दस्तु कुशीललोको गहितो, गिही पासंडी वा यत् पाप करोति तत् किमिह वि(वे)द्यते ?, अनेकान्तः—

३८१. अस्सिं च लोगे अदु वा परत्थ[5], सतग्गसो वा तह अण्णहा[6] वा ।
संसारमावण्ण परंपरेण[7], बंधंति वेदेंति य दुण्णिताइं ॥ ४ ॥

३८१. अस्सिं च लोगे अदु वा परत्थ० वृत्तम् । कधं ?, ईधलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे असुभफलविवागा १ इहलोए दुच्चिण्णा कम्मा परलोए असुभफलविवागा २ परलोके दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे असुभफलविवागा ३ परलोए दुच्चिण्णा कम्मा परलोए असुभफलविवागा ४ । कथम् ?, उच्यते—केनचित् कस्यचिद् इहलोके शिरश्छिन्नं तस्याप्यन्येन[9] छिन्नं एवं इहलोगे कतं इहलोगे च फलति १, णरगाइसु उववण्णस्स [इहलोगे कत परलोगे फलति] २, परलोए कतं इहलोए फलति, जधा **दुहविवागेसु मियापुत्तस्स** ३ परलोए कतं परलोए फलति, दीहकालट्ठितीयं कम्मं अण्णम्मि भवे उदिज्जति ४ । अथवा इहलोक इह चारकबन्धः अनेकैर्यातनाविशेषैः तद् वेदयति, तदन्यथावेदित कस्यचित् परलोके तेन वा प्रकारेण अन्येन वा प्रकारेण विपाको भवति । तथाविपाकस्तथैवास्य शिरश्छिद्यते, तत् पुनरनन्तशः सहस्रशो वा, अथवा असकृत्तथा सकृदन्यथा, अथवा शतशश्छिद्यते अन्यथेति सहस्से वा । अथवा शिरश्छित्वा न शिरश्छेदमवाप्नोति हस्तच्छेदं पादच्छेदं वा अन्यतराङ्गछेद वा प्राप्नोति, सारीर-माणसेण वा दुक्खेण वेद्यते । एवं यादृशं दुःखमात्रं परस्योत्पादयति ततो मात्रतः **शतशो**मात्राधिकैत्वं[10] प्राप्नोति **अन्यथा** वा । तएवं कुशीला **संसारमावण्ण परंपरेण**ससारसागरगता इत्यर्थः, परपरेणेति परभवे, ततश्च परतरभवे, एवं जाव अणंतेसु भवेसु **बंधंति वेदेंति य दुण्णिताइं** दुट्ठु नीतानि दुर्नीतानि कुत्सितानि वा नीतानि कर्माणीत्यर्थः ॥ ४ ॥

---

१ जाईपहं पु १ पु २ वृ० । जाईवहं ख १ ख २ दी० चूपा० ॥ २ °थावरेहिं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ मज्जते चूपा० ॥ ४ क्क इति चतु सख्यायोतकोऽक्षराङ्क ॥ ५ परत्था ख १ पु १ । पुरत्था ख २ पु २ ॥ ६ अण्णधा ख २ पु १ ॥ ७ परं पर ते, त्तं° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ एतदर्थक सूत्र स्थानाङ्गे चतुर्थस्थाने द्वितीयोद्देशके सूत्र २८२ पत्र २१०-१ ॥ ९ तस्याप्यनेन पु० । तस्यापत्येन वा० मो० ॥ १० °धिगत्वं वा० मो० ॥

एवं ताव ओहतः उक्ताः कुशीला गृहिणः प्रव्रजिताश्चेति । इदानीं पाषण्डलोककुशीलाः परामृश्यन्ते । तद्यथा—

३८२. जे मातरं[1] च पितरं च हेच्चा, समणव्वए[2] अगणिं समारभेज्जा ।
अथाऽऽह्[3] से लोगे अणज्जधम्मे, भूताइं जे हिंसति आतसाते ॥ ५ ॥

३८२. जे मातरं च पितरं च हेच्चा० वृत्तम् । जे इति अणिद्दिट्ठणिद्देसो । एते हि करुणानि कुर्वाणा दुस्त्यजा इत्येतद्ग्रहणम्, शेषा हि भ्रातृ-भार्या-पुत्रादयः सम्बन्धात् पश्चाद् भवन्ति न भवन्ति वा इत्यतो माता-पितृग्रहणम् । चग्रहणाद् भ्रातृ-भगिनी जाव सयण-सगंथसथवो थावर-जंगमरज्जं च जाव दाणं दाइयाणं परिभाएत्ता, तेसु य जं ममत्तं त हेच्चा, हेच्चा नाम हित्वा, **श्रमणव्रतिनः** श्रमण इति वा वदन्ति अग्निं चाऽऽरभन्ते नवकस्यान्यतमेन अन्यतमाभ्यां अन्यतमैर्वा । **अथाऽऽह से लोगे अणज्जधम्मे,** अथ प्रश्ना[4]-ऽऽनन्तर्यादिषु । आहेति उक्तवान् । स इति स भगवान् । **लोकः** पाषण्डिलोकः अथवा सर्वलोक एव । अनार्जवो धर्मो यस्य सोऽयं **अणज्जधम्मे** । कथं अनार्जवः ? अहिंसक इति चात्मान ब्रुवते न चाहिंसकः । कथं समारभन्ते ? पञ्चाग्नितापादिभिः प्रकारैः पाकनिमित्तं च[5] **भूताइं जे हिंसति आतसाते, भूतानीति** अग्निभूतानि यानि चान्यानि अग्निना वध्यन्ते, आत्मसातनिमित्तं **आत्मसातम्** । तद्यथा—तपन-वितापन-प्रकाशहेतुम् ॥ ५ ॥

३८३. उज्जालिया[6] पाण तिवातयंति, णिव्वाविया अगणि निपातएज्जा ।
तम्हा[7] तु मेधावि समिक्ख धम्मं, ण पंडिए अगणि समारभेज्जा ॥ ६ ॥

३८३. उज्जालिया पाण तिवातयंति, णिव्वाविया अगणि निपातएज्जा० [वृत्तम्] । उज्जालयन्तस्ते पृथिव्यादीन् प्राणान् **त्रिपातयन्ति** त्रिभ्यः मनो-वाक्-कायेभ्यः पातयन्ति त्रिपातयन्ति, आयुर्बलेन्द्रियप्राणेभ्यो वा पातयन्ति त्रिपातयन्ति । उक्तं च—तण-कट्ठ-गोमयसिता० [ ] । **णिव्वाविया अगणिमेव** निपातयंति । उक्त हि—"दो[8] भंते ! पुरिसा अण्णमण्णेण सद्धिं अगणिकायं समारभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेति एगे पुरिसे अगणिकायं णिव्ववेति, तेसि णं भंते ! पुरिसाणं कतरे पुरिसे महाकम्मतराए ? कतरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए ? गोतमा ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेति से णं पुरिसे महाकम्मतराए, तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं णिव्ववेति से पुरिसे अप्पकम्मतराए । से केणट्ठेणं० ?, गोतमा ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेति से णं पुरिसे बहुतरागं पुढविक्कायं [समारभति आउ०] वायु० वणस्सतिकायं० तसकायं० अप्पतरागं अगणिकायं समारभति, तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकायं णिव्ववेति से णं पुरिसे अप्पतरागं पुढविकायं समारभति जाव अप्पतरागं तसकायं समारभति बहुतरागं अगणिकायं समारभति से तेणट्ठेणं गोतमा ! एवं वुच्चति० ।" [भग० श० ७ उ० १० सू० ३०७ पत्र ३२६-२] अपि चोक्तम्—

---

१ वा खं २ पु १ ॥ २ °व्वदे ख २ पु १ पु २ ॥ ३ अहाऽऽहु से लोए कुसीलधम्मे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । अदाहु ख २ । लोते ख २ पु १ ॥ ४ प्रश्नयादिषु चूसप्र० ॥ ५ च भूयाइं० वृत्तम् भूताइ चूसप्र० ॥ ६ उज्जालओ पाण निवातएज्जा, निव्वावओ अगणि निवायवेज्जा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । पाण तिवा° ख २ पु १ पु २ वृपा० ॥ ७ तम्हा उवे वा वि ख १ ॥ ८ "दो भंते ! पुरिसा सरिसया जाव सरिसभंड-मत्तोवगरणा अन्नमन्नेण सद्धिं अगणिकायं समारभंति तत्थ ण एगे पुरिसे अगणिकाय उज्जालेति एगे पुरिसे अगणिकाय णिव्वावेति, एएसि ण भंते ! दोण्ह पुरिसाण कयरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव महासवतराए चेव महावेयणतराए चेव ? कयरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेयणतराए चेव ? जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ ? जे वा से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेति ? कालोदाई ! तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ से ण पुरिसे महाकम्मतराए चेव जाव महावेयणतराए चेव, तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेइ से ण पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेयणतराए चेव । से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ तत्थ ण जे से पुरिसे जाव अप्पवेयणतराए चेव ? कालोदाई ! तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ से ण पुरिसे बहुतराग पुढविकाय समारंभति बहुतराग आउक्कायं समारभति अप्पतराय तेउकाय समारभति बहुतराग वाउकाय समारंभति बहुतरायं वणस्सइकाय समारंभति बहुतराग तसकाय समारभति, तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेति से ण पुरिसे अप्पतराय पुढविक्काय समारभइ अप्पतराग आउक्काय समारभइ बहुतराग तेउक्काय समारंभइ अप्पतरागं वाउकाय समारभइ अप्पतराग वणस्सइकाय समारभइ अप्पतरागं तसकाय समारंभति से तेणट्ठेण कालोदाई ! जाव अप्पवेयणतराए चेव । सूत्रं ३०७ ।" इतिरूप सूत्रपाठो भगवत्यां वर्त्तते ॥

भूताण एस आघातो, हव्ववाहो ण संसयो। [दशवै० अ० ६ गा० ३५]

यस्माद्वेवम्—तम्हा तु मेधावि समिक्ख धम्मं ण पंडिए अगणि समारभेज्जा कण्ठ्यम्। तु विसेसणे। अहंधम्मं समीक्ष्य समारम्भो हि तपन-वितापन-प्रकाशहेतुर्वा स्यात् ॥ ६ ॥

कतरान् जीवानाघातयन्ति यस्याऽऽरम्भप्र[1]वृत्ताः कुसीलाः ? उच्यते—

३८४. पुढवी वि जीवा आऊ वि जीवा, पाणा य[2] संप[3]ातिम संपतंति।
संसे[4]दया कट्ठसमस्सिता[5] य, एते दहे अगणि समारभंते ॥ ७ ॥

३८४. पुढवी वि जीवा आऊ वि जीवा० वृत्तम्। अपिः पदार्थसम्भावने। पुढवी जीवसंज्ञिताः, ये च तदाश्रिताः वनस्पति-त्रसादयः। एवं आऊ वि, तदाश्रिताः प्राणाश्च सम्पतन्तीति सम्पातिनः शलभ-वा[6]य्वादयः[7]। संसेदया कट्ठसमस्सिता य, सस्वेदजाः करीषादिष्विन्धनेषु, काष्ठेषु घुण-पिपीलिकाण्डादयः। एते दहे अगणि समारभंते ॥ ७ ॥

एवं तावदग्निहोत्राद्यारम्भात् तापसाद्याः अपदिष्टाः, पाकानिवृत्ताश्च शाक्यादयः। इदानीं ते चान्ये च वणस्सति-समारम्भान्विताः परामृश्यन्ते—

३८५. हरिताणि भूताणि विलंबगाणि, आहारदेहा[8] य पुढो सिताणि।
जो छिंदति आतसातं पडुच्च, पागब्भिपाणो बहुणं निवाती ॥ ८ ॥[9]

३८५. हरिताणि भूताणि विलंबगाणि० वृत्तम्। हरितग्रहणात् सर्व एव वनस्पतिकाया गृह्यन्ते, नीला हरिताभा आर्द्रा इत्यर्थः, हरितादयो वा वनस्पतयः। भूतानि जङ्गमानि। विलम्बयन्तीति विलम्बकानि, भूतस्वभावं भूताकृतिं दर्शयन्तीत्यर्थः। तद्यथा—मनुष्ये निषेक-कलला-ऽर्बुद-पेशि-व्यूह-गर्भ-प्रसव-बाल-कौमार-यौवन-मध्यम-स्थाविर्यान्तो मनुष्यो भवति। एवं हरितान्यपि शाल्यादीनि जातानि अभिनवानि सस्यानीत्यपदिश्यन्ते, सञ्जातरसाणि यौवनवन्ति, परिपक्वानि जीर्णानि, परिशुष्काणि मृतानीति। तथा वृक्षः अङ्कुरावस्थो जात इत्यपदिश्यते, ततश्च मूल-स्कन्ध-शाखादिभिर्विशेषैः परिवर्द्धमानः पोतक इत्यपदिश्यते, ततो युवा मध्यमो जीर्णो मृतश्चान्ते स इति। एवं भूतविलम्बितं कुर्वन्ति। कारणेन कार्यवदुपचारात्, आहारमया हि देहा देहिनाम्, अन्नं वै प्राणाः, आहाराभावे हि वृक्षा हीयन्ते म्लायन्ते शुष्यन्ते च मन्दफलाश्चाफलाश्च भवन्ति। पुढो सिताणि पृथक् पृथक् श्रितानि, न तु य एव मूले त एव स्कन्धे, केषाञ्चिदेकजीवो वृक्षः तद्व्युदासार्थं पुढोसिताइं ति। तान्येवम्—संखेज्जजीविताणि [असंखेज्जजीविताणि] अणंतजीविताणि वा। जो छिंदति आतसातं पडुच्च, आत्म-परोभयसुह-दुःखहेतुं वा आहार-सयणा-ऽऽसणादिउवभोगत्थं। प्रागल्भिप्राज्ञो नाम निरनुक्रोशमतिः, उपकरणद्रव्याण्येतानि। बहुणं निवाति त्ति एगमपि छिन्दन् बहून् जीवान् निपातयति, एगपुढवीए अणेगा जीवा ॥ ८ ॥ किञ्च—

३८६. जाइं च वुड्ढिं च विणासयंते, बीयादि अस्संजय आतदंडे[10]।
अधाऽऽहु से लोए[11] अणज्जधम्मे, [12]बीयादि जे हिंसति आतसाते ॥ ९ ॥

३८६. जाइं च वुड्ढिं च विणासयंते० वृत्तम्। जातिरिति बीजम्, तं मुशलोदूखला-ऽऽस्यादिभिर्विनाशयन्ति। यश्चकैश्च जातिविनाशे अङ्कुरादिवृद्धिर्हता एव, जात्यभावे कुतो वृद्धिः ?। अधवा जातिं पि विणासेति बीजं। मुड्ढिं (वुड्ढिं) पि णासेति अङ्कुरादि। बीजादीति बीजा-ऽङ्कुरादिक्रमो दर्शितः, पुव्वाणुपुव्वी च दसविधाणं। स एवं असंयतः आत्मानं दण्डयति परं च। अधाऽऽहु से लोए अणज्जधम्मे, अथेत्यानन्तर्ये, आहुस्तीर्थकराः, स इति स पाखण्डी, अनार्यधर्मोऽस्य स भवति अणज्जधम्मो। जधावादी तधाकारी न भवति जो हि बीजादि हिंसति आत्मसातनिमित्तमिति ॥ ९ ॥

---

१ °प्रवृत्तं चूसप्र० ॥ २ ति ख २ पु १ ॥ ३ °पायिम संप° ख १। °पासिभयं प° पु १ ॥ ४ संसेतया खं १ ॥ ५ °तात, एते ख २ पु १ ॥ ६ °वाग्वादयः चूसप्र० ॥ ७ °दयः। संसेय० वृत्तम् संसेदया पु० स० ॥ ८ °देहाइं पु° ख २ पु १ पु २। °देहाई पु° ख १ ॥ ९ आयसुहं पडुच्चा, पागब्भि पाणे बहुणं तिवाति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० °जतियायदंडे ख २ पु १ पु २ ॥ ११ लोते ख २ पु १ ॥ १२ हरियादि ख २ पु १ पु २ ॥

एवं तान् प्राप्तवयसोऽप्राप्तवयसो वा वृक्षादीन् हत्वा ते कुशीलाः मानुष्यात् प्रच्युताः प्राप्य—

३८७. गब्भायि[1] मिज्जंति वुया-ऽवुयाणा, णरा परे[2] पंचसिहा कुमारा।
युवाणगा मज्झिम[3] थेरगा य, चयंति ते आउखए[4] पलीणा॥ १०॥

३८७. गब्भायि मिज्जंति वुया-ऽवुयाणा॰ वृत्तम्। गर्भे इति वक्तव्ये **गर्भादि** इति यदपदिश्यते तद् गर्भाद्यवस्थानिमित्तम्। तद्यथा—निषेक-कलला-ऽर्बुद-पेशि-व्यूह-मांस-गर्भाद्यवस्थानामन्यत[र]स्यां कश्चिद् म्रियते। अथवा मासिकादिगर्भावस्थासु नवमासान्तास्वन्यतरस्यां म्रियते। गतगर्भा विगर्भा ते तु ब्रुवाणाश्च, ग्रन्थानुलोम्यात् पूर्वं ब्रुवाणाः[5], इतरथाऽनुपूर्वमब्रुवाणा ब्रुवाणा इति यावत्, न माता-पित्रादि व्यक्तया गिराऽभिधत्ते, ततः परं ब्रुवाणाः। **पञ्चशिखो** नाम पञ्चचूडः **कुमारः**, अथवा पञ्च इन्द्रियाणि शिखाभूतानि बुद्धिसमर्थानि स्वे स्वे विषये तस्मात् **पञ्चशिखः**, तस्मिन्नपि कदाचिद् म्रियते। **युवाणगा मज्झिम थेरगा य** कण्ठ्यम्। **चयंति** सातत[6]तो भवतो वा पश्चात् **प्रलीयन्ते**, यैर्यथाऽऽयुर्निर्वर्तितं यैश्च यथा जीवोपघातादिभिरल्पान्यायूंपि निर्वर्तितानि सोपक्रमाणि निरुपक्रमाणि च। भणितं च—"तीहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउअत्ताए कम्मं पकरेंति" [स्थाना॰ स्था॰ ३ उ॰ १ सू॰ १२५ पत्र १०८-१]। एवं पंचेंदियतिरिएसु वि **गब्भादि मिज्जंति वुअब्वुयाणा,** व्याधिभिरागन्तुकैर्वेदनाप्रकारैर्म्रियन्ते। एगिंदिएसु वि तहाणुरूवं भाणितव्वं॥ १०॥

३८८. वुज्झाहि[7] जंतू! इह माणवेसु, दट्ठुं भयं बालिएणं अलं भे।
एगंतदुक्खे जरिए[8] हु लोए, सकम्मुणा विप्परियासुवेति[9]॥ ११॥

३८८. वुज्झाहि जंतू! इह माणवेसु॰ वृत्तम्। किं बोद्धव्यम्?, न हि कुशीलपाखण्डलोकः त्राणाय, धम्मं च वुज्झ दुल्लभं च बोधिं वुज्झ। जहा—

माणुस्स-खेत्त-जाती-कुल-रूवा-ऽऽरोग्गमाउअं बुद्धी। सम(व)णोग्गह सद्धा[10] दरिसणं च लोगम्मि दुलभाइं॥ १॥

[आव॰ नि॰ गा॰ ८३१ पत्र ३४१ तथा उत्त॰ नि॰ गा॰ १५८ पत्र १४५]

जंतोरिति हे जन्तो! इहेति इह माणवे हि दृष्ट्वा भयानि इतश्च तस्य जाति-जरा-मरणादीनि नरकादिदुःखानि च, तेण **दट्ठुं भयं वालिएणं अलं मे,** वालभावो हि वालिकं कुशीलत्वमित्यर्थः, नमुते (?) कुशीलं अप्रतः। **एगंतदुक्खे जरिए हु लोगे** त्ति, णिच्छयणतं[11] पडुच्च एगंतदुक्खो संसारः। तं जधा—

जम्मं दुक्खं जरा दुक्ख रोगा य मरणाणि य। अहो! दुक्खो हु संसारो जत्थ किस्संति जंतवो॥ १॥

[उत्तरा॰ अ॰ १९ गा॰ १५]

तधा—तण्हातितस्स पाणं कूरो छातस्स॰ [भत्तए तेत्ती। जेणं[12] सइं संतत्तं जरितमिव जगं कलगलेइ॥ १॥]

जरिते त्ति "आलित्ते णं भंते! लोए पलित्ते णं भंते! लोए॰ जराए मरणेण य" [भग॰ श॰ ९ उ॰ ३३ सू॰ ३८२ पत्र ४५८, ज्ञाता॰ श्रु॰ १ अ॰ १ सू॰ २६ पत्र ६०-२]। अधवा—

"जेण सइं संतत्त जरितमिव जगं कलगलेति।" [ ]

ज्वरित इव ज्वलितः सारीर-माणसेहि दुक्ख-दोमणस्सेहि कषायैश्च नित्यप्रज्वलितवान् **ज्वरितः**। **सकम्मुणा विप्परियासुवेति** त्ति, स्वकृतेन कर्मणा, नेश्वरादिकृतेन, विप्परियासो ण गरादि द्व्क नानाविधैः प्रकारैर्विपरीतमायाति, तदपि चोक्तम्॥ ११॥ उक्तः कुशीलविपाकः। पुनरपि कुशीलदर्शनान्येवाभिधीयन्ते—

---

१ गब्भाति ख १ ख २। गब्भाइ पु १ पु २॥ २ णराऽवरे ख २ पु २॥ ३ मज्झिम पोरुसा य ख १ वृपा॰॥ ४ °खते खं २ पु १॥ ५ कुर्वाणाः चूसप्र॰॥ ६ 'साततो' शातावेदनीयादित्यर्थ॥ ७ संवुज्झहा जंतवो! माणुसत्तं, दट्ठुं भयं वालिसेणं अलंभो खं १ ख २ पु १ पु २ वृ॰ दी॰॥ ८ जरिते हु लोते ख २ पु १। जरिए व लोए ख १ वृ॰ दी॰॥ ९ °रितासु° ख १॥ १० सद्धा संजमो य लो° इति आव॰ नि॰ उत्त॰ नि॰ च पाठ॥ ११ निश्चयनयमतेन हि कर्मोदयसम्पादितानां सुखादिपरिणामानां दु खरूपत्वेति॥ १२ दुक्खसयसंपतत्तं इति वृत्तौ पाठ॥

३८९. इहेगे मूढा पवदंति मोक्खं, आहारसंपज्जणवज्जणेणं।
एगे य सीतोदगसेवणेणं, हुतेण एगे पवदंति मोक्खं॥ १२॥

३८९. **इहेगे मूढा पवदंति मोक्खं०** वृत्तम्। इहेति पाखण्डिलोके मनुष्यलोके वा एके न सर्वे **मूढा** अयाणगा स्वयं मूढाः परैश्च मोहिताः भृशं वदन्ति। **आहारसंपज्जणवज्जणेण,** आह्रियते आहारयति वा तमित्याहारः, बुद्ध्यायुर्बलादिविशेषान् वा आनयति आहारयतीत्याहारः, रसाढ्याहारसम्पदं जनयतीति **आहारसंपज्जणं,** [आहारसंपज्जणं] च तद् लवणम्। अथवा–"**आहारेणं समं पंचगं**" आहारेण हि सह पंच लवणाणि, तं जधा–सैन्धवं सोवच्चलं विडं रोमं समुद्र इति, लवणं हि सैर्वरसानदीयति। उक्तं हि—

"लवणविहूणा य रसा चक्खुविहूणा य इंदियग्गामा।"　　[　　　　]

तथा चोक्तम्—"लवणं रसानाम्, तैलं स्नेहानाम्, घृतं मेध्यानाम्" [　　　　] इत्यादि। केइ ँअट्ठुप्पलोणं ण परिहरंति, केचित् तदपि। अथवा आहारपंचगं तद्यथा–"मज्जं लसुण पलंडुं खीरं कारभ तवेव गोमंसं।" [　　　　]। ँवारिभद्दगा तु **एगे य सीतोदगसेवणेणं** स्नान-पान-हस्तपादधावनेन सीतोदगसेवणं तत्र च निवासः, **सीत**मिति अधिगतजीवं अमुष्टा(? अनुष्णा) भितप्तं वा, परिव्राड्-भागवतादयोऽपि शीतोदकं सेवन्ति। **हुतेण एगे** तापसादयो हि इष्टैः समिद्-घृतादिभिर्हव्यैः हुताशनं तर्पयन्तो **मोक्षमिच्छन्ति,** तत्र कुन्थ्वादीन् सत्त्वान्न गणयन्ति ये तत्र दह्यन्ते॥ १२॥

मोक्षो ह्यविशिष्टः सर्वविमोक्षो वा दरिद्रादुःखविमोक्षो वा, ये किल स्वर्गादिफलमनाशंस्य जुह्वति ते मोक्षाय, शेषास्तु अभ्युदयाय, तेषामुत्तरम्—

३९०. पायोसिणाणादिसु णत्थि मोक्खो, खारस्स लोणस्स अणासँणेणं।
ते मज्ज मंसं लसुणं च भोच्चा, अण्णत्थवाँसं परिकप्पयंति॥ १३॥

३९०. **पायोसिणाणादिसु णत्थि मोक्खो०** वृत्तम्। **प्रात** इति प्रत्युषः, आदिग्रहणाद् हस्तपादप्रक्षालन-जलशयनानि, येन तदुदकं सचित्तं तदस्सिता य बहवे पाणा हम्मंति। किञ्च—

"स्नानं मद-दर्पकरं कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम्। [तस्मात् कामं परित्यज्य न ते स्नान्ति दमे रताः॥ १॥]
　　　　[　　　　]

खारो णाम अट्ठुप्पं, तदादीन्यन्यानि पञ्च लवणानि तेषामनशनेन मोक्षो भवति। **ते मज्ज मंसं लसुणं च भोच्चा,** ते इति ते कुसीला, **मांस**मिति गोमांसम्, चग्रहणात् पलाण्डु-कारभम्। एतान्यभोच्चा कथमिह **अन्यत्रवासं परिकल्पयन्ति** मूर्खाः ?। **अन्यत्रवासो** नाम मोक्षावासः। अथवा **अन्यत्रवासो** नाम यत्रेच्छति यदीप्सितं वा न तत्र वास परिकल्पयन्ति, अत्रैव ससारे चैव **परिकल्पयन्ति** नामा कुर्वन्ति॥ १३॥ विशेषोत्तरम्—

३९१. उदएण जे सिद्धिमुदाहरंति, सायं च पाँयं उदगं फुँसंता।
उदगस्स फासेण सिया य सिद्धी, सिज्झिसु पाणा बहवे दगंसि॥ १४॥

३९१. **उदएण जे सिद्धिमुदाहरंति०** वृत्तम्। सायं ति रात्री। पायं ति पच्चूसो। सेसं कण्ठ्यम्॥ १४॥

किञ्च यद्युदकेन सिद्धिः स्यात् तेन—

---

१ आहारसपंचगवज्जणेणं चूपा० वृपा०। आहारओ पंचगवज्जणेणं इत्यपि वृपा०॥ २ सर्वरसान् 'अदीयति' अत्येति, सर्वरसोत्कर्षभावेन वर्त्तते इति भाव॥ ३ अग्रेतनगाथाचूर्णौ अट्ठुप्पलोणं इति पाठो दृश्यते॥ ४ "वारिभद्रकादयो भागवतविशेषा" इति वृत्तौ॥ ५ °सतेणं ख २ पु १। °सएणं ख १ पु २॥ ६ °वासाइं पगप्पयंति ख १। °वासं परिगप्पयंति ख २ पु १ पु २॥ ७ पातं ख २॥ ८ फुसंति पु १॥

३९२. मच्छा य कुम्मा य सिरीसिवा य, [1]मंगू य उट्टा दगरक्खसा य।
अट्ठाणमेतं कुसला वदंति, उदगेण[2] सुद्धिं जमुदाहरंति ॥ १५ ॥

३९२. मच्छा य कुम्मा य सिरीसिवा य० वृत्तम्। मच्छा मच्छा एव। कुम्मा कच्छभा। सिरीसिव त्ति इह सिरीसिवा मगरा सुंसुमारा य, चतुष्पादत्वात् सिरीसृपाः। मंगू णाम कामज्जेगा। उट्टा णाम मज्जारप्पमाणा महानदीपु दृश्यन्ते उम्मुज्जणिमुज्जियं करेमाणा। दगरक्खसा मनुष्याकृतयो नदीपु समुद्रेपु च भवन्ति। एवमादयोऽन्येऽपि च जलचराः मत्स्यवन्धादयश्च यदि अद्भिर्मोक्षः स्यात् तेन सर्वे मोक्षमवाप्नुवन्तु, न चेदा वन्ति ण। अट्ठाणमेतं कुसला वदंति, अस्थानमिति अनायतनं अनादेशः अभ्युदय-निःश्रेयसयोः कुशलास्तीर्थकरास्त एवं वदन्ति अस्थानमेतत् यदुदकेन शुद्धिर्भवति ॥ १५ ॥

३९३. उदकं जंति[3] कम्ममलं हरेज्ज, एवं[4] पुण्णं इच्छामित्तमेव।
अंधं[5] व णेतारमणुस्सरंता, पाणाणि चेवं [6]विहेढंति मंदा ॥ १६ ॥

३९३. उदकं जति कम्ममलं हरेज्ज० वृत्तम्। एवं पुण्यं पि चन्दनकर्दमैर्मलिप्तं[7] वा, नो चेत् ततस्ते इच्छामात्रमिदम्। त एवं वराका जात्यन्धतुल्याः अंधं व णेतारमणुस्सरंता, अन्धेन तुल्यं अन्धवत्, यथा जात्यन्धो जात्यन्धं णेतारमणुस्सरंतो, अणुस्सरंतो णाम अणुगच्छंतो, उन्मार्गं प्राप्य विषम-प्रपाता-ऽहि-कण्टक-व्याला-ऽग्निउपद्रवानासादयति, क्लेशमृच्छति, न चेष्टां भूमिमवाप्नोति। एवं ते कुशीला अहिंसादिगुणजात्यन्धा इच्छन्तोऽपि मोक्षार्थं अहिंसादीन् गुणानप्राप्नुवन्तः स्वयं प्राणिनो विहे[ढ]यंति "हेढ विबाधने" बाधन्त इत्यर्थः, ये चान्ये भावास्तान् नाश्रयन्ति, तेऽपि तथैव प्राणिनो विहेढयित्वा अनिष्टानि स्थानानि अवाप्नुवन्ति ॥ १६ ॥ किञ्च—

३९४. पावाइं कम्माइं पकुव्वतो हि, सि[8]ओदगं तू जइ तं हरिज्जा।
सिज्झिंसु एगे[9] दगसत्तघाती, मुसं वयंते जलसिद्धि[10]माहु ॥ १७ ॥

३९४. पावाइं कम्माइं पकुव्वतो हि० वृत्तम्। कण्ठ्यम् ॥ १७ ॥

३९५. हुतेण [11]जे मोक्खमुदाहरंति, सायं[12] च पायं अगणिं फुसंता।
एवं सिया सिद्धि हवेज्ज[13] तेसिं, अगणिं फुसंताण कुकम्मिणं पि ॥ १८ ॥

३९५. हुतेण जे मोक्खमुदाहरंति० वृत्तम्। येऽपि हुतेण मोक्खं उदाहरंति, उदाहरंति नाम भासंति। सायं च पायं अगणिं फुसंता, सायं रात्रौ, पायं प्रत्युषसि, अग्निं स्पृशन्त इति यथेष्टैर्हव्यैस्तर्पयन्तः। यदि तेपामेव सिद्धिर्भवति एवं सिया सिद्धि हवेज्ज तेसिं। कतरेषाम्? अगणिं फुसंताण कुकम्मिणं पि। कुकम्मी णाम घटकाराः कूटकारा वणदाहा वक्करदाहकाः ॥ १८ ॥

उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि। एषां तु सर्वेषामेवायं सामान्योपालम्भः—

३९६. अपरिच्छ[14] दिट्ठिं ण हु एव सिद्धी, एहिंति ते घंतं[15]मबुज्झमाणा।
[16]भूतेहिं जाण[17] पडिलेह सातं, विज्जं गहाए[18] तस-थावरेहिं ॥ १९ ॥

---

१ मग्गू य उट्टा दग° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ २ °ण जे सिद्धिमुदा° ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। °ण जे सेहिमुदा° ख १॥ ३ जती ख १ खं २ पु १ पु २॥ ४ एवं सुहं इच्छामित्तमेव पु १ वृ० दी०। एवं सुहं इच्छामेत्ततो वा ख २ पु २। एवं सुहं पिच्छामेत्तता वा ख १॥ ५ अध व्व णेयारमणु° ख १ पु १ पु २। अध व्व जच्चंधमणु° खं २॥ ६ विणिहंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ७ °मलिप्तवान्, नो पु० स०। °मलिप्तंवान्, नो वा० मो०॥ ८ सीओदगं तू यति तं हरेज्जा ख १॥ ९ एते खं १॥ १० दगसिं° ख २ पु १ पु २॥ ११ जे सिद्धिमु° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ १२ सातं च पातं अ° खं १॥ १३ °ज्ज तम्हा, अ° खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ १४ °रिक्ख दिट्ठं ख १ पु १ पु २ दी०। °रिच्छ दिट्ठं खं २ वृ०॥ १५ घात° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ १६ "भूतेहिं जाण पडिलेह साय" आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ३ सू० २॥ १७ जाणं ख २॥ १८ गहात ख २ पु १। गहाय ख १ पु २॥

३९६. अपरिच्छ दिट्ठिं ण हु एव सिद्धी एहिंति ते घंतमबुज्झमाणा० [वृत्तम्] । **अपरिच्छेति** अपरीक्ष्य, दृष्टिरिति दर्शनम्, अपरीक्षितदर्शनानामित्यर्थः, नैवं सिद्धिर्भवतीति वाक्यशेषः, किन्तु **एहिंति ते घंतमबुज्झमाणा,** तैस्तैर्दुःखविशेषैर्घातयतीति घातः संसारः **तमबुज्झमाणा** । तत्प्रतिपक्षभूताः सम्यग्दृष्टयः ते तु **भूतेहिं जाण पडिलेह सातं, भूतानि** एकेन्द्रियादीनि, जानीत इति जानकः, स जानको अत्तोवमेण भूतेसु सातऽसातं पडिलेहेहि,

"जध मम ण पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्वसत्ताणं।" [दश० नि० गा० १५६ पत्र ८३-१]

एवं मत्वा यदात्मनो न प्रियं तद् भूतानां न करोति, एवं सम्मं पडिलेहणा भवति । **विज्जं** नाम विद्वान्, **गहाए** त्ति एवं गृहीत्वा अत्तोवमेण इच्छिता-ऽणिच्छितं साता-ऽसातं एवं गृहीत्वा नवकेन भेदेन तस-थावराण पीडं । अथवा **विज्जं** विज्जा णाम णाणं, तं गहाय, जीए तस-थावरा णज्जंति । उक्तं च—

पढमं णाणं ततो दया एवं चिट्ठति सव्वसंजते । अण्णाणी किं काहिति ? किं वा णाहिति छेय-पावगं ? ॥ १ ॥

[दशवै० अ० ४ प्रान्ते गा० १०]

॥ १९ ॥ ये पुनर्हिंसादिषु प्रवर्त्तन्ते अशीलाः कुशीलाश्च ते संसारे—

३९७. थणंति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगाइं पडिसंखाए भिक्खू ।
तम्हा विदू विरते आतगुत्ते, दट्ठुं तसे या पडिसाहरेज्जा ॥ २० ॥

३९७. थणंति लुप्पंति० [वृत्तम्] । णरगादिगतीसु सारीर-माणसेहिं दुक्खेहिं पीड्यमानाः **स्तनन्ति, लुप्यन्त** इति छिद्यन्ते हन्यन्ते च, तसन्तीति नानाविधेभ्यो दुःखेभ्य उव्विजंते । कर्माण्येषां सन्तीति **कर्मिणः** । यतश्चैवं तेण **पुढो जगाइं, पुढो** नाम पृथक्, अथवा "पृथु विस्तारे", सव्वजगाइं पुढो **पडिसंखाए** त्ति परिसंखाय परिगण्येत्यर्थः **भिक्षुरिति** सुसीलभिक्षुः । **तम्हा विदू विरते आतगुत्ते,** तस्मादिति यस्मान्निःशीलाः कुशीलाश्च **संसारे** परिवर्त्तमानाः स्तनन्ति लुप्पंति त्रसति च तस्मा विदुः **विरते** विरतिं कुर्यात् पञ्चप्रकारां अहिंसादी, **आतगुत्तो** णाम आत्मसुगुत्तः स्वयं वा गुप्तः काय-वाङ्-मनःस्वात्मोपचारं कृत्वाऽपदिश्यते **आतगुत्ते** ति । **दट्ठुं तसे या पडिसाहरेज्जा,** चशब्दात् स्थावरेऽपि । **पडिसाहरेज्ज** त्ति इरियासमिती गहिता, अतिक्कमे संकुचए पसारए ॥ २० ॥ इदानीं स्वलिङ्गकुशीलाः परामृश्यन्ते, तद्यथा—

३९८. जे धम्मलद्धं वॅ णिधाय भुंजे, वियडेण साहट्टु य जे सिणाइ ।
जो धावती लूसयती व वत्थं, अधाऽऽहु से णंअणियस्स दूरे ॥ २१ ॥

३९८. जे धम्मलद्धं व णिधाय भुंजे० वृत्तम् । जे त्ति अणिद्दिट्ठणिद्देसे । **धम्मेणेति लद्धं,** नान्येषामुपरोधं कृत्वा, मुधालब्धमित्यर्थः, बातालीसदोसपरिसुद्धं, वा विभासा-विकल्पादिषु, असुद्धं वा लद्धं असणादि क्क **निधायेति** सन्निधिं कृत्वा, तं पुण अभत्तच्छंदुवरितं भत्तसेसं वा 'अब्भत्तट्ठो वा मे अज्ज' एवमादीहिं कारणेहिं सण्णिधिं कातुं भुंजंति । **विगतेण य साहट्टु, विगतमिति** विगतजीवं तेनापि च **साहट्टुरिति** साहरिय फासुगे देसे जंतुवज्जिते संहृत्य गात्राणि प्रयत्नेनापि देशस्नानं वा सर्वस्नानं वा करोति, किं पुण अविकडेण ? । **जो धावती लूसयती व वत्थं,** धावति विभूसावडिताए, **लूसयति** णाम जो छिन्दति, छिंदितुं वा पुणो सवेति वा सिव्वति वा । पठ्यते च—**"लीसएज्जा वि वत्थं"** लीसना नाम सन्धनैव । अथवा सूइं ठाणाइ करेति अप्पणो वा परस्स वा । तमेवं कुव्वाणं भट्टारगो भणति—**अधाऽऽहु से णंअणियस्स दूरे,** नग्नभावो हि णंगणिगा स्यात्, दूरे वर्त्तते निर्ग्रन्थत्वस्येत्युक्तं भवति ॥ २१ ॥ उक्ताः पासत्थ-कुसीला । इदाणीं सुसीला—

१ जगा परिसंखाय भिक्खू ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ य प्पडि° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ विणिहाय पु १ वृ० दी० ॥ ४ धोवती ख १ ॥ ५ लीसएज्जा वि वत्थं चूपा० ॥ ६ णागणि° खं १ खं २ पु १ पु २ ॥ ७ क्क इति चतु सङ्ख्याद्योतकोऽक्षराङ्क ॥ ८ णगणिगस्याद् दूरे चूसप्र० ॥

३९९. कम्मं परिण्णाय दगंसि धीरे, वियडेण[1] जे जीवति आतिमोक्खं।
[2]ते बीज-कंदादि अभुंजमाणा, विरता सिणाणा अदु इत्थिगातो ॥ २२ ॥

३९९. **कम्मं परिण्णाय दगंसि धीरे०** वृत्तम्। ण्हाण-पियणादिसु कज्जेसु तिविधेणेति उदगसमारभे य कम्मवधो भवति। तमेवं ज्ञात्वा संसारभीतो दुविधाए परिण्णाए परिजाणेज्ज **धीरे,** धीरो जानकः, यथा वा यैः प्रकारैः कर्म वध्यते तान् कर्मबन्धाश्रवान् विदित्वा न कुर्यादिति। एवं ज्ञात्वा **वियडेण जे जीवति आतिमोक्खं,** विगतजीवं **वियडं** तंदुलोदगादि, यच्चान्यदपि भोजनजातं विगतजीवं सयमजीवितानुपरोधकृत् तेन जीवेयुः। केच्चिरं कालम्? इति, जाव **आदिमोक्खो** आदिरिति संसारः, स यावन्न मुक्तः, ततो वा मुक्तः, यावद्वा शरीरं भ्रियते तावत्। किञ्च—प्रासुकोदकभोजित्वेऽपि सति **ते बीज-कंदादि अभुंजमाणा,** आदिग्रहणाद् मूल-पत्र-फलादीनि गृह्यन्ते। **विरता सिणाणा अदु इत्थिगातो, विरताः** स्नाना-ऽभ्यङ्गोद्वर्त्तनादिषु शरीरकर्मसु निष्प्रतिकर्मशरीराः, "सुक्खा लुक्खा णिप्पडिकम्मसरीरा जाव अट्ठिचम्मावणद्धा" एवं तावदहिंसा गृहीता, इत्थिग्रहणतो अन्येऽपि अवया गृह्यन्ते रात्रिभक्तं च, ततोऽपि विरताः। ये चैवं विरतास्तपसि चोद्यता ते संसारे न थणंति, ण वा तत्र परिभ्रमन्ति, ण वा कुसीलदोसेहिं जुत्तति ॥ २२ ॥

पुणरवि पासत्था कुसीला परामुस्सति—

४००. जे मातरं च पितरं च हेच्चा, गारं तधा पुत्त पसुं[3] धणं च।
[4]आघाति धम्मं उदराणुगिद्धो, अधाऽऽहु से सामणितस्स दूरे ॥ २३ ॥

४००. **जे मातरं [च] पितरं [च] हेच्चा०** वृत्तम्। **गारं** नाम गृहम्। **पुत्र[म् अपत्यम्], पसवो** हस्त्यश्व-गो-महिष्यादयः। एवं कृताकृतं एतं संत असतं वा विहाय प्रव्रजितत्वात् **आघाति धम्मं उदराणुगिद्धो,** हिंडंतो वा उपेत्य अकारणे वा गत्वा तद्विधेसु कुलेसु दाणसड्ढमादिसु **आघाति** त्ति आख्याति **धर्मं उदरानुगृद्धो** नाम औदरिकः उदरहेतुं धर्मं कहेति। **अधाऽऽहु से सामणित[स्स दूरे],** श्रमणभावो सामणियं तस्स दूरे वट्टति ॥ २३ ॥

४०१. [5]कुलाइं जे धावति सादुगाइं, आघाति अक्खाइ उदराओ गिद्धो।
से आरियाणं गुणाणं सतंसे, जे लावए ता असणादिहेतुं ॥ २४ ॥

४०१. **कुलाइं जे धावति सादुगाइं०** वृत्तम्। एवंविधाइ कुलाइं पुव्वसथुताइं पच्छासथुताणि वा **जो** गच्छति, **सादुगाइं** स्वादनीय स्वाढु, स्वाढु ददातीति स्वाढुदानि, स्वदन्ति वा स्वाढुकानि। अक्खाइयाओ अक्खाति धम्मकथाओ वा, जाहिं वा कहाहिं रज्जते, **उदराओ गिद्धो** पुत्तो, अधवा औदरप्रेधिना आख्या ण वट्टइ कातुं, इतरधा तु करेज्ज वि कुले जाणित्ता। **से आरियाणं गुणाणं सतंसे, आरिया** चरित्तारिया तेसिं सहस्सभाए सो वट्टति सहस्सगुणपरिहीणो। ततो य हेट्ठतरेण **जे लावए** "लप व्यक्तायां वाचि" लपतीति ब्रवीति, जो वि ताव **असणादिहेतुं** अण्णेण केणइ लवावेति 'अहं एरिसो तारिसो वा' सो वि आयरियाण सहस्सभागे [ण] वट्टइ, किमंग पुण जो सयमेव लवइ? । एवं वत्थ-पत्त-पूयाहेतुमवि ॥ २४ ॥ किञ्च—

४०२. [6]णिक्खंददीणे परभोयणट्ठी, मुहमंगलिओदरियं पगिद्धे।
णीयारगिद्धेह महावराहे, अदूरते वेसति घातमेव ॥ २५ ॥

---

१ °ण जीविज्ज य आदि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ से वीय-कंदाति अभुजमाणे, विरते सिणाणादिसु इत्थिकासु ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ पसू हणं ख १ ॥ ४ कुलाइं जे धावति साउगाइं, अहाऽऽहु ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ कुलाति जे धावति सातुगाइं, आघाति धम्मं उदराणुगिद्धे। अहाऽऽहु से आयरियाण सतंसे, जे लावतेज्जा असणस्स हेउं ॥ खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ णिक्खम्मदीणे परभोयणम्मि, मुहमंगलिओदरियाणुगिद्धे। णीवारगिद्धे व महावराहे, अदूरत्ते वेहति घंतमेव ॥ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। ओदरियं पगिद्धे वृ० दी०। °भोयणंसि खं १। घातमेव पु १ पु २ ॥

४०२. णिक्खंददीणे परभोयणट्ठी० वृत्तम्। जो अप्पं वा वहुं वा उवधिं च छड्डित्ता णिक्खंतोऽसौ शीलमास्थितः रूक्षान्न-पानतर्जितः अलाभगपरीसहेण वा दीनतां प्राप्य जिब्भिंदियवसट्टो पंचविधस्स आजीवस्स अन्यतमेन आहार-मुत्पादयति, सर्वोऽपि हि महेच्छः परप्रणयी दीनो भवति। उक्तं हि—

कण्ठविस्वरता दैन्यं मुखे वैवर्ण्य-वेपथुः। यान्येव म्रियमाणस्य तानि लिङ्गानि याचतः ॥ १ ॥

[ ]

आवुट्टणाहेतुं च मुहमंगलियाओ करेति मङ्खवत्—एरिसो वा तुमं दसदिसिप्पगासो[1], तच्चणिगो वा जधा कंपेति। उदरे हितं औदरिकम्, अन्न-पानमित्यर्थः भृशं गृद्धः प्रगृद्धः। णीयारगिद्धेह महावराहे, णीयारो णाम कणकुण्डकः मुग्ग-मासोदणाण, निकीर्यत इति नीकारः। वरादाहन्तीति वराहः, वरा भूमी, स उद्धृत्तविषाणोऽपि भूत्वा अन्यान् पुरतोऽपि हन्यमानान् दृष्ट्वा तत्र नीकारे गृद्धो न पश्यति, ततः कश्चिदेव प्रकृते वा, अदूरते[4] वा अचिरात् कालस्य प्राप्तजरो वा एपति घातमेव, मरणमित्यर्थः। अधवा निकारो नाम सैस्यानिरालक-मुद्ग-माषादीनि[2], स आरण्यवराहः तेषु प्रगृह्य(? ह्य)माण औपगेषु पतति। कर्षकेभ्य अदूरए एसति घातमेव, एवमसौ कुशील आहारगृद्धः असयममरणमासाद्य णरग-तिरिक्खजोणीओ पाविऊण अदूरमेसति घातमेव ॥ २५ ॥ स एवं कुशीलः—

४०३. अण्णस्स पाणस्सिधलोईयस्स[3], अणुप्पियं भासति सेवमाणे।
पासत्थयं चेव कुसीलतं च, णिस्सारए होति जधा पुलाए[5] ॥ २६ ॥

४०३. अण्णस्स पाणस्सिधलोइयस्स० वृत्तम्। इहलौकिकानि हि अन्न-पानानि, न मोक्खाय, तेषामैहिकानामन्न-पानानां हेतुरिति वाक्यशेषः। अनुप्रियाणि भाषते—एस दारिगा कीस ण दिज्जइ ? गोणे किं ण दम्मइ ? एवमादि। वणीमगत्तणं च करेति सेवमान इति वायाए सेवति आगमण-गमणादीहि य। स एवंविधं पासत्थयं चेव कुसीलतं च, चशब्दात् ओसण्णतं संसत्ततं च, प्राप्येति वाक्यशेषः। केवलं लिङ्गावशेषः चारित्रगुणवञ्चितः णिस्सारए होति जधा पुलाए, जधा धण्णं कीडएहिं णिप्फोलितं णिस्सार भवति, केवलं तुषमात्रावशेषम्, एवमसौ चारित्रगुणनिस्सारः पुलाकधान्य-वद् इहैव वहूणं समणाणं समणीणं हीलणिज्जे, परलोगे य आगच्छति हत्थच्छिदणादीणि ॥ २६ ॥ उक्ताः कुशीलाः। तत्प्रति-पक्षभूतं मूलोत्तरगुणेषु आयतत्वं सौशील्यं प्रतिपाद्यते। तत्रोत्तरगुणानधिकृत्यापदिश्यते—

४०४. अण्णातपिंडेणऽधियासएज्ज[6], ण पूयणं तवसा आवहेज्जा।
अण्णे य पाणे य अणाणुगिद्धे, सव्वेसु कामेसु णियत्तएज्जा ॥ २७ ॥

४०४. अण्णातपिंडेणऽधियासएज्ज० वृत्तम्। ण संथव-वणीमगादीहिं, अण्णातउंछं एसति, अधियासणा अलंभमाणे। ण पूयणं तवसा आवहेज्जा, ण पूया-सक्कारणिमित्तं तपः कुर्यादिति। "णिव्वहेज्जा" वा, जो पूआ-सक्कारनिमित्तं तवं करेति तेण सो तवो णिव्वाहितो भवति, तम्हा ण णिव्वहेज्जा। स एवं अण्णे य पाणे य अणाणुगिद्धो, जो हि अण्णायपिंडं एसए सो णियमा अण्णे य पाणे य अणाणुगिद्धो, अथवा अनु पश्चाद्भाव इति, ण पुव्वभुत्तेसु अण्ण-पाणेसु अणुगि-ज्झेज्ज। "एगग्गहणे गहणं" ति जधा रसेसु णियत्तति तहेव सव्वेसु कामेसु णियत्तिं कुर्यात्, सद्द-रूवादिसु असज्जमाणे ण रागं दोसं वा गच्छे। कधं ?—

सद्देसु य भद्दय-पावएसु सोतँगहणमुवगतेसु[7]। तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सदा ण होतव्वं ॥ १ ॥
[ज्ञाताधर्मकथाङ्ग अध्य० १७ सू० १३५ गा० १६ पत्र २३३-१]

---

१ तुमं सदसि प्प° पु ॥ २ यस्यानि रालकरालक° चूसप्र० ॥ ३ °लोययस्स ख १ ॥ ४ °रते ख २ पु १ ॥ ५ पुलाते खं २ पु १ ॥ ६ °हियासतेज्जा, णो पूयणं तवसा आवहेज्जा। सद्देहिं रूवेहिं असज्जमाणे, सव्वेहिं कामेहिं विणीय गेहिं ॥ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। णिव्वहेज्जा चूपा०। वणीय ख २। गेही ख १ ॥ ७ सोतविसयमुव° ज्ञातासूत्रे पाठः ॥

एवं सेसिंदिएसु वि ॥ २७ ॥ अधवा अपसत्थइच्छाकामेसु मदणकामेसु य यथैव इन्द्रियजयं करोति तद्देव—

४०५. [1]सव्वाणि संगाणि अतिच्च धीरो, सव्वाणि दुक्खाणि तितिक्खमाणे।
[2]अखिले अगिद्धे [अणिएयचारी], ण सिलोयकामी परिव्वएज्जा ॥ २८ ॥

४०५. सव्वाणि संगाणि अतिच्च धीरो० वृत्तम्। सङ्गाः प्राणिवधादयः जाव मिच्छादंसणं ति, ताणि अतिच्छिऊण सव्वाइं परीसहोवसग्गदुक्खाइं तितिक्खमाणे सहमाणे। अखिलो णाम अखिलेसु गुणेसु वर्त्तितव्यम्, अथवा खिलमिति यत्र किञ्चिदपि न प्रसूते ऊषरमित्यर्थः, नैवं खिलभूतेन भवितव्यम्, यत्र कश्चिदपि गुणो न प्रसूते, गुणा णाणादी। अगृद्धे आहारादिसु। [......... ....] ण सिलोयकामी परिव्वएज्जा, श्लोको नाम श्लाघा, सव्वतो वएज्ज परिव्वएज्ज ॥ २८ ॥ स्यात् तदज्ञातपिण्डं किंनिमित्तमाहारयति? उच्यते—

४०६. भारस्स [3]जाता मुणि [4]भुंजमाणे, कंखेज्ज यो पावविवेग भिक्खू।
दुक्खेण पुट्ठे धुत[5]मातिएज्ज, संगामसी[6]से अवरे दमेइ ॥ २९ ॥

४०६. भारस्स जाता मुणि भुंजमाणे० वृत्तम्। भारो नाम संयमभारो। जाताए त्ति संयमजात्रामात्तानिमित्तं सजमभारवहणट्ठताए, "सो हु तवो कायव्वो जेण मणोदुक्कडं ण उप्पज्जे।" [ ] कंखेज्ज यो उद्यानक्रीडातुल्यं तपो मन्यमानः कंखेज्ज यो पावविवेग भिक्खू, पावं नाम कम्मं, विवेगो विनाश इत्यर्थः, सर्वविवेको मोक्षः, सेसो देसविवेगो। अथवा पापमिति शरीरम्, कृतघ्नत्वादशुचित्वाच्च। तद्विवेकमाकाङ्क्षमाणः दुक्खेण पुट्ठे धुतमातिएज्ज, यदि पुनरसौ संयमं कुर्वाणः शारीर-मानसैः परीषहोपसर्ग-दुःखैरभिभूयते ततस्तैरभिभूतः धुतमादिएज्ज, धुअं वैराग्यं चारित्रं उपशमो वा संजमो णाणादि वा, आदिएज्ज त्ति तमादद्यात्, तेन तेषां जयं कुर्यादित्यर्थः, यथा भट्टारक एव, दमदन्तो वा। संगामसीसे यथा दमितः शूरो योधः सङ्ग्रामशिरस्यपरान् दमयति, अभिहन्तीत्यर्थः, एवं अट्ठविहं कम्मं जिणित्ता परीसहे अधियासेहि ॥ २९ ॥ किञ्चान्यत्—

४०७. [7]अवि हम्ममाणे फलगा[8]वतट्ठी, समागमं कंखति अंतकस्स।
णिद्धूय कम्मं ण पवंचुवेति, अक्खक्खए वा सगडं ति बेमि ॥ ३० ॥
॥ कुसीलपरिभासियं सत्तममज्झयणं सम्मत्तं ॥ ७ ॥

४०७. अवि हम्ममाणे फलगावतट्ठी० वृत्तम्। यद्यप्यसौ परीसहैर्हन्येत अर्जुनकवत् [अन्तकृत्सूत्रे वर्ग ६]। अथवा फलकवदवकृष्टः क्षारेणालिप्येत सिच्येत वा तथापि अप्रद्विष्टः। "अणिहम्ममाणो" वा। समागमं कंखति अंतगस्स सम्यग् आगमः समागमः, अन्तको नाम मोक्षः, अथवा अन्तं करोतीति अन्तकः। यथा—

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः। नान्तकृत् सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥ १ ॥
[ ]

स एवं निर्धूय कर्म अन्तकं समासाद्य, निश्चित निरवशेषं वा धूत्वा निर्धूय। किम्? अष्टप्रकारं कर्म, नेति प्रतिषेधे भृशं वर्च्चं प्रवंचं जाति-जरा-मरण-दुःख-दौर्मनस्यादिनटवदनेकप्रकारः संसार एव प्रपञ्चकः। दृष्टान्तः—अक्खक्खए वा अक्षोतीत्यक्षः, अथवा न क्षयं यातीत्यक्षः। जधा अक्खक्खए सगडं सम-विषमदुर्ग-प्रपातोद्यानादिषु न पुनः संखोभमेति भग्गं वा एवम्। स एवं निर्धूय कर्म अचलं निर्वाणसुखं प्राप्य न पुनः संसारप्रपञ्चमाप्नोति ॥ ३० ॥ नयास्तथैव ॥

॥ कुसीलपरिभाषितं सप्तममध्ययनं समाप्तम् ॥ ७ ॥

---

१ सव्वाइं संगाइं अइच्च धीरे, सव्वाइं दुक्खाइं ख १ ख २ पु १ पु २। वीरे ख २ ॥ २ अखिले अगिद्धे अणिएयचारी, अभयंकरे भिक्खू अणाविलप्पा खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। अखिले अगिद्धे ण सिलोयकामी, परिव्वएज्जा भिक्खू अणाविलप्पा इत्यपि पाठश्चूर्णिकाराभिप्रायेण सम्भवेत् ॥ ३ जत्ता खं २ पु १ पु २ ॥ ४ भुंजएज्जा, कंखेज्ज पावस्स विवेग ख १ ख २ पु १ दी० ॥ ५ °माइतेज्जा ख २ पु १ ॥ ६ °सीसे व परं दमेज्जा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ अणिहम्म° चूपा० ॥ ८ °गायतट्ठी ख १ ख २ पु १ पु २ ॥



[अट्ठमं वीरियज्झयणं]

वीरियं ति अज्झयणं। तस्स चत्तारि अणुयोगदारा। अधियारो–तिविधवीरियं वियाणित्ता पंडियवीरिए जतितव्वं। तत्थ गाधा—

विरिए छक्कं दव्वे सच्चित्ताऽचित्त मीसगं चेव।
दुपद चतुप्पद अपदं एतं तिविधं तु सच्चित्तं ॥ १ ॥ ८४ ॥

विरिए छक्कं० गाधा। वीरियं णामादि छव्विधं। णाम-ट्ठवणाओ गयाओ। वतिरित्तं दव्ववीरितं सच्चित्तादि तिविधं। सच्चित्तं दव्ववीरियं तिविधं–दुपद १ चतुप्पद २ अपदं ३। दुपदाण वीरियं–अरिहंत-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेवाणं इत्थिरयणस्स य, एवमादीण वीरियं जं जस्स जारिसं सामत्थं १। चतुप्पदाणं तु अस्सरयण-हत्थिरयण-सीह-वग्घ-वराह-सरभादीण, सरभो किल हस्तिनमपि वृक इव औरणकं उक्खिविऊण अ वज्झति, एवमादि यस्य यच्च चतुष्पदस्य वोढव्ये वा वोढव्ये वा सामर्थ्यम् २। अवदाणं–गोसीसचंदणस्स उण्हकाले डाहं णासेति, तधा कंवलरयणस्स सीयकाले सीतं उसिणकाले उण्हं णासेति, तधा चक्कवट्टिस्स गब्भगिहं सीते उण्हं उण्हे सीतं, एवं पुढवीमादीणं जस्स जारिसं वीरियं संजोइमाणं असंजोइमाणं, असंजोइमाण य गदा-ऽगदविसेसाण य ३ ॥ १ ॥ ८४ ॥

अच्चित्तं पुण विरियं आधारा-ऽऽवरण-पहरणादीसु।
जध ओसधीण भणियं विरियं रसवीरिय विवागे ॥ २ ॥ ८५ ॥

अच्चित्तं पुण विरियं० गाधा। अचित्तं दव्ववीरियं आधारादीणं स्नेह-भक्ष्य-भोज्यादीनाम्। उक्तं हि–"सद्यः प्राणकरं तोयं०" [ ]। आवरणाणं च वम्ममादि-गुडादीणं च। [पहरणाणं] चक्करयणमादीणं, अन्येषां च प्रास-शक्ति-कणकादीनाम्। किञ्चान्यत्–जध ओसधीण भणियं विरियं रसवीरिय विवागे, तं विसल्लीकरणी पादलेवो मेधाकरणीओ य ओसधीओ। विसघातीणि य दव्वाणि गंध-आलेव-आस्वादमात्राच्च विषं णासेन्ति, सरिसवमेत्ताओ वा गुलियाओ वा लोमुक्खणणामेत्ते खेत्ते विषं गदो वा अगदो वा भवति। अन्यद्रव्यमाहारितं मासेणापि किल क्षुधां न करोति, न च बलग्लानिर्भवति। किञ्च केषाञ्चिद् द्रव्याणां संयोगेन वत्ती आलित्ता उदकेनापि दीप्यते। कस्मीरादिसु च काञ्जिकेनापि दीपको दीप्यते। योनिप्राभृतादिषु वा विभासितव्वं। खेत्तवीरियं देवकुरुमातीसु सर्वाण्येव द्रव्याणि वीर्यवन्ति भवन्ति, यस्य वा क्षेत्रं प्राप्य बलं भवति, यत्र वा क्षेत्रे वीर्यं वर्ण्यते ॥ २ ॥ ८५ ॥ एस चेव अत्थो णिज्जुत्तिगाहाए गहितो—

* आवरणे कवयादी चक्कादीयं च पहरणे होति।
खेत्तम्मि जम्मि खेत्ते काले जं जम्मि कालम्मि ॥ ३ ॥ ८६ ॥

कालवीरियं सुसमसुसमादिसु, यस्य वा यत्र काले बलमुत्पद्यते। तद्यथा—

वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमन्ते। शिशिरे चाऽऽमलकरसो घृतं वसन्ते गुडो वसन्तस्यान्ते ॥ १ ॥
[ ] ॥ ३ ॥ ८६ ॥

भावे जीवस्स सवीरियस्स विरियम्मि लद्धि णेगविहा।
ओरस्सिंदिय-अज्झप्पिएसु बहुसो बहुविधीयं ॥ ४ ॥ ८७ ॥

---

१ पि खं १ ॥ २ अपदानामित्यर्थः ॥ ३ उण्हकाले धा० मो० ॥ ४ विवागो खं २ पु २। विवागे खं १ ॥ ५ आहारादीनामित्यर्थः ॥ ६ "सद्य प्राणकरा हृद्या घृतपूर्णा" वृत्तौ ॥ ७ कवचादी खं २ पु २ ॥ ८ लद्धऽणेगं खं १ ॥

भावे जीवस्स सवीरियस्स० गाहा । भाववीरिअं **जीवस्स सवीरियस्स** लद्धीओ अणेगविधाओ । तं जधा—ओरस्सबलं [इंदियबलं] अज्झप्पबलं । उरसि भवं औरस्यम्, शारीरमित्यर्थः ॥ ४ ॥ ॥ ८७ ॥ तं पुण अणेगविधं, तं जधा—

मण वयण[1] काय आणापाणू संभव तघेव[2] संभव्वे ।
सोत्तादीणं सद्दादिएसु विसएसु गहणं च ॥ ५ ॥ ८८ ॥

मण वयण काय० गाधा । मणे ताव ओरस्सवीरियं जारिसं मणपोग्गलगहणसामत्थं वइरोसभसंघतणादीणं जारिसे पढमसंघतणे मणपोग्गले गेण्हति । तं पुण दुविधं—सभवे य संभव्वे य । संभवे तित्थगरस्स अणुत्तरोववातियाणं च अतीव पटूणि मणोदव्वाणि । संभावणीयं तु यो हि यमर्थं पटुमतिना प्रोच्यमानं न शक्नोति साम्प्रतं परिणामयितुम्, सम्भाव्यते तु एष परिकम्ममाणं शक्ष्यत्यमुमर्थं परिणामयितुम् । तं जधा—तवे तणुत्तए दुव्वले, विण्णाण णाण इत्यादि सम्भाव्यम् । वायावीरियमवि दुविधं—संभवे य संभव्वे य । तत्थ संभवे य तित्थगरस्स जोअणनीहारिणी वाणी सव्वभासाणुगामिणी, एतत् सम्भवति वाचा वीर्यं तित्थकरे, येषां चान्येषां क्षीराश्रवादिवाग्विषयः, तथा हंस-कोकिलादीनां सम्भवति स्वरसेन माधुर्य-वीर्यम् । सम्भाव्ये तु सम्भाव्यते श्यामा स्त्री गाइतव्वे । तं जहा—"सामा गायति मधुरं काली गायति खरं च रुक्खं च ।" [अनुयो० सू० १२८ गा० ३१ पत्र १३२] एवमादि । तथा सम्भावयाम एनं श्रावकदारकं अकृतमुखमप्यक्षरेषु यथा-वदभिलप्तव्येषु । तथा सम्भावयामः शुक-मदनशलाका मानुषवक्तव्ये, न त्वेवं भासे[3] सम्भाव्यते । कायवीरियं णाम औरस्यं यद् यस्य वलम्, तदपि द्विविधम्—सम्भवे सम्भाव्ये च । सम्भवे यथा चक्रवर्त्ति-वलदेव-वासुदेवाणं यद् वाहुबलादि काय-वलम्, जधा **कोडिसिला तिविट्ठुणा** उक्खित्ता । अधवा "सोलस रायसहस्सा० एवं जाव-अपरिमितवला जिणवरिंदा ।" [आव० नि० गा० ७१-७५] । संभव्वे तु सम्भाव्यते तीर्थकरा लोकं अलोके प्रक्षेप्तुम्, तथा मेरुं दण्डमिव गृहीत्वा छत्रवद् धर्त्तुम् । तधा—

पभु अण्णतरो इंदो जंवूदीवं तु वामहत्थेण । छत्तं जधा धरेज्जा अयत्ततो मंदरं घेत्तुम् ॥ १ ॥

[देवेन्द्रस्तवप्रकीर्णके गा० ६४]

तथा सम्भाव्यतेऽयं दारकः परिवर्द्धमानः शिलामेनामुद्धर्त्तुम्, अनेन मल्लेन सह योद्धुमित्यादि । इंदियवलं पंचविधं सोइंदियादि, एक्केक्कं सम्भवे सम्भाव्ये[4] च । सम्भवे यथा श्रोत्रस्य वारस जोयणाणि विसेओ[5], एवं सेसाण वि जस्स जो विसयो । सम्भाव्येऽपि यस्यानुपहतमिन्द्रियं श्रान्तस्य वा पिपासितस्य वा परिग्लानस्य वा साम्प्रतमग्रहणसमर्थं यथोद्दिष्टाना-मुपद्रवाणा उपशमे सम्भाव्यते विषयग्रहणायेति ॥ ५ ॥ ८८ ॥ उक्तमिन्द्रियवीर्यम् । इदानीं आध्यात्मिकम् । तमणेगविधं—

उज्जम धिति धीरत्तं सोडीरत्तं खमा य गंभीरं ।
उवओग-जोग-तव-संजमादियं होति अज्झप्पं[6] ॥ ६ ॥ ८९ ॥

उज्जम धिति धीरत्तं० गाधा । **उज्जम** त्ति णाण-तवादीसु उज्जमति । तं दुविधं—सम्भवे सम्भाव्ये च । कश्चित् तदुद्यमाय । एवं सर्वत्र यथा सम्भवे सम्भाव्ये च योजयितव्यम् । **धितिमिति** संयमे धृतिः । **धीरत्तं** णाम परीसहोवस-ग्गाणं [जये] । **सोडीरो** णाम त्यागसम्पन्नः अविसादिता । अहवा **सोडीरत्तं** ज्ञाने अधीतव्ये तथैव वा कर्त्तव्ये न पराभियोग इव करोति, हर्षायमाणः 'अवश्यं मया एतत् कर्त्तव्यम्' न विषीदति वलयति वा । **क्षमावीर्यं** आक्रुश्यमानोऽपि न क्षुभ्यति । **गंभीरो** नाम न परीषहैः क्षुभ्यते, णातुं वा कातुं वा णो उत्तुणो भवति । उक्तं च—

छुड्डुच्छुलेति जं होति ऊणयं रित्तय कणकणेइ । भरियाइं ण खुब्भंती सुपुरिसविण्णाणभंडाइं ॥ १ ॥

उवयोगः सागार-अणागारुवयोग[7]वीरियं । सागारोवयोगवीरियं अट्ठविधं—पंच ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि । अणागारो-

---

१ वइ काए ख १ पु २ ॥ २ तहा य सं° ख २ पु २ पु० ॥ ३ अत्र भासशब्देन काक इत्यर्थः सम्भाव्यते ॥ ४ असम्भाव्ये चूसप्र० ॥ ५ विसेसो, एवं चूसप्र० ॥ ६ अज्झप्पे ख २ पु २ ॥ ७ °गारयोग° चूसप्र० ॥

चयोगवीरियं चतुव्विधं, येन स्वे स्वे विषये उपयुक्तः यो यमर्थं जानीते द्रष्टव्यं च पश्यति । एक्केक्कस्स मत्युपयोगादेः चतुर्विधो भेदो दव्वादि । एवं उवयोगवीरिए जाणति । जोगवीरियं तिविधं—मणज्झप्पवीरियं अकुशलमणणिरोधो वा कुशलमणउदीरणं वा मणस्स वा एगत्तीभावकरणं, मणवीरिएण य णियंठसंयता वड्ढमाण-अवट्ठितपरिणामगा य भवंति १ । वइवीरिए भासमाणो अपुणरुत्त निरवशब्दं च भाषते वागध्यात्मोपयुक्तः २ । काये वीर्यं सुसमाहित-पसन्नवं-सुसाहरितपादः कूर्मवदवतिष्ठते 'कधं निश्चलोऽहं स्याम् ?' इत्यध्यवसितः । उक्तं हि—"काए वि हु अज्झप्पं ते० ३ [आव नि० गा० १४७० पत्र ७७३] । तपोवीर्यं द्वादशप्रकारं तपस्तदध्यवसितः करोति । एवं सप्तदशविधे संयमेऽपि एकत्वाध्यवसितस्य संयमवीर्यं भवति—कथमहमतिचारं न प्राप्नुयामिति । एवमादि अध्यात्मवीर्यम् । एवमादि भाववीर्यं वीरियपुव्वे वण्णिज्जति विकल्पशः । उक्तं च—

सव्वणदीणं जा होज्ज वालुगा गणणमागता संती । तत्तो वहुत्तराओ अत्थो एक्कस्स पुव्वस्स ॥ १ ॥
सव्वसमुद्दाण जलं जति पत्थमितं हवेज्ज संकलणं । तत्तो वहुगतराओ अत्थो एगस्स पुव्वस्स ॥ २ ॥

[ ] ॥ ६ ॥ ८९ ॥

सव्वं पि[1] तयं तिविधं वालं तधा पंडितं च मिसितं च ।
अधवा वि होति दुविधं अगारं[2]-अणगारियं चेव ॥ ७ ॥ ९० ॥

सव्वं पि तयं तिविधं वालं तधा पंडितं च मिसितं च० [गाधा] । अधवा दुविधं, तं०—अगारवीरियं अणगारवीरियं च । तत्थ पडितवीरियं अणगाराणं । अगाराणं तु दुविधं—वालं च वालपंडितं चेति । तत्थ पंडितवीरियं पि सादीयं सपज्जवसितं च । वालवीरियं जधा असंजतस्स तिविधोविट्ठणा, तंजधा—अणादीयं अपज्जवसितं १ अणाईयं सपज्जवसियं २ सादीयं सपज्जवसियं ३, णो चेव णं सादीयं अपज्जवसितं । अधवा सव्वं तु वीरियं तिविधं—खइयं १ उवसमियं २ खायोवसमियं ३ ति । खइयं खीणकसायाणं १ उवसमियं उवसंतकसायाणं २ सेसाणं तु खयोवसमियं ३ ॥ ७ ॥ ९० ॥

तत्थ सुत्तं "सत्थमेगे सुसिक्खंति" [सुत्रगा० ४११] तत्थ णिज्जुत्तिगाधा—

सत्थं[3] तु असियगादी[4] विज्जा मंते य देवकम्मकतं ।
पत्थिव वारुणं[5] अग्गेय वाउ[6] तह मीसगं चेव ॥ ८ ॥ ९१ ॥
॥ वीरियं सम्मत्तं ॥ ८ ॥

सत्थं तु असियगादि० गाधा । सत्थं वियाकतं मन्त्रकतं च । तत्थ विज्जा इत्थी, मंतो पुरिसो । अधवा विज्जा ससाधणा, मंतो असाधणो । एक्केक्कं पंचविधं—पार्थिवं वारुणं आग्नेयं वायव्यं मिश्रमिति । तत्थ मिस्सं जं दिण्हं तिण्ह[7] वा देवताणं, अधवा विज्जाए मंतेण य, एताणि अधिदेवगाणि ॥ ८ ॥ ९१ ॥

गतो णामणिप्फण्णो । सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं । तं चिमं सुत्तं—

४०८. दुहा वेतं समक्खातं[8] वीरियं ति पवुच्चति ।
किण्णु वीरस्स वीरितं[9] ? केणं वीरो त्ति वुच्चति ? ॥ १ ॥

४०८. दुहा वेतं समक्खातं० सिलोगो । दुधा वि एतं द्विप्रकारं द्विभेदं वालं पंडितं च । चः पूरणे । एतदिति यदभिप्रेतम्, यद्वा इहाध्याये अधिकृतं वक्ष्यमाणम्, जं वा णिक्खेवणिज्जुत्तीवुत्तं । सम्यग् आख्यातं समाख्यातं तित्थगरेहिं गणधरेहिं च । विराजते येन तं वीरियं, विक्कमो वा वीरियं । पकरिसेण वुच्चइ पवुच्चइ, भृशं साध्वादितो वा वुच्चति ।

१ पि एतं ति° खं १ वृ० । पि य तं ति° ख २ पु २ ॥ २ पंडिय वालविरियं च मीसं च ख १ खं २ पु २ वृ० ॥ ३ °रमण° ख १ ॥ ४ सत्थं असिमादीयं विज्जा खं २ पु २ । सत्थं असियाईयं विज्जा ख १ ॥ ५ णमग्गे° ख १ ॥ ६ वायु ख १ पु २ ॥ ७ द्वयो तिसृणां वा ॥ ८ सुयक्खायं ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ °स्स वीरत्तं खं १ ख २ वृ० दी० ॥ १० कहं चेयं पवुच्चति ? ख २ पु १ पु २ । कहं चेव पमुच्चई ? ख १ ॥

किण्णु [वीरस्स] वीरितं केण वीरो त्ति वुच्चति, किमिति परिप्रश्ने, नु वितर्के, वीर्यमस्यास्तीति वीरः, किं तद् वीरस्स वीर्यम्? केण वा वीरे त्ति वुच्चति, केण वा कारणेण वीर इत्यभिधीयते? ॥ १ ॥

पृच्छा गता। वाकरणं तु–'किं वीरियं?' जं पुच्छितं तदिदमपदिश्यते—

४०९. कम्ममेवं परिण्णाय अकम्मं वा वि सुव्वता।
एतेहिं दोहिं ठाणेहिं जेम्मि दिस्संति मंचिया ॥ २ ॥

४०९. **कम्ममेव परिण्णाय०** सिलोगो। क्रिया कर्मेत्यनर्थान्तरम्। क्रिया हि वीर्यम्, **एवं परिण्णाए** एवं परिजानीहि। तस्सेगट्ठिया–उट्ठाणं ति वा कम्मं ति वा वलं ति वा वीरियं ति वा एगट्ठं। पठ्यते च–"**कम्ममेव पभासंति**" एवं प्रभाषन्ति कर्मवीर्यम्। अथवा यदिदमष्टप्रकार कर्म तद्धि औदयिकभावनिष्पन्नं कर्मेत्यपदिश्यते, औदयिकोऽपि च भावः कर्मोदयनिष्पन्न एव वालवीरियं वुच्चति। वितियं–**अकम्मं वा वि सुव्वता**, अकर्मवीर्यं तत्, तद्धि कर्मक्षयनिष्पन्नम्, न वा कर्म वध्यते, न वा कर्मणि हेतुभूतं भवति। **सुव्रताः** तीर्थकराः प्रभाषन्त इति वर्त्तते, **परिजानन्त** इति वर्त्तते। तत्तु पण्डितवीर्यमित्यपदिश्यते। **एते एव द्वे स्थाने,** तं०–कम्मवीरियं च अकम्मवीरियं च। तत्र प्रमादात् कर्म वँध्यते अप्रमादान्न वँध्यते। अथवा द्वाविति वालं पण्डितं च। वालं असंजताणं पंडितं संजयाणं। तत्र तावद् वालवीरियं अपदिश्यते। अथवा **जम्मि दिस्संति** वट्टमाणा **मंचिया** मणुस्सा ॥ २ ॥ तत् कथम्?, उच्यते—

४१०. पमादं कम्ममाहंसु अप्पमादं तधाऽवरं।
तब्भावदेसओ वा वि वालं पंडितमेव वा ॥ ३ ॥

४१०. **पमादं कम्ममाहंसु०** सिलोगो। 'प्रमादात् कर्म भवति' एवं वक्तव्ये "कारणे कार्योपचारात्" प्रमादः कर्मेत्युच्यते, स च प्रमादः। [.......................] तदिहावि संभवे आदिशे **पंडितं** सादिं सपज्जवसितं। **वालं** तिविधं–अणादिअपज्जवसितं अभवियाणं, अणादिसपज्जवसितं भवियाणं, सादिसपज्जवसितं सम्मद्दिट्ठीणं ॥ ३ ॥

जं तं वालं तं कधं होज्जा? उच्यते—

४११. अत्थमेगे सुसिक्खंति अतिवाताय पाणिणं।
केइ मंते अधिज्जंति पाण-भूतविहेडिणो ॥ ४ ॥

४११. **अत्थमेगे सुसिक्खंति०** सिलोगो। अस्त्रमिति धनुरुपदिश्यते, धनुःशिक्षामित्यर्थः, आलीढस्थानविशेषतः, **एगे** असंजता, न सर्वे, अथवा सर्वे कारणा अस्त्रशास्त्राण्यधीयते, हंभीमासुरुक्खं कोडल्लगं धर्मपढका वैधकं बावत्तरिं वा कलाओ सुट्ठु सिक्खंति। अशुभेनाध्यवसायेन **अतिवाताय पाणिणं** ति एवं पुरुषस्य शिरश्छेत्तव्यम्, एवं चार्थी प्रत्यर्थी वा दण्डयितव्यः, नेत्रांगा(? का)रादिभिश्च कारी अकारी च ज्ञातव्यः, अमुकापराधे चायं दण्डो हस्तच्छेद-मारणेत्यादि। किञ्च–**केइ मंते अधिज्जंति,** अस्त्रमंते आभिचारुके अथर्वणे हृदयोण्डिकादीनि च अश्वमेधं सर्वमेव पुरुषमेधादि च मन्त्रानधीयते। **भूतमन्त्रो** धातुवादः विलवादादि। वहूणं पाणाणं भूताणं विहेडणं, विवाधन इत्यर्थः। उक्तं च—

पट् शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि। अश्वमेधस्य वचनान्न्यूनानि पशुभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥

[ ]

---

१ °मेगे पवेदेंति अ° खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। °मेते पवेदेंति ख १। °मेव पभासंति चूपा० ॥ २ जेहिं ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ दीसंति ख १ ॥ ४ मच्चिता खं १ ख २ पु १ ॥ ५-६ वाध्यते चूसप्र० ॥ ७ सत्थमेगे तु सि° खं १ पु १ पु २। सत्थमेगे सुसि° खं १ वृ०, नि० गा० ९१ चूर्ण्यवतरणे ॥ ८ °वादाय खं २ पु १ ॥ ९ एगे मंते खं १ खं १ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० नेत्रारागादि° चूसप्र० ॥

ते तु अशुभाध्यवसिताः ॥ ४ ॥ किञ्च—

४१२. माइणो कट्टु मायाओ कामभोगे समाहरे ।
हंता छेत्ता पकत्तित्ता आतसाताणुगामिणो ॥ ५ ॥

४१२. माणओ काहु (माइणो कट्टु) मायाओ० सिलोगो । तेण चाणक्क-कोडिल्लं ईसत्थादी मायाओ अधिज्जंति जधा परो वंचेतव्वो । तहा वाणियगादिणो य उक्कंचण-वंचणादीहिं अत्थं समज्जिणंति । लोभो तत्थेव ओतरेति, माणो वि । एवं मायिणो मायाहिं अत्थं उवज्जिणंति, यथेष्टानि सावद्यकार्याणि साधयन्ति, तत एषां कर्मबन्धो भवति । **कामभोगान् समाहरे,** कारणे कार्यवदुपचारः, अर्थ एव कामभोगाः तान् समाहरन्तीति । **पठ्यते च–"आरंभाय तिउट्टइ"** आरम्भात् त्रिभिः काय-वाग्-मनोभिः आवट्टतीति **तिउट्टति,** बहवे जीवे एगिंदियादि जाव पंचेंदिय त्ति वंधति य एवमादि आरभते पापम् । [**हंता** गामादि, **छेत्ता** मियपुंछादि, **पकत्तिया** हत्थिदंतादि इत्यादि वा । **आतसाता०**] ॥ ५ ॥ तं तु—

४१३. मणसा वयसा चेव कायसा चेव अंतसो ।
आरतो परतो वा वि दुहा वि य असंजता ॥ ६ ॥

४१३. मणसा वयसा चेव० सिलोगो । मणसा वयसा कायसा, णवएण भेदेणं जीवे हणंतो वंधंतो उद्दवेंतो आणवेंतो कुट्टेंतो अर्थोपार्जनपरो निर्दयः । अधवा [?? **हंता** गामादि, **छेत्ता** मियपुंच्छादि, **पकत्तिया** हत्थिदंतादि इत्यादि वा, **आतसाता०** । ??] मणसा "कइया वच्चइ सत्थो०" गाधा, कायेण किलिस्संतो, पढमं मणसा, पच्छा वायाए, अंतकाले काएण । **आरतो** सयं, **परतो** अण्णेण, **दुहा वि** ॥ ६ ॥ स एवम्—

४१४. वेराणि कुव्वती वेरी ततो वेरेहिं रज्जति ।
पापोपका य आरंभा दुक्खफासा य अंतसो ॥ ७ ॥

४१४. वेराणि कुव्वती वेरी० सिलोगो । स वैराणि कुरुते वैरी । **ततो** अण्णे मारेति, अण्णे वंधति, अण्णे दंडेत्ति, अण्णे णिव्विसए आणवेत्ति, चोर-पारदारिय-सूय-च्चोपगादिबहुजणं वेरियं करेति । जेसु वा त्थाणेसु **रज्जति** सज्जति गिज्झति अज्झोववज्जति । **पठ्यते च–"जेहिं वेरेहिं कच्चति"** ततस्ते वैरिणः इहभवे चेव करकयादीहिं कच्चंति, छिद्यन्त इत्यर्थः । जाणि वा करेति ताणि से अधिकतराणि पडिकरेंति, रामवत्, जधा **रामेण** खत्तिया उच्छादिता ।

अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् । अधिकां कुरु वैरयातनां, द्विषतां जातमशेषमुद्धरे ॥ १ ॥

[　　　　　　　　]

सुभोम्मेणावि तिसत्तखुत्तो णिबंभणा पुधवी कता । **पापोपका य आरम्भाः,** पापार्हाः **पापोपगाः** पापयोग्याः, पापानि वा उपगच्छन्त्यारम्भिणः, **आरम्भा** हिंसादयः, **दुःखस्पर्शा** दुहावहाः, दुःखोदयकरा इत्यर्थः, **अन्ते** इति **अन्तशः** मृतस्य नरकादिषु । "पावाणं खलु भो ! कडाणं कम्माणं दुच्चिण्णाण जाव वेदइत्ता मोक्खो, णत्थि अवेदइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता" [दशवै० अ० ११ स्थान १८] । अष्टानामपि प्रकृतीनां यो यादृशोऽनुभावः स तथा फलति ॥ ७ ॥ किञ्च—

४१५. संपरागं निगच्छंति अत्ता दुक्कडकारिणो ।
राग-दोसस्सिता बाला पावं कुव्वंति ते बहुं ॥ ८ ॥

---

१ कामभोगे समारभे पु २ वृ० दी० । कामभोगे समाहरे खं १ खं २ पु १ । आरंभाय तिउट्टइ चूपा० वृपा० ॥ २ पगब्भित्ता खं २ पु १ ॥ ३ चतुरस्रकोष्ठकान्तर्गतोऽयं प्रकृतसूत्रश्लोकसत्कचूर्णिग्रन्थसन्दर्भो लेखकप्रमादादिकारणादनन्तरसूत्रश्लोकचूर्णौ प्रविष्टो वर्तते । मया त्वेषोऽत्र यथास्थानं चतुरस्रकोष्ठकान्त स्थापितोऽस्ति । दृश्यतां टिप्पणी ५ ॥ ४ नवकेन भेदेन ॥ ५ [?? ??] एतच्चिह्नान्तर्गतोऽयं पञ्चमसूत्रश्लोकसत्कचूर्णिग्रन्थसन्दर्भ लेखकप्रमादादत्रागतोऽस्ति, अतोऽय चूर्णिग्रन्थसन्दर्भोऽनन्तरातिक्रान्तश्लोकचूर्णौ यथास्थान चतुरस्रकोष्ठकान्तर्निवेशितोऽस्तीति ॥ ६ वेरातिं खं १ । वेराई खं २ । वेराइं पु १ पु २ ॥ ७ जेहिं वेरेहि कच्चति चूपा० ॥ ८ वरत्थाणेसु रज्जति सज्जसज्जति चूसप्र० ॥ ९ अत्तदुक्कडकारिणो खं २ पु १ पु २ वृ० दी० । "आत्मदुष्कृतकारिण" इति वृत्ति ॥

४१५. संपरागं [णिगच्छंति० सिलोगो ।] तासु तासु गतिषु संपराणिज्जतीति संपरागः संसारः । अथवा पर इत्यनाभिमुख्येन वध्यमानमेव वेद्यते, निगच्छंति प्राप्नुवन्ति । आर्त्ता नाम विषय-कषायार्त्ताः । दुक्कडकारिणो दुक्कडाणि हिंसादीणि पावाणि कुर्वन्तीति दुक्कडकारिणः । किंनिमित्तम् ? राग-दोसस्सिता बाला बालवीर्याः, स एव प्रकृतिः ङ्क[2], बहुं किर कालं ठिती मोहणीयस्स विभासा । ततस्तैः पापैः कर्मभिः साम्परायिकैः सम्परायमेव णियच्छंति, संसारमित्यर्थः, तत्र च नरकादिषु दुःखान्यनुभवन्ति ॥ ८ ॥

४१६. एतं सकम्मविरियं बालाणं तु पवेदितं ।
एत्तो अकम्मविरियं पंडिताणं सुणेह मे ॥ ९ ॥

४१६. एतं सकम्मवीरियं० सिलोगो । सकर्मवीरियं ति वा बालवीरियं ति वा एगट्ठं । इदानीं अकम्मवीरियं ति वा पडितवीरियं ति वा एगट्ठं ति ॥ ९ ॥ केरिसो पुण पंडितो ? उच्यते—

४१७. दविए[3] बंधणुम्मुक्के सव्वतो छिण्णबंधणे ।
पणोल्ल[4] पावगं कम्मं सल्लं कंतेति[5] अंतसो ॥ १० ॥

४१७. दविए बंधणुम्मुक्के० सिलोगो । राग-द्दोसविमुक्को दविओ, वीतराग इत्यर्थः, अथवा वीतराग इव वीतरागः, बन्धनेभ्यो मुक्तकल्पः[6] पण्डितवीर्यावरणेभ्यः । सव्वसो छिन्नबंधणे त्ति सिद्धः, तेन नाधिकारः । ये पुनः प्रमादादयो हिंसादयः रागादयो वा तेषु कार्यवदुपचाराटुच्यते—सव्वतो छिण्णबंधणे, न तेषु वर्त्तत इत्यर्थः । कसायअप्पमत्तो वा स अकर्मवीरः, एवं चेव अकम्मवीरिय वुच्चति । कधं अकम्मवीरियं ?, यतस्तेन कर्म न वध्यते, न च तत् कर्मोदयनिष्पन्नम्, येन कर्मक्षयं करोति तेन अकर्मवीर्यवान् । पणोल्ल पावगं कम्मं, प्रमादादीन् पापकर्माश्रवान् तान् प्रणुद्य सल्लं कन्तेति अंतसो[7], भावकम्मसल्लं अट्ठप्पगारं, तत् कृन्तति छिनत्तीत्यर्थः, अन्तसो त्ति यावदन्तोऽस्य, निरवशेषमित्यर्थः ॥ १० ॥

केन कृन्तति ? किं वाऽऽदाय कृन्तति ? इति, उच्यते—धम्ममादाय । कीदृशं धर्मम् ?—

४१८. णेयाउअं[9] सुअक्खातं उपादाय समीहते ।
भुज्जो भुज्जो दुहावासं असुभत्तं तधा तधा ॥ ११ ॥

४१८. णेयाउअं सुअक्खायं० सिलोगो । नयनशीलो नैयायिकः । कुत्र नयति ?, मोक्षम् । सुष्ठु आख्यातः सुअक्खातः । उपादायेति गृहीत्वा । सम्यग् ईहते समीहते ध्यानेन । किं ध्यायते ?, धम्मं सुक्कं च । तदालंबणाणि तु भुज्जो भुज्जो दुहावासं, भूयो भूय इति वीप्सार्थः, अतीता-ऽनागतानि अणंताइ भवग्गहणाइं, सकम्मवीरियदोसेण भूयो भूयो णरगादिसंसारे णाणाविधदुक्खवासे सारीरादीणि दुक्खाणि भुज्जो भुज्जो पावति । अशुभभावः असुभत्तं, तधा तधा तेन तेन प्रकारेण, यथा यथा कर्म तथा तथाऽशुभं फलति । अथवा अशुभमिति अशुभभावना गृहीता, यथा "शुभं किं नु कडेवरे०" [ ] । एवमनित्याद्या अपि द्वादश भावना गृहीताः ॥ ११ ॥ तत्रानित्यभावना—

४१९. ठाणी विविधठाणाणि चइस्संति ण संसओ ।
अणितिए[10] इमे वासे णातीहि[11] य सुहीहि य ॥ १२ ॥

४१९. ठाणी विविधठाणाणि० सिलोगो । स्थानान्येषां सन्तीति स्थानिनः । देवलोके तावदिन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंशाद्याः । मनुष्येष्वपि चक्रवर्त्ति-बलदेव-वासुदेव-मण्डलिक-महामण्डलिकादि । तिर्यक्ष्वपि यानीष्टानि, विविधानीति उत्तम-मध्यमा-ऽधमानि । तेभ्यः स्थानेभ्यः सर्वस्थानिनः चइस्संति, नास्त्यत्र संशयः । उक्तं हि—

---

१ " नियच्छन्ति वध्नन्ति" इति वृत्तौ ॥ २ ङ्क इति चत्तु सङ्ख्यायोतकोऽक्षराङ्क । प्रकृति स्थिति रसोऽनुभागश्चेत्यर्थ ॥ ३ दविते ख २ पु १ ॥ ४ पणोल्ले खं १ ख २ पु १ पु २ । ५ कत्तति अतसो ख १ । कंतइ अप्पणो पु २ वृपा० ॥ ६ मुक्तकेभ्यः पण्डि° चूसप्र० ॥ ७ अप्पणो, भाव° चूसप्र० ॥ ८ कर्म चूसप्र० ॥ ९ णेताउयं ख १ ॥ १० अणितिए य संवासे वृ० दी० । अणीतिते अयं वासे ख १ । अणीयए अयं वासे पु १ पु २ । अणियए य संवासे ख २ ॥ ११ णायएहिं सु° ख १ पु २ । नाततेहिं सु° खं २ ॥

अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणि दिवि चेह च । देवा-ऽसुर-मनुष्याणां ऋद्धयश्च सुखानि च ॥ १ ॥

[ ]

किञ्च–अणितिए इमे वासे, जीवतोऽपि हि अनित्यः संवासो भवति, कैः ?, ज्ञातिभिः, ज्ञातयो नाम माता-पितृ-सम्बन्धाः, सुहृदः शेषा मित्रादयः ॥ १२ ॥

४२०. एवमादाय मेधावी अप्पणो [1]गिद्धिमुद्धरे ।
[2]आयरियं उवसंपज्जे [3]सव्वे धम्मा अकोपिता ॥ १३ ॥ [सूत्राग्रं० ५००]

४२०. एवमादाय मेधावी० सिलोगो । एवमवधारणे, आदाए त्ति एवं बुद्ध्या गृहीत्वा, यथा सर्वाणि अशाश्वतानि स्थानानि पण्डितवीर्यगुणाश्च मोक्षे च शाश्वतं स्थानं आदाए त्ति, अथवा द्वादशसु भावनासु यदुक्तं तं आदाय उपधारयित्वेत्यर्थः, आत्मनैव आत्मनि गृद्धिमुद्धरेत्, ममीकारमित्यर्थः, तं०–"हत्था मे पादा मे जीवेज्जामि जेसु या ।" कलत्र-स्वजन-मित्रादिषु ग्रेधिरुत्पद्यते तेभ्य आत्मनैव आत्मानमुद्धरेत् । किञ्च–गिद्धिमुद्धरेमाणो आयरियं उवसंपज्जे, स्वाध्याय-तपादीनुत्तरोत्तरगुणानुपसम्पद्यमानः चरित्तारियं मग्गं उवसंपज्जेज्जा, आयरियाण वा मग्गं उवसंपज्जेज्ज । सर्वे धर्माः कुतीर्थिकानां अकोपिता नामा ण केहिं वि कोविज्जति । कोवितो णाम दूषितः, कूटकार्षापणवत्, छेदो पुण ण कोविज्जइ ॥ १३ ॥ तं कथं उवसंपज्जइ ?, दोहिं ठाणेहिं—

४२१. सहसम्[4]मुतियाए णच्चा धम्मसारं सुणे[5]त्त वा ।
[6]उवट्ठिते य मेधावी पडिघातपावगे ॥ १४ ॥

४२१. सहसम्मुतिआए णच्चा० सिलोगो । शोभना मतिः सन्मतिः, सहजाऽऽत्ममतिः सहसन्मतिः, स्वा वा मतिः सन्मतिः, सह सम्मतीए सहसम्मतिगं प्रत्येकबुद्धानाम् । निसर्गसम्यग्दर्शने वा पित्तज्वरोपशमनदृष्टान्तसामर्थ्याद् आभिणिबोधिय-सुयं उप्पाडेति, जधा इलापुत्तेण [आव० हारि० वृ० पत्र ३५९–२ नि० गा० ८४६] । धम्मसारं सुणेत्त वा, यथा तीर्थकरसकाशादन्यतो वा धर्म एव सारः धर्मसारः, धर्मस्य वा सारः धर्मसारः चारित्रं तं [सुणेत्ता श्रुत्वा] प्रतिपद्यते, पच्छा उत्तरगुणेसु परक्कमति पंडितवीरिएण पुव्वकम्मक्खयट्ठताए । एवं सो दविओ हिंसादि रागादि वा बंधणविमुक्को अकम्मवीरिए उवट्ठिते य मेधावी पडिघातपावगे, धम्मे उवट्ठिते अकम्मवीरिए या वड्ढमाणपरिणामे मेराए धावतीति मेधावी प्रत्याख्यातहिंसादि[7]अट्ठारससंजत-विरत-पडिहत-पच्चक्खातपावकम्मे ॥ १४ ॥ स एवमुत्तरगुणेसु घडमाणो—

४२२. [8]जं किंचि उवक्कमं णच्चा आउक्खेमं च अप्पणो ।
तस्सेव अंतरद्धा खिप्पं सिक्खेज्ज पंडिते ॥ १५ ॥

४२२. जं किंचि उवक्कमं णच्चा० सिलोगो । यत्किञ्चिदिति उपक्रमाद्वा अवाएण वा । अधवा तिविहो उवक्कमो–भत्तपरिण्णा-इंगिणादि । आयुषः क्षेममित्यारोग्यं शरीरस्य, चाद् उपद्रवा आत्मन इत्यात्मशरीरस्य । तस्सेव अंतरद्धा, तस्सेति तस्य आयुःक्षेमस्य अन्तरद्धा इत्यन्तरालं यावन्न मृत्युरिति यावद्धा मूढा संज्ञा । खिप्पमिति खिप्पं सलेहणाविधिं शिक्षेत ॥ १५ ॥ सिक्खा दुविधा–आसेवणासिक्खा गहणसिक्खा य । ग्रहणे तावद् यथावन्मरणविधिर्विज्ञेयः । आसेवनया ज्ञात्वा आसेवितव्यं यद् यदिच्छति मनसा । आसेवणसिक्खा—

---

१ गेहिमु° ख २ ॥ २ आरियं ख १ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ सव्वधम्ममकोवियं ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सव्वधम्ममगोवियं ख १ वृपा० ॥ ४ °म्मुइए खं १ ख २ पु १ वृ० दी० । °म्मइए पु २ ॥ ५ सुणेत्तु ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ समुवट्ठिते अणगारे पच्चक्खायपावए ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० । उवट्ठिते उ अण° ख १ ॥ ७ "वयछक्क ६ कायछक्कं १२ अकप्पो १३ गिहिभायण १४ । पलियंक १५ निसिज्जा य १६ सिणाण १७ सोभवज्जण १८ ॥ १ ॥" इत्येतदष्टादशकम् ॥ ८ जं किंचुवक्कमं जाणे आउक्खेमस्स अप्पणो । तस्सेव अंतरा खिप्पं सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिते ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० । किं तुवक्कमं ख २ पु १ पु २ ॥

४२३. जधा कुम्मो सयंगाइं सए देहे समाहरे।
एवं पावेहिं अप्पाणं अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥

४२३. जधा कुम्मो सयंगाइं० सिलोगो। मरणकाले च नित्यमेव यथा कूर्मः स्वान्यङ्गानि पञ्च सए देहे समाहरे त्ति नाम प्रवेशयति, ततः शृगालादिभ्यः पिशिताशिभ्यः अभिगम्यो न भवति। एवं पावेहिं अप्पाणं, पावाणि हिंसादीणि कसायादीणि च, मरणकाले चाऽऽहारोपकरणसेवणव्यापाराच्चाऽऽत्मानं संहृत्य निर्व्यापारः संलेखनां कुर्यात्। आत्मानमधिकृत्य यत् प्रवर्त्तते तद् अध्यात्मम्, ध्यानं स्वाध्यायो वैराग्यं एकाग्रता इत्यादिनाऽध्यात्मेन पापात् समाहरे त्ति ॥ १६ ॥

तत्र त्रयाणां मरणानामन्यतम व्यवस्यते। इह तु पाओवगमणमधिकृतम्, येनापदिश्यते—

४२४. [1]संहरे हत्थ-पादे य कायं सव्विंदियाणि य।
पावगं च परीणामं भासादोसं [2]च पावगं ॥ १७ ॥

४२४. संहरे हत्थ-पादे य० सिलोगो। हस्त-पादप्रवीचारं संहृत्य निष्पन्दस्तिष्ठेत्। कायं च संहर उद्धृत्तनादिभ्यः। सर्वेन्द्रियाणि वा स्वे स्वे विषये संहर राग-द्वेषनिवृत्तिं कुरु। पावगं च परीणामं० वृत्तम्। णिदाणादि इहलोगासंसप्पयोगं च संहर इति वर्त्तते। भासादोसं च पावगं ति वाग्गुप्तिर्गृह्यते ॥ १७ ॥ एवं भत्तपरिण्णाए इंगिणीए वि अयतत्तं साहर, "जतं गच्छे जतं चिट्ठे" [दशवै० अ० ४ प्रान्ते गा० ८] त्ति। दुर्लभं पण्डितमरणमासाद्य कर्मक्षयार्थं सदोपयुक्तेन भाव्यम्। तत्थ णं जति कोयि राया वा रायामच्चो वा वंदेज्ज वा पूयेज्ज वा निमंतेज्ज वा तत्र न रागः कार्य इति कृत्वा अपदिश्यते—

४२५. [3]अणु माणं च मायं च तं परिण्णाय पंडिते।
सुतं मे इहमेगेसिं एवं वीरस्स वीरियं ॥ १८ ॥

४२५. अणु माणं च मायं च० [सिलोगो]। अधवा मरणकाले चामरणकाले च सर्वकालमेव अणु माणं च मायं च तं परिण्णाय पंडिते। अणुरिति स्तोकोऽपि मानो न कर्त्तव्यः, किमु महान्? । अणुरपि च मायां न कार्या, किमु महती? इति। पूजा-सत्कार-कामभोगे कोइ पडिसेवेज्ज, जधा पंडरज्जाए [दशाश्रु० अ० ८ नि० गा० ५७-५८ तच्चूर्णौ च। आव० चूर्णौ पत्र ५२२। आव० हारि० वृत्ति. पत्र ३९३-२]। एवं च क्रोधभावमपि दुविधाए परिण्णाए ज्ञात्वा कषायविपाकं च तेभ्यो निवृत्तिं कुर्यादिति पण्डितः। पठ्यते च—"अतिमाणं च मायं च, तं परिण्णाय पंडिते" अतीव मानो यथा सुभोम्मादि, कोऽर्थः?—यद्यपि सरागस्य मानोदयः स्यात् तथापि उदयप्राप्तस्य विफलीकरणं कार्यम्। सुतं मे इहमेगेहिं(सिं) एवं वीरस्स वीरियं, श्रुतं मया तीर्थकरात् स्थविरेभ्यो वा इहेति इहलोके प्रवचने वा एकेषां न सर्वेषाम्, एतद् वीर्यवतो वीरस्य पंडितवीरियं, यदुक्तं वीरस्स वीरत्तं इति। यथा वाऽस्यावसानमिति तद् व्याख्यातम् ॥ १८ ॥

स एवं मरणकाले अमरणकाले वा पण्डितवीर्यवान् महाव्रतेषूद्यतः स्यात्। तत्राहिंसा प्रथमम्—

[5]४२६. उड्ढमधे [6]तिरियं दिसासु जे पाणा तस-थावरा।
सव्वत्थ विरतिं कुज्जा संति-णिव्वाणमाहितं ॥ १९ ॥

४२६. अस्य श्लोकस्य चर्चा उक्ता [सूत्रगा० २४३] ॥ १९ ॥ किञ्च—

---

१ पावाइं मेधावी अज्झ° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ साहरे हत्थ-पादे य मणं स° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ च तारिसं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ आयतट्ठं सुयादाय एयं वीरस्स वीरियं। सातागारवणिहुते उवसंते अणिहे चरे ॥ इतिरूप सूत्रश्लोक ख १ वर्त्तते। अणु माणं च मायं च तं परिण्णाय पंडिए। आययट्ठं सुयादाय एवं वीरस्स वीरस्स वीरियं। सायागारवणिहुते उवसंतेऽणिहे चरे ॥ इतिरूप पाठ ख २ पु १ पु २ वर्त्तते। अणु माणं च मायं च तं परिण्णाय पडिए। सातागारवणिहुए उवसंतेऽणिहे चरे ॥ इतिरूप सूत्रपाठ वृ० दी०। अतिमाणं च मायं च तं परिण्णाय पंडिए। इति सुयं मे इहमेगेसिं एयं वीरस्स वीरियं। इति आयतट्ठं सुआदाय एवं वीरस्स वीरितं। इति च सूत्रपूर्वार्धस्य पाठभेदत्रयं वृत्तौ वृत्तिकृता निर्दिष्टं वर्त्तते। चूर्णौ त्वाद्य एक एव पाठभेदो निर्दिष्टोऽस्ति ॥ ५ नाय सूत्रश्लोक सूत्रप्रतिषु दृश्यते। किञ्च चूर्णि-वृत्ति-दीपिकाकृद्भिरयं श्लोको निर्दिष्टोऽस्ति। अपि चायं श्लोक तृतीयाध्ययनचतुर्थोद्देशके २४३ तमो वर्त्तते ॥ ६ तिरियं वा जे दी०। तिरिय दिसासु जे वृ० ॥

* ४२७. पाणे य णातिवाएज्जा अदिण्णं पि य णाऽऽतिए ।
सातियं ण मुसं बूया एस धम्मे वुसीमयो ॥ २० ॥

४२७. एवं तावत् पाणातिवायं वज्जेज्ज । ण वा अदिण्णादाणं आदिएज्जा । सादियं णाम माया, सादिना योगः सादियोगः, सह आतिना सातियं, न हि मृषावादो मायामन्तरेण भवति, स चोक्कंचण-वंचण-कूडतुलादिसु भवति, सातियोगसहितो मुसावादो भवति, स च प्रतिषिध्यते, अन्यथा तु 'न मृगान् पश्यामि, ण य वल्लिकाइयेसु समुद्दिस्सामो' एवमादि ब्रूयात्, येनात्र परो वञ्च्यते तत् प्रतिषिध्यते, कोध-माण-माया-लोभसहितं वचः । एष धर्मः योऽयं उक्तः स्वभावः, वुसिमतां वसूनि ज्ञानादीनि ३ ॥ २० ॥

४२८. अयंभावरते णिच्चं भवे भिक्खू [सुसंवुडे] ।
अतिक्कमं तिपादाए मणसा वि ण पत्थए ॥ २१ ॥

४२८. अयंभावरते णिच्चं भवे भिक्खू० कण्ठ्यम् । अतिक्कमं तिवायाए मणसा वि ण पत्थए, अतिः अतिक्रमणे, येनातिक्रम्यन्ते एतानि पञ्च महाव्रतानि सोऽतिक्रमः । तत्र प्राणातिपातमधिकृत्यापदिश्यते—तिपादाए त्रिभ्यः पातयतीति त्रिपातः, तद् मनसाऽपि न प्रार्थयेत्, किमु वचसा कर्मणा वा ? नवकेन भेदेन । एवं शेषाणामपि जाव परिग्रहः ॥ २१ ॥ एवं तावत् स्वयं न करोति व्रतातीचारम् । योऽपि तमुद्दिश्यान्यैः प्राणातिपातः कृतः क्रियते वा तत्राप्ययमुपदेशः—

४२९. कडं च कीरमाणं च आगमेस्सं च पावगं ।
सव्वं तं णाणुजाणंति आतगुत्ता जितिंदिया ॥ २२ ॥

४२९. कडं च कीरमाणं च० सिलोगो । आधाकम्मादि कडं अगेण्हेमाणो णाणुजाणति । कीरमाणमवि जं जाणति ममऽट्ठाते तं णिवारेति—णो खलु मम अट्ठाए किंचि वि करणिज्जं । एवं जो वि आत्मनिमित्तं असंयमस्थैः कृतः, तद्यथा—शत्रोः शिरश्छिन्नं छिद्यते वा, वध्यो हतो हन्यते वा, मांसाद्योपकानि सत्त्वानि हतानि हन्यन्ते वा, तमपि कडं च कज्जमाणं च णाणुजाणति । आगमेस्सं च पावगं ति, जति णं कोइ भणिज्जा—अहं ते आउसंतो समणा ! असणं वा ट्ठ उवक्खडेमि, तं पि णिवारेति—णो खलु मम अट्ठाए किंचि करणिज्जं । एवं असंजतो वि जो ज हंतुकामे तं पि आगमेस्सं पावगं सव्वं तं णाणुजाणंति, सर्वमिति तन्निमित्तं वा कतं कज्जमाणं वा णवगेण भेदेण णाणुजाणंति पंडिया । आत्मनि आत्मसु वा गुत्ता जितेन्द्रिया जीहादोसणियत्ता । अथवा सर्वमिति आहारोपकरणादि, सेज्जाओ वि बायालीसदोसपरिसुद्धाओ घेप्पंति ॥ २२ ॥ एवं ते भगवन्तः संयमवीरियावस्थिता नवकेन भेदेन तदतीचारं न कुर्वते । ये तु तद्विधर्मिणः बालवीर्यावस्थिता अपि गृहेभ्योऽपि निःसृताः सन्तः—

४३०. जे याऽबुद्धा महानागा वीराऽसम्मत्तदंसिणो ।
असुद्धं तेसि परक्कंतं सफलं होति सव्वसो ॥ २३ ॥

४३०. जे याऽबुद्धा महानागा० [सिलोगो] । जे त्ति अणिद्दिट्ठनिद्देसो । अबुद्धा बुद्धवादिनः, अथवा न बुद्धा अबुद्धाः बालवीर्यावस्थिताः सकम्मवीरिए वट्टंति । तहा(महा) पाणं णयंति महानागाः, विज्ञायलेण वा यथा बुद्धः तपस्वी,

१ णादिवाएज्जा ख १ । णाइवातेज्जा खं २ पु १ । णाइवाइज्जा पु २ ॥ २ णाऽऽदिए ख १ । नाऽऽयए खं २ पु १ पु २ ॥ ३ सातिं ण चूसप्र० ॥ ४ सह सातिमा सातियं चूसप्र० ॥ ५ लोभइसितं चूसप्र० ॥ ६ अतिक्कमं ति वायाए मणसा वि ण पत्थए । सव्वतो संवुडे दंते आयाणं सुसमाहरे ॥ इतिरूपः सूत्रश्लोकः खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० वर्तते ॥ ७ अतिरिति क्रमेण, येना० चूसप्र० ॥ ८ तिपाद एव त्रि० चूसप्र० ॥ ९ च कज्जमाणं खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० °परिबुद्धा° चूसप्र० ॥ ११ जे अबुद्धा ख १ पु २ ॥ १२ महाभागा पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ °रा जस° ख २ ॥ १४ °दंसिणो ख १ खं २ पु १ पु २ ॥

निमित्तबलेन वा यथा गोशालः, रायपव्वइतगा वा बहुजणणेतारः बहुजनेनाऽऽश्रियन्ते । पूया-सक्कारणिमित्तं विज्जाओ णिमित्ताणि य पयुंजमाणा तपांसि च प्रकाशानि प्रकुर्वन्ति तेषां बालानां यत् किञ्चिदपि पराक्रान्तं तदशुद्धम्, भावोपहतत्वाद् चक्केनापि भेदेन अज्ञानदोषाच्च । एवमादिभिर्दोषैः असुद्धं तेसिं परक्कंतं, असुद्धं नाम यथोक्तैर्दोषैः, पराक्रान्तं चरितं चेष्टितमित्यर्थः, कुवैद्यचिकित्सावत् । सफलं होति सव्वसो, फलं णाम कम्मबंधो, तत्तत्कर्मबन्धं प्रति सफलं भवति, सर्वश इति सर्वाः क्रियास्तेषां कर्मबन्धाय भवन्ति । सर्वं हि कटुकविपाकं सुचरितमपि पुद्गलस्य मिथ्यादृष्टेः, निर्वाणं वा प्रत्यफलं भवति ॥ २३ ॥ सर्वशस्तद्विपरीताः सच्छासनप्रतिपन्नाः—

४३१. जे तु बुद्धा महानागा वीरा सम्मत्तदंसिणो ।
सुद्धं तेसिं परक्कंतं अफलं होति सव्वसो ॥ २४ ॥

४३१. जे तु बुद्धा महानागा॰ सिलोगो । स्वयम्बुद्धास्तीर्थकराद्याः, तच्छिष्या वा बुधबोधिता गणधरादयः महानागा इति । चतुरसीती उसभसामिणो सिस्ससहस्साणि, उसभसेणस्स बत्तीस समणसाहस्सीओ गणो आसी, एवं जाव वद्धमाणसामी ताव संघस्स चतुव्विधस्स परिमाणं भासितव्वं । प्रत्येकबुद्धाः पुनः साम्प्रतं न महानागाः, केचित्तु पूर्वमासन् । ये चान्ये राजादयः पूर्वं महानागाः आसन् पश्चाद्वा जातास्ते वीरा इति अकम्मवीरिए वट्टमाणा सरागा वीतरागा वा, वीराः तपसि णाणादीहि वा विराजंतीति, वीरा विदारयन्तीति वा कर्माणि । सम्मं पस्सतीति सम्मत्तदंसिणो । तेसिं भगवंताणं सुद्धं तेसिं परक्कंतं, शुद्धं णाम निरुवरोधं सल्ल-गारव-कसायादिदोसपरिशुद्धं अनुपरोधकृद् भूतानां तविदुपसविधे (?) संजमे च पराक्रान्तिः । अफलं होति सव्वसो, फलं णाम कर्मबन्धो, तं प्रत्यफलं, कथं ?, "संजमे अणण्हयफले तवे वोदाणफले"। [भग॰ श॰ २ उ॰ ५ सू॰ ११० पत्र १३८-१] उक्तं च—"निरासदं निस्सुख-दुःखकल्पनं, [....... ....] धर्ममुवाच निष्फलम् ।" [ ] । मोक्षणं वा प्रति सफलम् [ ] ॥ २४ ॥

एवं पूर्वं पश्चाद्वा महाजननेतॄणां महाजनविज्ञातानां च—

४३२. तेसिं तु तवो सुद्धो णिक्खंता जे महाकुला ।
अवमाणिते परेणं तु ण सिलोगं वयंति ते ॥ २५ ॥

४३२. तेसिं तु तवो सुद्धो॰ सिलोगो । तेषामिति जे जधुत्तकारिणो जेत्तिता णिद्दिट्ठा, महं प्राधान्ये, कुलं इक्ष्वाकुकुलादि, केचित् त्वज्ञातकुलीया अपि भूत्वा विद्यया तपसा सौर्याद् विस्तीर्णीभवन्ति नन्दकुलवत् । एत्थ चतुब्भंगो, किंचि कुलतो वि महान्तं जणतो वि १ एवं चतुभंगो, एत्तो एगतरातो वि णिक्खंता महाकुलातो । महद्वा कुलमेषां महाकुलाः, भगवानेव छउमत्थकाले । अवमाणिते परेणं तु ण सिलोगं वयंति ते, सिलोगो नाम श्लाघा, अमुकराजा वा आसीदिति इभ्यो वा शालिभद्रादिः । तत् पूजा-सत्कार-श्लाघादिनिमित्तं कुलं न कीर्त्तयितव्यम्, कुलादिकार्यनिमित्तं वा कीर्त्तेत ॥ २५ ॥ किञ्च—

४३३. अप्पपिंडासि पाणासि अप्पं भासेज्ज सुव्वते ।
खंतेऽभिनिव्वुडे दंते विगंतगेधी ण रज्जति ॥ २६ ॥

४३३. अप्पपिंडासि पाणासि॰ सिलोगो । सयमेऽपीयमेव वर्ण्यते, तेण अप्पपिंडासि अप्पं पिण्डमश्नातीति अप्पपिंडासी, असंपुण्णं वा, एवं पाणं पि । अट्ठ कुंकुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अप्पाहारे, दुवालस अद्धोमोदरिया, सोलस दुभागपत्तं, चउव्वीसं ओमोदरिया, तीसं पमाणपत्ते, बत्तीस कवला संपुण्णाहारो, एत्तो एकेणावि ऊणं जाव

---

१ कटुक॰ चूसप्र॰ ॥ २ य ख १ ख २ ॥ ३ महाभागा पु १ पु २ वृप्र॰ वी॰ ॥ ४ धीरा खं २ पु २ ॥ ५-६ आसीत् चूसप्र॰ ॥ ७ निरास्सस्साद वा॰ मो॰ ॥ ८ पि तवोऽसुद्धो ख १ ख २ वृ॰ वी॰ । पि तवो सुद्धो पु १ पु २ ॥ ९ जं नेवऽन्ने वियाणंति न सिलोगं पवेदए खं १ खं २ पु १ पु २ वृ॰ वी॰ । सिलोतं खं १ । पवेयते खं २ पु १ पु २ ॥ १० वीतगिद्धी सदा जए वी॰ । वीयगेही सया जते ख १ ख २ पु १ पु २ । विगतगिद्धी सदा जए वृ॰ ॥ ११ कुकुंडि॰ चूसप्र॰ ॥

एक्कासेण एगसित्थेण वा । एवं उवकरणोमोदरिया । अप्पं भासेज्ज त्ति अनर्थदण्डकथां न कुर्यात्, कारणेऽपि च नोच्चैः । भणिता दव्वोमोदरिया । भावे तु संतेऽभिणिव्वुडे दन्ते, अक्रोधनं क्षान्तिः, अभिणिव्वुडो णाम निर्वृतीभूतः शीतीभूतो, अर्थशीलो अर्थेषु ज्ञानादिपूद्यतः, दंते इति दान्तेन्द्रियः । तवसा य विगतगेधी णिदाणादिसु गेधिविप्पमुक्के य पडुप्पण्णेसु ण रज्जति ण य कंखामोहं करेति ॥ २६ ॥

४३४. झाणयोगं समाहट्टु कायं [1]वोसिज्ज सव्वसो ।
[2]तितिक्खं परमं णच्चा आमोक्[3]खाय परिव्वएज्जासि ॥ २७ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ वीरियं [अट्ठमज्झयणं] सम्मत्तं ॥ ८ ॥

४३४. झाणयोगं समाहट्टु० सिलोगो । ध्यानेन योगो ध्यानयोगः, प्रशस्तध्यानयोगं सम्यग् हृदि आहृत्य अप्रशस्तं चाऽऽहृत्य कायं वोसिज्ज सव्वसो, सर्वश इति आहारक्रियामप्यस्य न करोति, खेद-जल्ल-मलापहरणाद्याश्च बाह्यक्रियाः । तितिक्खं परमं णच्चा, तितिक्षा नाम परीषहोवसग्गाधियासणं, तितिक्षणमेव परमं मोक्षणं मोक्षसाधनं चेत्येवं च ज्ञात्वा आमोक्खाय परिव्वएज्जासि त्ति, आमोक्षायेति यावन्मोक्षगमनं ताव परिव्वएज्जासि त्ति शरीरमोक्खो वा, परि समंता सव्वतो वएज्जासि ॥ २७ ॥ भगवानाह—एवमहं ब्रवीमि, न परोपदेशादित्यर्थः ॥ णयास्तथैव ॥

॥ वीर्यमष्टममध्ययनं समाप्तम् ॥ ८ ॥

---

१ विउसेज्ज सं १ नं २ पु १ पु २ ॥ २ तेतिक्खं खं २ ॥ ३ °क्खाते परिव्वतेज्जा' नं २ पु १ ॥

९

[णवमं धम्मज्झयणं]

धम्मो त्ति अज्झयणस्स चत्तारि अणुयोगदारा। धम्मो अत्थाहिकारो। उक्तः उपक्रमः। णामणिप्फण्णे धम्मो। सो पुण—

धम्मो पुव्वुद्दिट्ठो भावधम्मेण एत्थ अधिकारो।
एसेव होति धम्मो एसेव समाधिमग्गो त्ति ॥ १ ॥ ९२ ॥

धम्मो पुव्वुद्दिट्ठो० । धम्म-ऽत्थ-कामा य। तं चेव इधावि परूवेतव्वो। इह तु **भावधम्मेण अधिकारो।** एष एव धर्मः, एष एव भावसमाधिः, एष एव च भावमार्गः ॥ १ ॥ ९२ ॥ तत्थ धम्मस्स णिक्खेवो—

णामं-ठवणाधम्मो दव्वधम्मो य भावधम्मो य।
सच्चित्तऽचित्त मीसे गिहत्थदाणे दवियधम्मो ॥ २ ॥ ९३ ॥

णामं-ठवणाधम्मो० गाधा। वतिरित्तो दव्वधम्मो तिविधो सचित्तादि। तत्थ सचित्तस्स जधा—चेतना धर्मः, चेतना स्वभाव इत्यर्थः। अचित्ताण जधा—धम्मत्थिकायस्स जा जस्स धम्मता। जधा—

गतिलक्खणो तु धम्मो अधम्मो ठाणलक्खणो। भायणं सव्वदव्वाणं भणितं[1] अवगाहलक्खणं ॥ १ ॥

[उत्तराध्ययनसूत्र अ० २८ गा० ९]

पोग्गलत्थिकायो गहणलक्खणो। मिस्सगाणं दव्वाणं जा जस्सभावता, यथा क्षीरोदकं सीतलं धातुरक्तावार्द्रकाशायी (?) यावन्न परिणमत्युदकं तावन्मिश्रं भवति। गृहस्थानां च यः कुलग्रामादि-नगरधर्मः। **दाणधम्मो** त्ति यो हि येन दत्तेन धर्मो भवति स तस्मिन् देयद्रव्ये कार्यवदुपचाराद् दानधर्मो भवति। यथा—

अन्नं पानं च वस्त्रं च आलयः शयना-ऽऽसनम्। शुश्रूषा वन्दनं तुष्टिः पुण्यं नवविधं स्मृतम् ॥ १ ॥ २ ॥ ९३ ॥

लोइय लोउत्तरिओ दुविधो पुण होति भावधम्मो तु।
दुविधो वि दुविध तिविधो पंचविधो होति णातव्वो ॥ ३ ॥ ९४ ॥

लोइय लोउत्तरिओ० गाधा। भावधम्मो दुविधो—लोइओ लोउत्तरिओ य। लोइओ दुविधो—गिहत्थाणं कुपासंडीणं च। लोउत्तरिओ तिविधो—णाणं दंसणं चरित्तं च। णाणे आभिणिबोधिगादि। दंसणे उवसामगादि। चरित्ते पंचविधो सामायगादिना पाणवधवेरमणादिना वा, चतुव्विधो वा चाउज्जामो, रातीभोयणवेरमणछट्ठो वा छव्विधो पसत्थभावधम्मट्ठितेहिं। पासत्थोसण्णादीहिं दाण-ग्गहणं ण कायव्वं संसग्गी वा ॥ ३ ॥ ९४ ॥

तत्थ **पासत्थोसण्ण-कुशीलसंथवो** एत्थ अत्थे गाधा—

*** पासत्थोसण्ण-कुसीलसंथवो ण किर वट्टते कातुं।**
सूतकडे अज्झयणे धम्मम्मि णिकाइयं एयं ॥ ४ ॥ ९५ ॥

॥ धम्मस्स णिज्जुत्ती सम्मत्ता ॥ ९ ॥

॥ ४ ॥ ९५ ॥ णामणिप्फण्णो गतो। सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं—

---

[1] नहं ओगाहलक्खणं उत्तराध्ययने पाठ ॥

४३५. कतरे धम्मे आघाते माहणेण मतीमता?।
अंजु धम्मे जधातधा जिणाणं तं सुणेध मे ॥ १ ॥

४३५. कतरे धम्मे आघाते० सिलोगो। **कतरः** केरिसो वा, **आघात** इत्याख्यातः। **माहन** इति भगवानेव। समणे त्ति वा [माहणे त्ति वा] एगट्ठं। मन्यते अनयेति **मतिः** केवलज्ञानमिति, मतिरस्यास्तीति मतिमान्, अतस्तेन **मतिमता**। एवं जंबुणामेण पुच्छितो सुधम्मो आह—**अंजु धम्मे जधा तधा,** अञ्जुरिति आर्जवयुक्तः, न दंभ-कव्वादिभिरुपदिश्येत। ते तु कुशीलाः बालवीर्यवन्तः, तेऽनार्जवानि ब्रुवते—न वयं परिग्रहवन्तः आरंभिणो वा, एतत् सङ्घस्य बुद्धस्य उपासकानां वा इति। भागवतास्तु—नारायणः करोति हरति ददाति वा। उक्तं हि—

यस्य बुद्धिर्न लिप्येत हत्वा सर्वमिदं जगत्। आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ १ ॥
[ ]

नैवं भगवता अनार्जवयुक्तो धर्मः प्रणीतः, भगवता तु यो यथावस्थितस्तं तथैव मत्वा निरुपधो धर्मोपदिष्टः, न लोकपक्तिनिमित्तम्, ग्लानाद्युपाधिना वा किञ्चित् सावद्यमार्तेन वर्त्तव्यमित्युपदिष्टम्। जिनानामिति षष्ठी। **जिनानां** सतकं तीता-ऽनागतानाम्। पठ्यते च—"**जणगा! तं सुणे धम्मे**" जायन्त इति जनकाः, हे जनकाः! तमाख्यायमानं **सुणे धम्मे**। यथोद्दिष्टधर्मप्रतिपक्षभूतस्त्वधर्मः, तत्र चामी वर्त्तन्ते ॥ १ ॥

४३६. माहणा खत्तिया वेस्सा चंडाला अदु वोक्कसा।
एसिया वेसिया सुद्दा जे य आरंभणिस्सिता ॥ २ ॥

४३६. माहणा खत्तिया वेस्सा० सिलोगो। **माहणा** मरुगा सावगा वा। **खत्तिया** उग्गा भोगा राइण्णा इक्खागा राजानस्तदाश्रयिणश्च। अथवा क्षत्रेण धर्मेण जीवन्त इति **क्षत्रियाः**। **वैश्याः** सुवर्णकारादयः, ते हि हवनादिभिः क्रिया-भिर्धर्ममिच्छन्ति। **चण्डाला** अपि ब्रुवते—वयमपि धर्मावस्थिताः कृष्यादिक्रियां न कुर्मः। **वोक्कसा** णाम संजोगजातिः। जहा—बंभणेण सुद्दीए जातो णिसादो त्ति वुच्चति, बंभणेण वेस्सजातो अम्बट्ठो वुच्चत्ति, तत्थ णिसाएणं अंबट्ठीए जातो सो **वोक्कसो** वुच्चति। **एसिया वेसिया,** एषन्तीति **एषिकाः** मृगलुब्धका हस्तितापसाश्च मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एषन्ति मूल-कन्द-फलानि च, ये चापरे पाषण्डाः नानाविधैरुपायैर्भिक्षामेषन्ति यथेष्टानि चान्यानि विषयसाधनानि। अथ **वैशिका** वणिजः, तेऽपि किल कलोपजीवित्वाद् धर्मं किल कुर्वते। अथवा वेश्यास्त्रियो **वैशिकाः,** ता अपि किल सर्वा विशेषाद् वैश्यधर्मे वर्त्तमाना धर्मं कुर्वन्ति। **शूद्रा** अपि कुटुम्बभरणादीनि कुर्वन्तो धर्ममेव कुर्वते। उक्तं हि—

या गतिः क्लेशदग्धानां गृहेषु गृहमेधिनाम्। पुत्र-दारं भरन्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक! ॥ १ ॥
[ ]

ये चान्येऽनुद्दिष्टाश्छेदन-भेदन-पचनादिदव्व-भावारंभे **णिस्सिता** णियतं सिता **णिस्सिता** ॥ २ ॥

४३७. परिग्गहे णिविट्ठाणं तेसिं पावं पवड्ढती।
आरंभसंवुता कामा ण ते दुक्खविमोयगा ॥ ३ ॥

४३७. परिग्गहे णिविट्ठाणं० सिलोगो। परिग्गहो सचित्तादि ३ दव्वादि चतुव्विधो वा। तेसिं माहणादिकुसीलाणं **परिग्गहे णिविट्ठाणं** ति उवज्जिणंताणं सारवंताण य णट्ठविणट्ठं च सोएन्ताणं **तेसिं पावं पवड्ढती,** आउअवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ करेन्ति। एतेषां **आरंभसंवुता कामा,** हिंसादिआरम्भेन संवृताः। अथवा "**आरंभसम्मुता कामा**" सम्मुता नाम प्रियाः, आरम्भ एषां संस्मतः। कथम्? आरम्भिणमुपतिष्ठन्ति, नालसम्। उक्तं हि—

---

१ अक्खाते पु १ वृ० दी०। अहऽक्खाते ख १ ख २ पु २ ॥ २ अजू धम्मं जहातच्चं खं १। अजुं धम्मं अहातच्चं ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ जणगा! तं सुणे धम्मे चूपा०। जणगा! तं सुणेह मे वृपा० ॥ ४ सुणेहि पु २ ॥ ५ वेसा खं २ पु १ पु २ ॥ ६ अदु व वो° ख १ ॥ ७ पावं तेसिं पवड्ढति वृ० दीपा०। वेरं तेसिं पवड्ढति ख १ खं २ पु १ पु २ वृपा० दी० ॥ आरभसंभिया कामा ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा० दी०। आरंभसम्मुता कामा चूपा० ॥ ९ संयमतः चूसप्र० ॥

आरभाऽऽरभ कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः । [ ]

तथैनं ते प्राणैरपि परिरक्षिता जरा-व्याध्युदये[1] दुःखोदये वा मृतौ वा प्राप्ते न तस्माद् दुःखाद् मोचयन्ति, न च नरकादिषु प्राप्तस्य ततो नरकादिदुःखाद् विमोचयन्ति ॥ ३ ॥

४३८. आघातकिच्चमाधाए[2][3] णाइओ[4] विसएसिणो ।
अण्णे हरंति तं वित्तं कम्मी कम्माऽऽय एसति[5] ॥ ४ ॥

४३८. आघातकिच्चमाधेतुं० सिलोगो । आहन्यतेऽनेनेति आघातः, मरणमित्यर्थः । आघाते आघातस्य वा कृत्यं मरणकृत्यमित्यर्थः, आघाते शरीरं संस्कारयित्वा दहन्ति । मृतकृत्यानि चास्य पितृपिण्डादीनि **आधाए** त्ति तमाधाय कुर्वन्ति, महिष-च्छागाद्याश्च वध्यन्ते, करकतुभक्तानि[6] कुर्वन्ति । उक्तं हि—

"अवहत्थेण यँ पिंडं[7] परिसाडेऊण पत्थरे तस्स ।" [ ] इत्यादि मरणकृत्यम् । अथवा **"आधेतुं"** काऊण तं पणिधाय ये तस्य भ्रातृपुत्रादयो दायादा जीवन्ति शब्दादिविषयैषिणः अनेन मृतधनेन वयं भोगान् भोक्ष्यामहे, अज्ञातयोऽपि दास-भृत्य-मन्त्र्यादयः तत् च्युतधन तर्कयन्ति, अपुत्राणां च मृतकटं राजा गृह्णाति । एवं वैरा-ऽग्न्यादिसामान्यं **अण्णे हरंति तं वित्तं,** अन्य इति अन्य एव दायादा भृत्य-राज-चोरादयः हरति वा विभयंति वा णूमेति वा एगट्ठं । उक्तं च—

ततस्तेनार्जितैर्द्रव्यैर्दारैश्च परिरक्षितैः । क्रीडन्त्यन्ये नरा राजन्! हृष्ट-तुष्टा ह्यलङ्कृताः ॥ १ ॥

कर्म अस्यास्तीति **कर्मी,** तत् **कर्माऽऽदाय** स्वकर्मनिर्वर्त्तितां गतिं प्राप्य तत्कर्मफलमन्वेषति ॥ ४ ॥

४३९. माता पिता ण्हुसा[8] भाता भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
णालं ते[9] मम ताणाए लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥

४३९. माता पिता ण्हुसा भाता० सिलोगो । उरसि भवा **औरसाः,** औरसा अपि तावत् पुत्रा न त्राणाय, किमु क्षेत्रजातादयः? । **णालं ते मम ताणाए,** यथैव मात्रादयो न त्राणाय सम्बन्धिनः तथैवाऽऽरम्भ-परिग्रहावपि न त्राणाय विषयाश्च । णालं ते मम ताणाए लुप्यमानस्येति शारीर-मानसैर्दुःख-दौर्मनस्यैः इह भवेऽपि तावन्न त्राणाय, किमु परभवे? इति । **कालसोअरिअपुत्तो सुलसो** अभयकुमारसखा श्रावकदारको श्रावकश्चासौ दारकश्च दृष्टान्तः ॥ ५ ॥

४४०. एतमट्ठं सपेहाए परमट्ठाणुगामियं ।
णिम्ममे[10] णिरहंकारे चरे भिक्खू जिणाहितं ॥ ६ ॥

४४०. एतमट्ठं सपेहाए० सिलोगो । एयमिति योऽयमुक्तोऽर्थः, न ह्यधार्मिकाणामिह परत्र वा लोके शरणमस्तीति त्राणं वा **सम्मं पेहाए,** परमः अर्थः परमार्थः मोक्ष इत्यर्थः, तं परमार्थं अनुगच्छति **परमट्ठाणुगामी,** यथोद्दिष्टेषु मात्रादिषु वैराग्यमनुगच्छति, ज्ञानादयो वा परमार्थाः तान् अनुगच्छतीति **परमार्थानुगामिकः** । स एवं साधुः **णिम्ममे णिरहंकारे** नास्य कलत्र-मित्र-वित्तादिषु बाह्या-ऽभ्यन्तरेषु वस्तुषु ममता विद्यते इति **निर्ममः,** न चाहङ्कारः पूर्वैश्वर्य-जात्यादिषु च सम्प्राप्तेष्वपि, तपःस्वाध्यायादिषु **चरे**दित्यनुमतार्थः, **जिणाहितं** आख्यातं, मार्गमित्यर्थः, चारित्रं तपो वैराग्यं वा ॥ ६ ॥

स एवं मत्वा 'नैते मात्रादयो नाम सम्बन्धिनः त्राणाय' इति, इत्यतः—

४४१. चेच्चा[11] पुत्ते य मित्ते य णातओ य परिग्गहं ।
चेच्चाण अत्तगं सोतं[12] णिरवेक्खो परिव्वए ॥ ७ ॥

---

१ °व्याध्यादयदुः° चूसप्र० ॥ २ आघातिं ख २ । आघातं पु १ ॥ ३ °माघातुं खं १ । °माघेतुं ख २ चूपा० । °माहेउं पु १ पु २ ॥ ४ नायतो विसतेसिणो ख २ पु १ ॥ ५ कम्मेहिं कच्चती ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ °कतुभ° पु० ॥ ७ य पिट्ठं प° वा० ॥ ८ ण्हउसा पु १ पु २ ॥ ९ ते तव ता° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । "नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुम पि तेसिं नाल ताणाए वा सरणाए वा" आचाराङ्ग श्रु० १ अ० २ उ० १ सूत्र २ ॥ १० निस्ममो निरहंकारो ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ११ चेच्चा वित्तं च पुत्ते य णायओ खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ चेच्चाण अतगं सोयं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । चेच्चाण अंतकं सोयं इति चेच्चाण अत्तगं सोयं इति चेच्चाणऽणंतगं सोयं इति च पाठभेदत्रयी वृत्तौ दृश्यते । चेच्चा अणंतगं सोयं चूपा० ॥

४४१. चेच्चा पुत्ते य मित्ते य० सिलोगो । पुत्रे ह्यधिकः स्नेहः तेनाऽऽदौ ग्रहणं क्रियते । मित्ता तिविधा सहजातकादयः । ज्ञातकाः पूर्वा-ऽपरसम्बन्धिनः । परिग्गहो हिरण्यादि । चेच्चाण अत्तगं सोतं, त्यक्त्वा चेच्चाण, आत्मनि भवं आत्मकम् । तत्र मित्र-ज्ञातयः परिग्रहाश्चैव वाहिरंगं सोतं, मिच्छत्तं कसाया अण्णाणं अविरती य एतं अत्तगं सोतं, श्रोतः द्वारमित्यर्थः । पठ्यते च—"चेच्चा अणंतगं सोतं" अणंता अण्णाणा-ऽविरती-मिच्छत्तपज्जवा, उभयमवि चेच्चा । णिरवेक्खो परिव्वए, औजगं धम्मसणुपालेंतो न पुत्र-दारादीनि पुनरपेक्षते । उक्तं हि—"छलिता अवयक्खंता णिरावयक्खा गता मोक्खं ।" [ ] । स एवं प्रव्रजितः स्वरुचिनाऽवस्थितात्मा अहिंसादिषु व्रतेषु प्रयतेत ॥ ७ ॥

तत्र हिंसाप्रसिद्धये जीवा अपदिश्यन्ते—

४४२. पुढवाऽऽतु अगणि वायू तण रुक्ख सवीयगा ।
अंडया पोयं-जराऊ रस-संसेय-उब्भिया ॥ ८ ॥

४४२. पुढवाऽऽतु अगणि वायू० सिलोगो । कण्ठ्यः ॥ ८ ॥ सर्वेषां भेदो वक्तव्यः । अयथार्थपरिज्ञाता हि दुक्खं परिहर्तुमित्यतो भेदः—

४४३. एतेहिं छहिं काएहिं तं विज्जं ! परिजाणिया ।
मणसा काय-वक्केण णाऽऽरंभी ण परिग्गही ॥ ९ ॥

४४३. एतेहिं छहिं काएहिं० सिलोगो । एतेहिं ति जे उद्दिट्ठा छक्काया । त्वमिति शिष्यनिर्देशः । विज्ञमिति विद्वान्, स एव शिष्यो निर्दिश्यते, त्वं विद्वन् ! परिजाणिया परिजाणिउं परिण्णाए दुविधाए । मणसा काय वक्केणं णाऽऽरंभी ण परिग्गही, एक्केक्के काये णवगो भेदो । मा च परिग्रहं कुर्यात्, परिग्रहनिमित्तो हि मा भूत् कायारम्भः । एवं सेसाणि वि वताणि पालेज्जा ॥ ९ ॥ अण्णहा—

४४४. मुसावातं वहिद्धं च उग्गहं चं मऽजाइयं ।
सत्थादाणाणि लोगंसि तं विज्जं ! परिजाणिया ॥ १० ॥

४४४. मुसावातं वहिद्धं च० सिलोगो । वहिद्धं मिथुन-परिग्रहौ गृह्येते, तत्र वर्त्तमानोऽतीव धर्माद् वहिर्भवतीति वहिद्धं । उग्गहं च मऽजाइयमिति अदत्तादाणं । एताणि सत्थादाणाणि लोगंसि शस्यते अनेनेति शस्त्रम्, शस्त्रस्य आदानानि शस्त्रादानानि, ब्रूयन्त इत्यर्थः । कस्य शस्त्रस्य ? असंयमस्य । तदेतद् विद्वन् ! परिजानीहि । अथवा उपदेशो भवति—तदेतद् विद्वान् परिजानीयात् ॥ १० ॥ इदाणिं उत्तरगुणाः—

४४५. पलिउंचणं च भयणं च थंडिल्लुस्सयणादि य ।
धुत्तादाणाणि लोगंसि तं विज्जं ! परिजाणिया ॥ ११ ॥

४४५. पलिउंचणं च भयणं च० सिलोगो । सर्वतः कुञ्चनं पलिउंचणं माया । भज्यते भज्यते वाऽसाविति असंयतैर्भजनः लोभः । स्थण्डिलः क्रोधः, चारित्रं स्थण्डिलस्थानीयं करोति, क्रोध एव स्थण्डिलः वपुर्वर्णादि च । उच्छ्रयनमुच्छ्रयः [मानः] । उच्छ्रयणादि त्ति वहुवचनं जात्यादीनि अष्टौ मदस्थानानि । धुत्तादाणाणि लोगंसि, धूर्तस्याऽऽयतनानि कर्मप्रसूतय इत्यर्थः ॥ ११ ॥ एवं यद् यदा कर्त्तव्यं तत् सर्वमिह श्रमणधर्मे वर्ण्यमानेऽपदिश्यते । उत्तरगुणाधिकारे च पठ्यते—

४४६. धावणं रयणं चेव वमणं च विरेयणं ।
वत्थिकम्मं सिरोवेधे तं विज्जं ! परिजाणिया ॥ १२ ॥

---

१ वाऊ ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ पोयया जं पु १ ॥ ३ वाऊ पु० ॥ ४ च अजातितं खं १ पु २ वृ० दी० । च अजाइया ख २ पु १ । अत्र मऽजाइयं इत्यत्र सूत्रपाठे मकारोऽलाक्षणिको ज्ञेय ॥ ५ °णाणि य ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ६ धूणाऽऽदाणाइं ख २ पु १ वृ० दी० । धुत्तादाणाइं ख १ ॥ ७ धोयणं रयणं चेव वत्थीकम्म विरेयणं । वमणंजण पलिमंथं तं विज्जं ! ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । पलीमंथं ख १ ॥

४४६. धावणं रयणं चेव० सिलोगो । धावणं वस्त्राणाम्, रयणं तेषामेव दन्त-नखादीनां च । वमणं च विरेयणं, मुखवर्णसौरूप्यार्थं[1] वमनं करोति, विरेचनमपि वला-ऽग्नि-वर्णप्रसादार्थम् । वत्थिकम्मं [2]सिरोवेधे तं विज्जं परिजाणिया, वत्थिकम्मं अणुवासणा णिरुहा वा । तत्थ पलिमंथो संजमस्स ॥ १२ ॥

४४७. गंध मल्लं[3] सिणाणं च दंतपक्खालणं तधा ।
परिग्गहित्थि कम्मं च तं विज्जं ! परिजाणिया ॥ १३ ॥

४४७. गंध मल्ल सिणाणं च० सिलोगो । गन्धाश्चूर्णादयः । मल्लं ग्रन्थिमादी । सिणाणं देसे सव्वे य । दंतपक्खालणं दंतधोवणं जधा कुचकुचावेति । परिग्गहं इत्थि कम्मं च, परिग्गहो सचित्तादी, इत्थी तिविधाओ, कम्मं हत्थकम्मं । स्यात्–पूर्वं वहिद्धमपदिष्टं इत्यतः पुनरुक्तम्, उच्यते, तद्भेददर्शनान्न पुनरुक्तम् ॥ १३ ॥

४४८. उद्देसियं कीतकडं[4] पामिच्चं चेव आहडं ।
पूतिं[5] अणेसणिज्जं च तं विज्जं ! परिजाणिया ॥ १४ ॥

४४८. उद्देसियं कीतकडं० कंठो सिलोगो ॥ १४ ॥

४४९. आसूणि[6]यमक्खिरागं च[7] गेद्धुपघायकम्मगं ।
उच्छोलणं च कक्कं[8] तं विज्जं ! परिजाणिया ॥ १५ ॥

४४९. आसूणिय० [सिलोगो । आसूणिकं] णाम श्लाघा, येन परैः स्तूयमानः सुज्जति, यावच्छृणोति यावद्वाऽनुस्मरति तावत् सुज्जति मानेनेति आसूनिकम् । अथवा जेण आहारेण आहारितेण सुणीहोति वलवत्त्वं भवति, व्यायाम-स्नेहपान-रसायनादिभिर्वा । अक्षिरागं अञ्जनम् । ग्रेधिः वाह्या-ऽऽभ्यन्तरे वा वस्तुनि । उपोद्घातकर्म णाम परोपघातः तच्च करोतीत्याह, जातितो कर्मणा सीलेण वा परं उवहणति । उच्छोलणं च हत्थ-पाद-मुखादीनां कल्केन अट्टगमादिणा हत्थ-पादे मुखं गात्ताणि च उव्वट्टेति । तं विद्वान् परिजाणिया ॥ १५ ॥

४५०. संपसारी कतकिरिए[9] पसिणियायतणाणि[10] य ।
सागारियपिंडं च तं विज्जं ! परिजाणिया ॥ १६ ॥

४५०. संपसारी कतकिरिए० सिलोगो । संपसारगो णामं असंजताणं असंजमकज्जेसु साम छंदेति उवदेसं वा । कयकिरिओ णाम जो हि असजयाणं किञ्चिदारम्भं कृतं प्रशंसति । तद्यथा–साधु गृहं कृतम्, साधुश्चायं सदृशः सयोगः । पासणियो णाम यः प्रश्नं छन्दति, तद्यथा–व्यवहारेषु [शास्त्रेषु] वा । व्यवहारे तावत्–यदेव ब्रवीति तत् प्रमाणम् । शास्त्रेष्वपि लौकिकशास्त्राणां व्याख्यानं ब्रवीति भावत्थके वा साहति । सागरियपिंडं च तं विज्जं परिजाणिया कण्ठ्यम् ॥ १६ ॥

४५१. अट्ठापदं ण सिक्खेज्जा वेधाईयं च णो वदे ।
हत्थकम्मं विवादं च तं विज्जं ! [11]परिजाणिया ॥ १७ ॥

४५१. अट्ठापदं ण सिक्खेज्जा० सिलोगो । अट्ठापदं णाम द्यूतक्रीडा, न भवत्यराजपुत्राणाम्, तमष्टापदं न शिक्षेत्, पूर्वशिक्षितं वा न कुर्यात् । वेधा नाम द्यूतविच(ज्जा)समूसितगे(?) रुधिरं जंतछिज्जंताणं । हत्थकम्मं विवादं च, हत्थकम्मं हस्तकर्मवत् । हत्थे रण्ड० गाधा [ ] । विवादो विग्रहः कलह इत्यनर्थान्तरम्, स तु स्वपक्ष-परपक्षाभ्याम् । त्वं विद्वन्[1] परिजानीहि ॥ १७ ॥

---

१ °वर्णसारूप्या° पु० ॥ २ "शिरोवेधा' नाडीवेधनानि रुधिरमोक्षणानीत्यर्थः" इति ज्ञातासूत्रवृत्तौ सूत्र ९५ वृत्तौ पत्र १८३-२ ॥ ३ मल्लं ख १ पु १ ॥ ४ कीतगडं खं १ । कीयकडं ख २ पु १ । कीयगडं पु २ ॥ ५ पूइयं णे° ख २ पु १ पु २ ॥ ६ °णिमक्खि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ च गिद्धुवघा° खं २ पु १ पु २ ॥ ८ कक्कं च तं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ कतकिरीते ख २ पु १ ॥ १० पसिणायत° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ परियाणिया खं २ । परिजाणिता ख १ ॥

**४५२. उवाहणाउ छत्तं च णालीयं वालवीयणं।
परकिरियं अण्णमण्णं च तं विज्जं! परिजाणिया ॥ १८ ॥**

४५२. उवाहणाउ छत्तं च० सिलोगो। उपानहौ पादुके च वर्जयितव्ये। छत्रमपि आतप-प्रवर्षपरित्राणार्थं न धार्यम्। **नालिका** नाम नालिकाक्रीडा कुदुक्काक्रीड त्ति। **परकिरियं अण्णमण्णं च, परकिरिया** णाम णो अण्णमण्णस्स पादे आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, जधा छट्ठे सँत्तिक्कते। **अण्णमण्णकिरिया** णाम इमो वि इमस्स पादे आमज्जति वा पमज्जति वा, इमो वि इमस्स ॥ १८ ॥

**४५३. उच्चारं पासवणं हरितेसु ण करे मुणी।
वियडेण वा वि सॅाहट्टु णाऽऽयमेज्ज कदादि वि ॥ १९ ॥**

४५३. उच्चारं पासवणं० सिलोगो। कण्ठ्यम्। **विगडं** णाम विगतजीवम्, विगतजीवेनापि तावत् तन्दुलोदगादिना न तत्र कल्पते आयमितुम्, किमु अनवगतजीवेणं? । एवमन्यत्रापि अथंडिले पडिसिद्धं। **साहट्टु**रिति विगतजीवं साहरिऊण, ताणि वा हरिताणि साहरितूणं ॥ १९ ॥

**४५४. पॅरपत्ते अण्ण-पाणं तुँ ण भुंजेज्ज कदाइ वि।
पॅरवत्थं च अचेले वि तं विज्जं! परिजाणिया ॥ २० ॥**

४५४. परपत्ते अण्णपाणं तु० [सिलोगो]। परस्य पात्रं गृहिमात्र इत्यर्थः। अथवा पडिग्गहधारिस्स पाणिपात्रं परपात्रम्, पाणिपडिग्गहिस्सावि पडिग्गहो परपात्रो भवति। **परवत्थं च अचेले वि,** परस्य वस्त्रं गृहिवस्त्रमित्यर्थः, तत् तावत् सचेलो वर्जयेत्, मा भूत् पश्चात्कर्मदोषः हृत-नष्टदोषश्च, यद्यप्यचेलकः स्यात्, एवं तावत् सचेलकस्य। यः पुनरचेल-[कस्त]स्याऽऽत्मीयमपि वस्त्रं परवस्त्रमेव, न हि तस्य तदनुज्ञातं स्वयं चोत्सृष्टत्वादित्यतः परवस्त्रम् ॥ २० ॥

**४५५. आसंदी पॅलियंकं च णिसेज्जं च गिहंतरे।
संपुच्छणं च सरणं वा तं विज्जं! परिजाणिया ॥ २१ ॥**

४५५. आसंदी पलीयंकं च० सिलोगो। आसंदीत्यासंदिका सर्वा आसनविधिः अन्यत्र काष्ठपीठकेन। **पलियंकः** पर्यङ्क एव, "गंभीरविजया एते०" [दशवै० अ० ६ गा० ५५]। इत्यादयो दोषाः। **गिहंतरसेज्जं** ण वाहेज्जा, "अंगुत्ती वंभचेरस्स, पाणाणं च वधे वधो।" [दशवै० अ० ६ गा० ५७] इत्यादयो दोषाः। **संपुच्छणं च सरणं वा, संपुच्छणं** णाम 'किं ते वट्टति? ण वट्टति वा?'। संपुच्छावेति अण्णं, 'केरिसाणि मम अच्छीणि? सोभते ण वा?' इत्येवमादि, ग्लानं वा पुच्छति—तत् कृतं? न कृतं वा?'। **सरणं** पुव्वरत-पुव्वकीलियाणं। तं विद्वन्! परिजानीहि ॥ २१ ॥

**४५६. जॅसकित्तिं सिलोगं च जा य वंदण-पूयणा।
सव्वलोगंसि जे कामा तं विज्जं! परिजाणिया ॥ २२ ॥**

४५६. जसकित्तिं सिलोगं च० सिलोगो। दानबुद्ध्यादि पूर्वं यशः, तपः-पूजा-सत्कारादि पश्चाद् यशः, यश एव कीर्तनं जसकित्ती। **सिलोगो** णाम श्लाघा जाति-तपो-बाहुश्रुत्यादिभिरात्मानं [न] श्लाघेत, **वंदण-पूयाउ** वि ण कामए, ण वा कज्जमाणासु रागं गच्छेज्जा। **सव्वलोगंसि जे कामा,** [कामा] दुविहा इच्छा-मदनभेदात्, पञ्चविधा वा ॥ २२ ॥ किञ्च—

---

१ पाणहाओ य छत्तं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ °वीयणी ख १ ख २ पु १ ॥ ३ आचाराङ्गसूत्रे द्वितीया सप्तसप्तैकक-चूलिका ॥ ४ संहट्टु ख २ पु १ पु २ ॥ ५ परमत्ते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ च ख १ पु १ पु २ ॥ ७ परवत्थमचेलो ख १ पु १ वृ० दी०। परमत्थमचेलो ख २ पु २ ॥ ८ पलियंके य ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ सम्मुच्छणं च सरणं च ख १। संपुच्छणं सरणं वा ख २ पु १ पु २ ॥ १० दशवैकालिकसूत्रे विवत्ती वंभचेरस्स इति पाठो दृश्यते ॥ ११ जसं किर्त्ति ख १। जसं कित्ती ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

४५७. [1]जेणिहं णिव्वहे भिक्खू अण्ण-पाणं तधाविधं।
अणुप्पदाणमण्णेसिं तं विज्जं! परिजाणिया ॥ २३ ॥

४५७. जेणिहं णिव्वहे भिक्खू० सिलोगो। जेणेति जेण धम्मकधाए वा संथवेण वा आजीव-वणीमगत्तेण वा अण्णतरेण वा उप्पातणादोसेणं, अण्णहेतुं वा पाणहेतुं वा पयुंजमाणेण इमा ओवम्मा, **णिव्वहति** निर्वहति नाम निर्गच्छति तन्न कुर्यात्। अथवा जेणिह णिव्वाहेति येनास्य इहलौकिक किञ्चित् कार्यं निष्पद्यते मित्रकार्यं वा, प्रतिदास्यति वा मे किञ्चित्, परित्रास्यति वा, वहिस्सति वा मे किञ्चिद् उवगरणजातं, एवमादिकं किञ्चिदिहलोककार्यं निर्वाहकं साधकमित्यर्थः, तं पडुच्च, अण्णं वा ॥ २३ ॥

४५८. [2]सीलमंते असीले वा तेसिं दाणं विवज्जए।
निज्जरट्ठाए दायव्वं तं विज्जं! परिजाणिया ॥ २४ ॥

४५८. सीलमंते असीले वा० [सिलोगो]। न पुनः परमार्थेन, शीलवन्त इव **शीलवन्तः** अण्णतित्थिया, **अशीला** गिहत्था **तेसिं दाणं [वि]वज्जए**। अथवा **शीलवन्तः** साधू, तस्स सुधेव **णिज्जरट्ठाए दायव्वं**, न त्विहलौकिकं किञ्चिन्निर्वाहकं प्रतीत्य दातव्वं। अथवा **शीलवानिति** श्रावकः, **अशीला** नाम मिथ्यादृष्टयः तस्सिं शीलवति वा दाणं विवज्जए ॥ २४ ॥

४५९. एवं उदाहु णिग्गंथे महावीरे महामुणी।
अणंतणाण-दंसी से धम्मं देसितवं सुतं ॥ २५ ॥

४५९. एवं उदाहु णिग्गंथे० सिलोगो। **एवं** अवधारणे। उदाहृतवान् **उदाहुः**। नास्य ग्रन्थो विद्यत इति **निर्ग्रन्थः महावीरः**। स एव च **महामुनिः**। किं महं? यदसौ मनुते **अणंतं णाण-दंसणं** च, **धर्मं देशितवान्** श्रुतमिति कर्मान्तरं धर्मम्, अनेन श्रुतधर्मेण चारित्रधर्मं देशितवान्, चारित्रधर्मावशेषमेव श्रुतधर्मेऽत्र चारित्रधर्मं देशितवान् ॥ २५ ॥

चारित्रधर्मावशेषमेव श्रुतधर्मेणापदिश्यते—

४६०. भासमाणो ण भासेज्जा [3]णो य वंफेज्ज [4]मम्मयं।
[5]मायाठाणं ण सेवेज्ज [6]अणुचिंतिय वाहरे ॥ २६ ॥

४६०. भासमाणो ण भासेज्ज० सिलोगो। अथवा तेन भगवता भाषासमितेनायं धर्म उद्दिष्टः। योऽप्यन्यः कथयति सोऽप्येवमेव कथयतु। **भासमाणो ण भासेज्ज**, यो हि भाषासमितः सो हि भाषमाणोऽप्यभाषक एव लभ्यते। उक्तं च—

वयणविभत्तीकुसलो वयोगतं बहुविधं वियाणेंतो। दिवसं पि जंपमाणो सो वि हु वइगुत्ततं पत्तो ॥ १ ॥ [7]

[दशवै० नि० गा० २९३]

जधाविधीए परिहरमाणो सचेलो वि अचेल एवापदिश्यते, जधा वा अकंडुआगो य णिट्ठुभगो य। अथवा **भासमाणो ण भासेज्जा**, ण रातिणियस्स अंतरभासं करेज्जा ओमरातिणियस्स वा। **णो य वंफेज्ज मम्मयं**, **वंफेति** णाम **देसीभासाए** उल्लावो वुच्चति, तदपि च अपार्थकं अश्लिष्टोक्तं बहुधा त वंफेति त्ति वुच्चति। अथवा **ण वंफेज्ज मम्मयं** ति कधं?, जाति-कुशील-तवेहिं मर्मकृद् भवतीति मर्मकम्। **मायाठाणं ण सेवेज्ज, माया** णाम गूढाचारता, कृत्वाऽपि निह्नवः, करिष्यमाणश्च न तथा दर्शयत्यात्मानम्। यदा वक्तुकामो भवति तदा पूर्वापरतोऽनुचिन्त्य **वाहरे** ॥ २६ ॥ किञ्च—

---

१ जेणेह पु २। **जिणेहिं** ख २ पु १, अशुद्धोऽय पाठ ॥ २ नाय सूत्रश्लोक सूत्रप्रतिषु दृश्यते, नापि **वृत्तिकृता दीपिकाकृता** वा व्याख्यातोऽस्ति। किञ्च **चूर्णिकृता** व्याख्यातोऽस्तीति **चूर्णि**गतप्रतीकानुसारेणात्र स्थापितोऽस्ति ॥ ३ **णेय** ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ **मामयं** पु १ वृपा० ॥ ५ **मातिट्ठाणं विवज्जेज्जा** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ **अणुवीइ उदाहरे** वृ०। **अणुवीय वियागरे** खं १ ख २ पु १ पु २ दी०। **अणुवीति** ख १ ॥ ७ "दिवसं पि भासमाणो तहा वि वयगुत्ततं पत्तो ॥" इति "दिवसमवि भासमाणो अभासमाणो व वइगुत्तो ॥" इति च पाठभेदावपि **दशवैकालिकसूत्रनिर्युक्तौ** दृश्येते ॥

४६१. [1]संतिमा तधिया भासा जं वदित्ता[2]ऽणुतप्पती।
जं [3]छण्णं तं ण वत्तव्वं [4]एसा आणा णियंठिया ॥ २७ ॥

४६१. संतिमा तधिया भासा० सिलोगो। सन्तीति विद्यन्ते, तधिका नाम तथ्या, सद्भूता इत्यर्थः। भाषन्त इति भाषा, अनेके एकादेशात्। जं वदित्ताऽणुतप्पती, स्वयमेव चौरः काणः दासस्तथा राजविरुद्धं वा लोकविरुद्धं वा एष वा इणमकासी, अनुतापो हि दुःखं प्राप्य वा वन्ध-घातादि भवति, अप्राप्तस्य पर वा सागसं निरागसं वा दोषं प्रापयित्वा चानुतापो भवति। किञ्च–जं छण्णं तं ण वत्तव्वं, "छण हिंसायाम्" यद्धि हिंसकं तन्न वक्तव्यम्। तद्यथा–लूयतां केदारः, युज्यन्तां शकटानि, छागो वध्यताम्, निविश्यन्तां दारका इति। एसा आणा णियंठिया, आज्ञा नाम उपदेशः, णियंठ इति निर्ग्रन्थः, एषा महाणियंठस्याऽऽज्ञा, णियंठाण वा एषा आज्ञा उपदिष्टा ॥ २७ ॥ किञ्च—

४६२. [5]होलावादं सहीवादं सोलवादं च णो [6]वदे।
तुमं तुमं ति [7]अपडिण्णे सवसो तं ण वत्तए ॥ २८ ॥

४६२. होलावादं सहीवादं० सिलोगो। होला इति देसीभाषातः समवया आमन्त्र्यते, यथा लाटानां "काइं रे हेल्ल" त्ति। सहीवादमिति सखेति। सोलवादो प्रियभाष इव। "गोतावादो" वा पठ्यते, यथा—किं भो ब्राह्मण! क्षत्रिय! काश्यपगोत्र! इत्यादि। तुमं तुमं ति अपडिण्णो, जो अतुमंकरणिज्जो वृद्धो वा प्रभविष्णुर्वा स न वक्तव्यः, अपडिण्णो णाम साधुरेव। सव्वसो तं ण वत्तए, सर्वशस्तन्न ब्रूयात् ॥ २८ ॥

किञ्च यदुक्तं णिज्जुत्तीए "पासत्थोसण्ण-कुसीलसंथवो ण किर वट्टती" [नि० गा० ९५] तदिदम्—

४६३. अकुसीले सदा भिक्खू [8]णो य संसग्गियं भये।
सुहरूवा तत्थुवस्सग्गा पडिवुज्झेज्ज [9]ते विदू ॥ २९ ॥

४६३. अकुसीले सदा भिक्खू० सिलोगो। कुत्सितं शीलं यस्य स भवति कुशीलः, स तु पासत्थादीणं एगो, ततो पंचण्ह वि, तन्न तावत् स्वयं कुशीलेन भाव्यम्। णो य संसग्गियं भये, न च तैः संसर्गिं कुर्यात्। संसर्जनं संसर्गिः, आगमण-दाण-ग्रहणसम्प्रयोगान्मा भूत् "अंवस्स य णिंवस्स य०" [आव० नि० गा० १११६ पत्र ५२१-२ तथा ओघनि० गा० ७७० पत्र २२३-१] त्ति, तेन संसर्गिं न तैर्भजेत्, संसर्गिस्तद्भावं गमयति। कथम्?, सुहरूवा तत्थुवस्सग्गा, सुखरूपा नाम सुखस्पर्शाः। तद्यथा—को फासुगपाणएण पादेहिं पक्खालिज्जमाणेहिं दोसो?, तहा दंतपक्खालणे उव्वट्टणे, एवं लोगे अवण्णो न भवति। अहवा सुख इति संयमः, संयमानुरूपा हि तत्रोपसर्गा भवन्ति, मा नवरि त्रिविधेनापि करणेन सातिज्जतु तेण को आहाकम्मे दोसो?, ण वाऽसरीरो धम्मो भवति, तेण शरीरसंधारणत्थं उपाहण-सन्निधिमादिसु को दोसो?। उक्तं हि—"अप्पेण वहुमेसेज्जा, एतं पंडितलक्खणं।" [ ] संपयं हि अप्पाइं सघतणाइं धितिओ य, तेण एवमादिसु सुरूवेसु उवसग्गेसु पडिवुज्झेज्ज ते विदू, पडिवुज्झेज्ज णाम जाणेज्जा, जाणित्ता ण ससग्गिं कुज्जा, यदाऽपि नाम स्याद् यदृच्छया तैः संसग्गी तदाऽपि एवमादिसुहरूवे उवसग्गे पडिवुज्झेज्ज ते विदू, पडिवुज्झिउं णो सद्दहेज्ज, यथाशक्ति-तश्चाभिहन्यात् ॥ २९ ॥ किञ्च—भिक्खादिनिमित्त च गृहपतिमनुप्रविश्य न तत्र—

४६४. नऽन्नत्थ अंतरायेण परगेहे ण णिसीयए।
गाम-कुमारियं किड्डं णातिवेलं हसे मुणी ॥ ३० ॥

४६४. नऽन्नत्थ अंतरायेण० सिलोगो। अंतरागं जराए अभिभूतो वाहितो तपस्वी इत्यादि। गामकुमारियं किड्डं, ग्रामधर्मक्रीडा कुमारक्रीडा वा गाम-कोमारियं किड्डं। तत्र ग्रामक्रीडा हास्य-कन्दर्प-हस्तस्पर्शना-ऽऽलिङ्गनादि, ताभिः सार्द्धं एवं

---

१ तत्थिमा ततिया ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ °त्ताण तप्प° पु १ ॥ ३ छन्नं त खं १ ख २ पु २ वृ० दी० ॥ ४ एस ख १ ॥ ५ होलावातं सहीवातं गोतावातं च ख १। होलावायं सहीवायं गोयवायं च ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। गोतावादं चूपा० ॥ ६ वये ख १ ॥ ७ अमणुण्णं स° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ णेव खं २ पु १ ॥ ९ °ज्जए विदू पु २ ॥

वा स्त्रीभिः क्रीडते इति, पुम्भिरपि सार्द्धम्। कुमारकानां क्रीडा कुमारक्रीडा वट्टतेंदुग-अदोलिगादि, तं तु खुड्डगेहिं सार्द्धं गिहत्थ-कप्पट्ठएहिं वा महंतेहिं वा सव्वकेली न कातव्वा। **न चातीत्य वेलां हसे मुणी,** वेला मेरा सीमा मज्जाय त्ति वा एगट्ठं, नातीत्य मर्यादां हसे मुणी, "जीवे णं भंते! हसमाणो वा उस्सु[य]माणो वा कइ कम्मपगडीओ बंधइ?, गोयमा! सत्तविह-बंधए वा अट्ठविहबंधए वा" [भग० श० ५ उ० ४ सू० १८६ पत्र २१७-२]। इह हसतां सपाइमवायुवधो ॥ ३० ॥ किञ्च—

४६५. [1]अणिस्सिओ उरालेहिं अपमत्तो परिव्वए।
चरियाए अप्पमत्तो पुट्ठो सम्माधियासए ॥ ३१ ॥

४६५. अणिस्सिओ० सिलोगो। **अणिस्सिए उरालेहिं,** उराला नाम उदाराः शोभना इत्यर्थः, तेषु चक्रवर्त्यादीनां सम्बन्धिषु शब्दादिषु कामभोगेषु अन्यैश्वर्य-वस्त्रा-ऽऽभरण-गीत-गान्धर्व-यान-वाहनादिषु इह च परलोके चानिःसृतो **अपमत्तो परिव्वए,** अन्येषु वाऽऽहारादिषु। **चरियाए अप्पमत्तो, चरिया** भिक्खुचरिया तस्यामप्रमत्तः स्यात्। यदि नाम तस्यामप्रमत्तः परीषहोपसर्गैः स्पृश्येत ततो **सम्माधियासए** ॥ ३१ ॥

४६६. हम्ममाणो ण कुप्पेज्ज वुच्चमाणो ण संजले।
सुमणो अहियासेज्ज ण य कोलाहलं करे ॥ ३२ ॥

४६६. हम्ममाणो ण कुप्पेज्ज० सिलोगो। [**हम्ममाणो** लट्ठीमादीहिं ण कुप्पेज्जा………] **वुच्चमाणो** नाम असुस्सूसमाणो निंदिज्जमाणो वा णिब्भच्छिज्जमाणो वा **ण संजले**दवि न क्रोध-मानाभ्यामिन्धनेनेवाग्निः संजले। तं पुण **सुमणो अहियासेज्जा, सुमणो** णाम राग-द्दोसरहितो। **ण य कोलाहलं करे,** ण उक्कुट्ठिबोलं वा करेज्ज रायसंसारियं वा ॥ ३२ ॥ किञ्च—

४६७. [2]लद्धे कामे ण पत्थेज्जा [3]विवेगं एवमाहिए।
[4]आयरियाइं सिक्खेज्जा[5] सुबुद्धाणंतिए सदा ॥ ३३ ॥

४६७. लद्धे कामे ण पत्थेज्जा० सिलोगो। लद्धा णाम जइ णं कोइ वत्थ-गंध-अलंकार-इत्थी-सयणा-ऽऽसणादीहिं णिमंतेज्जा तत्थ ण गिज्झेज्ज, जधा **चित्तो** [उत्तरा० अध्य० १३]। अधवा **"लद्धीकामे"** तवोलद्धीओ आगासगमण-विउव्वा-दीओ अक्खीणमहाणसिगादीओ य ण दाव उवजीवेज्ज, ण य अणागते। इहलौकिके एता एव वत्थ-गंधादी, परलोगिगे वा जधा **बंभदत्तो** तधा ण पत्थेज्ज, **एवं** भावविवेगो **आख्यातो** भवति। किञ्च–**आयरियाइं सेवेज्ज (सिक्खेज्जा),** आचरणी-याणि आयरियव्वाणि, दुविधाए वि सिक्खाए। केसामंतिगे?, **सुबुद्धाणं,** सुट्ठु बुद्धा सुबुद्धा गणधराद्याः, यधा यदाकालमा-चार्या भवन्ति ॥ ३३ ॥ किञ्च—

४६८. सुस्सूसमाणो उवासेज्ज सुपण्णं सुतवस्सियं।
वीरा जे अत्तपण्णेसी धितिमंता जितिंदिया ॥ ३४ ॥

४६८. सुस्सूसमाणो उवेहेज्ज० (उवासेज्ज०) सिलोगो। श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा। कोऽर्थः?, पूर्वमुक्तं **"आयरियाइं सिक्खेज्जा सुबुद्धाणं०"** [सुत्त ४६७] तेषां सकाशादनिदानं तदर्थशुश्रूषा। तधेव उपासि(सी)त **सुपण्णं** शोभनप्रज्ञं सुप्रज्ञं गीतार्थं प्रज्ञावन्तम्। सुट्ठु तवस्सितं **सुतवस्सितं,** यदि चेत् संविग्न इत्यर्थः। तत्र केवंविधाचार्याः शरणम्?, **वीरा जे अत्तपण्णेसी,** विराजन्त इति **वीराः,** आत्मप्रज्ञामेषन्तीति **आत्मप्रज्ञैषिणः,** आत्मज्ञानमित्यर्थः। कथम्?, येनाऽऽत्मा ज्ञायते येन वाऽस्य निस्सारणोपायः संयमवृत्तिव्यवस्थित इति, [….. . …………….] ॥ ३४ ॥

---

१ अणुस्सुओ उरालेसु जयमाणो परिव्वते। चरियाए अप्पमत्तो पुट्ठो तत्थऽहियासते ॥ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। अणिस्सियो वृपा० ॥ २ लद्धीकामे चूपा० वृपा० ॥ ३ विवेगे एसमाहिए ख १ पु १ ॥ विवेगे तेसमाहिते ख २ पु २ ॥ ४ आरियाइं खं १ वृ० दी०। आयरियाइं वृपा० ॥ ५ °ज्जा बुद्धाणं अंतिए खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

४६९. गिहे दीवमपासंता[1] पुरिसादाणिया णरा।
ते वीरा बंधणुम्मुक्का णावकंखंति जीवितं ॥ ३५ ॥

४६९. [गिहे दीवमपासंता० सिलोगो। .. ..] पुरुषादानीयाः सेव्यन्त इत्यर्थः, नो राजा-ऽमात्याश्च पण्डिता धर्मलिप्सवो वा पुरुषादानीया भवन्ति इत्यतः प्रव्रजन्ति, प्रव्रजितास्तु ते वीरा बंधणुम्मुक्का। अथवा पूर्वं गृहवासे द्विविधमपि भावद्वीपं अदृष्टवन्तः प्रव्रज्यामुपेत्य पुरुषादानीया यदा संवृत्ता भवन्ति धर्मलिप्सुभिः पुरुषैरादानीयाः। अथवा माह्याः पुरुषा इत्यादानीयाः। अथवाऽऽदानीय इत्यादानार्थिकः साधुः, पुरुषश्चासौ आदानीयश्च पुरुषादानीयः। ते वीरा इति आदानीयाः, विराजन्त इति वीराः। वन्धनानि कालादीनि तेभ्यो मुक्ता बंधणुम्मुक्का। न तदसंयमजीवितं पुनरवकाङ्क्षन्ते विषय-कषायादिजीवितं वा ॥ ३५ ॥

जं तं कषायादिजीवितं पासत्थादिजीवितं तदिदम्। तं जधा—

४७०. अगिद्धे सद्द-फासेसु आरंभेसु अणिस्सिते।
सव्वेतं[2] समयातीयं[3] जमिदं[4] लवितं बहुं ॥ ३६ ॥

४७०. अगिद्धे सद्द-फासेसु० सिलोगो। मणुण्णेसु सद्देसु फासेसु य अगिद्धेण भवितव्वं, रूवेसु अमुच्छितेण भवितव्वं, एवं गंध-रसेसु समणुण्णेसु य। अमणुण्णेसु य सव्वेसु दोसो ण कायव्वो। णिगमणसिदाणिं अपदिश्यते—सव्वेतं समयातीयं, सव्वमिति यदिदं धर्मं प्रति इह मयाऽध्ययनेऽपदिष्टम्। समय आरुहत एव, आदीयं ति भक्षणम्, समयाभ्यन्तरकरणमात्रम्, "अद भक्षणे" समयेण अतीतं समयाभ्यन्तरे, न समयेन समयेनात्तमित्यर्थः। अथवा ये वा परे कुसमयाः तान् कुसमयान् एतदतीतम्, अज्ञानदोषाद् विषयलालस्याच्च न तैरावज्ञात इत्यर्थः। किं तत्?, यदिदं लवितं बहुं, लवितं नाम कथितमित्यर्थः ॥ ३६ ॥ किञ्च—उक्तावशेषमिदमपदिश्यते—

४७१. अतिमाणं च मायं च तं परिण्णाय[5] पंडिते।
गारवाणि य सव्वाणि णेव्वाणं संधए मुणि ॥ ३७ ॥ त्ति वेमि ॥
॥ धम्मो सम्मत्तो। णवमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ ९ ॥

४७१. अतिमाणं च मायं च० सिलोगो। अतिरतिक्रमणादि, अतिशयेन मानं अतिमानम्, एवं मायामपि, चशब्दात् क्रोध-लोभावपि। कोऽर्थः? यद्यपि तावत् क्रोधोदयः स्यात् तथापि तस्य निग्रहः कार्यः, न तु साफल्यम्, एवं शेषाणामपि। अथवा यद्यपि मानार्हेष्वाचार्यादिषु प्रशस्तो मानः क्रियते सरागत्वात् तथापि तमतीत्य योऽन्यो जात्यादिमानः तं परिण्णाय [पंडिते], तं दुविधाए वि परिण्णाए परिजाणेज्ज। एवं शेषेष्वपि प्रयोजयितव्यम्। गारवाणि य सव्वाणि, इड्ढीगारवादीणि, परिज्ञायेति वर्त्तते। णेव्वाणं संधए मुणी, णिव्वाणमिति संयम एव, तं संयमं अच्छिण्णसंधणाए ताव सचेहि जाव परं संयमट्ठाणं सधितं। अधवा णिव्वाणमिति मोक्षः संधित इति ॥ ३७ ॥

॥ धर्माध्ययनं नवमम् ॥ ९ ॥

---

१ °मपस्संता ख २ पु १ पु २ ॥ २ सव्वं तं ख २ पु १ पु २ ॥ ३ समतातीतं ख १ ख २ पु १ ॥ ४ जमेतं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ °ण्णात ख १ ॥

१०

[दसमं समाहिअज्झयणं]

समाधि त्ति अज्झयणस्स चत्तारि अणुयोगद्दारा । अधियारो से समाधीए । एसा य जाणितुं फासेतव्वा । णामणिप्फण्णे—

आदाणपदे[1]णाऽऽघं गोण्णं णामं पुणो समाधि त्ति ।
णिक्खिविऊण समाधिं भावस[2]माधीए पगयं तु ॥ १ ॥ ९६ ॥

आदाणपदेणाऽऽघं गोण्णं णामं० गाधा । यस्मादपदिश्यते "आघं मतिमं अणुवीति धम्मं" [सुत्त ४७२] इतरथा त्वध्ययनस्य समाधिरिति सञ्ज्ञा, तेनैवार्थाधिकारः । जधा [3]असंखयस्स आदाणपदेण असंखतं ति णामं, तं पुण पमायापमादं ति अज्झयणं वुच्चति, जेण तत्थ पमादो अप्पमादो य वण्णिज्जति त्ति । तधेव [4]लोगसारविजयो अज्झयणं, आदाणपदेणं पुण आवंति त्ति वुच्चति । एवमादीणि अज्झयणाणि आदाणपदेण वुचंति । गुणणिप्फण्णेणं पुणाइं णामेण तेसि णिक्खेवो भवति, इमस्स पुण गुणणिप्फण्णं णामं समाधी ॥ १ ॥ ९६ ॥ सा छव्विधा भवति—

णामं ठवणा दविए खेत्ते काले तधेव भावे य ।
एसो तु समाधीए णिक्खेवो छव्विधो होति ॥ २ ॥ ९७ ॥

णामं ठवणा दविए० गाधा ॥ २ ॥ ९७ ॥ तत्थ दव्वसमाधी णं—

पं[5]चसु वि य विसयेसुं सुभेसु दव्वम्मि सा समाधि त्ति ।
खेत्तं तु जम्मि खेत्ते [6]काले जो जम्मि कालम्मि ॥ ३ ॥ ९८ ॥

पंचसु वि य विसयेसुं० गाधा । श्रोत्रादीनां पञ्चानामपि इन्द्रियाणां यथास्वं शब्दादिभिर्मनोज्ञैर्विपर्ययैर्या तुष्टिरुत्पद्यते सा द्रव्यसमाधिः । अधवा—"दव्वं जेण तु दव्वेण समाधी आधितं च जं दव्वं" सोभणवण्णादि सा दव्वसमाधी, क्षीर-गुडादीणां च समाधी, अविरोध इत्यर्थः । दव्वेण समाधिरिति, जधा उप[भु]ज्जन्ताणं परिणामिगसमाधिरित्यादि । आहितं च जं दव्वं ति जधा तु लोए आहितं ति समं भवति, एसा दव्वसमाधी । खेत्ततो समाही खेत्तसमाधी, जधा दुब्भिक्खहताणं सुभिक्खदेसं पाविऊण समाधी, तथैव चिरप्रवसितानां स्वगृहं प्राप्य, जत्थ वा खेत्ते समाधी वण्णिज्जति । कालसमाधी णाम जस्स जत्थ काले समाधी भवति । प्रायशस्तावद् वानस्पत्यानां वर्षासु, नक्तमुलूकानाम्, अहनि बलि-भोजनानां वायसानाम्, शरदि गवाम्, जस्स वा जच्चिरं कालं समाधी ॥ ३ ॥ ९८ ॥

भावस[7]माधि चतुव्विध दंसण णाणे तवे चरित्ते य ।
[8]चतुहिं वि समाधितप्पा सम्मं चरणट्ठितो साधू ॥ ४ ॥ ९९ ॥

॥ [9]समाधीए णिज्जुत्ती सम्मत्ता ॥ १० ॥

भावसमाधि चतु० गाधा । तं जधा—णाणसमाधी १ दंसणसमाधी २ चरित्तसमाधी ३ तवसमाधी ४ । णाणसमाधी जधा जधा सुतमधिज्जति तधा तधाऽस्यातीव समाधिरुत्पद्यते, ज्ञानोपयुक्तो हि आहारमपि न काङ्क्षते, न वा दुःखस्योद्विजते,

---

१ °णाघं ख १ ॥ २ °माहीइ ख २ पु २ ॥ ३ असखयनामक उत्तराध्ययनसूत्रे चतुर्थमध्ययनम् ॥ ४ लोकसारविजयाख्य आचाराङ्गसूत्रे पञ्चममध्ययनम् ॥ ५ पंचसु विसएसु सुभेसु दव्वम्मि सा भवे समाहि त्ति ख १ ख २ पु २ । दव्वं जेण तु दव्वेण समाधी आधितं च जं दव्वं । चूपा० ॥ ६ काले कालो जहिं जो उ ख २ पु २ वृ० दी० ॥ ७ °माही चउहा दंसण ख १ वृ० ॥ ८ चउसु वि ख २ पु २ वृ० ॥ ९ समाही सम्मत्तो ख २ पु २ ॥

ज्ञेयार्थोपलम्भे चास्यातीव समाधिरुत्पद्यते १ । दर्शनसमाधिरपि जिनवचननिविष्टबुद्धिरिह निवातसरणप्रदीपवन्न कुमतिभिर्भ्राम्यते २ । चारित्रसमाधिरपि विषयसुखनिःसङ्गत्वात् परां समाधिमाप्नोति । उक्तं च–"नैवास्ति राजराजस्य तत् सुखं०" [प्रशम० गा०१२८] ३ । तपःसमाधिरपि नासौ तपोभावितत्वात् कायक्लेश-क्षुत्-तृष्णापरीषहेभ्य उद्विजते । तथैवाभ्यन्तरतपोयुक्तः ध्यानाश्रितमना निर्वाणस्थ इव न सुख-दुखाभ्यां बाध्यते ४ ॥ ४ ॥ ९९ ॥

गतो णामणिप्फण्णो । सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारणीयं जाव—

४७२. आघं [1]मतिमं अणुवीयि धम्मं, [2]अंजुं समाधिं तधियं सुणेह ।
अपडिण्ण भिक्खू उ समाधिपत्ते, अणिदाण[3]भूतो सुपरिव्वएज्जा ॥ १ ॥

४७२. आघं मतिमं अणुवीयि धम्मं० वृत्तम् । सम्बन्धः–अच्छिन्ननिर्वाणसन्धनेति वर्त्तते, स एव भगवान् तस्यामच्छिन्ननिर्वाणसन्धनायां वर्त्तमानः **आघं मतिमं अणुवीयि धम्मं,** [4]आघमिति आख्यातवान्, **मतिमानिति** केवलज्ञानी, **अणुवीयि** त्ति अनुविचिन्त्य केवलज्ञानेनैव, अथवा अनुविचिन्त्य ग्राहकं ब्रवीति । जधा—

"णिउणे णिउणं अत्थं थूलत्थं थूलबुद्धिणो कधए ।" [कल्पभा० गा० २३०] सुणेल्लगा विचिंतेंति–मम भावमनुविचिन्त्य कथयति, तिरिया अपि विचिंतयति–अम्हं भगवान् कथयति । आहाराद्या द्रव्यसमाधयः प्ररूप्य प्रशस्तभावसमाधिः– **अंजुमिति** उज्जुगं, न यथा शाक्याः, वृक्ष स्वयं न छिन्दन्ति, 'भिन्नं जानीहि' तं छिन्दानं ब्रुवते, तथा कार्षापणं न स्पृशन्ति क्रय-विक्रय तु कुर्वते इत्येवमादिभिः अनृजुः । **तधिक्कमिति** तथ्यम् । **अपडिण्णे भिक्खू उ समाधिपत्ते,** कः समाधिप्राप्तः ? **य अप्रतिज्ञः** इह-परलोकेषु कामेषु अप्रतिज्ञः, अमूर्च्छित इत्यर्थः, अद्विष्टो वा । **भिक्षुः** पूर्ववर्णितः, **तु**र्विशेषणे, भावभिक्खू विसेसिज्जति । भावसमाधिरेव प्राप्तनिबन्धने न निदानभूतः **अनिदानभूतो** नाम अनाश्रवभूतः, सर्वतो व्रजेत् **परिव्वए** । अथवा **"अणिदाणभूतेसु परिव्वएज्जा"** अनिदानभूतानीति "निदा बन्धने" अबन्धभूतानीति अनिदानतुल्यानीति ज्ञानादीनि व्रतानि वा तेसु **परिव्वएज्जा,** अथवा निदान हेतुर्निमित्तमित्यनर्थान्तरम्, न कस्यचिदपि दुःखनिदानभूतो परिव्वएज्जा ॥ १ ॥

काणि पुण णिदाणट्ठाणाणि ?, उच्यते–पाणवधादीणि । तत्थ पाणातिवातो चतुव्विधो, तं जधा–दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो । तत्र क्षेत्रप्राणातिपातप्रतिषेधप्रतिपादनार्थमपदिश्यते—

४७३. उड्ढं [5]अधे या तिरियं दिसासु, तसा [6]य जे थावर जे य पाणा ।
हत्थेहिं [7]पादेहि य संज[8]मंतो, अदिण्णमण्णेसु य णो [9]गहेज्जा ॥ २ ॥

४७३. उड्ढं अधे या तिरियं दिसासु० वृत्तम् । सव्वो पाणातिपातो कज्जमाणो पण्णवगादि संपडुच्च उड्ढं अधे य तिरियं वा कज्जति । तत्रोर्ध्वमिति यदूर्ध्वं शिरसः, अध इति अधः पादतलाभ्याम्, शेषं तिर्यक् । तत्रोर्ध्वं सम्पातिमरजोवर्षोल्का-प्रदीप्तगृहादीनि वायु-वृक्ष-पक्षि-मक्षिकाः ये चाऽन्ये वृक्षगृहाद्याश्रिताः, एवमधस्तिर्यक् च विभाषितव्याः । द्रव्यप्राणातिपातस्तु **तसा य जे थावर जे य पाणा** । भावप्राणातिपातस्तु **हत्थेहिं पादेहि य संजमंतो** । चशब्दाद् अपि उच्छ्वास-निःश्वास-कासित-क्षुत-वायुनिसर्गादिषु सर्वत्र संयमति, एवं समाधिर्भवति । एवं मायं माणं च सजमेज्जा । तथैव अदिण्णं ण गेण्हितव्वं ति ततियं वतं । एव सेसाणि वि अत्थतो परूवेतव्वाणि ॥ २ ॥ ज्ञान-दर्शनसमाधिप्रसिद्धये त्विदमपदिश्यते—

४७४. सुयक्खातधम्मे वितिगिंछतिण्णे, लाढे चरे आयतुले [10]पयासुं ।
आयं ण कुज्जा इह जीवितट्ठी, चयं ण कुज्जा सुतवस्सि भिक्खू ॥ ३ ॥

४७४. सुयक्खातधम्मे वितिगिंछतिण्णे० वृत्तम् । सुष्ठु आख्यातो धर्मः स भवति **सुअक्खातधम्मे** द्विविधोऽपि । **वितिगिंछतिण्णो** त्ति दर्शनसमाधी गिहिता, "निस्संकित निक्कंखित०" गाधा [दशवै० नि० गा० १८४ पत्र १०१

१ मइमं ख १ पु १ । मईमं ख २ पु २ वृ० दी० ॥ २ अंजू समाहिं तमिणं सु° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ °भूतेसु प° चूपा० ॥ ४ आघन्निति चूसप्र० ॥ ५ अधेतं ति° ख २ पु १ । अधेयं ति° ख १ पु २ ॥ ६ त ख १ ॥ ७ पातेहि ख २ पु १ ॥ ८ संजमित्ता ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ गहात ख १ ॥ १० पदासु ख १ ॥

तथा उत्तरा० अ० २८ गा० ३१] । जेण केणइ फासुगेणं लाढेतीति लाढः, सुत्त-ऽत्थ-तदुभयेहिं विचित्तेहिं किसे वि देहे अपरितंते लाढेत्ति । आयतुले पयासु ति, प्रजायन्त इति प्रजाः पृथिव्यादयः, तासु यथाऽऽत्मनि तथा प्रयतितव्यम्, न हिंसितव्या इत्यर्थः, आत्मतुल्या इति "जध मम ण पियं दुक्खं०" [अनुयो० पत्र २५६ दशवै० नि० गा० १५४] । एवं मुसावादे वि जधा मम अब्भाइक्खिज्जंतस्स अप्पियं एवमन्यस्यापि । एवमन्येष्वपि आश्रवद्वारेषु आत्मतुल्यत्वं विभावितव्यम् । आयं ण कुज्जा इह जीवितट्ठी, आयो नाम आगमः, तं आइं न इहलोकजीवितस्यार्थे कुर्यात्, अण्ण-पाण-वत्थ-सयण-पूया-सक्कारहेतुं वा । चयं ण कुज्जा, चयं णाम सन्निचयं न कुर्यात्, अन्यत्र धर्मोपकरणं शेष आहारादिवस्तुसञ्चयः सर्वः प्रतिषिध्यते, हिरण्य-धान्यादिसञ्चयोऽपि प्रतिषिध्यते येनानागते काले जीविका स्यादिति, तं प्रतीत्य भावसञ्चयो भवति, कर्मसञ्चय इत्यर्थः, तेण चयं ण कुज्जा सुतवस्सी भिक्खू ॥ ३ ॥ किञ्च—

४७५. सव्विंदियणिव्वुडे पयासु, चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के ।
पासाहि पाणे य पुढो विसण्णे, दुक्खेण अट्टे परितप्पमाणे ॥ ४ ॥

४७५. सव्विंदियणिव्वुडे पयासु० वृत्तम् । सर्वेन्द्रियनिर्वृतो जितेन्द्रिय इत्यर्थः । प्रजायन्त इति प्रजाः स्त्रियः, तासु हि पंचलक्खणा विषया विद्यन्ते । शब्दास्तावत्—"कलानि वाक्यानि विलासिनीनाम्" १, रूपेऽपि—"गता निशा साच्यवलोकितानि, स्मितानि वाक्यानि च सुन्दरीणाम् ।" २, रसा अपि चुम्बनादयः ३, यत्र रसस्तत्र गन्धोऽपि विद्यते ४, स्पर्शाः सम्बाधन-कुचोरु-वदनसंसर्गादयः ५ इत्यतः सव्वेंदियणिव्वुडे पयासु । सव्वतो विप्रमुक्त इति चरेत्, सर्वासमाधि-विप्रमुक्तः सर्वबन्धनविप्रमुक्तः । किञ्च—स एवं विप्रमुक्तबन्धनः पासाहि पाणे य पुढो णाम पृथक् पृथक्, अथवा पुढो त्ति बहुगे पाणे, विविहेहिं दुक्खेहिं सण्णा विसण्णे । "विसंते" वा, विसंतीति प्रविशन्ति संसारं नरगपरलोगं च । अथवा अयमाजवंजवीभावो जायत एव अट्ठविहकर्मोदयदुःखेन अट्टे त्ति आर्त्तः । अथवा "दुक्खट्टिता अट्टे" त्ति आर्त्तध्यानोपगतः । मनो-वाक्-कायैः परितप्यमानान् ॥ ४ ॥

४७६. एतेसु बाले तु पकुव्वमाणे, आवट्टती कम्मसु पावएहिं ।
अतिवाततो कीरति पावकम्मं, णिउंजमाणे तु करेति कम्मं ॥ ५ ॥

४७६. एतेसु बाले तु पकुव्वमाणे० वृत्तम् । एतेष्विति जे ते पुढो विसन्ना सत्ता ये प्रकुर्वन्ते हिंसादीनि एतेष्वेव आवर्त्त्यन्ते कर्मणि(भिः) पापकैः । पठ्यते च—"एवं [तु] बाले" एवमित्यवधारणे, एवं हि बालः चौर्य-पारदारिकादीनि इहैव हस्तादिच्छेदान् बन्ध-वधादींश्च प्राप्नोति । एवं तु एवमनेन सामान्यतोदृष्टेनानुमानेन यथा इह हिंसा-ऽनृत-चौर्या-ऽब्रह्म-परिग्रहादीन् प्रकुर्वन् दोषान् प्राप्नोति एवमेव परत्रापि नरकादिषु दुःखानि प्राप्नोति इत्यतः आउट्टति । आउट्टती नाम निवर्त्तते । वक्कारोऽपि च भवन्ति—"आउट्टसमाउट्टो समाउत्तिसु तु" । इदाणिं बाला हि दृष्टापायाः प्रायसो निवर्त्तन्ते, अपायोद्वेजिनां बालानां भीरूणां अपदिश्यते । स्यात्—कानि पापानि येभ्योऽसौ निवर्त्तते ?, अतिवाततो कीरति, अतिपतनमतिपातः प्राणातिपात इत्यर्थः, जो णं अप्पाणं वा परं वा जीविताओ ववरोवेति । नियतं युज्यते नियुज्यते, यथा राजादिभिर्भृत्यादयः युद्धाधिकरणाध्यक्षादिषु तेषु [तेषु] नियुज्यन्ते, एवं यावन्मिथ्यादर्शनादीनि ॥ ५ ॥ किञ्च—तिष्ठन्तु तावद् येऽतिपातं कुर्वन्ति, ये च भृत्यानुभृत्या वा तेषु तेषु कर्म्मसु नियुज्यन्ते, अन्येऽपि पापं कुर्वते, तद्यथा—

---

१ °दियऽभिनिव्वु° खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ वि सत्ते, दुक्खेण अट्टे खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । विसंते, दुःखट्टितऽट्टे चूपा० ॥ ३ परिपच्चमाणे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ "कलानि वाक्यानि विलासिनीनां, गतानि रम्याण्यवलोकितानि । रतानि चित्राणि च सुन्दरीणां, रसोऽपि गन्धोऽपि च चुम्बनानि ॥ १ ॥" इतिरूप पूर्ण श्लोक वृत्तौ ॥ ५ एवं तु बाले चूपा० वृपा० ॥ ६ य ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ आउट्टती चूपा० वृपा० ॥ ८ कम्मसु पावएसु खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ णिउज्जमाणे खं १ ॥ १० वि ख १ ख २ पु १ ॥ ११ °उट्टो सो तु वा० मो० ॥

४७७. [1]आदीणभोई वि करेति पावं, मंता [2]हु एगंतसमाहिमाहु।
बुद्धे [3]समाधीय रते विवेगे, पाणातिवाता विरते ठितं[4]च्चा ॥ ६ ॥

४७७. **आदीणभोई वि॰** वृत्तम्। यावद् दैन्यं तावद् दीनः। कोऽर्थः ? दीण-किवण-वणीमगा वि **पावं करेंति**। उक्तं हि—"पिंडोलगे वि दुस्सीले, णरगातो ण मुच्चती।" [उत्तरा० अ० ५ गा० २२] दीणत्तणेण भुंजतीति आदीणभोजी, सो पुण कताइ अलभमाणो असमाधिपत्तो अधेसत्तमाए वि उववज्जेज्जा, जधा सो रायगिहच्छणपिंडोलगो वेभारगिरिसिलाए पेल्लितो [उत्तरा० अ० ५ नि० गा० २२ पाइयटीका पत्र २५०]। **मंता हु** एवं मत्वा **एगंतसमाहिमाहु**, द्रव्यसमाधयो हि स्पर्शादिसुखोत्पादकाः अनैकान्तिकाश्च भवन्ति। कथम् ?, अन्यथासेवनादसमाधिं कुर्वते। उक्तं हि—

"ते चेव होंति दुक्खा पुणो वि कालंतरवसेणं।" [ ]

ज्ञानाद्यास्तु भावसमाधयः एकान्तेनैव सुखमुत्पादयन्तीह परत्र च, एवं मत्वा सम्पूर्णं समाधिमाहुस्तीर्थकराः। स एवं **बुद्धे समाधीय रते**, बुद्ध इति जानको भावसमाधीए चतुव्विधाए ट्ठितो। दव्वविवेगो आहारादि अट्ठकुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्तकवलेण, एगे वत्थे एगे पादे, भावविवेगो कसाय-संसार-कम्माणं, दुविधे वि रतो विवेगे, एवमस्य समाधिर्भवति। **पाणातिवाततो** णवगेण भेदेण **विरतो**। अर्चिरिति लेश्या, स्थिता यस्यार्चिः स भवति **ठितच्चा**, अवट्ठितलेश्य इत्यर्थः ॥ ६ ॥

विसुद्धलेस्सासु ठितो सो—

४७८. सव्वं जगं तू समताणुपेही, पियमप्पियं [5]कस्सइ णो करेज्जा।
उट्ठाय दीणे [6]तु पुणो विसण्णे, संपूयणं चेव सिलोयकामी ॥ ७ ॥

४७८. **सव्वं जगं तू॰** वृत्तम्। जायत इति जगत्। **समता** नाम "जह मम ण पियं दुक्खं" [अनुयो० पत्र २५६, दशवै० नि० गा० १५४] "णत्थि य से कोइ वेसो पिउ व्व०" [अनुयो० पत्र २५६, आव० नि० गा० ८६८]। अथवा अन्यस्य प्रियं करोति अन्यस्याप्रियमित्यतः। कोऽर्थः ? नान्यान् घातयित्वा अन्येषां प्रियं करोति, **मूषकैः मार्जारपोषवत्**। अथवा **प्रियमिति** सुखं सर्वसत्त्वानाम्, तदेषामप्रियं न कुर्यात्, न कस्यचिदप्रियम्, मध्यस्थ एवाऽऽस्यादित्यतः सम्पूर्णसमाधियुक्तो भवति। कश्चित्तु समाधिं सधाय **उट्ठाय दीणे तु पुणो विसण्णो**, उत्थायेति समाधिसमुत्थानेन, दीन इत्यनूर्जितो भोगाभिलाषी, सर्वो हि तर्ककदीनो भवति, ईप्सितालम्भे च दीणतरः, **पुणो विसण्णे** त्ति गिहत्थीभूतो पासत्थीभूतो वा, अयं तु पार्श्वेऽधिकृतः, पूया-सत्काराभिलाषी वस्त्र-पात्रादिभिः पूजनं च इच्छति। **सिलोगकामी च**, सिलोगो णाम श्लाघा यश इत्यर्थः, सो दुहसेज्जाए वट्टति, अभिलसमाणो वि ताव असमाधिट्ठितो भवति, किमयं पुण पूया-सिलोगकामी ?। भणितं च—"जोतिस-णिमित्ताणि पि य पजुंजति" [ ] ॥ ७ ॥

४७९. [7]अधाकडं चेव णि[8]काममीणे, णि[9]कामसारी य विसण्णमेसी।
[10]इत्थीहिं [11]सत्ते य पुढो य बाले, परिग्गहं चे[12]वं ममायमाणे ॥ ८ ॥

४७९. **अधाकडं चेव॰** वृत्तम्। आधाय कडं **अधाकडं**, आधाकर्मेत्यर्थः। अथवा अन्यान्यपि जाणि साधुमाधाय कीतकडादीणि क्रियन्ते ताणि **अधाकडाणि** भवंति। अधिकं कामयते **निकामयते**, प्रार्थयतीत्यर्थः। अथवा **णियायणा** णिमंतणा, जो तं णिमंतणं गेण्हति सो **"णियायमीणे"**। जो पुण आधाकम्मादीणि **णिकामाइं सरति** सुमरइ त्ति निगच्छति गवेषतीत्यर्थः, स णिमंतणा, पासत्थोसण्ण-कुसीलाणं **विसण्णाणं** संयमोद्योगे मार्गं गवेषति विषीदति वा, येन संसारे विसण्णो भवत्यसंयम

---

१ आदीणवित्ती वि खं २ वृ०। आदीणभोई वि चूपा० ॥ २ तु ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ समाहीति रते ख १। समाहीइ रते पु १ पु २ ॥ ४ ठियप्पा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। ठियच्चा चूपा० ॥ ५ कस्सति ख १ ख २ ॥ ६ य ख २ पु १ पु २ ॥ ७ आहाकडं खं २ पु १ वृ० दी० ॥ ८ णियायमीणे चूपा० ॥ ९ नियामचारी ख २ पु २ वृपा० दी० ॥ १० इत्थीसु ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ सण्णे य पु १ ॥ १२ चेव पकुव्वमाणे ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

इति तमेपतीति विषण्णेषी, तधा तधा दीणभावं गच्छति शुक्लपटपरिभोगवत्, परिभुज्जमाणशुक्लपटवद् मलिनीभवत्यसौ । **इत्थीहिं सत्ते य पुढो,** सक्ता रक्ता गृद्धाः **पुढो** इति पृथग् बहवः । स्त्रीनिमित्तमेव च **परिग्गहं [चेव] ममायमाणा** ॥ ८ ॥ चतुर्विधपरिग्गहनिमित्तमेव च—

४८०. [1]आरंभसत्ता णिचयं करेंति, इतो चुते से दुहमट्ठ[2]दुग्गे ।
तम्हा तु मेधावी समिक्ख धम्मं, चरे मुणी सव्वओ विप्पमुक्के ॥ ९ ॥

४८०. आरंभसत्ता० वृत्तम् । **आरंभसत्ता** आरंभो दव्वे भावे य, तत्र सक्ताः असमाधिपत्ता **णिचयं करेंति,** हिरण्ण-सुवण्णादीदव्वणिचयं । दव्वणिचयदोसेणं अट्ठविधकम्मणिचयं करेंति, इहलोक एव च असमाहिदुहट्टा भवंति, "कइया वच्चइ सत्थो०" गाधा [ ] तथा "परिग्रहेष्वप्राप्त-नष्टेष्वाकाङ्क्षा-शोकौ" [तत्त्वा० अ० ७ सू० ५ भाष्ये], **तस्मात्** कारणात् सम्पूर्णं समाधिगुणं जानानः समाधिधर्मं वा **समीक्ष्य** चरेदित्यनुमतार्थः । सर्वेभ्योऽसमाधिस्थानेभ्यो **विप्रमुक्तः** स्यारम्भ-परिग्रहादिभ्यः अणिस्सितभावविहारेण विहरमाणो ॥ ९ ॥

४८१. [3]छंदं ण कुज्जा इहजीवितट्ठी, असज्जमाणो [4]य परिव्वएज्जा ।
णिसम्मभासी य विणीत[5]गेधी, हिंसण्णियं वा ण कहं करेज्जा ॥ १० ॥

४८१. छंदं ण कुज्जा हित(इह)जीवितट्ठी० वृत्तम् । छन्दः प्रार्थना अभिलाप इत्यनर्थान्तरम् । पठ्यते च—**"आयं ण कुज्जा"** आगच्छतीति आयः हिरण्यादि सद्दादी वा । **इहजीवितं** णाम कामभोग-यशःकीर्त्तिरित्यादि । असयमजीविताधिकारे सुत-गृह-कलत्रादिषु **असज्जमाणो य परिव्वएज्जा** । किञ्च—**णिसम्मभासी य विणीतगेधी, णिसम्मभासी** णाम पूर्वापरसमीक्ष्यभाषी, आहाकम्मभोगी, स्वजनादिषु ग्रेधी विनीता यस्य स भवति **विनीतग्रेधी** । हिंसया अन्विता **[हिंसान्विता]** । कथ्यत इति **कथा** । कथं हिंसान्विता ?, तस्मादश्नीत पिबत खादत मोदत हनत निहनत छिन्दत प्रहरत पचतेति ॥ १० ॥

४८२. [6]आहाकडं वा ण णिकाम[7]एज्जज्जा, णिकामयंते य ण संथवेज्जा ।
धुणे उरालं [8]अणवेक्खमाणे, [9]चेच्चा य सोयं [10]अणवेक्खमाणे ॥ ११ ॥

४८२. आहाकडं वा न निकामएज्जा० [वृत्तम्] । **आहाकडं** औद्देशिकमित्यर्थः । ण अधिकामेज्जा । ये चैनं कामयन्ति न तैः पार्श्वस्थादिभिरागमण-गमादि तत्प्रशंसादि सस्तवं च कुर्यात् । किञ्च एवं समाधियुक्तः **धुणे [11]उरालं अणवेक्खमाणे, उरालं** णाम औदारिकशरीरं तत् तपसा धुनीहि, धुननं कृशीकरणमित्यर्थः । तस्मिंश्च धूयमाने कर्मापि धूयते । **अनपेक्षमाण** इति नाहं दुर्बल इति कृत्वा तपो न कर्त्तव्यम्, दुर्बलो वा भविष्यामीति, याचितोपस्करमिव व्यापारयेदिति, तन्निर्विशेषा अनपेक्षमाणः । **चेच्चा य** असमाधिं श्रवतीति **श्रोतः,** तद्धि गृह-कलत्र-धनादि, प्राणातिपातादीनि वा श्रोतांसि, तानि **अनपेक्षमाणः** धुनीहीति वर्त्तते, श्रोतांस्यप्यनपेक्षमाणः, स एव तेषु असज्जमान इत्यर्थः ॥ ११ ॥

किं न्वपेक्षेत प्रार्थयेत वा ?—

४८३. एगत्तमेव अभिपत्थएज्जा, एतं पमोक्खे [12]ण मुसं ति पास ।
एस प्पमोक्खे [13]अमुसेऽवरे वी, अकोहणे सच्चरते तपस्सी ॥ १२ ॥

४८३. एगत्तमेव अभिपत्थएज्जा० वृत्तम् । एकभाव एकत्वम्, नाहं कस्यचिद् ममापि न कश्चिदिति—

---

१ वेराणुगिद्धे णिचयं करेति ख २ पु १ वृ० दी० । **आरंभसत्तो णिचयं करेति** ख १ पु २ वृपा० ॥ २ °**दुग्गं** खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ **आयं ण** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० । **छंदं ण** वृपा० ॥ ४ **य परिव्वदेज्जा** ख १ । उ **परिव्वतेज्जा** ख २ पु १ ॥ ५ **विणीय गिद्धिं** पु २ वृ० दी० । **विणीयगिद्धी** ख २ पु १ । **विणीयगेही** ख १ ॥ ६ **अहाकडं** पु २ ॥ ७ °**मतेज्जा** ख २ ॥ ८ **अणुवेहमाणे** ख० १ वृ० दी० ॥ ९ **चेच्चाण सोयं** ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० **अणुपेहमाणे** खं २ पु १ पु २ वृ० ॥ ११ **उरालं तु अकंखमाणे** चूसप्र० । प्रतीकमिदं चूर्णिव्याख्यानाक्षमम् ॥ १२ **अमुसं** चूपा० ॥ १३ **अमुसे वरे** ख १ ख २ वृ० दी० ॥

एक्को मे सासओ अप्पा णाण-दंसणसंजुतो ।
सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १ ॥ [संस्ता० पौ० गा० ११]

एवं वैराग्यं अणुपत्येज्ज । अथ किमालम्बनं कृत्वा ? एतं पमोक्खे ण मुसं ति पास, जं चेव एतं एकत्वं एस चेव पमोक्खो, कारणे कार्योपचारादेष एव मोक्षः, भृशं मोक्षो पमोक्खो, सत्यश्चायम् । अथवा ज्ञानादिसमाधिप्रमोक्षं "अमुसं" ति एतत् । एष तावदेकान्तसमाधिरेव प्रमोक्षः अमुसे त्ति अनृतः । अयं चापरः प्रमोक्षक इति—अक्रोधने, न केवलमक्रोधने, एवं अयंमणे अवंकणे अलुब्भणे जाव अमिच्छादंसणे । सत्यो णाम संयमो अनृतं वा, सत्ये रतः सत्यरतः । तपस्वी पुनरुत्तरगुणाः ॥ १२ ॥ एते हि मूलोत्तरगुणा विचित्रा स्रगिव स्वीकृताः । तत्रोत्तरगुणा दर्शिताः । मूलगुणास्तु—

४८४. इत्थीसु या आरतमेहुणे[1] या, परिग्गहं चेव अमायमीणे[2] ।
उच्चावएहिं विसएहिं ताया, ण[3] संसयं भिक्खु समाधिपत्ते ॥ १३ ॥

४८४. इत्थीसु या आरतमेहुणे या० वृत्तम् । तिविहाओ इत्थिगाओ । न[4] रतः अरतः, विरत इत्यर्थः । **परिग्गहं चेव अमायमीणे,** एव सेसा वि अहिंसादयो मूलगुणाः । चउत्थ-पंचमयाणं तु वयाणं भावणाओ उत्तरगुणो गहितो । **उच्चावएहिं** उच्चावया हि अनेकप्रकाराः शब्दादयः, अथवा उच्चा इति उत्कृष्टाः, अवचा जघन्याः, शेषा मध्यमाः । त्रायत इति त्राता । "श्रि सेवायाम्" **न संश्रयमानः** असंश्रयमान एव च **विषयान् भिक्षुः समाधिप्राप्तो** भवतीहैव, "नैवास्ति राजराजस्य तत् सुखं०" [प्रशम० आ० १२८], परे मोक्ष इति ॥ १३ ॥ स एवं समाधिप्राप्तः—

४८५. अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू, तणादिफासं[5] तह सीतफासं ।
तेउं[6] च सदं चऽधियासएज्जा, सुब्भिं च दुब्भिं च तितिक्खएज्जा[7] ॥ १४ ॥

४८५. अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू० वृत्तम् । अरती सजमे, रती असजमे, तं **अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू** । केण ? समाधीए । **तणादिफासं** ति, तणफासग्गहणेण कट्ठसंथारग-इक्कडा य समाधिसमाओ गहियाओ, तत्थ तणेहिं विज्झमाणे वा अत्थुरमाणे वा सम्मं अधियासंति । **सीतं** सीतपरीसहो । **तेऊ** उसिणपरीसहो । तणादिफासग्गहणेण दंसमसगादिपरीसहा गहिता । सद्दग्गहणेण सव्वे अक्कोसादिसद्दपरीसहादि गहिता । सुब्भि-दुब्भिगहणेण इट्ठा-ऽणिट्ठविसया गहिता ॥ १४ ॥ किञ्च—

४८६. गुत्ते वईए य समाधिपत्ते, लेस्सं[8] समाहट्टु परिव्वएज्जा ।
गिहं ण छाए ण वि छादएज्जा[9], सम्मिस्सिभावं[10] पजहे पयासु[11] ॥ १५ ॥

४८६. गुत्ते वईए य समाधिपत्ते० वृत्तम् । मौनी वा समिते वा भाषते, भावसमाधिपत्ते भवति । **लेस्सं समाहट्टु,** तिण्णि [अपसत्थाओ] लेस्साओ अवहट्टु तिण्णि पसत्थाओ उपहट्टु सव्वतो व्रजेत् **परिव्वएज्ज** । किंच—**गिहं ण छाए ण वि छादएज्जा,** उरग इव परकृतनिलयः स्यात् । **सम्मिस्सिभावं,** प्रजायन्तः **प्रजाः** स्त्रियः, अथवा सर्वा एव प्रजाः गृहस्थाः तैः सम्मिश्रीभावं **पजहे** । सम्मिस्सिभावो णाम एगतो वासः आगमण-गमणाइसंथवो स्नेहो वा ॥ १५ ॥

एवं चारित्रसमाधिः परिसमाप्तः । इदानीं दर्शनभावसमाधिः—

४८७. जे केई[12] लोगंम्मि[13] तु अकिरियाता, अण्णेण पुट्ठा धुतमादियंति[14] ।
आरंभसत्ता गढिता य लोए, धम्मं ण जाणंति विमोक्खहेतुं ॥ १६ ॥

---

१ मेहुणाओ ख १ पु १ वृ० दी० । मेधुणे उ ख २ पु २ ॥ २ अकुव्वमाणो । उच्चावतेसुं विसएसु ताती खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ णिस्संसयं खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ "आ-समन्ताद् न रतः अरत, निवृत्त इत्यर्थः ।" इति वृत्ति ॥ ५ तणाति° ख २ पु १ ॥ ६ उण्हं च दंसं च° ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ °क्खए या खं २ ॥ ८ लिस्सं खं २ पु १ पु २ ॥ ९ छावएज्जा ख २ पु १ पु २ । छावणिज्जा खं १ ॥ १० सम्मिस्सभावं ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सम्मिस्सिभाव ख १ वृपा० ॥ ११ पतासु खं १ ॥ १२ केति खं १ ॥ १३ लोगंसि ख २ पु १ पु २ ॥ १४ °मादिसंति ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

४८७. **जे केइ लोगम्मि तु अकिरियाता०** वृत्तम् । **जे** त्ति अणिद्दिट्ठणिद्देसो । [1]अशोभनक्रियावादिनः पारतन्त्र्या[:] क्रियावादिनः **अक्रियाता,** अक्रियो वाऽऽत्मा येषां [ते] निश्चितमेव अक्रियात्मानः । **अन्येन** केनचित् **पृष्टाः**—कीदृशो वो धर्मः ?, **धुतं आदियंति** त्ति धुतवादिनो, **धुतं** नाम वैराग्यम्, **धुतमादियंति** धुतं पसंसेन्ति । एवं ते धुतमपि आत्मी-कुर्वन्तः **आरंभसत्ता,** यथा **शाक्या** द्वादश धुतगुणान् ब्रुवते, अथवा पचनादिद्रव्यारम्भेऽपि सक्ताः समाधिधर्मं **न जानन्ति ।** विमोक्षस्य हेतुः **विमोक्षहेतुः,** तमेवं तत्त्वमुवदिसंति ॥ १६ ॥

४८८. [2]तेसिं पुढो छंदा माणवाणं, किरिया-अकिरियाण व पुढोवातं ।
[3]जातस्स बालस्स पकुव्व देहं, [4]पवड्ढते वेरमसंजतस्स ॥ १७ ॥

४८८. **तेसिं पुढो छंदा०** वृत्तम् । पुढोछंदाण **माणवाणं** पृथक् पृथक् **छन्दाः,** नानाछन्दा इत्यर्थः । केचिद्धि क्रूरस्वभावाः केचिन्मृदुस्वभावाः, तथा केषाञ्चिन्मद्यं रोचते केषाञ्चिन्मांसं केचिन्मांस-मद्याशिनः, तथा केचिद् गीत-नृत्य-हसित-प्रियाः केचित् परव्यसनरताः केचिन्मध्यस्था इत्यादि । तथा दृष्टिभेदमपि प्रति **किरिया-अकिरियाण व पुढोवातं,** यथैव हि नानाछन्दाः कर्त्तव्यादिषु लौकिकाः तथैव हि किरिया-अकिरियाणं च [5]**पुढोवादं** उपादीयंत इति **उपादाः** ग्रहा इत्यर्थः, अथवा **उपादा** दृष्टिः । तद्यथा—केषाञ्चिदात्माऽस्ति केषाञ्चिन्नास्ति, एवं सर्वगतः नित्यः अनित्यः कर्त्ता अकर्त्ता मूर्त्तः अमूर्त्तः क्रियावान् निष्क्रि[6]यो वा, तथा केचित् सुखेन धर्ममिच्छन्ति केचिद् दुःखेन, केचित् शौचेन केचिदन्यथा, केचिदारम्भेण, केचिन्निःश्रेयसमिच्छन्ति, केचिदभ्युदयमिच्छन्ति । एकस्मिन्नपि तावच्छास्तरि अन्येऽन्यथा प्रज्ञापयन्ति, तद्यथा—शून्यता, अत्थि पोग्गले, णो भणामि णत्थि त्ति पोग्गले, जं पि भणामि तं पि भणामीत्यवचनीयम्, [7]अवचनीयं एव अवचनीयः, स्कन्धमात्रमिति । **वैशेषिकाणामपि**—अन्येषां न (?) द्रव्याणि नवैव, अन्येषां दश दशैव । **साङ्ख्यानामपि**—अन्येषां इन्द्रियाणि सर्वगतानि, एवं तेषां मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकं अनुसमयमेव कर्म्म बध्यते । दृष्टान्तः—**जातस्स बालस्स पकुव्व देहं, जातस्येति** गर्भत्वेनोत्पन्नस्य, तद्यथा—निषेकात् प्रभृतिरारभ्य शरीरवृद्धिर्भवति, यावद् गर्भान्निःसृतः, आबाल्याच्च प्रवर्द्धते यावत् प्रमाणस्थो जातः । शरीरवृद्धिरिह काल-क्षेत्र-बाह्योपकरणात्मसान्निध्यायत्ता यतः अत उच्यते—प्रकुर्व इव **प्रकुर्व्वन्,** यथा तस्यानुसामयिकी शरीरवृद्धिः एवं तेषामपि मिथ्यादर्शनप्रतिपत्तिकालादारभ्य तत्प्रत्ययिकं **वैरं प्रवर्द्धते** कर्म, वैराज्जातं वैरम्, यथा वैरं दुःखोत्पादकं वैरिणां एवं कर्मापि । यद्यप्याकाशे निश्चल उपतिष्ठतेऽविरतस्तथाऽप्यस्य कर्म बध्यत एव । **पठ्यते च—** **"जाताण बालस्स पगब्भणाए"** जातानामिति गर्भपाकान्निस्सृतानाम्, **प्रगल्भं** नाम धार्ष्ट्यम्, हिंसादिकर्मस्वभिरतिरभिनिवेशो निश्शङ्कता चेति । अतः **पवड्ढते वेरमसंजतस्स** ॥ १७ ॥

४८९. [8]आयुक्खयं चेव अबुज्झमाणे, ममाति से [9]सहस्सकारि मंदे ।
अहो [10]यं [11]रातो य परितप्पमाणे, अट्टे सुमूढे [12]अजरा-ऽमरे व्व ॥ १८ ॥

४८९. आयुक्खयं चेव अबुज्झमाणे० वृत्तम् । स एवं हिंसादिकर्म्मसु प[म]ज्जमानः कामभोगतृषितः **छिन्नहृद-मत्स्यवदुदकपरिक्षये आयुषः क्षयं न बुध्यते । उज्जेणीए वाणियगो** 'रयणाणि कधं पवेस्सस्सामि ?' त्ति रजनिक्षयं न बुध्यते स्म, अतो व्यग्रतया यावदुदिते सवितरि राज्ञा गृहीतः । यथा वा दिवि देवा दोगुंदुगा इव देवा गतं पि कालं ण याणंति । **ममाइ** त्ति ममाई, तद्यथा—मे माता मम पिता मम भ्रातेत्यादि । **सहस्साइ** हिंसादीनि **करोति मन्द**मिति मन्दः । **अहो य रातो य परितप्पमाणे,** सर्वतस्तप्यमानः **परितप्यमानः** मम्मणवणिग्वत् कायेण किस्संतो वायाए मणेण य । आर्त्तध्यानो-

१ अशोभनक्रियावादिनः अशोभनवादिनः पारतन्त्र्या अक्रियावादिनः अक्रियाता स० वा० मो० ॥ २ पुढो य छंदा इह माणवा उ, किरिया-ऽकिरीणं च पुढो य वायं खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । माणवा तो ख २ पु १ । पुढो व वातं ख १ ॥ ३ जाताण बालस्स पगब्भणाए, पव° चूपा० । जायाए बालस्स पगब्भणाए, पव° वृपा० ॥ ४ पवड्ढती ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ पुणोपवादं चूसप्र० ॥ ६ °ष्क्रियोऽपि, तथा पु० ॥ ७ अवचनीय एव पु० । अवचनं एव वा० ॥ ८ आउक्ख° ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ९ साहसकारि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० त ख १ ॥ ११ रातो परि° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १२ अयरा° ख १ पु १ । अहरा° ख २ ॥

पगतः आर्त्तः, द्रव्यार्त्तः चप्पडिलंतः शकटचक्रद्रव्यार्त्तो वा, भावट्टो राग-द्दोसेहिं । सुट्ठु मूढो सुमूढो, सव्वत्थ वाणियग-दिट्ठंतो वक्तव्यः ।

अजरा-ऽमरवद् बालः क्लिश्यते धनकारणात् । शाश्वतं जीवितं चैव मन्यमानो धनानि च ॥ १ ॥

[ ] ॥ १८ ॥

एतद्धनमुपार्जित्य राज-चौरा-ऽग्नि-दायिकाद्यवशेषं अप्पं वा बहुं वा—

४९०. जधाय[1] वित्तं पसवो य सव्वं, जे बंधवा जे य पिया[2] य मित्ता ।
लालप्पती[3] ते वि उवेंति घंतं, अण्णे जणा तं सि हरंति वित्तं[4] ॥ १९ ॥

४९०. जधाय वित्तं पसवो य सव्वं० वृत्तम् । जधाय त्ति त्यक्त्वा । वित्तं धनम् । पशवो गो-महिष्यादयः । बान्धवाः पूर्वापरसम्बद्धाः । मित्राः सहजातकादयः । लालप्पती अत्यर्थं लवति पुनः पुनर्वा लवतीति लालप्यते—हा मातः ! हा पितः ! हा विभवाः ! हा जीवलोक ! "अट्टदुहट्टवसट्टा०" [ ] इत्येवं कुतीर्थिकाः राजादयश्चापि, रूपवानपि कण्डरीक-पोण्डरीकसरिसो, धनवान् नंदसरिसो, धान्यवान् तिलगसेट्ठिसरिसो । ते वि सव्वे लालप्पयता घंतमुवेंति, घन्तः संसारः, एवं ते यथाकर्मनिष्पन्न उवेंति असमाधिं प्राप्नुवन्ति । यच्च तच्छाश्वतकारित्वेनाजरामरणे च अहन्यहनि उत्पद्यमानेन धनमुपार्जितं तदपि अस्य अन्ये राजादयोऽपहरन्ति । एवं मत्वा पापानि कर्माणि वर्जयेत् तपश्च चरेत् ॥ १९ ॥ कथम् ?—

४९१. सीहं जधा खुड्डमिया[5] चरंता, दूरेण[6] चरंती परिसंकमाणा ।
एवं तु[8] मेधावि समिक्ख धम्मं, पावाणि दूरेण विवज्जएज्जा[7] ॥ २० ॥

४९१. सीहं जधा खुड्डमिया चरंता० वृत्तम् । क्षुद्राः मृगाः क्षुद्रमृगाः व्याघ्र-वृक-द्वीपिकादयः, मृगा रोहितादयश्च । अथवा स एव क्षुद्रमृगः दूरेणेति अदर्शनेनागन्धेन वा तद्देशपरित्यागेन च, अपि वातकम्पितेभ्यस्तृणेभ्योऽपि सिंहभयादुद्विग्नाश्चरन्ति । एवं तु मेधावि समिक्ख धम्मं, एवं अनेन प्रकारेण, मेधया धावतीति मेधावी, सम्यग् ईक्षित्वा समीक्ष्य ज्ञात्वेत्यर्थः, असमाधिकर्तॄणि च पावाणि दूरेण विवज्जएज्जा ॥ २० ॥

४९२. संवुज्झमाणे य[9] णरे मतीमं, पावातो अप्पाण णियट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूताणि दुहाणि मंत्ता[10], णेवाणभूते व परिव्वएज्जा ॥ २१ ॥

४९२. संवुज्झमाणो० वृत्तम् । संवुज्झमाणो य, किं सवुज्झमाणो ? समाधिधम्मं । मतिरस्यास्तीति मतिमान् वड्ढमाणपरिणामो हिंसादिपापत आत्मना निवृत्तिं कुर्यात्, निवृत्तेः करणमित्यर्थः । स्यात्—किं पापात् ?, हिंसप्पसूताणि दुहाणि मत्ता, हिंसातः प्रसूतानि हिंसापसूताणि जाति-जरा-मरणा-ऽप्रियसंवासादीनि नरकादिदुःखानि च अट्ठविधकम्मोदय-निप्फण्णाणि असमाधिं प्रसवतीति । णेव्वाणभूते व परिव्वएज्जा, निर्वाणभूतः सर्वभूतानां निर्वृतिकारणमित्यर्थः, यथा वा निर्वृतोऽव्याबाधसुखप्राप्तस्तिष्ठति एवं भवानपि अव्याबाधसुखनिस्सङ्गो अनिर्वृतोऽपि निर्वृतभूतः सर्वतो व्रजेत् परिव्वएज्जा ॥ २१ ॥ मूलगुणाधिकारे प्रस्तुते—

---

१ जहाहि विच्चं पसवो य सव्वे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ पिया सि मित्ता ख १ ॥ ३ °प्पती से वि य पति मोहं, अण्णे ख १ ख २ पु १ पु २ । °प्पती से वि उवेति मोहं, अण्णे वृ० दी० ॥ ४ रित्थं ख १ ॥ ५ खुद्दसिगा ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ दूरे च° ख १ ख २ पु १ पु २ । दूरेण च° वृ० दी० ॥ ७ दूरेण पावं परिवज्जएज्जा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ तु ख १ ख २ वृ० दी० ॥ ९ निवट्ट° ख १ पु २ ॥ १० मंता, वेराणुवंधीणि महब्भयाणि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । मता, णेव्वाणभूते व परिव्वएज्जा वृपा० ॥

४९३. मुसं ण बूया मुणि अत्तकामी[1], णिव्वाणमेवं[2] कसिणं समाधिं ।
सयं ण कुज्जा ण य[3] कारवेज्जा, करंतमण्णं[4] पि य णाणुजाणे ॥ २२ ॥

४९३. **मुसं ण बूया०** वृत्तम् । आत्मनिःश्रेयसकामी । **एवं निर्वाणं** समाधिर्भवति **कसिण** इति सम्पूर्णः, संसारिकानि हि यानि कानिचित् स्नान-पानादीनि निर्वाणानि तान्यसम्पूर्णत्वाद् नैकान्तिकानि नात्यन्तिकानि च । वक्तारोऽपि च भवन्ति—"णेव्वाणिणिंह लद्धा०" [ ] एवमन्येषामपि व्रतानामतीचारं **सयं ण कुज्जा ण य कारवेज्जा, करंतमण्णं पि य णाणुजाणे** एवं योगत्रिककरणत्रिकेण ॥ २२ ॥ इदानीं उत्तरगुणसमाधी—

४९४. सुद्धेसिया[5] जायण तूसएज्जा, अमुच्छितो अणज्झोववण्णो[6] ।
धितिमं विप्पमुक्के[7] ण पूयणट्ठी, ण सिलोयकामी[8] य परिव्वएज्जा ॥ २३ ॥

४९४. **सुद्धेसिया जायण तूसएज्जा०** वृत्तम् । **सुद्धेसिया** जाइओलद्धं एसणिज्जं च, अधवा सुद्धं अलेवकडं, एसणिज्जं अहासोहीए हु **तूसएज्जा । अमुच्छितो अणज्झोववण्णो** गवेषण-गहण-घासेसणासु विइंगाल-वीतधूमं । **धितिमं विप्पमुक्के** सयमे धृतिमान् अगारबंधणविप्पमुक्के, **ण पूआ-सक्कारट्ठी । सिलोगो** त्ति जसो, णाण-तवमादीहि **सिलोगो** ण कामेज्जा ॥ २३ ॥

४९५. निक्खम्म गेहातो णिरावकंखी, कायं विओसज्ज[9] णिदाणछिण्णे ।
णो जीवितं णो मरणाभिकंखी, चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के ॥ २४॥ त्ति बेमि ॥

॥ समाही सम्मत्ता ॥ १० ॥

४९५. **निक्खम्म०** वृत्तम् । **णिक्खम्म गेहातो णिरावकंखी,** अप्पं वा बहुं वा उपधिं विहाय निष्क्रान्तः, मिच्छत्तदोसादीहिं गृह-कलत्र-कामभोगेसु **णिरावकंखो** । दव्वतो भावतो य **कायं** विसेसेण उत्सृज्य **विओसज्ज** । दव्वणिदाणं सयण-धणादि, भावणिदाणं कम्मं । **णो जीवितं णो मरणाभिकंखी** । **वलयं** वक्रमित्यर्थः, द्रव्यवलयं शङ्खकः, भाववलयं अष्टप्रकारं कर्म्म येन पुनः पुनर्वलति संसारे । वलयशब्दो हि वक्रतायां भवति गतौ च । वक्रतायां यथा—वलितस्तन्तुः, वलिता रज्जुरित्यादि । गतौ च—वलति वार्त्ता, वलति सार्थ इत्यादि । **वलयविमुक्त** इति कर्मबन्धनविमुक्तः । अथवा **वलय** इति माया तया च मुक्तः । एवं क्रोधादिमाणविमुक्त इति ॥ २४ ॥

॥ दशममध्ययनं समाप्तम् ॥ १० ॥

---

१ अत्तगामी ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । यऽत्तगामी ख १ ॥ २ °णमेयं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ वि ख १ ॥ ४ करेत° ख १ ख २ पु १ ॥ ५ सुद्धे सिया जाए ण दूसएज्जा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ ण य अज्झो° ख १ ख २ पु १ पु २ दी० । अणज्झो° वृ० ॥ ७ विमुक्के ण य पू° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ °यगामी ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ विओसेज्ज ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

११

[एक्कारसमं मग्गज्झयणं]

मग्गो त्ति अज्झयणस्स चत्तारि अणुयोगद्दाराणि । अधियारो मग्गपरूवणाए पसत्थभावमग्गाऽऽयरणयाए य । णामणिप्फण्णे मग्गो ।

णामं ठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावे य ।
एसो खलु मग्गस्सा णिक्खेवो छव्विधो होति ॥ १ ॥ १०० ॥

णामं ठवणा दविए० गाहा ॥ १ ॥ १०० ॥ वतिरित्तो दव्वमग्गो अणेगविधो—

फलग-लतंदोलग[1]-वेत्त-रज्जु-दवण-बिल-पासमग्गे[2] य ।
खीलग-अय-पक्खिपहे छत्त-जला-ऽऽकास दव्वम्मि ॥ २ ॥ १०१ ॥

फलगलताअंदोलग० गाधा । **फलगेहिं** जहा दद्दरसोमाणेहिं, जधा फलगेण गम्मति वियरगादिसु, चिक्खल्ले वा जधा । **वेत्तलताहिं गंगमादी** सतरति, जधा **चारुदत्तो वेत्तवतिं**[3] वेत्तेहिं ओलंबिऊण परकूलवेत्तेहिं आलाविऊण उत्तिण्णो

---

१ °लयंदोलण-वित्त° ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ २ °मग्गणया ख १ ॥ ३ **वसुदेवहिण्डौ 'उसुवेगा'** नाम दृश्यते । अत्र मार्गज्ञानायात्यन्तोपयोगी **वसुदेवहिण्डिपाठ फलग०** निर्युक्तिगाथावृत्तिश्च क्रमश उद्ध्रियेते–"कमेण उत्तिण्णा मो **सिंधुसागरसंगमं** नदिं । वच्चामो उत्तरपुव्वं दिसं भयमाणा । अतिच्छिया **हूण-खस-चीण**भूमीओ । पत्ता मो **वेअड्ढपाय संकुपहं** । ठिया सत्थिया, कओ पागो, वणफलाणि य भक्खियाणि । भुत्तभोयणेहि य कोट्टियं तुंबरुचुण्णं सत्थिगेहिं । भणिया पुरंगमेण–चुण्णं परिगेण्हह, परिकरेण बंधह चुण्णस्स **टंकोटीओ**, भरेह भंडं पोट्टलए, कक्खपएसे बंधह, ततो एतं छिण्णटंकं कडयं **विजयाणदिद्दहं** अत्यग्घमेगदेसे संकुलयालंबणं **संकुपहं** कमिस्सामो, जाहे हत्था पसिज्जंति ताहे तुंबरु परामुसिज्जइ, ततो फरुसयाए हत्थाण अवलंबणं होइ, अण्णहा उवलसंकूओ नीसरियं निरालंबणस्स छिण्णदहे पडण-मपारे भविज्ज त्ति । ततो तस्स वयणेण तुंबरुचुण्णाइगहणपुव्वं सव्वं कयं । उत्तिण्णा मो सव्वे **संकुपहं** । पत्ता मो जणवयं । ततो पत्ता मो **उसुवे-गनदिं**, तत्थ ठिया, पक्काणि वणफलाणि आहारियाणि । ततो पुरंगमेण भणियं–एसा नदी **वेयड्ढपव्वयपवहा उसुवेगा** अत्थग्घा, जो उत्तरेज्ज सो उसुवेगगामिणा जलेण हीरिज्ज, न तीरए तिरिच्छं पविसिउ ति, एस पुण पहो गम्मइ **वेत्तलयागुणेण**–जया उत्तरो वाऊ वायइ ततो पव्वयतरविणिग्गयस्स मारुयस्स एगसमूहयाए महता गोपुच्छसंठिया समावओ मिउ-थिरा वेत्ता दाहिणेण णामिज्जंति, 'नामेज्जमाणा **उसुवेगनदीए** दक्खिणकूलं सपावेंति' त्ति अवलंबिज्जति, अवलंबिएसु वेलुयपव्वाउदरा छुब्भति, ततो जओ दाहिणो वाऊ अणुयत्तो भवइ ततो सो उत्तरं सछुभइ, 'सछुब्भमाणेसु वेलुपव्व-सरणेसु पुरिसो उत्तरे कूले छुब्भइ' त्ति गेण्हह वेलुपव्वे, मारुयं पडिवालेह त्ति । तस्स मएण गहिया वेलुयपव्वाउदरिया, बद्धं भंडं परिकरा य । मारुयं पडिवालेंता जहोपदेसं दक्खिणवाउविच्छूढवेत्तवंसोवतरणेण ठिया मो उत्तरकूले । वेत्तलयागुविलं च पव्वयकडगं सोहयंता मग्गं अइच्छिया, गया **टंकणदेसं** । पत्ता मो गिरिनदीतीरं, सीमंतम्मि संठिओ सत्थो । भुत्तभोयणेहिं पुरंगमवयणेण नदीतीरे पिहप्पिहं विरइयाणि भंडाणि, एगो य कट्ठरासी पलीविओ, अवक्कंता य मो एगंतं । अग्गिं सधूमं दट्ठूण **टंकणा** आगया, पडिवण्णं भंडं, तेहिं पि कओ धूमो, ते गया पुरंगमवयणेण णियगट्ठाणं । निवद्धा छगला फलाणि य गहियाणि सत्थिएहिं । तओ पत्थिओ सत्थो **सीमानदी**तीरेण । पत्ता य मो **अयपहं** । वीसता कयाहारा पुरंगमवयणेण अच्छीणि बंधिऊण छगलमारूढा **वज्जकोडीसंठियं** पव्वयं उभओपासछिण्णकडयं अइक्कंता । सीयमारुयाहयसरीरा संठिया छगलगा, मुक्काणि अच्छीणि, वीसंता भूमिभाए । कयाहारा य भणिया पुरंगमेण–मारेह छगले, चम्मब्भत्थे सरुहिरे ठवेह, अयमंसं पइत्ता भक्खेह, बद्धकडिच्छुरिया भत्थगेसु पविसह, तओ **रयणदीवाओ भारुंडा** नाम **सउणा** महासरीरा इहाऽऽगच्छंति चरिउं, ते इहं वग्घ-ऽच्छभल्लहयाणं सत्ताणं मंसाइं खायंति, महंत मंसपेसी निलयं नयंति, ते वो सरुहिरभत्थगपविट्ठे 'मंसपेसि' त्ति करिय उक्खिविय णइस्संति **रयणदीवं**, निक्खित्तमेत्तेहि य भत्थया फालेयव्वा छुरियाहिं, तओ रयणसंगहो कायव्वो । एस **रयणदीवगमणस्स** उवातो त्ति ।" इति [पत्र १४८-४९] । अथात्र **वृत्तिपाठ–"फलगेत्यादि** । फलकैर्मार्गे **फलकमार्गः**, यत्र कर्दमादिभयात् फलकैर्गम्यते । **लतामार्गस्तु** यत्र लतावलम्बेन गम्यते । **अन्दोलनमार्गो**ऽपि यत्र अन्दोलनेन दुर्गमतिलङ्घ्यते । **वेत्रमार्गो** यत्र वेत्रलतोपष्टम्भेन जलादौ गम्यत इति, तद्यथा–**चारुदत्तो** वेत्रलतोपष्टम्भेन **वेत्रवर्ती** नदीमुत्तीर्य परकूलं गत । **रज्जुमार्गस्तु** यत्र रज्ज्वा किञ्चिदतिदुर्गमतिलङ्घ्यते । 'दवनं' यानम्, तन्मार्गो **दवनमार्गः** । **बिलमार्गो** यत्र गुहाद्याकारेण बिलेन गम्यते । पाशप्रधानो मार्गे **पाशमार्ग**, पाश-कूटक-वागुरान्वितो मार्ग इत्यर्थ । **कीलकमार्गो** यत्र वालुकोत्कटे **मरुका**दिविषये कीलकाभिज्ञानेन गम्यते । **अजमार्गो** यत्र अजेन–बस्तेन गम्यते, तद्यथा–**सुवर्णभूम्यां चारुदत्तो** गत इति । **पक्षिमार्गो** यत्र भारुण्डादिपक्षिभिर्देशान्तरमवाप्यते । **छत्रमार्गो** यत्र छत्रमन्तरेण गन्तुं न शक्यते । **जलमार्गो** यत्र नावादिना गम्यते । **आकाशमार्गो** विद्याधरादीनाम्" इति ॥

[वसु० प्र० ख० लं० ३ पत्र १४८]। **अंदोलएण** अंदोलारूढो एति य, जं वा रुक्खसालं अंदोलिएऊणं अप्पाणं परतो वच्चति। जधा लता तधा **वेत्ते** वि। अधवा लत त्ति आकंपिऊणं अण्णाए लताए लग्गति। **रज्जुहि गंगं** उत्तरति। **[दवणं]** दगणदीजायणं (? जाणं)। **विलं** दीवगेहिं पविसंति। **रज्जुं** वा कडिए बधिऊण पच्छा रज्जुं अणुसरंति क्वचिद् रसकूपिकादौ महत्यन्धकारे, पुणो णिग्गच्छति गच्छति सो चेव **पासमग्गो** । **खीलगेहिं रुमाविसए** वालुगाभूमीए चक्कमंति, क्वचिद् वेणु(? रेणु)प्रचुरे देशे कीलिकानुसारेण गम्यते, अन्यथा पथभ्रंशः। **अयपधो** लोहबद्धः **सुवण्णभूमीए** पच्छा (? वच्छा वा)। **पक्खीणं** ति जधा **चारुदत्तो** णातो [वसु० प्र० ख० लं० ३ पत्र १४९]। **छत्तगमग्गो** छत्तगेणं धरिज्जमाणेणं गच्छति उपद्रवभयात्, जधा **गणिगो** पवातो। **जलमग्गो** णावाहिं। **आगासमग्गो** चारण-विज्जाहराणं ॥ २ ॥ १०१ ॥

खेत्तम्मि जम्मि खेत्ते काले कालो जहिं वहति मग्गो ।
भावम्मि होति दुविधो पसत्थ तह अप्पसत्थो य ॥ ३ ॥ १०२ ॥

खेत्तम्मि जम्मि खेत्ते० गाधा। **जम्मि खेत्ते** मग्गो—भूमिगोअराणं भूमीए मग्गो, देवाणं आगासे, खेचर-विज्जाहराणं उभये। अधवा खेत्तस्स मग्गो, जधा सा[लि]खेत्तमग्गो एवमादि, ग्राममार्गो नगरमार्ग इत्यादि, यथा—एष पन्था **विदर्भायाः**, अयं गच्छति **हस्तिनागपुरम्**। कालमार्गो जो जम्मि काले मग्गो वहति, यथा—वर्षारात्रे उदगपूर्णानि सरांसि परिरयेण गम्यन्ते, व्याशुष्ककर्दमानि शिशिरे ग्रीष्मे वा उज्जुमग्गेण। यस्मिन् वा काले गम्यते, यथा—ग्रीष्मे रात्रौ सुखं गम्यते, हेमन्तेऽहनि। जच्चिरेण वा गम्मति, यथा योजनिकी सन्ध्या। भावमग्गो दुविधो पसत्थो अप्पसत्थो य ॥ ३ ॥ १०२ ॥

दुविहम्मि वि तिगभेदो णेओ तस्स वि विणिच्छओ दुविहो ।
सुगतिफल दुग्गतिफलो पगतं सुगतीफलेणेत्थं ॥ ४ ॥ १०३ ॥

दुविहम्मि वि तिगभेदो० गाधा। अप्पसत्थभावमग्गो तिविधो, तं जधा—मिच्छत्तं १ अविरती २ अण्णाणं ३। पसत्थभावमग्गो तिविहो, तं जधा—[सम्मण्णाणं] सम्मद्दसण सम्मचारित्तं। **तस्स** पुण **दुविहस्सावि** मग्गस्स **दुविहो विणिच्छयो, विनिश्चयः** फलं कार्यं निष्ठेत्यनर्थान्तरम्। पसत्थो **सुगतिफलो,** अप्पसत्थो **दुग्गतिफलो**। **सुगतिफलेनाधिकारः** ॥ ४ ॥ १०३ ॥ अप्पसत्थमग्गट्ठिताणं पुण दुग्गतिगामुगाणं—

दुग्गतिफलवातीणं तिण्णि तिसट्ठा सता पवादीणं ।
खेमे य खेमरूवे चउक्कगं मग्गमादीसु ॥ ५ ॥ १०४ ॥

दुग्गतिफलवातीणं० । **तिण्णि तिसट्ठा पावादियसता** । दव्वमग्गो पुण चतुव्विधो—खेमे णामेगे क्खेमरूवे, खेमे णामेगे अक्खेमरूवे० ट्ठ। **खेमे य खेमरूवे** त्ति अदुग्गं णिच्चोरं च, एवं चतुसु वि भंगेसु योजयितव्यम्। भावमग्गे एवमेव चतुभंगो—पढमभंगे भाव-दव्वलिंगजुत्तो साधू १ खेमे अक्खेमरूवे कारणिओ दव्वलिंगरहितो साधू २ अक्खेमा खेमरूविगा णिण्हगा ३ अण्णउत्थियगिहत्था चरिमभंगे ४ ॥ ५ ॥ १०४ ॥

सम्मप्पणीत मग्गो णाणं तध दंसणं चरित्तं च ।
चरग-परिव्वायादीचिण्णो मिच्छत्तमग्गो त्ति ॥ ६ ॥ १०५ ॥

सम्मप्पणीत मग्गो० गाधा। जो सो पसत्थभावमग्गो सो तिविधो—**णाणं तध दंसणं चरित्तं च,** तित्थगर-गणधरेहिं थेरेहिं साधूहि य अणुचिण्णो। तव्विवरीओ पुण मिच्छत्तमग्गो, सो **चरग-परिव्वायगादीहिं आचिण्णो मिच्छत्तमग्गो** ॥६॥ १०५ ॥ येऽपि मच्छासनप्रतिपन्नाः—

इड्ढि-रस-सातगुरुगा छज्जीवणिकायघातणरता य ।
जे उवदिसंति धम्मं कुमग्गमण्णस्सिता जाण ॥ ७ ॥ १०६ ॥

---

१ कीलिका वा० मो० ॥ २ जहिं भवे मग्गो ख १। जहिं हवइ जो उ ख २ पु २ ॥ ३ रेवच्च° पु०। "शालिक्षेत्रादिके वा क्षेत्रे" इति वृत्तौ ॥ ४ दोग्गति° ख २ पु २ ॥ ५ ट्ठ इति चतु सङ्ख्याद्योतकोऽक्षराङ्क ॥ ६ णाणे तह दंसणे चरित्ते य ख १ खं २ पु २ ॥ ७ उ ख १ ॥ ८ °गरुया ख १ खं २ पु २ ॥ ९ °संति मग्गं कुमग्गमग्गस्सिता ते उ खं १ ख २ पु २ वृ० ॥

इड्ढि-रस-सातगुरुगा० गाधा। इड्ढि-रस-[सात]गारवेहिं वा धम्मं उवदिसंति ते वि ताव कुमग्गमणास्सिता, किमंग पुण परउत्थिगा तिगारवगुरुगा छज्जीवकायवधरता जे उवदिसंति धम्मं संघभत्ताणि करेमाणा ?, एवमादि कुमग्ग-मण्णास्सिता जाण ॥ ७ ॥ १०६ ॥ जे पुण—

तव-संयमप्पहाणा गुणधारी जे वदंति सब्भावं।
सव्वजगजीवहितं तमाहु सम्मप्पणीतमवि ॥ ८ ॥ १०७ ॥

तव-संयमप्पहाणा० गाधा। सीलगुणधारी जे वदंति सब्भावं णाम जधावादी तधाकारी। सव्वजगज्जीवहितं यं तमाहु सम्मप्पणीतमवि ॥ ८ ॥ १०७ ॥ तस्स पुण एगट्ठियाणि णामाणि भवंति, तं जधा—

पंथो णायो मग्गो विधी धिती सोग्गती हित सुहं च।
पत्थं सेयं णेव्वुइ णेव्वाणं सिवकरं चेव ॥ ९ ॥ १०८ ॥

॥ मग्गणिज्जुत्ती सम्मत्ता ॥ ११ ॥

पंथो णायो मग्गो० गाधा ॥ ९ ॥ १०८ ॥ णामणिप्फण्णो गतो। सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं। अज्जसुधम्मं जंबू पुच्छति—

४९६. कतरे मग्गे आघाते माहणेण मतीमता ?।
जं मग्गं अंजु पावित्ता ओहं तरति दुरुत्तरं ॥ १ ॥

४९६. कतरे मग्गे आघाते० सिलोगो। आघाते इति आख्यातः। [माहणे त्ति वा] समणे त्ति वा एगट्ठं, भगवानेवापदिश्यते। मतिरस्यास्तीति मतिमान् तेन मतिमता। जं मग्गं उज्जु (? अंजु) पावित्ता, अंजुः इति अकुटिलः। अधवा कतरे इति कतरो भावमार्गः पसत्थो आख्यातः माहणेण मतीमता ? तत्र [न] तावद् द्रव्यमार्गो वा अप्रशस्तभाव-मार्गो वा तेनाऽऽख्यातः, अवश्यं तु प्रशस्तभावमार्गः पसत्थो आख्यातः, किं ते हितेण दिट्ठो उज्जुगो य ? तं मे अक्खाहि जं मग्गं उज्जु (? अंजु) पवज्जित्ता ओघो द्रव्यौघः समुद्रः, भावे संसारौघं तरति ॥ १ ॥

४९७. तं मग्गं अणुत्तरं सुद्धं सव्वदुक्खविमोक्खणं।
जाणेहि णं जधा भिक्खू ! तं णे ब्रूहि महामुणी ! ॥ २ ॥

४९७. तं मग्गं अणुत्तरं सुद्धं० सिलोगो। तमिति तम् ओघतरं महापोतभूतम्। [अणुत्तरं] नास्योत्तरा अन्ये कुमार्गाः शाक्यादयः। शुद्ध इति एक एव, निरुपहतत्वाच्चैवम्, अथवा पूर्वापरव्याहतवाध्यदोषापगमात् शुद्धः। सव्वदुक्ख-विमोक्खणं, अन्येऽपि ग्रामादिमार्गाश्चौर-श्वापदभयोपद्रुता दुःखावहा भवन्ति, भूत्वा च न भवन्ति, उदकाद्युपप्लवैः अप्र-गास्ते, भावमार्गाः अपि दुःखावहा एव ते, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-तपोमयस्तु प्रशस्तभावमार्गः शुद्धः सर्वदुःखविमोक्षणम्। तमेवंविधं जाणेहि णं जधा भिक्खू, यथेति येन प्रकारेण, भिक्षुरिति भगवानेव। यथा स भिक्षुर्ज्ञातवान् तथाभूतं त्वमपि जानीषे तमेवं जानीते। अथवा हे भिक्षो ! तमेवं ब्रूहि महामुणी ! हे महामुने ! ॥ २ ॥

स्यात्—किमर्थमहं पृच्छामि ? तत उच्यते—

४९८. जइ मे केइ पुच्छेज्ज देवा अदुव माणुसा।
तेसिं तु कतरं मग्गं आइक्खेज्ज ? कहाहि णे ॥ ३ ॥

४९८. जइ मे केइ पुच्छेज्ज० सिलोगो। देवाश्चतुष्प्रकाराः एते पृच्छाक्षमा भवन्ति, तिरिया मणुस्सा (? मणुस्सा तिरिया वा), उत्तरगुणलद्धिं वा पडुच्च तियं (? तिरियं) अपि कश्चिद् गिरा वत्ति(? क्ति), वयसा वि पुच्छेज्ज, तेसिं तु

---

१ °तसिणं ख १ ख २ पु २ ॥ २ पंथो मग्गो णायो ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ३ मग्गो सम्मत्तो ख २ पु २ ॥ ४ कतरे णं चूपा० सूत्र ५३३ चूर्णौ ॥ ५ अक्खाते मा° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ उज्जु ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ दुत्तरं ख १ ॥ ८ मग्गऽणुत्तरं ख १ ॥ ९ °क्खगं ख २ पु १ पु २ ॥ १० जाणासि णं खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। जाणासि त ख १ ॥ ११ ने ख १ खं २। मे पु १ ॥ १२ णे ख १ ख २ पु २। णो पु १ वृ० दी० ॥ १३ णो ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

कतरं मग्गं, तेषाम् अजानकानां स्वयमजानकः कतरं मार्गं कथं वा कथयिष्यामि ? । अव्याबाधसुखादीनि आवहतीति सुखावहः, अथवाऽभ्युदयकं निःश्रेयसं च ॥ ३ ॥

इति पृष्ट आर्यसुधर्मा जम्बूस्वाम्याद्यान् साधून् प्रणिधाय सदेव-मणुआ-ऽऽसुरं च परिसं णिस्साए करेति—

४९९. जइ वो केइ पुच्छेज्ज देवा अदुव माणुसा ।
[1]तेसिं तु इमं मग्गं आइक्खेज्ज सुणेध मे ॥ ४ ॥

४९९. जइ वो केइ० वृत्तम् (सिलोगो) । जइ वो केइ पुच्छेज्ज, जति त्ति अणिद्दिट्ठणिद्देसे, संसारभ्रान्तिनिर्विण्णाः देवा अदुव माणुसा । तेसिं तु इमं मग्गं आइक्खेज्ज सुणेध मे । पठ्यते च–"तेसिं तु पडिसाहेज्ज मग्गसारं सुणेह मे, साहितं प्रति अन्येषां साहन्ति, कथितं सत् पडिसाहेज्जा । मार्गाणां सारः मार्ग एव वा सारः मार्गसारः ॥ ४ ॥

५००. अणुपुव्वेण महाघोरं कासवेण पवेदितं ।
जमादाय इतो पुव्वं [2]समुद्दं व ववहारिणो ॥ ५ ॥

५००. अणुपुव्वेण० सिलोगो । कथं मार्गप्रतिपत्तिरेव तावद् भवति ?, उच्यते, अणुपुव्वेण महाघोरं, अणुपुव्वेणं ति "माणुस्स खेत्त जाती०" [आव० नि० गा० ८३१] गाधा, अधवा "चत्तारि परमंगाणि०" [उत्तरा० अ० ३ गा० १] सिलोगो, अधवा "पढमिल्लुगाण उदये०" गाधाओ तिण्णि [आव० नि० गा० १०८–१०], एवं कम्मक्खयाणुपुव्विगाधा जाव "बारसविधे०" [आव० नि० गा० १११–१२] । दुरनुचरत्वाद् महाघोरः, अणुपुम्भिः दुस्तरम्, महापुरुषास्तु घोरमपि तरन्ति, घोरसङ्ग्रामप्रवेशवत् । कासवेण पवेदितं, प्रदर्शितमित्यर्थः । जमादाय इतो पुव्वं, जं आदाय इति यमनुचरित्वा इत इति इतस्तीर्थादर्थं (? र्थात् पूर्वं) अद्यतनाद्वा दिवसादिति । समुद्रेण तुल्यं समुद्रवत्, व्यवहरन्तीति व्यवहारिणः वणिजः ॥ ५ ॥

यथा तेऽतिक्रान्ते काले समुद्रम्—

५०१. अतरिंसु तरंतेगे तरिस्संति अणागता ।
तं सोच्चा पडिवक्खामि जंतवो ! तं सुणेह मे ॥ ६ ॥

५०१. अतरिंसु० सिलोगो । अतरिष्यन् तरन्ति तरिष्यन्ति च, तद्वत् सम्यग्मार्गमनुचर्य तीतद्धाए अणंता जीवा संसारोघमतरिंसु, सङ्ख्येयाः तरन्ति साम्प्रतम्, अणंता तरिस्संतऽणागतं ति । तं सोच्चा तमहं श्रुत्वा भवदादीन् श्रोतॄन् प्रतिवक्ष्यामि । जायन्त इति जन्तवः, जम्बूस्वाम्यादीनां आमन्त्रणम्, हे जन्तवः ! तं सुणेह मे चरित्तमग्गं आइक्खिस्सामि । तदन्तमार्गावपि तदन्तर्गतावेव जेसु सजमिज्जति ॥ ६ ॥ ते इमे, तं जधा—

५०२. पुढवीजीवा पुढो सत्ता आउजीवा तधाऽगणी ।
वाउजीवा पुढो सत्ता तण-[3]रुक्खा सबीयगा ॥ ७ ॥

५०२. पुढवीजीवा पुढो सत्ता० सिलोगो । पृथक् पृथग् इति प्रत्येकशरीरत्वात् । आउजीवा तधाऽगणी, पुढो सत्ता इति वर्त्तते । तण-रुक्खग्गहणेणं भेदो दरिसितो ॥ ७ ॥

५०३. [4]अहावरे तसा पाणा एवं छक्काय आहिया ।
[5]एताव ता जीवकाए [6]णावरे विज्जती [7]कए ॥ ८ ॥

५०३. अहावरे० सिलोगो । अधावरे तसा पाणा एवं छक्काय आहिया । एताव ता जीवकाये न हि सप्तमो विद्यते जीवकायः ॥ ८ ॥ एते—

---

१ तेसिमं पडिसाहेज्जा मग्गसारं सुणेह मे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० । तेसिं तु पडि° चूपा० । सुणेहि खं २ पु २ । तेसिं तु इमं मग्गं आइक्खेज्ज सुणेह मे वृपा० ॥ २ समुद्दं वव° ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ °रुक्ख खं १ खं २ पु १ पु २ ॥ ४ अहावरा ख २ पु २ ॥ ५ इत्ताव एव जीव° ख २ पु २ वृ० दी० । इत्ताव ताव जीव° ख १ । इत्तावये जीव° पु १ ॥ ६ णावरे कोइ विज्जती मा० ॥ ७ कती ख १ ख २ । काए पु १ पु २ ॥

५०४. सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं मतिमं पडिलेहिया।
सव्वे अकंतदुक्खा य अतो सव्वे अहिंसका[1] ॥ ९ ॥

५०४. सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं० सिलोगो। अनुरूपा युक्तिः अनुयुक्तिः। जधा—

पुढवीए णिक्खेवो परूवणा लक्खणं परीमाणं। उवभोए सत्थे वेदणा य चवणा (वधणा) णियत्ती य॥ १॥

[आचा० नि० गा० ६८]

☞[2] किञ्च—अङ्कुरवद् जीवत्वं पार्थिवानाम्, विद्रुम-लवणोपलादयश्च स्वाश्रयावस्थाः सचेतनाः, कुतः?, समानजातीयाङ्कुरसद्भावात्, अर्शोविकाराङ्कुरवत्।

भूमिक्खयसाभावियसंभवतो दद्दुरो व्व जलमुत्तं। अधवा मच्छो व्व सभाववोमसंभूतपातातो॥ १॥

[विशेषा० गा० १७५७]

सात्मकं तोयं भौमम्, कुतः?, समानजातीयस्वभावसम्भवात्, दर्दुरवत्, अथवा अन्तरीक्षम्[3], अभ्रादिविकारस्वभावसम्भूतपातात्, मत्स्यवत्। ग्रहणकवाक्यम्—इन्धनसंयोगात् तेजसां तेजः सात्मकम्, आहारोपादानात् तद्वृद्धिविशेषोपलब्धेः तद्विकारदर्शनाच्च, पुरुषवत्। ग्रहणकवाक्यम्—गतिमत्त्वाद् वायुर्जीवः, प्रयत्नगतेः, यस्मादयं सविक्रम इव पुमान् तीव्र-मन्द-मध्यान् गतिविशेषान् स्वेन महिम्ना श्रयतीति, वेगवत्त्वाच्च वृक्षादीनुन्मूलयति इत्यतो गतिमत्त्वाद् वायुर्जीवः। सात्मकाः वनस्पतयः, जन्म-जरा-जीवण-मरणसद्भावात्, स्त्रीवत्। आह—नन्वयमनैकान्तिकः, जाताख्याः (द्याः) विपक्षे[4]ऽपि दर्शनात्, तद्यथा—जातं दधि, जीर्णं वासः, सञ्जीवितं विषम्, मृतं कुसुम्भकमित्यादि, उच्यते, न, वनस्पतौ समस्तलिङ्गोपलब्धेः, दध्यादावसमस्तदर्शनादुपचारतः जातमिति (जातादीनि)। इतश्च सात्मका वनस्पतयः, क्षतसंरोहणाद् आहारोपादानाद् दौहृदसद्भावाद् [आमयसद्भावाद्] रोगचिकित्सासद्भावात्। दौहृदादौ सम्भवतः कुष्माण्ड्यादीनां[5] 'विशेषपक्षः' विशेषश्चासौ पक्षश्च विशेषपक्षः कर्त्तव्यः॥

छिन्नप्परोहता छिक्कमेत्तसंकोअतो कुलिंगो व्व। आसयसंचारातो जाणसु वल्ली-विताणाइं॥ १॥

[विशेषा० गा० १७५४]

सात्मकाः स्पृष्टप्ररोदिकादयः, स्पृष्टाकुञ्चनात्, कीटवत्, आश्रयाभिसंसर्पणाद् वल्ल्यादयः।

सम्मादयो य साव-प्पबोह-संकोयणादितोऽभिमता। वउलादयो य सद्दादिविसयकालोवलम्भातो॥ १॥

[विशेषा० गा० १७५५]

[सात्मकाः] शम्यादयः, स्वाप-प्रबोध-सङ्कोचनादिसद्भावात्, शब्दादिविषयोपलम्भाद् वकुला-ऽशोकादयः, देवदत्तवत्। ☜

एवमाद्याभिस्स्वानुरूपाभिः **अनुयुक्तिभिः** एगिंदिए **पडिलेहिया** जवेति, जीवातिहिंसोपरतिः कार्या स्वकामतः। अब्भोवगमिओवक्कमियाओ वेदणाओ भाणितव्वाओ। तत्थ मणुस्स-पचेंदियतिरियाण य दुविधा, सेसाणं ओवक्कमिया। एवं **मतिमं पडिलेहेत्ता सव्वे अकंतदुक्खा य**, सारीरं माणस वा सव्वेसि अणिट्टं अकंतं अपियं दुक्खं, **अत** इत्यस्मात् कारणाद् नवकेन भेदेन अहिंसणीया **अहिंसकाः** ॥ ९ ॥

---

१ ण हिंसया खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। अहिंसगा ख १॥ २ हस्तचिह्नान्तर्गतश्चूर्णिग्रन्थसन्दर्भ समग्रोऽपि प्रायो विशेषावश्यकमहाभाष्यसत्क "जम्म-जरा-जीवण-मरण०" १७५३ गाथात "अपरप्पेरिय०" १७५८ पर्यन्तगाथानां स्वोपज्ञटीकारूप एव वर्तते॥ ३ °रीक्षमानभ्रा° पु० सं०। °रीक्ष्यमानभ्रा° वा० मो०। °रीक्षेमभ्रा° विखो०। "सात्मक भौमं जलम्, क्षतसमानजातीयस्वभावसम्भवात्, दर्दुरवत्। अथवा अन्तरिक्षम्, अभ्रादिविकारस्वभावसम्भूतपातात्, मत्स्यवत्।" इति कोट्याचार्यीयवृत्तौ पत्र ५४६॥ ४ °कः विपक्षेऽपि विखो०। "आह—सर्वेऽनैकान्तिका, विपक्षेऽपि दर्शनात्। तद्यथा—जात दधि अचेतन च, एव जीर्णं वास, सञ्जीवित विषम्, मृत कुसुम्भकमित्यादि" इति कोट्याचार्यवृत्तौ॥ ५ °ण्ड्यादीन् विशेष्य पक्षः कर्त्तव्यः विखो०॥

५०५. एतं खु णाणिणो सारं जं ण हिंसति कंचणं[1] ।
अहिंसासमयं चेव एतावंतं[2] विजाणिया ॥ १० ॥

५०५. एतं खु णाणिणो सारं० सिलोगो। न हि ज्ञानी ज्ञानादर्थान्तरभूत इति कृत्वाऽपदिश्यते—**एतं खु णाणिणो सारं** ति, कोऽर्थः ?, एष हि ज्ञानस्य सारः। **जं ण हिंसति कंचणं**, कञ्चणमिति कचि(?कञ्चि)दपि नवकेन भेदेन। **अहिंसासमयं** ति, समता "जध मम ण पियं दुक्खं०" गाथा [अनुयो० पत्र २५६] अथवा यथा हिंसितस्य दुःखमुत्पद्यते मम, एवमभ्याख्यातस्यापि चोरियातो वाऽस्य दुःखमुत्पद्यते, एवमन्येपामपि इत्यतो **अहिंसासमयं चेव**। अथवा दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो हिंसा भवति, एवं शेषाण्यपि, एतावांश्चैष ज्ञानविषयः यदुत हिंसाद्याश्रवद्वारोपरतिः ॥ १० ॥

क्षेत्रप्राणातिपातं तु प्रतीत्यापदिश्यते—

५०६. उड्ढमहं[3] तिरियं च जे केति तस-थावरा ।
सव्वत्थ विरतिं[4] कुज्जा संति णिव्वाणमाहियं ॥ ११ ॥

५०६. उड्ढमहं तिरियं च० सिलोगो। प्रज्ञापकं प्रतीत्य उड्ढं अधं तिरियं च पूर्ववत्। **सव्वत्थ विरतिं कुज्जा** इहापि तावद् निर्वाणं भवति। कथम् ?, अहिंसको हि न हि हिंसक इव सर्वस्योद्वेजको भवति, उपशान्तवैरत्वाच्च न कस्यचिदपि बिभेति। किञ्च—"तणसंथारणिवण्णो वि मुणिवरो भट्ठराग-मय-दोसो।" [संस्तारकप्र० गा० ४८] किमु मोक्खो ?, एवं निर्वाणं भवतीत्याख्यातम् ॥ ११ ॥

५०७. पभू दोसे णिरे[5] किच्चा ण विरुज्झेज्ज केणइ ।
मणसा वयसा चेव कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥

५०७. पभू दोसे णिरे किच्चा० सिलोगो। पभवतीति प्रभुः, वश्येन्द्रिय इत्यर्थः, न वा संयमावरणानां कर्मणां वशे वर्त्तते। अथवा स्वतन्त्रत्वाद् जीव एव प्रभुः, शरीर हि परतन्त्रम्, मोक्षमार्गे वाऽनुपला(?पाल)यितव्ये प्रभुः। **दोषाः** क्रोधादयः। **निरे** इति पृष्ठतः कृत्वा। **ण विरुज्झेज्ज केणइ**, न विरुध्येत केनचिदिति, अपि पूर्वशत्रूणामपि, अपि हास्येनापि। विरोधो विग्रहः घन्त इत्यर्थः, यद् वा यस्य प्रतिकूलम्। **मणसा वयसा चेव** त्ति नवकेन भेदेन। **अन्तश** इति यावज्जीविवान्तः ॥ १२ ॥ उक्ता मूलगुणाः। उत्तरगुणप्रसिद्धये त्वपदिश्यते—

५०८. संवुडे[6] य महापण्णे धीरे[7] दत्तेसणं[8] चरे ।
एसणासमिते णिच्चं वज्जयंते अणेसणं ॥ १३ ॥

५०८. संवुडे य महापण्णे० सिलोगो। हिंसाद्याश्रवसंवृतः इंदिय-णोइंदियभावसंवुडो वा। महती प्रज्ञा यस्य स भवति महाप्रज्ञः। धीर्बुद्धिरित्यनर्थान्तरम्। आहार-उवधि-सेज्जाओ याचितद्रव्यं एषणीयं च **चरति** गच्छति चर्य्यत इत्येकोऽर्थः। **एसणासमिते णिच्चं**, तिविधा एसणा—गवेसणा १ गहणेसणा २ घासेसणा ३। एवं सेसाओ वि समितीओ ॥ १३ ॥

तत्राऽऽधाकर्म सर्वगुरु, अनेषणादोषः आद्यश्चेति, तेन तन्निषेधार्थमपदिश्यते—

५०९. भूताणि[10] समारंभ साधू उद्दिस्स जं कडं ।
तारिसं तु ण गेण्हेज्जा अण्ण-पाणं[11] सुसंजते ॥ १४ ॥

---

१ किंचणं ख २ ॥ २ एताव त वि° ख १ ख २ ॥ ३ उड्ढमहे ति° खं १। उड्ढं अहे य ति° खं २ पु १ पु २ ॥ ४ विरइयं खं २ ॥ ५ विजा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ णिराकिच्चा खं १ पु १ पु २ वृ० दी०। णिरिक्खेत्ता ख २ ॥ ७ संवुटे से म° ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। संवुडेस म° ख १ ॥ ८ वीरे ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ दतेसणं ख २ ॥ १० भूयाइं समारंभ साहुमुद्दिस्स जं वृ० दी०। भूताइं समारभ तमुद्दिस्सा य जं ख १। भूयाइं च समारंभ समुद्दिस्स य जं ख २ पु १ पु २ ॥ ११ अण्णं पाणं ख १ ख २ वृ० दी० ॥

५०९. भूताणि समारंभ० सिलोगो । भूतानि- तस-थावराणि । कथमिति ?, साधूनुद्दिश्योपकल्पितम् । तारिसं तु ण गेण्हेज्जा । एवं उवधिं पि । इत्येवं भावमार्गः प्रतिपन्नो भवति ॥ १४ ॥ किञ्च—

५१०. पूतिकम्मं ण सेवेज्ज एस धम्मे वुसीमतो ।
जं किंचि [1]अभिसंकेज्जा सव्वसो तं ण भोत्तए ॥ १५ ॥

५१०. पूतिकम्मं ण सेवेज्ज एस धम्मे० [सिलोगो] । वुसीमतो त्ति, वुसिमानिति संयमवान् वसिमं वा । किञ्च—जं किंचि० सिलोगो [उत्तरद्धं] । जं किंचि अभिसंकेज्जा सव्वसो तं ण भोत्तए, यदिति आहार-उवधि-सेज्जा, अथवा यदिति यत् किञ्चिद् दोषं अभिसंकते पणुवीसाए अण्णयरं किमेत एसणिज्जं अणेसणिज्जं ? । सर्वश इति यद्यपि प्राणात्ययः स्यात् ॥ १५ ॥

इदाणिं वायासमिती—

५११. [2]ठाणाइं संति सड्ढीणं गामेसु नगरेसु वा ।
[3]अत्थि वा णत्थि वा धम्मो ? अत्थि धम्मो त्ति णो वते ॥ १६ ॥

५११. ठाणाइं० सिलोगो । ठाणाणि संति सड्ढीणं, श्रद्धावन्तः श्राद्धिनः । गामेसु नगरेसु वा जाव सण्णिवेसेसु वा । सम्मद्दिट्ठीणं मिच्छद्दिट्ठीण वा तेहिं सड्ढेहिं पुव्विं णाम पुच्छितो परेणेति मिच्छादिट्ठिणा मत्स्यसड्ढेण तच्चणियादिसड्ढेण वा—'हे साधो ! जं [4]मिगे अम्हे ब्राह्मणं भिक्खुं वा तर्प्पयामः, अस्त्यत्र कश्चिद् धर्मः ? तुमं च [5]मग्गट्ठितो' । एवं पुट्ठो अत्थि धम्मो त्ति णो वते ॥ १६ ॥

५१२. [6]अत्थि वा णत्थि वा पुण्णं ? अत्थि पुण्णं ति णो वए ।
अधवा णत्थि पुण्णं ति, एवमेयं महब्भयं ॥ १७ ॥

५१२. अत्थि वा० सिलोगो [पुव्वद्धं] । अधवा णत्थि पुण्णं ति० ॥ १७ ॥ स्याद्—अनुज्ञायां को दोषः ? प्रतिषेधे वा ?, उच्यते—

५१३. [7]दाणट्ठताए जे सत्ता हम्मंति तस-थावरा ।
तेसिं [8]सारक्खणट्ठाए [9]अत्थि पुण्णं ति णो वदे ॥ १८ ॥

५१३. दाणट्ठताए जे सत्ता हम्मंति तस-थावरा० [सिलोगो] । तं जधा—तणणिस्सिता कट्ठ-गोमयणिस्सिता संसेतया तसा थावरा य हम्मंते । तेसिं० सिलोगो [उत्तरद्धं] । तेसिं सारक्खणट्ठाए अत्थि पुण्णं ति णो वदे, मिच्छत्तथिरीकरण, जं च तेणाऽऽहारेण परिवूढा करेस्सति असयमं, अप्पाणं पर च बहूहिं भावेंति तदनुज्ञातं भवति ॥ १८ ॥

पडिसेधे वि—

※ ५१४. जेसिं तं उपकप्पेंति [10]अण्णं पाणं तधाविधं ।
तेसिं लाभंतरायं ति तम्हा णत्थि त्ति णो वदे ॥ १९ ॥

५१४. कण्ठ्यम् ॥ १९ ॥ तत्र का प्रतिपत्तिः ? तुसिणीएहिं अच्छितव्वं, निब्बंधे वा ब्रवीति—अम्हं आधाकर्म्मादि[11]बातालीसदोसपरिसुद्धो पिंडो पसत्थो । जं च पुच्छसि 'किमत्रास्ति पुण्यम् ?' इत्यत्रास्माकमव्यापारः । कथम् ?, उभयदोषोपपत्तेः । कथम् ?—

---

१ अभिकंखेज्जा सव्वसो त ण कप्पते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सव्वओ पु १ पु २ ॥ २ इय गाथा मूलसूत्रादर्शेषु वृत्ति-दीपिकयोश्चेत्यल्पा वर्त्तते । तथा हि—हणंतं णाणुजाणेज्जा आयगुत्ते जिइंदिए । ठाणाइं संति सड्ढीणं गामेसु णगरेसु वा ॥ ३ परेण पुच्छितो धम्मं इत्यपि तृतीय चरण स्यात् ॥ ४ मृगा सरलाशया इत्यर्थ ॥ ५ °ट्ठितो मग्गचिट्ठ स० वा० मो० ॥ ६ तहा गिरं समारब्भ अत्थि पुण्ण ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ °ट्ठयाय जे पाणा ह° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ संरक्ख पु १ ॥ ९ तम्हा अत्थि त्ति णो ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० अण्ण-पाणं ख १ ख २ वृ० दी० ॥ ११ °म्माधिवा° चूसप्र० ॥

❀ ५१५. जे य दाणं पसंसंति वधमिच्छंति पाणिणं।
जे य णं पडिसेधेंति वित्तिच्छेदं[1] करेंति ते ॥ २० ॥

५१५. महातटाकदृष्टान्तः—सर्वैः जलचरैः स्थलचरैश्च प्रतिबोधि(?), अनुज्ञायामननुज्ञायां चोभयथाऽपि दोषः ॥२०॥ अथवा "ग्रसत्येको मुञ्चत्येको, द्वावेतौ नरकं गतौ।" [ ] एवमुभयथाऽपि दोषं दृष्ट्वा—

५१६. दुहतो वि जे[2] ण भासंति अत्थि वा णत्थि वा पुणो।
आयं रयस्स हिच्चा णं णेव्वाणं पाउणंति ते ॥ २१ ॥

५१६. दुहओ० सिलोगो। दुहतो वि जे ण भासंति अत्थि [वा] णत्थि वा पुणो, ते भगवन्तः आयं[3] रयस्स एतीत्यायस्तम्, रतइ त्ति रजः, रजसः आगमं हिच्चा [णं] णेव्वाणं पाउणंति ते इति। एवं वाक्समितिरुक्ता, तद्ग्रहणात् सेसा वि समितीओ घेप्पंति, एवं च णेव्वाण भवतीति ॥ २१ ॥ भगवन्तश्च—

५१७. णेव्वाणपरमा[4] वुद्धा णक्खत्ताण व चंदमा।
तम्हा सदा जते दंते णेव्वाणं संधए मुणी ॥ २२ ॥

५१७. णेव्वाणपरमा वुद्धा० सिलोगो। णेव्वाण परमं जेसिं ते इमे णेव्वाणपरमा एते वुद्धा अरहन्तः, तच्छिष्या वुद्धबोधिताः, परमं निर्वाणमित्यतोऽनन्यतुल्यम्, नास्य सांसारिकानि तानि तानि वेदनाप्रतीकाराणि निर्वाणानि अनन्तभागेऽपि तिष्ठन्तीति। दृष्टान्तः सौत्र एव—नक्खत्ताण व चंदमा, न क्षय यान्तीति नक्षत्राणि, तेभ्यः कान्त्या सौम्यत्वेन प्रमाणेन प्रकाशेन च परमश्चन्द्रमाः नक्षत्र-ग्रह-तारकाभ्यः, एवं ससारसुखेभ्योऽधिकं निर्वाणसुखमिति। तम्हा सदा जते दंते, मोक्षमग्गपडिवण्णे उत्तरगुणेहिं वड्ढमाणेहिं अच्छिण्णसंघणाए णेव्वाणं सवेज्जा ॥ २२ ॥ स एवमच्छिन्नसन्धनया निर्वाणं संधमाणः उभयत्रापि—

५१८. वुज्झमाणाण पाणाणं किच्चंताण[5] सकम्मुणा।
अक्खाति साधुतं दीवं पतिट्ठेसा पवुच्चती ॥ २३ ॥

५१८. वुज्झमाणाण पाणाणं० सिलोगो। संसारनदीस्रोतोभिरुह्यमानानां स्वकर्मोदयेन यत् तच्छुभं तीर्थकरत्वनाम तस्य कर्मण उदयात् अक्खाति साधुतं दीवं आख्याति भगवानेव, शोभनमाख्याति साधुराख्यातम्। एतावता वा समणे वा माहणे वा जा वत्थच्छु(?वच्छच्छु)त्तरीए दीपयतीति दीपः, द्विधा पिवति वा द्वीपः, स तु आश्वासे प्रकाशे च, इहाऽऽश्वासद्वीपोऽधिकृतः। यस्मादाह—उह्यमानानां श्रोतसा सो दीवतो ताणं सरणं गती पतिट्ठा य भवति, एतदाश्वासद्वीपं प्राप्य संसारिणां प्रतिष्ठा भवति, इतरथा हि ससारसागरे जन्म-मृत्युजलोर्मिभिरुह्यमाना नैव प्रतिष्ठां लभन्ते। जं च मग्गं अणुपालेंतस्स अट्ठविधं कम्मं प्रतिष्ठां गच्छति, निष्ठामित्यर्थं, यथाऽऽख्याति तथाऽनुचरति सयं, अणिग्गहितवालविरतो[6] जेण जीवो हिंडंतो प्रतिष्ठां लभते, एप प्रशस्तभावमार्ग इति लभ्यते ॥ २३ ॥

केरिसो पुण पसत्थभावमग्गगामी प्रतिष्ठां लभते? कीदृशो वा भावाश्वासदीपो भवति?—

५१९. आयगुत्ते सदादंते छिन्नसोते णिरासवे[7]।
जे धम्मं सुद्धमक्खाति[8] पडिपुण्णमणेलिसं ॥ २४ ॥

५१९. आयगुत्ते सदादंते० सिलोगो। आत्मनि आत्मसु वा गुप्त आत्मगुप्तः, इन्द्रिय-नोइन्द्रियगुप्त इत्यर्थः, न तु यस्य गृहादीनि गुप्तादीनि। हिंसादीनि[9] श्रोतांसि छिन्नानि यस्य स भवति छिन्नस्सोते, छिन्नश्रोतस्त्वादेव निराश्रवः। जे धम्मं सुद्धमक्खाति, य एवंविधे आश्वासद्वीपे स्थितः प्रकाशद्वीपः अन्येषां धर्ममुपदिशति, प्रतिपूर्णमिदं सर्वसत्त्वानां हितं

---

१ °च्छेतं ख १ ॥ २ ते त्र १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी ॥ ३ अयरस्सा एतीत्यायस्तं रत इति रजतं रजसः चूसप्र० ॥ ४ नेव्वाणं परमं वुद्धा नक्खत्ताण व चंदिमा खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ कच्चंताण सकम्मणा। आघाति खं १ खं २ पु १ पु २ ॥ ६ अनिगृहीतवालवीर्यं ॥ ७ अणासवे ख २ पु १ पु २। अणासते ख १ ॥ ८ सुहम° ख १ ॥ ९ °नि आहिंसि छिं° चूसप्र० ॥

सुहं सर्वाविशेष्यं निरुपधं निर्वाहिकं मोक्षं नैयायिकम् इत्यतः प्रतिपूर्णम्, अथवा सर्वैर्दया-दम-ध्यानादिभिर्धर्मकारणैः प्रतिपूर्णमिति । अनन्यतुल्यं अणेलिसं, योऽयमनन्यसदृगो धर्मोपदेशः ॥ २४ ॥

५२०. तमेव अविजाणंता अबुद्धा बुद्धवादिणो ।
बुद्धा मो त्ति य मन्नंता दूरतो ते समाधिए ॥ २५ ॥

५२०. तमेव अविजाणंता० सिलोगो । तमिति तद् द्विविधं प्रदीपभूतं धर्मं न बुद्धा अबुद्धाः बुद्धवादिनश्च बुद्धम्मन्याश्चाऽऽत्मानं बुद्धा **मो त्ति य मन्नंता** अण्णाणिणो अविरया तिण्णि तेसट्ठा पौवातियसदा 'एवमस्माकं मोक्षसमाधिर्भविष्यति' इति **दूरतस्ते समाधिए** । कथम् ? इहलोकेऽपि तीवं तेऽनेकाग्रत्वात् समाधिं न लभन्ते कुतस्तर्हि परमसमाधिं मोक्षम् ? । तद्यथा—शाक्याः अबुद्धा बुद्धवादिनः सुखेन सुखमिच्छन्ति, इहलोकेऽपि तावद् ग्रामव्यापारैर्न सुखमास्वादयन्ति, कुतस्तर्हि परमसमाधिसुखमिति ? । उक्तं हि—"तत्रैकाग्रं कुतो ध्यानं, यत्राऽऽरम्भ-परिग्रहः ? ।" [ ] इति । अतस्ते चतुव्विधाए भावणाए दूरतः ॥ २५ ॥ इतश्च दूरतः—

५२१. ते य वीयोदगं चेव तमुद्दिस्सा य जं कडं ।
झाणं णाम झियायंति अखेतण्णा असमाहिता ॥ २६ ॥

५२१. ते य वीयोदगं चेव० सिलोगो । वीयाणि सचेतणाणि शाल्यादीनाम्, शु(? शी)तमपि च उदकं सचेतनमेव, हरिद्रा-कर्कोदकवत्, तमुद्दिश्य च कृतं उपासकादिभिः, स्वयं च पाचयन्ति पक्षचारिकादयः, तेषां हि पक्षे चारिका भवन्ति, अनुजानते च सुपकं सुमृष्टमिति, जीवेषु च अजीवबुद्धयः अतत्त्वे तत्त्वबुद्धयः वराकास्तत्कारिणस्तद्द्वेषिणश्च सङ्घभक्तानि गणयन्तोऽतीता-ऽनागतानि च प्रार्थयन्तः **झाणं णाम झियायंति**, **णाम** परोक्षस्तवादिषु, तेऽपि नाम यदि ध्यानं ध्यायन्ति, को हि नाम न ध्यानं ध्यास्यति ? ।

ग्राम-क्षेत्र-गृहादीनां गवां प्रैष्यजनस्य च । यत्र प्रतिग्रहो दृष्टो ध्यानं तत्र कुतः शुभम् ? ॥ १ ॥

[ ] इति ।

सचित्तकम्मा य तेसिं आवसथा विहारकुडीउ त्ति, मांसं कल्पिक इत्यपदिश्यते, दासीओ कप्पयारीउ त्ति । यथा बर्बरेण मांसस्य प्रत्याख्याय अशक्नुवता तमनुपालयितुं भमरमिति संज्ञां कृत्वा भक्षितम्, किमसौ तद् भक्षयन् निर्विशिको भवति ?, छुता वा शीतलिकाभिधानेनाभिलप्यमाना किं न मारयति ? । एव तेषां न संज्ञान्तरपरिकल्पितास्ते आरम्भा निर्वाणाय भवन्ति, न च वैराग्यकरा भवन्ति । येऽपि तावद् भिक्षाहारा भवन्ति तेऽपि सविकारस्त्रीरूपसचित्रकर्म्मसु लेनेषु वसन्ति तेषामपि तावत् कुतो ध्यानम् ?, किमङ्ग पुनः कल्पिकारीर्व्यापारयताम् ?, पचन-पाचनाप्रवृत्तानां तनुमेव चानुप्रेक्षमाणानां कुतो ध्यानम् ? । ते हि मोक्षमार्गस्य ध्यानस्य च शुद्धस्य **अखेतण्णा** अजाणगा, **असमाहिता** णाम असवृताः, मनोज्ञेषु पान-भोजना-ऽऽच्छादनादिषु नित्याध्यवसिताः 'कोऽत्थ संघभत्तं करेज्जा ? कोऽत्थ परिक्खारं देज्ज वत्थाणि ?' इत्येवं नित्यमेवार्त्तं ध्यायन्ति ॥ २६ ॥

५२२. जधा ढंका य कंका यं पिलजा मग्गुका सिही ।
मच्छेसणं झियायंति झाणं ते कलुसाधमं ॥ २७ ॥

५२२. जहा ढंका० सिलोगो । जधा ढंका य कंका य पिलजा जलचरपक्षिजातिरेव, मग्गुकाः काकमद्गुवत्,

---

१ बुद्धमाणिणो ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ अतए ते समाहिते खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ प्रावादुकशतानि ॥ ४ तावद् अने° स० वा० मो० ॥ ५ भोच्चा झाणं झि° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ °ण्णाऽस° ख १ पु १ पु २ ॥ ७ यतिप्रति° वा० मो० ॥ ८ "मांस कल्किकमित्युपदिश्य सज्ञान्तरसमाश्रयणान्निर्दोषं मन्यन्ते ।" इति वृत्तिकृतः ॥ ९ °सु लयनेषु पु० ॥ १० य कुलला मंडका सिही ख १ पु २ । य कुलला मद्दुका सिही ख २ । य कुलला मग्गुका सिही पु १ ॥

शिखी च जलचरा एव, एते हि न तृणाहाराः केवलोदकाहारा वा, ते नित्यकालमेव मच्छेसणं झियायंति, निश्चलास्तिष्ठन्ति जलमज्झे उदगमक्खोभेन्ता, मा भून्मत्स्यादयो नङ्क्ष्यन्ति उत्तसिष्यन्ति वा ॥ २७ ॥

५२३. एवं तु समणा ऐगे मिच्छदिट्ठी अणारिया ।
विसंएसणं झियायन्ति कंका वा कलुसाधमा ॥ २८ ॥

५२३. एवं तु समणा एगे० सिलोगो । एवं पि नाम श्रमणा वयं इति ब्रुवन्तः एके न सर्वे पचनादिषु आरम्भेषु अशुभाध्यवसाने च वर्तमाना मिथ्यादृष्टयः चरित्तणाअरिया आहार-परमपूजा-सत्कारांश्च ध्यायन्ति, सन्मार्गाजानकाः कुमार्गाश्रिताः मोक्षमिच्छन्तोऽपि संसारसागर एव निमज्जंते ॥ २८ ॥ दृष्टान्तः—

५२४. जधा आसाविणी णावं जातिअंधो दुरूहिया ।
इच्छेज्जा पारमागन्तुं अंतरा य विसीदति ॥ २९ ॥

५२४. जधा आसाविणी णावं० सिलोगो । आस्रवतीति आस्राविनी सदाश्रवा शतच्छिद्रा । नयति नीयते वा नौः । जातित एव अन्धो जात्यन्धः पूर्वा-ऽपर-दक्षिणोत्तराणां दिशां मार्गाणां गत-गन्तव्यस्यानभिज्ञः एतावद् गतं एतावद् गन्तव्यम् । इच्छेज्जा पारमागन्तुं अन्तरा एव नदीमुखे पर्वते वा प्रतिहतभग्ने निमग्ने वा पोते अंतरा इति अप्राप्त एव पारं विसीदति ॥ २९ ॥ एष दृष्टान्तः । अयमर्थोपनयः—

५२५. एवं तु समणा एगे मिच्छदिट्ठी अणारिया ।
सोतं कसिणमावण्णा आगंतारो महब्भयं ॥ ३० ॥

५२५. एवं तु समणा एगे० सिलोगो । एगे ण सव्वे, अण्णाण-मिच्छत्ततमपडल-मोहजालपडिच्छन्ना । अणारिया णाम अणारियचरित्ता । सोतं कसिणमावण्णा, श्रवतीति श्रोतः, आस्राविनीनौस्थानीयं कुचरितश्रोतमास्थाय कसिणमिति सम्पूर्णं आश्रवद्वारम्, तं तु मिथ्यादर्शनसहगतौ हि राग-द्वेषौ सम्पूर्णकर्मस्रोतो भवति, तदभावे तु शेषा आश्रवा यद्यपि भवन्ति तथापि न सर्वा उत्तरप्रकृतयो बध्यन्ते, न चासम्पूर्णाः । यस्मादुक्तम्—"सम्मद्दिट्ठी जीवो०" [वदित्तु० गा० ३५] । अथवा कसिणद्रव्यश्रोतः प्रावृषि वर्षासु वा नदीपूरः, एव मिच्छत्तसहगता जोगा कसाया वा संपुण्णभावसोतं भवति । तएवं सोतमावण्णा आगंतारो महब्भयं, महब्भयमिति संसार एव जाति-जरा-मरणबहुलो । तं जधा—गब्भतो गब्भं जम्मतो जम्मं मारओ मारं दुक्खतो दुक्ख, एवं भवसहस्साइं पर्यटन्ति बहून्यपि ॥ ३० ॥

एत्थ चेव पसत्थभावमग्गे वण्णिज्जमाणे पुव्वं वुत्त—"जं किंचि अभिसंकिज्जा सव्वसो तं ण भोत्तए" [सूत्र ५१०] एस उस्सग्गमग्गो इत्यादि अतिप्रसक्तं लक्षण निवार्यते, सर्वस्योत्सर्गस्यापवादः, यथा चोत्सर्गः काश्यपेन प्रणीतः [तथाऽपवादः] इत्यतोऽपवादसूत्रं प्रारभ्यते । प्रत्ययश्च शिष्याणां भविष्यति—यथाऽस्त्यपवादोऽपीति, तेन तमाचरन्तो नामाऽऽचारवन्तमात्मानं मन्यन्ते । तच्च शास्त्रमेव न भवति यत्रोत्सर्गो-ऽपवादौ न स्तः, तेनापदिश्यते—

५२६. इमं च धम्ममादाय कासवेण पवेदितं ।
कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स अगिलाए समाहिए ॥ ३१ ॥

---

१ °दयो मङ्क्ष्यन्ति पु० ॥ २ वेगे पु १ ॥ ३ °सतेस° ख २ पु १ ॥ ४ अष्टाविंश-एकोनत्रिंशसूत्रश्लोकयोरन्तराले—

सुद्धं मग्ग विराहेत्ता इहमेगे उ दुम्मती । उम्मग्गगता दुक्खं घंतमेसंति तं तधा ॥

इत्यय सूत्रश्लोक प्राचीना-ऽर्वाचीनतालपत्र-कद्गलोपरिलिखितसूत्रप्रतिषु वर्तते, वृत्ति-दीपिकाकृद्भ्यामप्यय सूत्रश्लोको व्याख्यातोऽस्ति, किन्तु चूर्णिकृता भगवता व्याख्यातो नास्ति । घातमेसंति तं तहा पु १ ॥ ५ °विणिं णावं जातिअधे ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ६ इच्छती खं १ खं २ वृ० दी० ॥ ७ °सीयती ख १ ख २ पु १ । °सीयई पु २ ॥ ८ "सम्मद्दिट्ठी जीवो जइ वि हु पाव समायरे किंचि । अप्पो सि होइ बंधो जेण ण णिद्धधस कुणइ ॥" इति पूर्णा गाथा ॥ ९ प्राचीना ऽर्वाचीनेषु सूत्रादर्शेषु वृत्ति-दीपिकयोश्च व्याख्याने एकत्रिंश-द्वात्रिंशसूत्रश्लोकयुगलस्थाने—

इमं च धम्ममादाय कासवेण पवेदितं । तरे सोयं महाघोरं अत्तत्ताए परिव्वए ॥

इतिरूप एक एव सूत्रश्लोकस्तव्याख्या च दृश्यते, तथा वृत्ति-दीपिकयो कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स अगिलाए समाहिए इत्युत्तरार्धस्य पाठभेदो निर्दिष्टो वर्तते ॥

५२७. संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिणिव्वुडे।
तरे सोतं महाघोरं अत्तत्ताए परिव्वएज्जासि ॥ ३२ ॥

५२६. इमं च धम्ममादाय० सिलोगो। धर्ममादाय धर्मं च फलम्। तीर्थकरः काश्यपः। स एव भगवान् किं प्रवेदितवान्? कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ किञ्च—

५२७. संखाय पेसलं धम्मं० [सिलोगो]। संख्यायेति ज्ञात्वा। पेसलं इति सम्पूर्णम्। द्रव्यपेसलं यद्धि मेदन्तुरं मांसम्, भावपेशलस्तु ज्ञान-दयादिभिः सर्वैर्धर्मकारणैः सम्पूर्णो धर्म एव। तं ज्ञात्वा दृष्टिमानिति सम्यग्दृष्टिः। सङ्ख्याग्रहणाद् [ज्ञानम्,] धर्मग्रहणाच्चारित्रम्, दृष्टिग्रहणात् सम्यग्दर्शनम्, एवं त्रीण्यपि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि गृहीतानि भवन्ति। तरे सोतं महाघोरं, मार्ग एवानुवर्त्तते, तराहि सोतं महाघोरं, श्रवतीति स्रोतः, द्रव्ये भावे च, जाति-जरा-मरणा-ऽप्रियसंवासादिभिर्महाघोरं भावश्रोतः संसारः। अत्तत्ताए त्ति अत्ताणं तारंतो परिव्वएज्जासि ॥ ३२ ॥ तमेवं तरति—

५२८. विरते गामधम्मेहिं जे केई जगती जगा।
[1]तेसिं अत्तुवमाणेण थामं कुव्वं परिव्वए ॥ ३३ ॥

५२८. विरते गामधम्मेहिं० सिलोगो। ग्रामधर्माः शब्दादयः। जे केई जगती जग त्ति जायत इति जगत् तस्मिं जगति विद्यन्ते ये, जायन्त इति वा जगाः जन्तवः, तेसिं अत्तुवमाणेण तेषा आत्मोपमानेन आत्मौपम्येन, कोऽर्थः? "जध मम ण पियं दुक्खं०"। पठ्यते च—"तेसिं ता उवमाऽऽताए" आताए त्ति आत्मोपमं गृहीत्वा ज्ञात्वेत्यर्थः, "जह मम ण पियं दुक्खं०"। थामं कुव्वं परिव्वए त्ति सयमवीरियं कुव्वं ॥ ३३ ॥

तं तु एवं संयमवीरियं भवति—

५२९. अतिमाणं च मायं च तं परिण्णाय पंडिते।
सव्वमेतं णिरे [2]किच्चा णेव्वाणं संधए मुणी ॥ ३४ ॥

५२९. अतिमाणं च० सिलोगो। अधवा संयमवीरियस्स इमे विग्घकरा भवंति। तं जधा—अतिकोधो अतिमाणो अतिमाया अतिलोभो इति, अतः तं अतिमाणं च मायं च, अतिक्राम्यते येन चारित्रं सोऽतिमाणं, अप्रशस्त इत्यर्थः, प्रशस्तोऽपि न कार्यः, किन्तु तत् क्रियार्थमेव क्रियते, रजक-कूपखातकदृष्टान्तसामर्थ्यात्। यथा—रजको मलदिग्धानि वस्त्राणि प्रक्षालयन् शुद्ध्यर्थमन्यदपि मलं औषधादिकं समादत्ते एवं साधुरपि। कूपेऽप्येवम्। न च नामावीतरागस्य मानादयो नोत्पद्यन्ते, ते त्वप्रशस्ता नरेण न कार्याः, एवं शेषा अपीति। दुविधाए परिण्णाए परिजाणाहि। किञ्च—ये केचित् क्रोध-मान-माया-लोभाद्याः दो[षाः] जाव मिच्छादंसण त्ति इत्येवमाद्यन्यदपि दोषजातं सव्वमेतं निरे किच्चा, सव्वं निरवसेसं एतदिति यदुद्दिष्टम्, निरमिति पृष्ठम्, णेव्वाणं अच्छिण्णसंधणाए सन्धए ॥ ३४ ॥ किञ्च—

५३०. [3]संधए साधुधम्मं च [4]पावधम्मं णिरे [5]करे।
उवधाणवीरिए भिक्खू कोधं [6]माणं ण पत्थये ॥ ३५ ॥

५३०. संधए साधुधम्मं च० सिलोगो। दसविधो चरित्तधम्मो णाण-दंसण-चरित्ताणि वा तं अच्छिन्नसंधणाए, णाणे अपुव्वगहणं पुव्वाधीतं च गुणाति, दंसणे णिस्संकितादि, चरित्ते अखंडितमूलगुणो। पठ्यते च—"सद्दहे साधुधम्मं च"। पावधम्मो अण्णाण-अविरति-मिच्छत्ताणि, अधवा पावाणं धम्मो, पापा मिथ्यादृष्टयः सर्वे गृहिणोऽन्यतीर्थिकाश्च, तेसिं धम्मं सभावं, निरे कुर्यादिति पृष्ठतः कुर्यात्। ~~तत् केन कुर्यात्?~~ को वा कुर्यात्? इति उच्यते, उवधाणवीरिए भिक्खू, उपधानवीर्यं नाम तपोवीर्यम्, स उपधानवीर्यवान् भिक्खू। कोधं माणं ण पत्थये, न क्रुध्येत न माद्येत, न क्रोधमिच्छेदित्यर्थः, अक्रोधं तु प्रार्थयेत्, एवं शेषेष्वपि ॥ ३५ ॥

---

१ तेसिं अत्तुवमायाए थामं ख १ ख २ पु १ वृ० दी०। तेसिं अप्पोवमायाए थाम पु। २ तेसिं ता उवमाऽऽताए चूपा० ॥ २ णिराकिच्चा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ संधत्ते साधु° ख २। सद्दहे साधु° चूपा० वृपा० ॥ ४ पावकम्मं ख २। पावं धम्मं ख १ वृ० दी० ॥ ५ णिराकरे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ माणं च वज्जते ख १ ख २ पु १ पु २ ॥

स्यात्—किमेवं वर्द्धमानस्वामी एतन्मार्गमुपदिष्टवान्? उतान्येऽपि तीर्थकराः?, उच्यते—

५३१. जे य बुद्धा अतिक्कंता जे य बुद्धा अणागता।
संति तेसिं पतिट्ठाणं भूयाणं जगई जहा ॥ ३६ ॥

५३१. जे य बुद्धा अतिकंता० सिलोगो। अतिकंता अतीतद्धाए अणंता एतन्मार्गमपदिश्य ते आचार्या वा मोक्षमिताः, साम्प्रतं पञ्चदशसु कर्मभूमीषु सङ्ख्येयाः, अणागतद्धाए जे य बुद्धा अणागता। संति तेसिं पतिट्ठाणं गमनं शान्तिश्चारित्रमार्ग इत्यर्थः, एषा शान्तिः तेषां प्रतिष्ठानं आधारः आश्रय इत्यर्थः। प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा निर्वाणं वा शान्तिः। तेषां प्रतिष्ठाने को दृष्टान्तः—भूयाणं जगई जहा, जगती नाम पृथिवी, यथा सर्वेषां स्थावर-जङ्गमानां जगती प्रतिष्ठानं तथा सर्वतीर्थकराणामपि एष एव शान्तिमार्गः प्रतिष्ठानम् ॥ ३६ ॥

५३२. अँह णं वतमावण्णं फासा उच्चावचा फुसे।
णँ तेहिं विणिहम्मेज्जा वातेण व महागिरी ॥ ३७ ॥

५३२. अह णं वतमावण्णं० सिलोगो। अथ पुनस्तं व्रतानि आपण्णं चारित्रमार्गप्रयातमित्यर्थः। पठ्यते [च]—"अधेणं भेदमावण्णं" भावभेदो हि संयम एव, कर्म्माणि भिनत्तीति भेदः। फासा सीत-उसिण-दंशमशकादयः उच्चावचा अनेकप्रकाराः परीषहोपसर्गाः स्पृशेत्। ण तेहिं विणिहम्मेज्जा, ण तेहि उदिण्णेहि वि णाण-दंसण-चरित्तसंजुत्ताओ मग्गाओ विणिहण्णेज्जा, [आणु]पुव्वीए जिणंतो संयमवीरियं उप्पादेज्जासि त्ति, जधा ते गुरुगा वि उदिण्णा लहुगा भवंति।
दृष्टान्तः आभीरयुवतिः—जातमेत्तं वच्छगं दुण्णि वेलाए उक्खिविऊण णिक्खामेति, पीतं चैनं पुनः प्रवेशयति। तमेव क्रमशो वर्द्धमानं अहरहर्जेयं कुर्वती जाव चउहायणं पि उक्खिवेति। एष दृष्टान्तः। अयमर्थोपनयः—एवं साधुरपि सन्मार्गात् क्रमशो जयाद् उदीर्णैरपि परीषहैर्न विहन्येत। वातेण व महागिरिरिति मन्दरः ॥ ३७ ॥

५३३. संवुडे से महापण्णे वुँद्धे दत्तेसणं चरे।
णिव्वुडे कालमाकंखी एँवं केवलिणो मतं ॥ ३८ ॥ ति बेमि ॥

॥ मग्गो सम्मत्तो एक्कारसमज्झयणं ॥ ११ ॥

५३३. संवुडे से महापण्णो० सिलोगो। स एवं संवरसंवृतः [महापण्णे] प्रधानप्रज्ञः विस्तीर्णप्रज्ञो वा। दधाति बुद्ध्यादीन् गुणानिति बुद्धः। पाठान्तरम्—"वीरे"। दत्तं एसणं चरेज्जासि त्ति दत्तेसणं चरे, अधवा दत्तमेषणीयं च यश्चरति स भवति दत्तैषणचरः। णिव्वुडे कालमाकंखी, शान्तः समितो णिव्वुडः, शीतीभूत इत्यर्थः। कालं काङ्क्षतीति कालकंखी, मरणकालमित्यर्थः। कोऽर्थः? तावदनेन सन्मार्गेण अविश्रामं गन्तव्यं यावन्मरणकालः। एवं केवलिणो मतं ति, जं तुमे अज्जजंबू! पुच्छितं "कतरे णं मग्गे" [सूत्रं ४९६] तदेतदस्य केवलिनो मार्गाभिधानं कथितमनन्तरमाख्यातमिति ॥ ३८ ॥

॥ इति मार्गाध्ययनम् ॥ ११ ॥

---

१ किमेनं वर्द्ध° चूसप्र० ॥ २ संति त्ति संति पति° स० वा० मो०। संत त्ति संत पति° पु० ॥ ३ अधेणं भेदमावण्णं चूपा० ॥ ४ ण तेसु विणिहण्णेज्जा ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ वातेणेव ख १ ख २ पु २ ॥ ६ धीरे दत्ते° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। वीरे दत्तेसणचरे चूपा० ॥ ७ एयं वृ० दी० ॥

१२

[बारसमं समोसरणज्झयणं]

समोसरणं ति अज्झयणस्स चत्तारि अणुओगद्दारा । अधियारो किरियावादिमादीहिं चतुहिं समोसरणेहिं । णामणिप्फण्णे णिक्खेवो गाधा—

समोसरणम्मि वि छक्कं सच्चित्ता-ऽचित्त-मीसगं दव्वे ।
खेत्तम्मि जम्मि खेत्ते काले जं जम्मि कालम्मि ॥ १ ॥ १०९ ॥

समोसरणम्मि वि छक्कं० गाधा । वइरित्तं दव्वसमोसरणं सम्यक् समस्तं वा अवसरणं समवसरणम् । तं तिविधं— सचित्तं दुपदादि० । यत्रैकत्र बहवो द्विपदाद्या बहवो मनुष्याः समवसरन्ति तं सचित्तं दव्वसमोसरणं । दुपदसमोसरणं जधा साधुसमोसरणं १ चतुप्पदानां निवाणादिसु गवादीनां समोसरणं २ अपदानां नास्ति स्वयं समोसरणम्, गत्यभावात्, सहजानां वा स्वयमपि भवति वृक्षादीनां समोसरणं ३ । अचेतनानामभ्रादीनाम् । खेत्तसमोसरणं जम्मि खेत्ते समोसरन्ति द्रव्याणि, जधा साधुणो आणंदपुरे समोसरंति । कालसमोसरणं वैसाहे मासे जत्ताए समोसरंति, वासासु वा जत्थ समोसरंति । तधा पक्खिणो दिवाचरा वनखण्डमासाद्य समवसरन्ति ॥ १ ॥ १०९ ॥

भावसमोसरणं पुण णायव्वं छव्विहम्मि भावम्मि ।
अधवा किरिय अकिरिया अण्णाणी चेव वेणइया ॥ २ ॥ ११० ॥

भावसमोसरणं पुण० गाधा । तिण्णि तिसट्ठा पावादियसयाणि णिग्गंथे मोत्तूण मिच्छादिट्ठिणो त्ति काऊण उदइए भावे समोसरंति, इंदियादिं पडुच्च खओवसमिए भावे समोसरति, जीवं प्रतीत्य अणादिपारिणामिए भावे समोसरंति, एतेसु चेव तिसु भावेसु तेसिं सण्णिवातिओ भावो जोएतव्वो । सम्मद्दिट्ठी किरियावादी तु छसु वि भावेसु । उदईए भावे अण्णाण-मिच्छत्तवज्जासु अट्ठसु वि कम्म[प]गतीसु समोसरति, एवं चरित्ताचरित्ती य जोएयव्वा । उवसमिए वि भावे समोसरंति, उवसामगं पडुच्च, उपशममङ्गीकृत्य यदुक्तं भवति, अस्मिन्नेव भङ्गद्वये भवन्ति । खयोवसमिए वि भावे समोसरंति, अट्ठारस-विधे खयोवसमिए भावे, तद्यथा—ज्ञाना-ऽज्ञान-दर्शन-दानलब्ध्यादयश्चतुः-त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च । णाणं चउव्विहं—मति-सुत-ओधि-मणपज्जवाणि । अण्णाणं तिविधं—मतिअण्णाणं सुतअण्णाण विभंगणाणं । ज्ञाना-ऽज्ञानमित्यत्रा-ज्ञानमिति यदुक्तं तदेकभवाकर्षानङ्गीकृत्य, यद्वा सामान्येन, केवलिनो वा विदन्ति । दरिसणं तिविधं—चक्खु-अचक्खु-अवधिदं-सणमिति । लब्धिः पञ्चविधा—दाण-लाभ-भोगोपभोग-वीरियलद्धी इति । सम्मत्तं चरित्तं संयमासंयम इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिका भावा भवन्ति । णवविधे खाइगे भावे समोसरंति, तद्यथा—ज्ञान-दर्शन-[दान-]लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च । णाणं केवलणाणं, दंसणं केवलदंसणं, दाण-लाभ-[भोगोप]भोग-वीर्यमित्येतानि सम्यक्त्व-चारित्रे च नव क्षायिका भावा भवन्ति । पारिणामिगे वि अणातियपारिणामिगे भावे समोसरंति । एवं सण्णिवातिगे वि सण्णिकासो कायव्वो—द्विकादिचारणिका । अधवा भावसमोसरणं चतुव्विधं, तं जधा—किरियावादी १ अकिरियावादी २ अण्णाणियवादी ३ वेणइयवादी ४ ॥ २ ॥ ११० ॥

अत्थि त्ति किरियवादी वयंति १ णत्थि त्ति अकिरियवादी य २ ।
अण्णाणी अण्णाणं ३ विणइत्ता वेणइयवादी ४ ॥ ३ ॥ १११ ॥

अत्थि त्ति किरियवादी० गाधा । तत्थ किरियवादी अत्थि आयादि जाव सुचिण्णाणं कम्माणं सुचिण्णा फलवि-

---

१ समवसरणे वि छक्कं ख १ । समवसरणम्मि छक्कं ख २ पु २ ॥ २ जम्मि जावइयं ख १ ॥ ३ णेयव्वं पु २ ॥

वागा तधा वि ते मिच्छादिट्ठी चेव जैनं शासनं अनवगाढा १। तद्विधर्मवादिनो अकिरियावादिणो, तं जधा—णत्थि आतादि जाव णो सुचिण्णाणं कम्माणं सुचिण्णा फलविवागा भवंति २। अण्णाणीवादि त्ति किं णाणेण पढितेण? सीले उज्जमितव्वं, ज्ञानस्य हि अयमेव सारः, जं सीलसंवरः, सीलेन हि तपसा च स्वर्ग-मोक्षौ लभ्येते ३। वेणइयवादिणो भणंति—ण कस्स वि पासंडस्स गिहत्थस्स वा णिंदा कायव्वा, सव्वस्सेव विणीयविणयेण होतव्वं ४ ॥ ३ ॥ १११ ॥

असियसयं किरियाणं अकिरियाणं च होंति चुलसीती।
अण्णाणिय सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसा ॥ ४ ॥ ११२ ॥

असियसयं किरियाणं० गाधा। तं जधा—

"णत्थि ण णिच्चो ण कुणइ कतं ण वेदेइ णत्थि णेव्वाणं।" [सन्मति० का० ३ गा० ५४]

सङ्ख्या वैशेषिका ईश्वरकारणादि अकिरियावादी चउरासीति, तच्चिणिगादि क्षणभङ्गवादित्वात्तु **क्षणवादिनः। अण्णाणियवादीण सत्तट्ठी,** ते तु मृगचारिकाद्याः। **वेणइयवादीणं बत्तीसा दाणाम-पाणामा**दिप्रव्रज्यादि ॥ ४ ॥ ११२ ॥

*** तेसिं मताणुमतेणं पण्णवणा वण्णिता इहऽज्झयणे।**
सब्भावणिच्छयत्थं समोसरणमाहु तेणं ति ॥ ५ ॥ ११३ ॥

तेषां क्रिया-ज्ञानवादिनां यद् यस्य मतं यच्च यस्य न मतं तेषां समवायेन त्रीणि त्रिषष्टानि प्रावादुकशतानि भवन्ति। तद्यथा—

आस्तिकमतमात्माद्या नित्या-ऽनित्यात्मका नव हि सन्ति। काल-नियति-स्वभावेश्वरा-ऽऽत्मकृतितः स्व-परसंस्था १८० ॥१॥
[ ]

एवं असीतं किरियावादिसत। एएसु पदेसु णं चिंतितं—

जीव अजीवा आसव बंधो पुण्णं तहेव पावं ति। संवर णिज्जर मोक्खो सब्भूतपदा णव हवंति ॥ १ ॥

इमो सो चारणोवाओ—अत्थि जीवः स्वतो नित्यः कालतः १ अत्थि जीवो सतो अणिच्चो कालतो २ अत्थि जीवो परतो निच्चो कालओ ३ अत्थि जीवो परतो अणिच्चो कालओ एक्कं, अत्थि जीवो सतो णिच्चो णियतितो १ एवं णियतितो एक्क, स्वभावतो एक्क, [ईश्वरतो एक्क], आत्मतः एक्क, एते पंच चउक्का वीस २०। एवं अजीवादिसु वि वीसावीसामेत्ताओ, णव वीसाओ आसीतं किरियावादिसतं १८० भवति। इदाणिं **अकिरियावादी—**

काल-यदृच्छा-नियति-स्वभावेश्वरा-ऽऽत्मतश्चतुरशीतिः। **नास्तिकवादिगणमतं** न सन्ति सप्त स्व-परसंस्थाः ८ एक्के ॥१॥
[ ]

इमेणोपायेन—णत्थि जीवो सतो कालओ १ णत्थि जीवो परतो कालतो २ एवं यदृच्छाए वि दो २ णियतीए वि दो २ इस्सरतो वि दो २ स्वभावतो वि दो २, [आत्मतो वि दो २,] सव्वे वि बारस, जीवादिसु सत्तसु गुणिता चतुरासीति भवंति ८४। इदाणिं **अण्णाणिय०—**

अज्ञानिकवादिमतं नव जीवादीन् सदादिसप्तविधान्। भावोत्पत्तिः सदसद्-द्वैता-ऽवाच्यं च को वेत्ति? ६७ ॥ १ ॥
[ ]

इमे दिट्ठिविधाणा—सन् जीवः को वेत्ति? किं वा [तेण] णातेण? १ असन् जीवः को वेत्ति? किं वा तेण णातेण? २ सदसन् जीवः को वेत्ति? किं वा तेण णातेण? ३ अवचनीयो जीवः को वेत्ति? किं वा तेण णातेण? एक्क, एवं सदवचनीयः ५ असदवचनीयः ६ सदसदवचनीयः जीवे वि ७, एवं अजीवे वि ७ आश्रवे वि ७ बंधे वि ७ पुण्णे वि ७ पावे वि ७ सवरे वि ७ णिज्जराए वि ७ मोक्खे वि ७। एवमेते सत्त णवगा तिसट्ठी ६३ इमेहिं संजुत्ता सत्तसट्ठी ६७

---

१ अकिरियवाईण होइ ख १॥ २ अण्णाणी सत्तट्ठिं पु २॥ ३ बत्तीसं ख १॥ ४ तु ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ५ ८ एक्क चतुरशीतिरित्यर्थः ॥

हवंति, तं जधा—सती भावोत्पत्तिः को वेत्ति ? किं वा ताए णाताए ? १ असती भावोत्पत्ति. को वेत्ति ? किं वा ताए णाताए ? २ सदसती भावोत्पत्तिः को वेत्ति ? किं वा ताए णाताए ? ३ अवचनीया भावोत्पत्तिः को वेत्ति ? किं वा ताए णाताए ? ४ । उक्ता अज्ञानिकाः । इदाणिं **वैनयिकाः**—

वैनयिकमतं विनयश्चेतो-वाक्-काय-दानतः कार्यं । सुर-नृपति-यति-ज्ञातृ-स्थविरा-ऽवम-मातृ-पितृषु सदा ॥ १ ॥

[ ]

सुराणां विनयः कायव्वो, तं जधा—मणेणं १ वायाए २ काएणं ३ दाणेणं ४, एवं रायाणं ट्ठ जतीणं ट्ठ णातीणं ट्ठ थेराणं ट्ठ किवणाणं ट्ठ मातुः ट्ठ पितुः ट्ठ, एवमेते अट्ठ चउक्का बत्तीसं ३२ । सव्वे वि मेलिया तिण्णि तिसट्ठा ३६३ पावादिगसता भवंति । एतेसिं भगवता गणधरेधि य सब्भावतो निश्चयार्थं इहाध्ययनेऽपदिश्यते, अत एवाध्ययनं **समवसरण**मित्यपदिश्यते ॥ ५ ॥ ११३ ॥ एते पुण तिण्णि तिसट्ठा पावादिगसता इमेसु दोसु ठाणेसु समोसराविज्जंति, तं जधा—सम्मावादे य मिच्छावादे य । तत्थ गाधा—

सम्मदिट्ठी किरियावादी मिच्छा य सेसगा वाती ।
चइऊण मिच्छवायं सेवह वायं इमं सच्चं ॥ ६ ॥ ११४ ॥

॥ समोसरणं सम्मत्तं ॥ १२ ॥

सम्मदिट्ठी किरियावादी० गाधा । तत्र क्रियावादित्वेऽपि सति **सम्मदिट्ठिणो** चेव एगे सम्मावादी, **अवसेसा** चत्तारि वि समोसरणा **मिच्छावादिणो** अण्णाणी अवि त परस्परविरुद्धदृष्टय., तेण मोत्तूण अकिरियावादं संवादं वादं लद्धूण विरतिं च अप्पमादो कायव्वो जधा कुदंसणेहिं ण छलिज्जसि । तेण धम्मे भावसमाधीए भावमग्गे य घडितव्वमिति ॥ ६ ॥ ११४ ॥ णामणिप्फण्णो णिक्खेवो गतो । सुत्ताणुगमे सुत्तं । अभिसंबंधो अज्झयणं अज्झयणेण—तेण णिव्वुडेण पसत्थभावमग्गो आमरणंताए अणुवालेतव्वो, ससंगे अप्पा भावेतव्वो, कुमग्गासिता य जाणिउं पडिहणंतव्वा, अतो चत्तारि समोसरणाणि । अधवा णामणिप्फण्णे वुत्ता समोसरणा ते इमे त्ति—

५३४. चत्तारि समोसरणाणिमाणि, पावादुया जाइं पुढो वदंति ।
किरियं अकिरियं विणयं ति ततियं, अण्णाणमाहंसु चउत्थमेव ॥ १ ॥

५३४. चत्तारि समोसरणाणि० सिलोगो (वृत्तम्) । **चत्तारि** त्ति संखा, पंचादिपडिसेधत्थं अंते चतुण्ह गमणं । समवसरंति जेसु दरिसणाणि दिट्ठीओ वा ताणि **समोसरणाणि** । इमानीति वक्ष्यमाणानि । प्रवदन्तीति **प्रावादिकाः** । पिधं पिधं वदवि **पुढो वदंति** । तं जधा—**किरियं [अकिरियं] विणयं [ति ततियं] अण्णाणमाहंसु चउत्थमेव** । तत्थ **किरियावादीणं** अत्थि जीवो, अत्थित्ते सति केसिंच सव्वगतो केसिंच असव्वगतो, केसिंच मुत्तो केसिंच अमुत्तो, केसिंच अंगुट्ठप्पमाणमात्रः केसिंच श्यामाकतन्दुलमात्रः, केसिंच हिययाधिट्ठाणो पदीवसिहोवमो, किरियावादी कम्मं कम्मफलं च अत्थि त्ति भणति १ । **अकिरियावादीणं** कत्ता णत्थि फलं त्वस्ति, केसिंच फलमवि णत्थि, ते तु जधा **पंचमहाभूतिया चतुब्भूतिया खंधमेत्तिया सुण्णवादिणो लोगायतिगा** इच्चादि **अकिरियावादिणो** २ । **अण्णाणिया** भणंति—जे किर णरए जाणति ते चेव तत्थुववज्जति, किं णाणेण तवेण व ? त्ति, ते तु **मिगचारियादयो** अडवीए पुप्फ-फलभक्खिणो अंबादि अण्णाणिया ३ । **वेणइया** तु आणाम-पाणामादीया कुपासंडा ४ ॥ १ ॥ तत्थ पुव्वं—

---

१ °ज्ञाति° वृत्तौ ॥ २ ट्ठ इति चतु सङ्ख्याज्ञापकोऽक्षराङ्क ॥ ३ गणधरैश्च ॥ ४ सिद्धा य ख १ ॥ ५ जहिऊण ख २ पु २ ॥ ६ सम्मादिट्ठी वादी वा० मो० ॥ ७ अपि च इत्यर्थ । अविरतपर° पु० स० वा० ॥ ८ संवाद ल° स० वा० मो० ॥ ९ संसग्गो अप्पमावे° चूसप्र० ॥ १० जाई ख २ ॥ ११ °यं च अ° पु १ ॥ १२ विणइ त्ति खं २ पु १ पु २ ॥ १३ अचादि अत्यागिन इत्यर्थ ॥

५३५. अण्णाणिया[1] ताव कुसला वि संता, असंथुता[2] णो वितिगिंछ[3]तिण्णा ।
अकोविता आहु [4]अकोवितेहिं, अणाणुवीयि[5] त्ति मुसं वदंति ॥ २ ॥

५३५. अण्णाणिया ताव कुसला वि संता० वृत्तम् । अकुशला एव धम्मोत्रायस्स । असंथुता णाम ण लोइय-परिक्खगाण सम्मता सव्वसत्थबाहिरा मुक्का । वितिगिंछतिण्ण त्ति वितिगिंछा णामा मीमंसा तिण्ण त्ति तीर्णाः, णत्थि त्ति तेसिं वितिगिंछा अण्णाणित्तणेणं । अथवा ससमए वि तात्र केसिंचि वितिगिंछा उप्पज्जति, किं तर्हि परसमये ?, त कतरेण उवदेसेण करेस्संति विचिकित्साऽभावं ? । जो वि तेसिं तित्थगरो तस्स वि ण सुत्तं ण अत्थविचारणा, अध अत्थि समयहाणी, त एवं अकोविता, [6] त सयं अकोविदा अकोविदानामेव कथयन्ति, को हि णाम विपश्चित् तान् अब्रवीत् ? जधा अण्णाणमेव सेयं अवद्धग च, अणाणुवीय त्ति अपूर्वापरतो विचिन्त्य यत् किञ्चिदेवासर्वज्ञप्रतीतत्वाद् बालवद् मुसं वदंति । शाक्या अपि प्रायशः अज्ञानिकाः, येषामविज्ञानोपचितं कर्म नास्ति, जेसिं च बाल-मत्त-सुत्ता अकम्मबद्धगा, ते सव्व एव अण्णाणिया । सत्थधम्मता सा तेसिं जध चेव ठितेल्लगा तध चेव उवदिसंति, जधा–अण्णाणेण बंधो णत्थि, तह चेव ताणि सत्थाणि णिवद्धाणि ॥ २ ॥

५३६. सच्चं[7] मोसं इति चिंतयंता, असाधु साधुं ति उदाहरंति[8] ।
जेमे जणा वेणइया अणेगे, पुट्ठा वि भावं विणयिंसु[9] णामा ॥ ३ ॥

५३६. सच्चं मोसं इति चिंतयंता असाधु साधुं ति उदाहरंति[10]० [वृत्तम्] । 'सच्चं पि कताइं मोसं होज्ज' त्ति एवं ते चिंतयंता सच्चं पि ण भणंति । कथम् ?, साधुं दट्ठूण ण साधु त्ति भणंति, कताइ सो साधू होज्ज कताइ असाधू कताइ चउव्विओ कताइ पावंचितो, चोरो वा कदाचिदचोरः स्यात् कदाचिच्चोरः, एवं स्त्री-पुरुषेष्वपि वैक्रियैः[11] स्याद् वेसकरणे योजइतव्वं, गवादिषु च यथासम्भवं स्थाणु-पुरुषादिषु चेति । एव सर्वाभिशङ्कित्वात् तदसाधुदर्शनं साध्विति ब्रुवते साधुदर्शनं चासाध्विति । अथवा—"सच्चं मुसं ति (? असच्चं) इति भासयंता" जो जिणप्पणीतो मग्गो समाधिमग्गो तमेते अण्णाणिया सच्चमपि संतं असच्चं ति भणंति, अथवा सच्चो संयमो त सत्तदसप्पगारमवि असच्चं भणति, असंजममित्यर्थः । जधा ते किल भणंति तहा सच्चं भणंति, [12]अणुवातो सच्च, तं च कुदंसणमण्णाणवादं असाधुं पि साधुं ति भणंति, असाधू अ अण्णाणिया साधु त्ति भणति, तच्छासनप्रतिपन्नाश्च असाधूनपि साधून् ब्रुवते । वुत्ता अण्णाणिया । इदाणीं वेणइयवादी— "[13]जेमे जणा वेणइया अणेगे, पुट्ठा वि भावं विणयिंसु[14] णामा, जे त्ति अणिद्दिट्ठणिद्देसो, जना इति पृथग्जनाः, विनये नियुक्ताः वैनयिकाः, अणेगे इति बत्तीस वेणइयवादिभेदा, ते पुट्ठा परेण अपिशब्दाद् [15]अपुट्ठा वि विणयिंसु भावं ति, भावो नाम यथार्थोपलम्भः, तमपि यथार्थोपलम्भं विणयिंसु तथा वा स्याद् अन्यथा वा, एवं तावत् तेषां सत्यं भविष्यति । अथवा पुट्ठा वा 'कीदृशो वो धर्मः ?' इत्युक्ता ब्रुवते—सर्वथा परिगण्यमानः परीक्ष्यमाणः मीमांस्यमानो वा अयमस्माकं धर्मः विणयमूलेण गोगोरुहयधम्मेगेण जणो णाधियो(?) । कहं ? जेण वयमवि विणयमूलमेव धम्मं पण्णवेमो, कथम् ? [इति] चेत्, येन वयं सर्वाविरोधिनः सर्वा(र्वे)विनयविनीताः मित्रा-ऽरिसमाः सर्वप्रव्रजितानां सर्वदेवानां [16]च प्रणामं कुर्म्मः । न च यथाऽन्ये वादिनः परस्परविरुद्धास्तथा वयमपि—अम्हं पुण पव्वइये समाणे, जं जधा पासति इंदं वा खंदं वा जाव उच्च पासति उच्चं पणामं करेति, णीयं पासति णीयं पणाम करेति । उच्च इति स्थानतः ऐश्वर्यतः, तमुच्चं रायाणं अण्णतरं वा इस्सरं दट्ठूणं प्रणाममात्रं कुर्म्मः, णीयस्स तु साणस्स वा पाणस्स वा णीयं पणामं करेति, भूमितलगतेण सिरसा प्रह्वाः प्रणामम् ॥ ३ ॥ अहो ! त एवं बालिशाः—

---

१ °णिता ता कु° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ असंकया पु १ ॥ ३ °गिच्छ° ख २ ॥ ४ अकोवियाए, अ° ख १ । अकोविएते, अ° ख २ पु १ पु २ ॥ ५ °वीयीति मु° खं २ पु १ । °वीईइ मु° पु २ ॥ ६ ण नं खयं चूसप्र० ॥ ७ सच्चं असच्चं इति चिंतयंता ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सच्चं असच्चं इति भासयंता चूपा० ॥ ८ °हरंता ख १ पु २ ॥ ९ विणइंसु णाम ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । विणयं सुणेमो पुचू० ॥ १० °हरंता स० वा० मो० ॥ ११ °यस्त्वात् चूसप्र० ॥ १२ अनुपाय असाधनमित्यर्थं ॥ १३ जे इमे वे° पु० ॥ १४ विणयं सुणेमो, जे पु० ॥ १५ अवुद्धा वि चूसप्र० ॥ १६ पुण्यसंकुर्मः चूसप्र० ॥

५३७. अणोपसंखा इति ते उदाहु[1], अट्ठेस ओभासति अम्ह ऐवं[2]।
लवावसक्की य अणागतेहिं, णो किरियमाहंसु अकिरियआता ॥ ४ ॥

५३७. अणोपसंखा इति ते उदाहु० वृत्तम्। संखा इति णाणं, संखाए समीवे उपसखा, ण उपसंखा अणोपसंखा, अज्ञाना इत्यर्थः, अनोपसख्यया त एवमाहुः। उदाहरंति स्म उदाहुः। अट्ठेस ओभासति, अर्थो नाम सत्यवचनार्थः, ओभासति उज्जोवेति प्रभासति, एवं चेतसि नः प्रकाशयतीत्यर्थः, एवं च समीक्ष्यमाणं सत्यवचनं स्यात्, अन्यथा तु तथा चान्यथा च भवति। अथवा "अट्ठेस नो भासति" त्ति, अर्थो नाम धर्मार्थः एवं चेतसि नः प्रभासति, एवं च प्रकाशयति, एवं च दृश्यते युज्यमानः, आर्हद्धर्मेण किलावभासते, ण तु सेसेहिं अण्णाणिय-किरियवादीहिं घडते। कहं?, जेणं ते जात्यादिराग-द्वेषाभिभूता तेण तुल्लोऽवभासति। भणिता वेणइया। इदाणिं अकिरियवादीदरिसणं–लवावसक्की य अणागतेहिं, लवमिति कर्म, वय हि लवात्–कर्मबन्धात् अवसक्कामो फिट्टामो अवसराम इत्यर्थः, संववहारबंधेणावि ण बज्झामो, किं पुण णिच्छयतो?। उपचारमात्रं तु तद्यथा—

बद्धा मुक्ताश्च कथ्यन्ते मुष्टिग्रन्थिकपोतकाः। न चान्ये द्रव्यतः सन्ति मुष्टिग्रन्थिकपोतकाः ॥ १ ॥

[ ]

ते हि वातूलिकाः शाक्यादयः आत्मानमेव नेच्छन्ति, किं पुनस्तद्बन्धम्? इति। अणागते त्ति कालग्रहणाद् अनागतेऽपि काले न बध्यन्ते। चग्रहणाच्चातिक्रान्त-वर्त्तमानयोः। अथवा अवसक्कि त्ति क्षण-लव-मुहूर्त्त-अहोरात्र-पक्ष-मास-र्त्वयन-संवत्सरादिलक्षणे काले सर्वत्र कर्मबन्धादवशक्नुमः। लवः कालः, वर्त्तमानादवसक्कामो, एवमनागतादपि एतद्दर्शनः मिच्छत्तकिरियमाहंसु आख्यातवन्तः। के ते? अकिरियओ आता जेसिं ते इमे अकिरियाता, ते नापि कारकमिच्छन्ति नापि करणानि। येषामपि करणानि कर्तॄणि आत्मा कर्त्ता तेऽपि अक्रियावादिनः। उक्तं हि—

कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं?, विचित्रभावं मृगपक्षिणां वा?।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं, न कामचारः स्ववशो हि लोकः ॥ १ ॥

[ ]

तेषामुत्तरम्—

गन्त्वा च नास्ति कश्चिद् गतयः षड् बुद्धशासनप्रोक्ताः। गम्यत इति च गतिः स्यात् श्रुतिः कथ शोभना बद्धी? ॥ १ ॥

[ ]

क्रिया कर्मफलं न चास्ति, असति कारके कुतः कर्म? कथं च षड् गतयः? अन्तराभावो वा? यथाऽस्माकं "विग्रहगतौ कर्मयोगः" [तत्त्वार्थ० अ० २ सू० २६] एव तेषामपि अन्तराभावः, एवं ते पुट्ठा वा अपुट्ठा वा सम्मिस्सभावं ब्रुवते अबन्ध्यानि च कर्माणि पण्णवेंति। एवं जातकशतान्यपदिशन्ति बुद्धस्य तानि शून्यत्वे न युज्यन्ते। तथा—

माता-पितरौ हत्वा बुद्धशरीरे च रुधिरमुत्पाद्य। अर्हद्वधं[6] च कृत्वा स्तूपं भित्त्वा च पञ्चैते ॥ १ ॥

आवीचिं नरकं यान्ति [ ]

एतच्च न युज्यते, जाति-जरा-मरणानि च न स्युः, उत्तमा-ऽधम-मध्यमत्वं न स्यात्, मनुष्य-तिर्यग्योनीनां स्वयमेव कर्मविपाको जीवस्य कर्तृत्वं कर्मबन्धं च कथयति। चौरादीनां च कर्मणामिहैव विपाकं दृष्ट्वा सामान्यतोदृष्टेनानुमानेनानुमीयते कृत कर्त्ताऽयमात्मा, येनास्य गर्भगतस्यैव व्याधयः प्रादुर्भवन्ति मृत्युश्च ॥ ४ ॥

---

१ °हु ख १॥ २ अट्ठे स ओभासति वृ० दी०। अट्ठेस नो भासति चूपा०॥ ३ तेवं ख २। तेवा पु १॥ ४ °वसंकी य ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ५ °यवादी ख २ पु १ पु २॥ ६ अर्हद्वधं वृत्तौ।

५३८. सम्मिस्सभावं च गिरा गिहीते, ते मुम्मुई होंति अणाणुवादी ।
इमं दुपक्खं इममेगपक्खं, आहंसु छलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥

५३८. [सम्मिस्सभावं० वृत्तम्] । तथा च सामान्यतोदृष्टेनानुमानेन **सम्मिश्रभावो** नाम अस्तित्वमपि प्रतिपद्यमानाः अस्तित्व-[नास्तित्व]मेव दर्शयन्ति, तमेव **सम्मिश्रभावं** यया **गिरया गृह्यन्ते**, निगृह्यन्त इत्यर्थः, उम्मत्तवादं वदंति, तद्यथा—क्वचिदुन्मत्तः स्वाभाविकं ब्रवीति चेष्टते वा कचिदन्यथा, अन्धो वाऽज्ञातं व्रजन् क्वचित् पथा गच्छति, एवं तेऽपि—

गन्धर्वनगरतुल्याः मायास्वप्नोपपातधनसदृशाः । मृगतृष्णानिद्रादानप्रवर्त्तितालातचक्रसमाः ॥ १ ॥

[ ]

एवमपि निःस्वभावान् भावानुक्त्वा पश्चाज्जातिस्मरणानि जातकानि रत्नाश्रयं निर्वाणं च प्रतिपद्यन्ते । एवं ते **सम्मिश्रभाववादिनः** मिथ्यादर्शनान्धकाराः जातकेनैतस्यां गिरि गृहीताः—'यदि शून्यं कथं जातकानि ? कथं स्मरणम् ? कथं शून्यता ? । किञ्च—

यदि शून्यस्तव पक्षो मत्पक्षनिवारकः कथं भवति ? । अथ मन्यसे न शून्यस्तथापि मत्पक्ष एवासौ ॥ १

[ ]

अस्तित्वात् तस्य । किञ्च—'केन शून्यता देशिता ? किमर्थो देशिता ? स्यान्निष्प्रयोजना शून्यता' इत्यादिभिः कर्कशहेतुभिश्चोदिता पच्छाघरघरियाए आहतियाए एलमूगो वा मम्मणमूगो वा जधा **मुम्मुएंति, ण** एक्कं अणेक्कं वा पक्खं **अणुवदंति,** अस्ति नास्ति वा, यद्यप्यष्टौ व्याकरणानि पठन्ति । ते पुण **अकिरियावादिणो** दुविधं धम्मं पण्णवेंति, तं जधा—**इमं दुपक्खं इमं एगपक्खं** तावत्, अविज्ञानोपचितं १ परिज्ञोपचितं २ ईर्यापथं ३ स्वप्नान्तिकं ४ च चतुर्विधं कर्म चयं न गच्छति, एतद्धि एकपाक्षिकमेव कर्म भवति, का तर्हि भावना ?, क्रियामात्रमेव, न तु चयोऽस्ति, वन्धं प्रतीत्याविकल्प इत्यर्थः, एगपक्खियं दुपक्खियं तु, यदि सत्त्वश्च भवति सत्त्वसंज्ञा च सञ्चित्य जीविताद् व्यपरोपण प्राणातिपातः, एतद् इह च परत्र चानुभूयते इत्यतो दुपक्खिकं, यथा चौरादयः इह पुष्फमात्रमनुभूय शेषं नरकादिष्वनुभवन्ति । किञ्च—**आहंसु छलायतणं च कम्मं,** षडायतनमिति षड् आयतनानि यस्य तदिदं आश्रवद्वारमित्यर्थः, तद्यथा—श्रोत्रायतनं यावन्मनआयतनम् ॥ ५ ॥

५३९. ते एवमक्खंति अबुज्झमाणा, विरूवरूवाणिह अकिरियाता ।
जंमादितित्ता बहवो मणुस्सा, भमंति संसारमणोवदग्गं ॥ ६ ॥

५३९. **ते एवमक्खंति०** वृत्तम् । अक्रिया **अण्णाणि**आ य सब्भावं **अबुज्झमाणा** इह मिच्छत्तपडलोच्छण्णा अप्पाणं वा परं वा तदुभय वा वुग्गाहेमाणा **विरूवरूवाणि** दरिसणाणि, कथम् ?

दानेन महाभोगाश्च देहिना सुरगतिश्च शीलेन । भावनया च विमुक्तिः [तपसा सर्वाणि सिध्यन्ति ॥ १ ॥

इत्यादि । [ ]

किञ्च—यश्च वेदान्तेशुके ब्राह्मणे दद्यात्, यो वा विहारं कारयति, किञ्च—एगपुप्फप्पदाणेण असीतिकल्पकोटयः सुखिनस्तिष्ठन्ति, एवमकिरिओ आता जेसिं ते होंति **अकिरियाता । जमादितित्ता बहवो मणुस्सा,** यमित्यनिर्दिष्टस्य निर्देशः, आदिइत्ता गृहीत्वा, स्वयं अन्यांश्च ग्राहयित्वा अणादीयं **अणवदग्गं संसारं भमंति** ॥ ६ ॥

---

१ °भावं सगिरा गिहीते, से मुम्मुई होंति खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । °भावं च गिरा ख १ ॥ २ मृगतृष्णा-नीहाराम्बुचन्द्रिका-ऽलातचक्रसमाः वृत्तौ पाठ ॥ ३ °दान् पमार्त्तितालान्वच° स० वा० मो० ॥ ४ निश्वाभा° स० वा० मो० ॥ ५ एक्कं एक्क वा चूसप्र० ॥ ६ अविज्ञोपचितं वृत्तौ ॥ ७ त एव खं १ खं २ पु १ पु २ ॥ ८ °वाणि अ° ख १ वृ० दी० ॥ ९ °रिताया ख १ । °रियवाई ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० जमायइत्ता बहवे मणूसा ख १ । जमादिदित्ता बहवो मणूसा ख २ ॥ ११ °वतग्गं खं १ खं २ पु १ ॥ १२ °न्तश्चके स० वा० मो० ॥

किञ्चान्यत्—यदि सर्वमक्रियं तेन कथमादित्यः उत्तिष्ठति ? अस्तं वा गच्छति ?, कथं वा चन्द्रमा वर्द्धते हीयते च ?, न वा सरितः स्यन्देरन्, न वा वायवो वायेयुः, सर्वसंव्यवहारोच्छेदः स्यात्। एवमुक्ताः ब्रुवते—

५४०. णाऽऽतिच्चो उट्ठेति ण अत्थमेइ, ण चंदिमा वड्ढति हायती वा।
सरितो ण संदंति ण वंति वायवो, वंझो नितिओ कसिणो हु लोओ ॥ ७ ॥

५४०. णाऽऽतिच्चो उट्ठेति ण अत्थमेइ० त्ति वृत्तम्। आदित्य एव नास्ति, कुतस्तर्हि तदुत्थानमस्तमनं वा ?, मृगतृष्णिकासदृशं तु एतदिति लोहितमर्कमण्डलमवभासते। एवं चन्द्रमाऽपि नास्ति, कुतस्तर्हि तद्वृद्धि-ह्रासोत्थाना-ऽस्तमनानि ?। किञ्च—सघातो मरीची उट्ठेति, उट्ठोणा (? उट्ठित्ता) से णं इमं लोगं तिरियं करेति, करेत्ता से णं इमं लोगं उज्जोवेति पभासति। सरितोऽपि ण संदंति (सन्ति) न च वायवः, ततः कथं सन्दिष्यन्ते वास्यन्ति वा ?। स्याद् बुद्धिः—उत्तिष्ठन्नादित्यो दृश्यते अस्तं च गच्छन्, येन पूर्वस्यां दिशि दृष्टः अपरस्यां दिशि दृश्यते तेन क्रियावान्, देवदत्तस्य हि गतिपूर्विकां देशान्तरप्राप्तिं दृष्ट्वा चन्द्रा-ऽऽदित्यावनुमीयेते, सरितश्च स्यन्दमाना दृश्यन्ते, वायवश्च वृक्षाग्रकम्पादिभिरनुमीयन्ते क्रियावन्त इति, तच्चासत्, कथम् ?

गतं न गम्यते तावद् अगतं नैव गम्यते। गता-ऽऽगतविनिर्मुक्तं गम्यमानं न गम्यते ॥ १ ॥

[ ]

एवमयं **वन्ध्यो** लोकः, **वन्ध्यो** नाम शून्यः, अथवा वन्ध्यावद् अप्रसवत्वाद् **वन्ध्यः**। **लोकायतानां** हि न मृतः पुनरुत्पद्यते, एतावानेष परमात्मा। त एवं दर्शन भावयन्ति—गलागर्त्तमपि कुर्वाणा नोद्विजन्ते, मातरं भगिनीं वा गत्वा नानुतप्यन्ते, येषां वन्धाभाव एव ते कथं पापेभ्यो निवर्त्स्यन्ते ? निर्वृतिमूलं वा धर्मं देक्ष्यन्ते ?। एवं **शाक्या** अपि एवं वन्ध्याः। **नितिओ** णाम नित्यकालमेव शून्यः, शून्यं वा न चोच्छिद्यते। **कसिणो** णाम गृह-नगर-पर्वत-द्विपद-चतुष्पदादिसर्वो वन्ध्यः। त एवं विद्यमानमपि लोकं न पश्यन्ति ॥ ७ ॥ दृष्टान्तः—

५४१. जधा य अंधे सह जोतिणा वि, रूवाणि णो पस्सति हीणणेत्ते।
संतं तु ते एवंमकिरियआता, किरियं ण पस्संति णिरुद्धपण्णा ॥ ८ ॥

५४१. जधा य अंधे सह जोतिणा वि० वृत्तम्। यथेति येन प्रकारेण[अन्धः] ज्योतयतीति **ज्योतिः** आदित्यश्चन्द्रमाः मणिज्योतिः प्रदीपो वा, ज्योतिना सह **सह जोतिणा वि रूवाणि** घडादीणि **न पश्यति,** अग्रतोऽपि वर्त्तमानानि स्पर्शन्नपि न तेषां वर्णादिविशेषं पश्यति। नयतीति नेत्रम्, हीने यस्य नेत्रे स भवति **हीननेत्रः,** उद्धृते उपहृते वा। **संतं तु ते एवं अकिरियाता,** संतमिति विद्यमानम्, तुः पूरणे, अकिरियावातिणो **अकिरियाता** मिच्छत्तोदयान्धकाराज्जीवादीन् पदार्थान् न जानन्ति। अथवा **किरियं न पस्संति** त्ति क्रियावतां द्रव्याणां आगमन-गमनाद्याः क्रियाः पश्यन्तोऽपि **न** पश्यन्ति, स्वयं च क्रियासु वर्त्तते अन्धवत्, न चैताः न पश्यन्ति, निरुद्धा येषां प्रज्ञा ते भवन्ति **निरुद्धपन्ना** णाणावरणोदयेण, अथवा ते वराकाः कथं ज्ञास्यन्ति ये आगमज्ञानपरोक्षा एव ? जे पुण अनिरुद्धपन्ना ते प्रत्यक्षेण वा आगमेन परोक्षेण जीवादीन् पदार्थान् यथावज्जानन्ति। तत्रावधि-मनःपर्याय-केवलानि प्रत्यक्षम्, मति-श्रुते परोक्षम्। प्रत्यक्षज्ञानिनस्तावज्जीवादीन् पदार्थान् करतलामलकवत् पश्यन्ति, समत्तसुतणाणिणो वि लक्षणेण, अट्ठंगमहानिमित्तपारगा वि साधवो जाणंति णिमित्तेण ॥ ८ ॥ तं पुण णिमित्तं—

---

१ **णाऽऽइच्चो** ख १ खं २ पु १। **नाऽऽयच्चो** २॥ २ **उपति** ख १। **उदेइ** ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ३ **सलिला ण संदंति ण वंति वाया, वंझो** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ४ **वंझे णियते कसिणे हु लोते** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। **घंझे हु एते** ख २। **वंझे य णियते** पु २॥ ५ **हि** पु २ वृ० दी०॥ ६ **रूवाति** ख १। **रूवाइं** ख २ पु १ पु २॥ ७ **पासति** ख १ पु २॥ ८ **पि** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ९ **°च अकि°** ख २ पु १ पु २॥ १० **°यचाई** खं १ पु १ पु २ वृ० दी०॥

५४२. संवच्छरं सुमिणं लक्खणं च, णिमित्त देहं च उप्पाइयं च ।
अट्ठंगमेतं बहवे अधिज्जिता, लोगंम्मि[1] जाणंति अणागताइं[2] ॥ ९ ॥

५४२. संवच्छरं सुमिणं लक्खणं च० वृत्तम् । संवत्सर-निमित्ते इमे एगट्ठिया, तं०—संवत्सरे ति वा अंतरिक्खे ति वा जोतिसे ति वा । **सुमिणं** सुविणज्झाया व, **लक्खणं** सारीरं । एतेण चेव सेसयाइं पि सूइताइं, तं जधा—भोमं १ उप्पातं २ सुमिणं ३ अंतरिक्खं ४ अंगं ५ सरं ६ लक्खण ७ वंजणं ८, णवमस्स पुव्वस्स ततियातो **आयार**वत्थूतो एतं णीणितं । **एतं बहवे अधिज्जिता,** एयं अट्ठंगणिमित्तं बहवे समणा अधिज्जिता, ण सव्वे, **लोगम्मि जाणंति अणागताइं,** अतिक्रान्त-वर्त्तमानानि च केवलिवद् वाकरेति । [अथवा—] **"तधागताणि"**[3] त्ति तथाभूताणि, यथावस्थितानीत्यर्थः ॥ ९ ॥

अङ्गवर्जानां अनुष्टुभेन च्छन्दसा अर्द्धत्रयोदश शतानि [सूत्रम्], एव तावदेव शतसहस्राणि **परिपाटीका** । अङ्गस्य तु अर्द्धत्रयोदश सहस्राणि **सूत्रम्,** तावदेव शतसहस्राणि **वृत्तिः,** अपरिमितं **वार्तिकम्** । एवं निमित्तमप्यधीत्य न सर्वे तुल्याः, परस्परतः पट्स्थानपतिताः, चोद्दसपुव्वी वि छट्ठाणपडिता, एवं आयारधरादी वि छट्ठाणवडिआ । यतश्चैव तेनापदिश्यन्ते—

५४३. केयी णिमित्ता तधिया भवंति, केसिंचि तं[4] विप्पडिएंति णाणं ।
ते विज्जभासं[5] अणधिज्जमाणा[6], आहंसु विज्जापलिमोक्खमेव ॥ १० ॥

५४३. केयी निमित्ता तधिया भवंति० वृत्तम् । केचिदिति न सर्वे, अभिन्नदसपुव्विणो हेट्ठेण एतं अट्ठगं पि महाणिमित्त अधीतुं गुणितुं वा, अधित एमेव केचित् परिणामयति, ते पडुच्चेति **णिमित्ता तधिया भवंति,** केति पुण बुद्धिवैकल्याद् विशुद्धणेमित्तिकेहिंतो छण्ह ठाणाणं अण्णतरं ठाणं परिहीणा अविसुद्धखयोवसमा **विप्पडिएंति** णाणं विपर्यासेन एति **विप्पडिएंति,** "इक् स्मरणे, इङ् अध्ययने, इण् गतौ" एषां त्रयाणामपि इक्-इङ्-इणां परिपूर्वाणां अत्प्रत्ययान्तानां विपर्यय इँति रूपं भवति, विपर्ययेण एंति **विप्पडिएंति,** कोऽर्थः ? विपर्ययज्ञानं भवति, असम्यगुपलब्धिरित्यर्थः, [?र्सपरि-भवमप्यङ्गमित्यर्थः, ?][7] सपरिभाषमप्यङ्गमधीत्य । **अब्भपडलदिट्ठंतेण**—यथा श्लक्ष्णाभ्रपटले कश्चिद् वेत्ति एकमेवेदं अभ्रपटलं यावत् तत्रान्यदप्यस्ति सूक्ष्ममिति नोपलभ्यते, संजता वि केइ विप्पडिएन्ति णाणं, किमंग पुण अण्णउत्थिया **दगसोयरिया तच्चिणिगादयो** ? । **ते विज्जभासं अणधिज्जमाणा, अणधिज्जमाण** त्ति अधीतेन निमित्तेण दुरधीतेन वितथं दृष्ट्वा निमित्त वदंति—णिमित्तमेव णत्थि । तद्यथा—कचित् क्षुते त्वरितत्वात् शङ्कित एव गतः, तस्य चान्यः शुभः शकुन उत्थितः येनास्य तत् क्षुतं प्रतिहतम्, स च तेन शकुनेनोपलक्षितः सन् मन्यते—व्यलीकमेव निमित्तम्, येनाशकुनेऽपि सिद्धिर्जाता इति । एवं शोभनमपि शकुनमन्येनाशोभनेनाप्रतिहतमनुबुद्ध्यमानः कार्यसिद्धिनिमित्तमेव नास्तीति मन्यते अपरिणामयन् । [**अहवा**—] **"विज्जाहरिसे"**[8] णाम यथार्थोपलम्भः, विद्यया स्पृश्यते विद्यया प्राप्यते, विद्यया गृह्यत इत्यर्थः । त एवं वराकाश्चक्षुर्ग्राह्यमपि णिमित्तमपरिणामयन्तः **आहंसु विज्जापलिमोक्खमेव,** निमित्तविद्यापरिमोक्षम्, एवं हि कर्तव्यम्, नाधीतव्यानि निमित्तशास्त्राणीत्यर्थः, किञ्चित् तथा किञ्चिदन्यथेति कृत्वा मा भून्मृषावादप्रसङ्गः । बुद्धः किल शिष्याणामाहूयोक्तवान्—द्वादश वर्षाणि दुर्भिक्षं भविष्यति तेन देशान्तराणि गच्छत, ते प्रस्थितास्तेन प्रतिषिद्धाः, सुभिक्षमिदानीं भविष्यति, कथम् ?, अद्यैवैकः सत्त्वः पुण्यवान् जातः तत्प्राधान्यात् सुभिक्षं भविष्यतीति, अतो निमित्तं तथा चान्यथा च भवतीति कृत्वा **आहंसु विज्जापलिमोक्खमेव,** उज्झनमित्यर्थः, मोक्षं च प्रति निरर्थकमित्यतस्तैरुत्सृष्टम् । अथवा विज्जया विज्जया परिमोक्खमाहु **विज्जापलिमोक्खमाहु,** सङ्ख्यादयो ज्ञानाद् मोक्षमिच्छन्ति, जे णिमित्त संखाणं परिणामयंति ते किलात्यन्तपरोक्षमात्मानं परलोकं मोक्षं च ज्ञास्यन्ति इत्यादि हास्यम्, पचुल(?त)कम्मं बंधंति ते सुतण्णाणहीलणाए । उक्तं हि—

---

१ अहित्ता ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ लोगंसि ख २ पु २ । लोगस्स खं १ ॥ ३ तधागताणि चूपा० । अणागतातिं ख १ । अणागयाइं ख २ पु १ पु २ ॥ ४ तं विप्पडिएंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ °ज्जभावं अ° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । °ज्जहरिसं अ° चूपा० ॥ ६ °णा, जाणासु लोगंसि वयंति मंदा ख १ वृपा० । एतत्पाठभेदोल्लेखो ख २ पु १ पु २ वर्त्तते । जाणामो ख १ । जाणाम ख २ पु २ ॥ ७ इति पूर्वं रूपं वा० मो० ॥ ८ [? ?] एतच्चिह्नान्तर्गत पाठो लेखकप्रमादप्रविष्ट आभाति ॥ ९ °न्तरं ग° पु० ॥

ज्ञानस्य ज्ञानिनां चैव निन्दा-प्रद्वेष-मत्सरैः। उपघातैश्च विघ्नैश्च ज्ञानघ्नं कर्म बध्यते ॥ १ ॥

[ ] ॥ १० ॥

स्याद् बुद्धिः—केनैतानि समोसरणानि प्रणीतानि—जं च हेट्ठा वुत्तं जं च उवरिं भणिहित्ति?, उच्यते—अणिरुद्धपण्णा तित्थगरा—

५४४. ते एयमक्खंते समेच्च लोगं, तधागता समणा माहणा य।
सयंकडं णऽण्णकडं च दुक्खं, आहंसु विज्जा-चरणं पमोक्खं ॥ ११ ॥

५४४. ते एयमक्खंते समेच्च लोगं० वृत्तम्। **ते** इति तीर्थकराः, एतदिति यदतिक्रान्तं क्रान्तव्यं च परसमयसिद्धपरूवणाओ अ। एवमन्येऽप्याख्यातवन्तः आख्यास्यन्ति च, सम्यग् इत्वा **समेच्च** ज्ञात्वेत्यर्थः, **तधागता समणा माहणा य,** तथागत इति तीर्थकरत्वं केवलज्ञानं च गताः। **पठ्यते च—तधा तधा समणा माहणा य, तधा तधेति** यथा यथा समाधिमार्गेऽव्यवस्थिताः तथा तथाऽऽख्यान्ति त्रैकाल्यात्, जे अभिग्गहियमिच्छादिट्ठी जे अ अणभिग्गहियमिच्छादिट्ठी तेसिं सव्वेसिं दर्शनमाख्यान्ति। **समणा माहणा य** त्ति एगट्ठं। पच्चक्खणाणिणो परोक्खणाणिणो वा आगमप्रामाण्यात् किमाख्यान्ति? अत्थि माता अत्थि पिता जाव सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति, एवं क्रियावादित्वं ख्याप्यते। किञ्च—**सयंकडं णऽण्णकडं च दुक्खं, सयंकडं** णाम स्वयं कृतं **सयंकडं,** सव्वमेव हि **कर्म** दुक्खं, प्रतीकारात् पुण्यमपि दुक्खं। उक्तं हि—"तो सव्वकालदुक्खो"। [ ] तं तु स्वयंकृतमेव, **नान्यकृतम्,** न चाकृतम्। **आहंसु विज्जाचरणं पमोक्खं,** विज्जया चरणेण पमोक्खो भवति, न तु यथा संख्या ज्ञानेनैवैकेन, अज्ञानिकाश्च शीलेनैवैकेन। उक्तं हि—

क्रियां च सज्ज्ञानवियोगनिष्फलां, क्रियाविहीनां च[3] विबोधसम्पदम्।
निरस्यता क्लेशसमूहशान्तये, त्वया शिवायाऽऽलिखितेव पद्धतिः ॥ १ ॥

[सिद्ध० द्वा० १ का० २९] ॥ ११ ॥

५४५. ते चक्खु लोगंसिध[4] णायगा[5] उ, मग्गाऽणुसासंति हितं पजाणं।
तथा तथा-सासतमाहु लोगो, जंसी पया माणव! संपगाढा ॥ १२ ॥

५४५. ते चक्खु लोगंसिध णायगा उ० वृत्तम्। चक्षुर्भूता **लोकस्य,** प्रदीपभूता इत्यर्थः। देशका **नायकाः**[6] पगढगाः। **मग्गं** णाणाति **हितं** सुहं प्रजानाम् [**अणुसासंति** उवदिसंति]। **तुः** विसेसणे, सन्मार्गगुणांश्च दर्शयन्ति कुमार्गदोषांश्च। अथवा **तुः** विशेषणे, अहितमार्गनिवृत्तिं च। प्रजायन्तीति **प्रजाः**। **तथा तथा सासतमाहु लोगो, तथा तथेति** येन येन प्रकारेण **शाश्वतो लोको** भवति पञ्चास्तिकायात्मकः, अथवा यथाऽस्याऽऽत्मनः अव्यवच्छिन्नकर्म्मसन्ततिर्भवति यथाप्रकाराश्च **तथा तथा सासतमाहु लोगो,** तथा "चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयाउयत्ताए कम्मं पकरेंति०" [स्थानां० स्था० ४ उ० ४ सू० ३७३ पत्र २८५] तत्र तावत् ससारो नोच्छिद्यते यावन्मिथ्यादर्शनम्, तत्र तीर्थकरा-ऽऽहारकवर्जाः सर्वे एव कर्मबन्धाः सम्भाव्यन्ते, उपलक्षणत्वादस्यान्यदपि यदत्र सम्भवति तद् द्रष्टव्यम्, एवं राग-द्वेषावपि संसारकरौ इति कृत्वा तथा तथा वट्टति संसारमाहुः। अहवा **तधा तध** त्ति जस्स जारिसी सत्ता तधा तस्स उवचयो होति। अहवा मिच्छत्त-अविरति-अण्णाणाणि जधा जधा तधा तधा ससारः। अथवा पाणवधादी जधा जधा तधा तधा, अहवा कसा-[या]दयो जहा वहा, काय-वाङ्-मनोयोगा जधा जधा तधा तधा संसारो, सर्वत्र मात्रापरिमाणं वक्तव्यम्। **जंसी पया** यस्मिन्निति **यत्र,** प्रजायन्ते इति प्रजाः, सर्व एव सत्त्वा **मानवा** इत्यपदिश्यन्ते, मानवानां प्रजा माणवप्रजा। अथवा **माणव**! इति हे मानवाः!। संप्रसृताः **संप्रगाढा,** ओगाढा विगाढा सम्प्रगाढा इत्यर्थः। एवं आश्रवलोकं कथयन्ति, आश्रवलोकानुरूपमेव च लोकं विशन्ति ॥ १२ ॥

---

१ **एवमक्खंति स°** खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ **तधा तधा समणा** खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० चूपा० ॥ ३ **च विबोधसम्पदम्** द्वात्रिं० ॥ ४ **°लोगंसिह** खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ **णातगा तु, मग्गाऽणुभासंति हितं पताणं** खं १ ॥ ६ **मायकाः** चूसप्र० ॥

५४६. जे रक्खसा[1] जे जमलोइया वा, जे आसुरा गंधवा य काया।
आगासगामी[2] य पुढोसिता य[3], पुणो पुणो विप्परियासमेंति[4] ॥ १३ ॥

५४६. जे रक्खसा जे जमलोइया वा० वृत्तम्। केषाञ्चिद् भवनपत्यादिदेवाः शाश्वताः तेण **रक्खसगहणम्**। अथवा व्यन्तरा गृहीता राक्षसग्रहणात्। जमलोइयग्रहणाद् वैमानिकाः सूचिताः, जेणं जमदेवकाइया तिविधा नेमम:[5] (?), सव्वे ते जमस्स महारायस्स आणा-उववात-वयणणिद्देसे चिट्ठंति। असुरग्रहणेन भवनवासिनः सूचिताः। गान्धर्वा व्यन्तरा एव। ज्योतिष्का दृश्यन्त एव। सेसा **आगासगामी य पुढोसिता[6] य**, देव-पक्खि-वातादयः आगासगामी, पृथिव्यम्बु-वनस्पतयः द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाश्च स्थलचरा जलचराश्च एते **पुढोसिता**। **पुनः पुनः विपर्यासमेंति, विपर्यासो** नाम जन्म-मृत्यू, सर्वं एव वा ससारे विपर्यासः, जेणं "पुढविकायमतियतो उक्कोसं जीवो तु संवसे" ॥ [उत्तरा० अ० १० गा० ५] ॥ १३ ॥

५४७. जमाहु ओहं सलिलं अपारगं, जाणाहि[7] णं भवग्गहणं दुमोक्खं।
जंसी विसण्णा विसयंगणादी, दुहतो वि लोकं अणुसंचरंति ॥ १४ ॥

५४७. जमाहु ओहं सलिलं अपारगं० वृत्तम्। यं इत्यनिर्दिष्टस्य निर्देशः। आह भगवानेव, द्रव्यौघः स्वयम्भुरमणः, स एवौघः सलिलः, ओघसलिलेन तुल्यं ओघसलिलम्। नास्य पार जलचराः स्थलचरा वा शक्नुवन्ति गन्तुं णऽण्णत्थ देवेण महड्ढिएण इत्यतः **अपारगः**। **जाणाहि णं** जधा जिनैरुपदिष्टः आगमप्रामाण्यात् प्रत्यक्षतश्च उपलभ्यते मनुष्यादिसंसारः। चतुव्विधं **भवग्गहणं, भवग्गहणं** कडिल्यमित्यर्थः, चतुरासीतिजोणिपमुहसयसहस्सगहणो, जत्थ अणोरपारे पविट्ठो सव्वद्धाए वि ण मुच्चति मिच्छादिट्ठी लोको **लोकायत-सुण्णवादिगादिलौकिक** इत्यादि। **दुर्मोक्षेति** मिच्छत्त-सातगुरुत्वेन च ण तरंति अणुपालेत्तए जे वि **अत्थिवादिणो,** किमंग पुण नास्तिकाः ?, जधा ताणि चत्तारि[8] तावससहस्साणि सातागुरुवत्तणेण छक्कायवधगाइं जाताइं [आव० मूलभाष्यगा० ३१ पत्र १४३]। **जंसी विसण्णा विसयंगणादी,** यत्र संसारे यत्र वा सावद्ये धर्मेऽसमाधौ कुमार्गे वा असत्समवसरणेषु, पंचसु वा विसएसु विसन्नाः, सुगरीयान् स्पर्शः, तेष्वप्यङ्गनाः, तासु हि पञ्च विषया विद्यन्ते, तद्यथा—"पुप्फफलाणं च रसं०" [ ] इत्यतः अङ्गनाग्रहणम्। **दुहतो वि** त्ति द्विविधेनापि प्रमादेन **लोकं अणुसंचरंति**। तं जधा—लिंग-वेस-पज्जाए अविरतीए य, अथवा आरम्भ-परिग्रहाभ्यां राग-द्वेषाभ्यां वा अन्न-पानाभ्यां वा त्रस-स्थावरलोगं वा इमं लोगं परलोग वा ॥ १४ ॥

त एव मिथ्यात्वादिभिर्दोषैरभिभूताः असत्समवसरणावस्थिताः—

५४८. ण कम्मुणा कम्म खवेंति वाला, अकम्मुणा कम्म खवेंति धीरा[9]।
मेधाविणो लोभ[10]-मयावतीता, संतोसिणो णो पकरेंति पावं १५ ॥

५४८. ण कम्मुणा कम्म खवेंति वाला० वृत्तम्। **न** इति प्रतिषेधे। मिथ्यात्वादिषु कर्मबन्धहेतुषु वर्त्तमानाः **न कर्माणि क्षपयन्ति वालाः** कुतीर्थ्याः, यस्यैव हि ते भीतास्तमेवान्विपन्ति, कर्मभीताः कर्माण्येव वर्द्धयन्ति, न निदानमेव रोगस्य चिकित्सा, यथा कश्चिन्मूढधीर्निदानैरेव रोगचिकित्सा करोति स हि तस्य वृद्धिमाप्नोति। **अकर्मणा** तु आश्रवनिरोधेन **कर्माणि क्षपयन्ति धीराः** विधिक्रियाभिरिवाऽऽमयान् वैद्याः। **मेधाविणो लोभ-मयं(?यौ)** मेराधाविणो **मेधाविणो,** लोभम-

---

१ °साया जमलोइयाया, जे या सुरा ख १ पु २ वृ० दी०। "ये केचन व्यन्तरभेदा राक्षसात्मान, तद्ग्रहणाच्च सर्वेऽपि व्यन्तरा गृह्यन्ते, तथा 'यमलौकिकात्मान' अ[म्बा]-ऽम्बर्ष्यादय, तदुपलक्षणात् सर्वे भवनपतय। तथा ये च 'सुरा' सौधर्मादिवैमानिका। चशब्दाद् ज्योतिष्का सूर्यादय।" इति वृत्तिकारव्याख्यानम् ॥ २ °सिकामी ख २ पु १ ॥ ३ जे ख २ वृ० दी०। ते पु १ ॥ ४ °यासुवेंति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ५ न विग्नः स०। न विग्जः वा० मो०॥ ६ "पृथिव्याश्रिता' पृथिव्यप्-तेजो-वनस्पति-द्वि-त्रि-चतु-पञ्चेन्द्रिया" इति वृत्तौ ॥ ७ °णाहिं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ एते त एव तापसा ये भगवता श्रीऋषभदेवेन साक प्रव्रजिता इति ॥ ९ वीरा ख १ पु २ वृ० दी० ॥ १० लोभ-भयादतीता खं १ वृपा० ॥

तीताः लोभातीताः, वीतरागा इत्यर्थः, एवं मायामतीता मायातीता वा । **संतोसिणो** त्ति अलोभाः । स्याद् बुद्धिः—अलोभाः सन्तोषिणश्च एकार्थमिति कृत्वा तेन पुनरुक्तम्, उच्यते, अर्थविशेषान्न पुनरुक्तम्, **लोभातीता** इति अतिक्रान्तलोभा वीतरागाः, **संतोषिण** इति निग्रहपरमा अवीतरागा अपि वीतरागाः । **णो पकरेंति पावं** संतोसिणो पयणुयं पकरेंति, तब्भवेदणिज्जमेव । अथवा यत एव लोभाईया अत एव संतोसिणः । एवं अमानिनः अमायिनः ॥ १५ ॥

त एवं भगवन्तः अनिरुद्धपण्णा—

५४९. ते तीत-उप्पण्णं[1]-अणागताइं, लोगस्स जाणंति तधा[2]गताणि ।
णेतारो मं[3]ऽण्णेसि अणण्णणेता, बुद्धा हु ते अंतकडा भवंति ॥ १६ ॥

५४९. **ते तीत-उप्पन्न-अणागताइं०** वृत्तम् । ते इति तीर्थकरादयः प्रदीपभूताः । **तीताणि** लाभा-ऽलाभ-सुख-दुःखादीनि, एवं **पडुप्पण्ण-अणागताइं,** जेहिं वा कम्मेहिं पुव्वकतेहिं इहाऽऽयातो जोणिवासं पदं करेंति जं च भविस्सति इत्यतः तीत-पच्चुप्पण-अणागताइं । तहाभूताइं **तधागताणि,** अवितधाणि त्ति भणितं होति, न विभङ्गज्ञानिवद् विपरीतं पश्यन्ति, "अणगारे णं भंते! मायी मिच्छादिट्ठी रायगिहे णयरे समोहते०—तेनावधि-विभङ्गोपयोगेन गतः—वाणारसीये णयरीए रूवाइं जाणति पासति जाव से से दंसणविवच्चासो भवति।" [भग० श० ३ उ० ६ सू० १६२ पत्र १९२-१] ते भगवन्तः प्रत्यक्षज्ञानिनः, परोक्षे वा पूर्वविदः **णेतारो मऽण्णेसि अणण्णणेता,** णयन्तीति नेतारः, अन्येषां भव्यानां सर्वेषां नेतार इति । न अन्यः [अनन्यः] तेषां नेता विद्यते, "इत्ताव ताव समणेण वा माहणेण वा धम्मे अक्खाते, णत्थेतो उत्तरीए धम्मे अक्खाते" [ ] इत्यतो अणण्णणेता । **बुद्धाः** स्वयम्बुद्धाः बुद्धबोधिता वा गणधराद्याः । अन्तं कुर्वन्तीति **अन्तकराः,** भवान्त कर्मान्तं वा ॥ १६ ॥ ये चाऽत्र भवान्तं न कुर्वन्ति तावत्—

५५०. ते णेव कुव्वंति ण कारवेंति, भूताभिसंकाए[4] दुगुंछमाणा ।
सदा जता विप्पणमंति धीरा, [5]विदित्तु वीरा य भवंति एगे[6] ॥ १७ ॥

५५०. **ते णेव कुव्वंति ण कारवेंति०** वृत्तम् । स्वय न कुर्वन्ति न कारयन्त्यन्यैर्नानुमन्यन्ते । किं तत्? पाणातिवातं, अनुक्तमपि विज्ञायते प्राणातिपातम्, येनापदिश्यते **भूताभिसंकाए दुगुंछमाणा, भूताणि** तस-थावराणि ताणि यतोऽभिसकंति सा **भूताभिसंका** भवति, हिंसेत्यर्थः, तां भूताभिसका तत्कारिणश्च जुगुप्समाना उद्विजमाना इत्यर्थः, पाणातिपातमिति वाक्यशेषः, लोकोऽपि हि मत्स्यवन्धादीन् हिंसकान् जुगुप्सते । एवं ते ण भासन्ति ण भासावेंति मुसावातं, एवं जाव मिच्छादंसणं ण परूवेंति० णो सद्दहंति णवएण भेदेण । त एवमप्पाणं परं तदुभयं च [**जता**] संजमेमाणा **सदे**ति सर्वकालं प्रव्रज्याकालादारभ्य यावज्जीवं ज्ञानादिषु विविधं **प्रणमन्ति** पराक्रमन्त इत्यर्थः । **विदित्तु वीराः** विज्ञाय वीरा भवन्ति, ज्ञानादिभिर्वा [वि]राजन्तीति **वीराः, एके** न सर्वे । पठ्यते च—"**विण्णत्तिवीरा य भवंति एगे**" विज्ञप्तिमात्रवीरा एवैके भवन्ति, ण तु करणवीराः ॥ १७ ॥ स्यात्—कतराणि भूतानि येषा संकितव्यम्? उच्यते—

५५१. डहरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, जे[7] आततो पस्सति[8] सव्वलोगे ।
उवेहती लोगमिणं महंतं, [9]वुद्धेऽपमत्ते सुपरिव्वए[10]ज्जा ॥ १८ ॥

५५१. **डहरे य पाणे०** वृत्तम् । **डहराः** सूक्ष्माः कुन्थ्वादयः सुहुमकायिका वा, **वुड्ढा** महासरीरा वादरा वा, ते एते **डहरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, जे आततो पस्सति सव्वलोगे** आत्मना तुल्यं आत्मवत्, यत्प्रमाणो वा मम आत्मा

१ °ण्णमणा° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ **तहागताइं** ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ३ **अण्णेसि** ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ४ °**संकाति** ख २ पु १ । °**संकाइ** ख १ पु २ ॥ ५ **विण्णत्तिवीरा** चूपा० वृपा० । **विण्णत्तिधीरा** खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ **तेगे** ख २ पु १ ॥ ७ **ते** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ **पासति** ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ **वुद्धेऽपमत्तेसु परिव्वएज्जा** इति **वुद्धे पमत्तेसु परिव्वएज्जा** इति पदच्छेदेनापि च व्याख्यान्तर **चूर्णौ वृत्तौ** च वर्तते । **वुद्धऽप्पमत्तेसु** ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० °**व्वदेज्जा** खं १ ॥

एतत्प्रमाणः कुन्थोरपि हस्तिनोऽपीति, अधवा "जध मम ण पियं दुक्खं" [दशवै० नि० गा० १५६] एवं सव्वजीवाणं डहराण वा महल्लाण वा, "पुढविकाइए णं भंते ! अक्कंते समाणे केरिसयं वेदणं वेदयंति ?" [ ] सुत्तालावगो इत्यतस्तेऽपि ण अक्कमितव्वा ण संघट्टेतव्वा । ये एवं पश्यन्ति **उवेहती लोगमिणं महंतं** वृत्तं [उत्तरद्धं] । **उवेहती** उपेक्षते, पश्यतीत्यर्थः, उपेक्षां करोति, सर्वत्र माध्यस्थ्यमित्यर्थः, महान्त इति छज्जीवकायाकुलं अष्टविधकर्माकुलं वा, **वलिपिंडोवमाए** महतो लोगो, अथवा कालतो महंते अनादिनिधनः, अस्त्येके भव्या अपि ये सर्वकालेनापि न सेत्स्यन्ति । अथवा द्रव्यतः [1]क्षेत्रतश्च लोकस्यान्तः, कालतो भावतश्च नान्तः । **बुद्धे** नाम **धर्मे समाधौ मार्गे समोसरणेसु** च अप्रमत्तः कायेषु जयणाए य, अथवा **प्रमत्तेषु** असंजतेषु **परिव्वएज्जासि** त्ति वेमि । अथवा वुद्धे अप्पमत्ते सुट्ठु परिव्वएज्जा ॥ १८ ॥

५५२. जे आतयो परतो याव[2]वि णच्चा, अलमप्पणो होति अलं परेसिं ।
तं जोति[3]भूतं सतताऽऽवसेज्जा, जे पादुकुज्जा अणुवीति धम्मं ॥ १९ ॥

५५२. जे आतयो परतो यावि णच्चा० वृत्तम् । **आत्मनः** स्वयं तीर्थकरा जाणंति जीवादीन् पदार्थान् **परतो** गणधरादयः । **अलं** पर्याप्त्यादिषु, स द्विविधोऽपि जानकः **अलमात्मानं परांश्चेति,** अकृत्याद्वा प्रतिषेधयितव्य इति । एवं **तं जोतिभूतं, तमिति** तं उभयत्रातारं ज्योतयतीति **ज्योतिः** आदित्यश्चन्द्रमाः मणिः प्रदीपो वा, यथा प्रदीपो ज्योतयति एवमसौ लोका-ऽलोकं ज्योतयतीति ज्योतिस्तुल्य इत्यर्थः । **सततं आवसेज्जासि** त्ति जावज्जीवाए सेवेज्जा तित्थगरं गणधरे वा [यो] यस्मिन् काले ज्योतिर्भूतः । **जे पादुकुज्जा,** य इत्यनिर्दिष्टः, **प्रादुः** प्रकाशने, ये प्रादुष्कुर्वन्ति धर्मं पूर्वापरतोऽनुचिन्त्य, करतलामलकवद् लोकं दृष्ट्वा इत्यर्थः । अथवा अणुवीयिणितुं परसमये स्वसमयं दर्शयति, **धम्मं समाधिं मार्गं समोसरणानि** च ॥ १९ ॥ कीदृशः पुनस्ते विघाटितज्ञानिनः त्रैलोक्यदर्शिनः ? उच्यते—

५५३. [4]आताण जे जाणति जे य लोगं, जे[5] आगतिं [6]जाणइऽणागतिं च ।
जे सासतं [7]जाणइ असासतं च, [8]जातिं मरणं [9]च चयणोपवादं ॥ २० ॥

५५३. आताण जे जाणति जे य लोगं० वृत्तम् । आत्मान यो वेत्ति यथा 'अहमस्ति' इति संसारी च । अथवा स आत्मज्ञानी भवति य आत्महितेष्वपि प्रवर्त्तते । अथवा त्रैलोक्य (त्रैकाल्य) कार्यपदेशादात्मा प्रत्यक्ष इति कृतवानित्यादि । येनाऽऽत्मा [ज्ञातो] भवति तेन प्रवृत्ति-निवृत्तिरूपो लोको ज्ञात एव भवति आत्मौपम्येन, यथा—ममेष्टानि, दृष्टेष्वर्थेषु प्रवृत्ति-निवृत्ती भवतः यथाऽस्तीति । अथवा आत्मौपम्येन परेष्वहिंसकः । किञ्च—**जे आगतिं जाणइऽणागतिं च, जे आगतिं जाणति,** कुतो मनुष्या आगच्छन्ति ? "सत्तममहिणेरइया०" [बृहत्सं० गा० ३४३] कैर्वा कर्मभिः कुत्र वा गच्छन्ति ?, न विद्मः—कुतोऽहमागतः गमिष्यामि वा ? । **अनागतिरिति** सिद्धिः सादीया अपज्जवसिता । **जे सासतं जाणइ असासतं च,** सर्वद्रव्याणा शाश्वतत्वं द्रव्यतः अशाश्वतत्व पर्यायत, चशब्दात् शाश्वताशाश्वतत्वं वा । तं जधा—णेरइया दव्वट्ठताए सासता, भवट्ठताए असासता । अथवा निर्वाणं शाश्वतम्, ससारिणस्तु संसारं प्रतीत्य अशाश्वताः । **जातिं मरणं** च जानीते, औदारि[10]कांनां सत्त्वानां जातिः, एत्थ जोणीसंगहो भाणितव्वो णवविधो वि । तं जधा—"सचित्त-शीत-संवृताः [सेतरा] मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः" [तत्त्वा० अ० २ सू० ३३] सचित्ता-ऽचित्त-शीतोष्ण-संवृत-विवृता एताश्च सेतराः । ओरालियाणं चेव मरणम् । वन्धानुलोम्यात् **चयणोपवादं,** इतरधा तु पूर्वं उपपातो वक्तव्यः, स तु नारक-देवानाम्, चयणं तु जोतिसिय-वेमाणियाणं, उव्वट्टणा भवणवासियाण वतराणं नेरइयाणं च ॥ २० ॥

---

१ क्षेत्रतश्च कालतो भावतश्च लोक° पु० सं० ॥ २ वा वि पु १ पु २ । तावि ख २ ॥ ३ °भूतं च सताऽऽव° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ अत्ताण जो जाणति जो य ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ गइं च जो जा° ख २ पु १ पु २ । आगइं च जो जा° ख १ ॥ ६ जाणतऽणागइं च ख १ ॥ ७ जाणयऽसा° ख १ । जाणअसा° पु १ पु २ ॥ ८ जाती ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ च जणोववात ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० °रिकारिकानां सत्त्वा° सं० । °रिकानां कारिकानां सत्त्वा° वा० मो० ॥

५५४. अधो वि सत्ताण विउट्टणं च, जो आसवं जाणति संवरं च ।
दुक्खं च जो जाणति णिज्जरं[1] वा, सो[2] भासितुमरिहति किरियवादं ॥ २१ ॥

५५४. अधो वि सत्ताण विउट्टणं च० वृत्तम् । जधा जधा गुरूणि कर्माणि तहा तहा **अधो विउट्टंति** सत्ता, विविध कुट्टंति **विकुट्टंति,** जातन्ते म्रियन्त इत्यर्थः, सर्वार्थसिद्धादारभ्य यावदधोसप्तम्याः तावदधो वर्त्तन्ते, तत्रापि ये गुरुतरकर्माणः ते अप्रतिष्ठाने, शेषेषु चोत्कृष्टस्थितयः । **जो आसवं जाणति,** आश्रवान् रागादीन् प्राणवधादीन् वा पञ्च आरम्भ-परिग्रहौ वा इत्यादि **आश्रवाः,** तद्विधर्मी **संवरः** सयम इत्यर्थः, जाव णिरुद्धजोगि त्ति ।

यथाप्रकारा यावन्तः ससारावेशहेतवः । तावन्तस्तद्विपर्यासान्निर्वाणावेशहेतवः ॥ १ ॥

[ ]

दुक्खं च जो जाणति निज्जरं वा, दुक्खमिति कर्मवन्धः प्रकृति-स्थित्यनुभाव-प्रदेशात्मकः तदुदयश्च, **निर्जरा** नाम बन्धापनयः, द्वादशप्रकारं तपो **निर्जरा । सो धम्मं समाधिं मग्गं समोसरणाणि** य[3] भाषितुमर्हति । **पठ्यते च–"आइक्खि-तुम[4]रिहति सो किरियवादं"** ॥ २१ ॥

एतानि मिथ्यादर्शनसमोसरणानि ससारकराणीति ज्ञात्वा क्रियावादी सम्यग्दृष्टिश्चारित्रवान्—

५५५. सद्देसु रूवेसु[5] असुच्छमाणो, रसेहिं गंधेहि य अदुस्समाणो ।
णो जीवितं णो[6] मरणं विपत्थए, आयाण[7]गुत्ते वलया विमुक्के ॥ २२ ॥

त्ति बेमि ॥

॥ समोसरणं सम्मत्तं ॥ १२ ॥

५५५. सद्देसु रूवेसु असुच्छमाणो० वृत्तम् । **सद्देसु रूवेसु असुच्छमाणो** त्ति रागो गहितो, एवं जाव फासेसु । **रसेहिं गंधेहि य अदुस्समाणो** द्वेषो गृहीतः । एव शेषेष्वपि इन्द्रियेषु "सद्देसु अ भद्दय-पावएसु" [ज्ञाता० श्रु० १ अ० १७ सू० १३५ गा० १६ पत्र २२३-१] । **णो जीवितं णो मरणं विपत्थए,** असजमजीवितं अणेगविधं पत्थए **विपत्थए,** ण वा परीसहपराइया मरण विपत्थए । अथवा मा हु चिंतेज्जासी–जीवामि चिरं, मरामि व लहुं । वलयं कुडिलमित्यर्थः । तत्र द्रव्यवलयं नदीवलय वा संखवलयं वा, भाववलयं तु कर्म । चतुसमोसरणकुडिलं तु सिच्छत्तं, वलएण विमुक्को **वलयादि-विमुक्को । पठ्यते च–["मायाविमुक्के"]** मायादिविमुक्के इत्यर्थः ॥ २२ ॥

॥ इति समवसरणाध्ययनं द्वादशं समाप्तम् ॥ १२ ॥

---

१ च खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ आइक्खितुमरिहति सो किरियवादं चूपा० ॥ ३ य आख्यातु° चूसप्र० ॥ ४ °मर्हति चूसप्र० ॥ ५ असज्जमाणे, गंधेसु रसेसु अदुस्समाणे ख १ वृ० दी० । असज्जमाणे, रसेसु गंधेसु अदुस्समाणे खं २ पु १ पु २ ॥ ६ मरणाभिकंखी, आदाण° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ °गुत्ते मायाविमुक्के चूपा० ॥

१३

[तेरसमं आहत्तहियज्झयणं]

आयतधियं ति अज्झयणस्स चत्तारि अणुओगद्दाराणि । अधिकारो सीसगुणदीवणाए । अण्णं पि जं **धम्म-समाधि-मग्ग-समोसरणेसु** जं जत्थ अणुवादी तं च अवितथं भण्णिहिति । एतेसि चतुण्ह वि **धम्मादीणं** विवरीतं वितधं । अत्र चाय न्यायः—यदुत उपसर्ग-प्रत्ययवियुक्ता प्रकृतिर्निक्षिप्यते, यतः **णामतधं०** इत्यादि । णामणिप्फण्णे **आयतधिज्जं** । तं चतुव्विध, तं जधा—

णामतधं ठवणतधं दव्वतधं चेव होति भावतधं ।
दव्वतधं पुण जो जस्स सभावो होति दव्वस्स ॥ १ ॥ ११५ ॥

णामतधं ठवणतधं० गाधा । त च वतिरित्तं दव्वतघ तिविधं सचित्तादि । सचित्तं जधा—सर्व एव जीवः उपयोग-स्वभावः, अथवा **जो जस्स दव्वस्स सभावो** त्ति, [1]काठिन्यलक्षणा पृथ्वी, द्रवलक्षणा आप इत्यादि, अथवा दारुणस्वभावः मृदुस्वभावो वा जो जस्स मणूसस्स वा । अचित्ताण **गोसीसचंदण-कंवलरयणमादीणं** । जधा—"[2]उण्णे करेति शीतं सीए उण्हत्तणं पुणरुवेति ।" [ ] मीसगाणं तंदुलोदगमादीणं जाव ण ता परिणतं ॥ १ ॥ ११५ ॥

भावतहं पुण णियमा णायव्वं छव्विहम्मि भावम्मि ।
अधवा वि णाण दंसण चरित्त वि[3]णए य अज्झप्पे ॥ २ ॥ ११६ ॥

भावतहं पुण णियमा० गाधा । भावतहं छव्विधे भावे । तं जधा—उदइयभावतहं जाव सण्णिवादियभावतहं । तत्थुदयलक्खणमेवौदयिकम्, वेदनालक्खणमित्यर्थः, ओदयिकभावभावतधं १ । उपसमणमेव औपशमिकः, अनुदयलक्षण इत्यर्थः २ । क्षयाज्जातः क्षायिकः ३ । किञ्चित् क्षीणं किञ्चिदुपशान्तं क्षायोपशमिकः ४ । तांस्तान् भावान् परिणमतीति पारिणामिकः ५ । एवं समवायलक्षणः सान्निपातिकः ६ । **अधवा** भावतघ चउव्विध—**णाण दंसण चरित्त विणये** इति । **णाणे** पचविधे स्वे स्वे विषये अवितथोपलम्भः १ । एवं चतुव्विधे **दंसणे** चक्खुदसणादि २ । **चरित्ते** तवे संजमे य, तवे दुवालसविधे, सजमे सत्तरसविधे ३ । विणयस्स वा बायालीसतिविधस्स ज्ञान-दर्शन-चरित्ते जो वा जस्स जधा जदा य पउंजितव्वो ४ । अण्णधा वितधं । एत्थ भावतहेण अधियारो । अधवा भावतधं पसत्थं अप्पसत्थं च, पसत्थेणाधिकारो ॥ २ ॥ ११६ ॥

जह सुत्तं तह अत्थो [4]चरणं ति जहातहाय णायव्वं ।
संतम्मि [5]पसंसाए असती पगयं दुगंछाए ॥ ३ ॥ ११७ ॥

जह सुत्तं तह अत्थो० गाधा । यदि यथा सूत्रं तथैवार्थो भवति तथा वा दर्शयति । तध त्ति किं भणितं होति ?— जं संत सोभण ति च, जं सतं ससारनित्थरणाय प्रशस्यते तं पसत्थभावतहं । जं पुण विद्यमानमपि **दुगंछितं** तं ससार-कारणमिति कृत्वा अशोभनं असदित्यपदिश्यते, अशोभनमित्यर्थः ॥ ३ ॥ ११७ ॥ जो पुण एतं पसत्थभावतधं—

*** आयरियपरंपरएण आगतं जो [6]उ [अ]प्पबुद्धीए ।**
कोवेति छे[7]यबुद्धी जमालिणासं व णासिहिति ॥ ४ ॥ ११८ ॥

॥ ४ ॥ ११८ ॥ जो एयं आयरियपरपरएण आगतं कोवेति सो—

---

१ कठिनलक्ष° स० मो० वा० ॥ २ "उण्हे करेइ सीय सीए उण्हत्तण पुण करेइ । कवलरयणादीणं एस सहावो मुणेयव्वो ॥" इति [redacted] गाथा ॥ ३ विणएण अ° ख २ पु २ ॥ ४ चरणं चारो तह त्ति णा° ख २ पु २ ॥ ५ संतम्मि य संसा° ख १ । संतम्मि [redacted]सा° पु २ ॥ ६ उ छेयवुद्धीए ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ७ छेयवाती ख १ ख २ पु २ वृ० । °वादी ख १ ॥

※ ण कुणेति दुक्खमोक्खं उज्जममाणो वि संजमपदेसु ।
तम्हा अत्तुक्करिसो वज्जेतव्वो जतिजणेणं ॥ ५ ॥ ११९ ॥

॥ आयतहं सम्मत्तं ॥ १३ ॥

॥ ५ ॥ ११९ ॥ णामणिप्फण्णो गतो । सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चारेतव्वं । अज्झयणाभिसंबंधो—अणंतरसुत्ते "वलया विमुक्के" [सूत्रं ५५५] ति वुत्तं, इहापि वलयादि, अवितथशीले प्रयतितव्यं वलयविनिर्मुक्तेन । भाववलयं माया शिष्य-दोषाश्च इहोक्ताः, अत्तुक्करिसादीया भावदोसा वज्जेतव्वा इति । अतः—

५५६. आधत्तंधिज्जं तु पवेदइस्सं, णाणप्पगारं पुरिसस्स जातं ।
सतो य धम्मं असतो य सीलं, संतिं असंतिं करिस्सामि पादुं ॥ १ ॥

५५६. आधत्तधिज्जं तु पवेदइस्सं० वृत्तम् । यथातथमिति आधत्तधियं याथातथ्यम्, शीलव्रतानीन्द्रियसंवर-समिति-गुप्ति-कषायनिग्रहसर्वमवितथं यथातथम्, ते अनाचरतां च दोषान् वक्ष्यामः । अथवा व्रत-समिति-कषायाणां धारणा रक्षणं विनिर्ग्रह-त्यागौ । तुर्विशेषणे । ये च वितथमाचरन्ति तांश्च वक्ष्यामः भृशमावेदयिष्यति । नाना अर्थान्तरभावे, पुरिस-[स्स] जातमिति केचित् प्रियधर्माः, केयि अधाछन्दाः, सत्पुरुषशीलगुणांश्चोपदेश्या(क्ष्या)मः, समोसरणे तु अण्णउत्थिय-गिहत्थाण दृष्टयो दर्शिताः इत्यतो णाणप्पगारं पुरिस[स्स] जातं, तिष्ठन्तु तावन्नानाप्रकारा गृहस्थाः, अन्यतीर्थिका पासत्था-दयो सविग्गा य णाणापगारा पुरिसजाता, णाणाछन्दा इत्यर्थः । अथवा किं चित्र यदि नानाविधाः पुरुषाः नानाशीला एव भवन्ति ?, एक एव हि पुरुषस्तानि तानि परिणामान्तराणि परिणामयन् णाणापगारो पुरिसज्जातो भवति । तं जधा—कदाचित् तीव्रपरिणामः, कदाचिन्मन्दस्वभावः, कदाचिन्मध्यमः, कदाचिन्मृदुस्वभावः, कदाचिन्निर्धर्मे एव भवति, कृत्वा चाकृत्यं कश्चिन्निवर्त्तते, कश्चित् सुतरा प्रवर्त्तते, अन्यस्य चान्यः परीषहो दुर्विषहो भवति, अथवा [दारुणा-ऽ]दारुणस्वभावत्वाच्च नानाप्रकारं पुरुषजातं भवति । सतो य धम्मं असतो य सीलं, सदिति शोभनः तस्य सतः धर्मो भवति यथार्थः, एवं समाधिर्मार्गश्च । असन्निति अभावे जुगुप्सायां च, अभावे तावत्—अशीला एव गृहस्थाः, जुगुप्सायां अशीलानारीवद् नासौ अशीलः किन्तु अशोभनशीलत्वाद् अशील इत्यपदिश्यते । दुगंछायां पासत्थादयो अण्णउत्थिया पासत्था य कुसीलाः । सर्वाशुभनिवृत्तिः शान्तिः, सर्वभूतशान्तिकरत्वात् सर्वाशुभनिवृत्तिः शान्तिः, तथा च परमशान्तिः निर्वाणं भवति । अशान्तिः अशीलः । आत्मनः परेषां च इह वा शान्तिर्भवत्यमुत्र च, तां कर्मनिर्जरणशान्तिं प्रादुःकरिष्यामि प्रकाशयिष्यामीत्यर्थः । कर्मबन्धकारणं चाशान्तिं इह परत्र शिष्यदोष-गुणाश्च प्रादुःकरिष्यामि ॥ १ ॥ तत्र तावच्छिष्यदोषाः—

५५७. अहो अ रातो अ समुट्ठितेहिं, तधागतेहिं पडिलंभ धम्मं ।
समाधिमाघातमझूसयंता, सत्थारमेवं फरुसं वदंति ॥ २ ॥

५५७. अहो अ रातो अ समुट्ठितेहिं० वृत्तम् । सम्यग् उत्थिता समुत्थिताः, सम्यग्ग्रहणात् समुत्थितेभ्यः संयमगुणस्थितेभ्यश्च द्विविधां शिक्षां गृहीत्वा तीर्थकरादिभ्यः तथागतेभ्यः संसारनिस्सरणोपायस्तावत् प्रतिलभ्येत । प्रतिलभ्य ज्ञान-दर्शन-चारित्रवन्तं धर्मं प्रतिलभ्य तीर्थकरोपदेशाद् जमालिवद् आत्मोत्कर्षदोषाद् विनश्यन्ति, गोट्ठामाहिलावसानाः सर्वे निह्नवाः आत्मोत्कर्षाद् विनष्टाः बोटिकाश्च । त एवमात्मोत्कर्षात् समाधिमाघातमझूसयंता, भावसमाधिर्व्याख्यातः

---

१ ण करेति खं १ ख २ पु २ वृ० ॥ २ संजम-तवेसु ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ३ आहत्तहं ख २ पु २ ॥ ४ आहत्तहियं ख १ ख २ पु १ । आहत्तहीयं पु २ वृ० ॥ ५ पवेयतिस्सं खं १ । पवेइइस्सं ख २ पु २ । पवेइयस्सं पु १ ॥ ६ पुरिसस्स भावं वृपा० ॥ ७ करिस्सामि पातुं ख २ ॥ ८ विनित्यात्यागौ । तु° वा० मो० ॥ ९ "ज्ञानप्रकारम्' इति प्रकारशब्द आदार्थे, आदिग्रहणाच्च सम्यग्दर्शन-चारित्रे गृह्येते । तत्र सम्यग्दर्शन औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक गृह्यते, चारित्र तु व्रत-समिति-कषायाणां धारण-रक्षण-निग्रहादिक गृह्यते । एतत् सम्यग्ज्ञानादिक 'पुरुषस्य' जन्तो यद् 'जात' उत्पन्न तदहं 'प्रवेदयिष्यामि' कथयिष्यामि । तुशब्दो विशेषणे, वितथाचारिणस्तद्दोषांश्चा-ऽऽविर्भावयिष्यामि । 'नानाप्रकार वा पुरुषस्य स्वभाव' उच्चावच प्रशस्ता-ऽप्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्यामि ।" इति वृत्तिः ॥ १० °मझोस° ख २ पु २ । °मजोस° ख १ पु १ ॥ ११ °मेवं ख २ पु १ पु २ वृ० ॥

तीर्थकरैः, "जुपी प्रीति-सेवनयोः" तं अज्झूसयंता कम्मोदयदोसेणं केयि दुव्वियड्ढबुद्धी अग्गहहंता, केचित् श्रद्दधतोऽपि धृतिदुर्बलाः यावज्जीवमशक्नुवन्तो यथारोपितमनुपालयितुं, जेहिं चेव णिक्कारणवत्सलेहिं पुत्रवत् सङ्गृहीताः ते चेव कहिंचि चुक्क-क्खलिते चोदेमाणा अण्णतरं वा साधुं पडिचोदंति **फरुसं वदंति**, 'मा एवं करेहि त्ति नैप शास्तारोपदेशः' इति **सत्थारमेव फरुसं वदंति**, सो हि न ज्ञातवान्–किं वा तस्स उवदिसतस्स पारक्कस्स छिज्जति ? सुहं परायएहिं हत्थेहिं इंगाला कड्ढिज्जति। अथवा यः शास्ति स शास्ता आचार्य एव, तं पि चोदेंतो **फरुसं वदंति** अशीलो वा असतिभावे य वट्टमाणो, असत्पुरुषाः सुशील दुःशीलं वदन्ति दुःशीलं सुशीलं च ॥ २ ॥ किञ्च—

५५८. विसोधियं वा अणुकाहयंते, जे आतभावेण वियागरेंति।
अट्ठाणिगे होंति बहूगुणाणं, जे णाणसंकाए मुसं वदंति ॥ ३ ॥

५५८. विसोधियं वा अणुकाहयंते॰ वृत्तम्। विसोधिकरं **विसोधियं**, धम्मकथा सुत्तत्थो वा। **अनु** पश्चाद्भावे, कथितमाचार्यैः **अनुकथयन्ति** अन्येषाम्। तथाऽऽचार्यपरम्परागतं णाण चरित्तं वा **जमालिप्पभितयो आतभावेण वियागरेंति**, **भावो** नाम ज्ञान अभिप्रायो वा, उस्सुत्तं पण्णवेंति, पौर्वापर्येणाशक्नुवन्तः परिणमयितुं वितथं कथयन्ति आचार्यासमीपे, **गोष्ठामाहिलवत्**। निग्गता वा **जमालिवत्** 'एव न युज्यते, यथोदितमेव सयुज्यते' इत्येवं **आतभावेन वियागरेंति**। केचित् कथ्यमानमपि ब्रुवते–नैतदेवं युज्यते यथा भवानाह, स्यादेवं तु युज्यते। स एवं स्वच्छन्दः **अट्ठाणिगे होंति बहूगुणाणं**, अनायतनं असम्भवः अनाचारः अस्थानमित्यनर्थान्तरम्। **गुणाः**—

सुस्सूसति पडिपुच्छति सुणेति गेण्हति य ईहए यावि। तत्तो अपोहए वा धारेति करेति वा सम्म ॥ १ ॥

[आव॰ नि॰ गा॰ २२]

एतेसिं सुस्सूसणादीणं गुणाणं अत्थाणं भवति, वैनयिकमन्योन्यसाधारणवैयावृत्यादीना च। अथवा "सवणे णाणे विण्णाणे" [ ] पठ्यते च–"**अट्ठाणिए होंति बहू णिवेसे**" अस्थानिको गुणानाम्, दोषाणां तु **बहू निवेशो** भवति, नियतं वेशो निवेशोऽवैनयिकादीनां दोषाणाम्। **जे णाणसंकाए मुसं वदंति**, णाणे सका **णाणसंका**, तेसु तेसु णाणंतरेसु एवमेतन्न युज्यते, अथवा **संकेति** मान्यार्थाः ये ज्ञानवन्तमात्मानं मन्यमानाः **मुसं लवंति**, अभयभावे छंदता णियमा चेव **मुसं वदंति** जमालिवत्, जम्मि अणुवादी अभिणिवेसेण भवति तदपि मृषा भवति ॥ ३ ॥

५५९. जे आवि पुट्ठा पलिउंचयंति, आदाणमट्ठं खलु वंचयंति।
असाधुणो ते इह साधुमाणी, मायण्णिएहिंति अणंतघातं ॥ ४ ॥

५५९. जे आवि पुट्ठा पलिउंचयंति॰ वृत्तम्। ये इत्यनिर्दिष्टनिर्देशः। केनचिदधीत कस्यचित् सकाशाद् जात्यादि-परिपेलवस्य, स च पृष्टः केनचित्–कस्य सकाशाद् भवताऽधीतम् ? इति, ततः स तस्मादाचार्याद् जात्यादिभिरात्मानमुत्कृष्टं मन्यमानः तमाचार्यमपह्नुते, प्रख्यातमन्यमुद्दिशति। योऽपि तावद् यथा **वैरस्वामी** पदानुसरणलब्धिसम्पन्नः आयरियातो अधिकतरं पण्णवेति तेनापि न निह्नवितव्यः आचार्यः, किमङ्ग पुनर्ये समाना न्यूनतरा वा। जे पुट्ठा भणंति अत्तुक्कस्सेण–मया चैवैतद् विस्तरतो विकल्पित अर्थपद सूत्रं वा विसोधितं, सो णिण्हगो असतिभावट्ठितो। यस्य वा सकाशात् केनचिदधीतम् ग्रहणशक्तितया वा तेनान्यतोऽधिकमधीतं शब्द-च्छन्द-हेतुकादि, गृहवासे वा तेन शब्दादीन्यधीतानि, परेण चोदितः–त्वया अमुकाचार्यस्य सकाशादधीतम् ? इति, स किं जानीते वराको मृत्पिण्डः ? यस्यौष्ठावपि न सम्यक्, यतः अभ्युत्थानादि

१ करोति, नैप चूसप्र॰ ॥ २ परिक्कस्स पु॰ मो॰। परिक्खस्स स॰ वा॰ ॥ ३ ते खं २ पु १ पु २ वृ॰ दी॰। च ख १ ॥ ४ याऽऽतभा॰ ख २ पु १ वृ॰ दी॰ ॥ ५ ॰गरेज्जा ख १ खं २ पु १ पु २ वृ॰ दी॰ ॥ ६ बहू णिवेसे चूपा॰ वृपा॰ ॥ ७ वतेज्जा ख २ पु १। वदेज्जा ख १। वइज्जा पु २ ॥ ८ ॰णुकोट्टयते चूसप्र॰ ॥ ९ आचार्यपरोक्षे इत्यर्थ ॥ १० यावि ख १ ख २ पु १ वृ॰ ॥ ११ आताण॰ ख २ पु १ ॥ १२ ॰एसिंति ख २ पु १ पु २ वृ॰ दी॰ ॥ १३ ॰तघंतं खं १ ख २ पु २ ॥ १४ प्रत्याख्या॰ चूसप्र॰ ॥

विनयमीता निह्नवन्ति। एवं णाणे पलिउंचणा दंसणे य। चरित्ते तु कोइ पासत्थादि पुढविकाइआदि समारभते, कप्पा-ऽकप्प-विधिण्णुणा सावगादिणा पुट्ठो—किध तुब्भं एतं कप्पति?, उदउल्लादि गेण्हंतो वा—अमुगो ण एवं गेण्हति तुमं कहं एतं गेण्हसि?, तुब्भं वा एतं एवं आगतेल्लगं?। एवं पुट्ठो इधलोगं कधेति, चइत्तुं इमं लोयं जोणिधम्मं सो पलिउंचेति—सोऽत्थ किं जाणति? तुमं वा किं जाणसि? चीर्णव्रता वयम्। एवं पलिउंचंता **आदाणमट्ठं खलु, आदानं** ज्ञानादीनि, आदीयत इत्यादानम्, आदातव्यमित्यर्थः। **असाधु [णो ते इह] साधुमाणी,** ये साधुगुणवाह्यास्ते असाधव एव साधुमानिनः, अणोवसंखाए य ते साधुवादं वदन्ति, सः असाधुः साधुमाणी दुगुणं करोति से पावं, विदिया वालस्स मंदया, एवं शुद्धं रवंति परिसाए, द्वितीयं पापमासेवन्ते। एवं **मायान्विताः एहिंति** ते अणंतसंसारियं दुव्वोधिलाभियं कम्मं वंधित्ता **अणंताइं** जाइतव्व-मरितव्वाइं **घातमेहिंति**। एवं माण-लोभदोसे वि॥ ४॥ कोवे तु सद्य एव प्रतिषेधः क्रियते?—

५६०. जे कोहणे होति जगतट्ठभासी, विओसितं वा पुणो उदीरएज्जा।
अद्धे व से दंडपहं गहाय, अविओसिते घासति पावकम्मी॥ ५॥

५६०. जे कोहणे होति जगतट्ठभासी० वृत्तम्। जगतः अट्ठा **जगतट्ठा, जे** जगति भाषन्ते, जगति जगति तावत् खर-फरुस-णिट्ठुरा, ण सयतार्था इत्यर्थः। ते पुनराचार्यादीन् साधून् गृहिणो वा खर-फरुस-णिट्ठुराणि भणंति, कक्कस-कसुगादीणि वा। अथवा **जगदर्था** छिन्द्धि भिन्द्धि वद्ध मारयत जातिवादं वा काण-कुंटादिवादं वा फुडंभाणी वा। **"जयट्ठभासी" पठ्यते** च, येन तेन प्रकारेणाऽऽत्मंजयमिच्छंति। **विओसितं वा पुणो,** विसेसेण ओसवितं **विओसितं,** खामितमित्यर्थः, तं सपक्खं परपक्खं वा क्षामयित्वा **पुनरुदीरयति। अद्धे व से दंडपहं गहाय, दंडपधं** णाम एक्कप-इयमहापध इत्यर्थः, तं अध्वउद्देसतो **गृहीत्वा** गर्तायां घृष्टविषमे कूपे वा पतति, पाषाण-कण्टका-ऽग्न्यहि-श्वापदेभ्यो वा दोष-मवाप्नोति। **अविओसितो** णाम अधितपाहुडो दढगत्थाणीय केवलमेव लिङ्गं गृहीत्वा क्रोधादिविसमे विपर्ययरूपेषु वा पतति, एषणादिकढिल्लादिसु वा। उत्तरगुणेसु मूलगुणेसु वा विसुद्धिमयाणंतोऽकुर्वन् भावान्ध एव लभ्यते। **घासति** सारीर-माणसेहिं दुक्खेहिं ति॥ ५॥ सीसगुण-दोसाहिगारे अनुवर्तमाने तद्दोषदर्शनार्थम्—

५६१. जे[1] विग्गहीएँ अ नायभासी, ण से समे होति अ-झंझपत्ते।
ओवातकारी य हिरीमंते य, एगंतदिट्ठी य अमायरूवी॥ ६॥

५६१. जे विग्गहीए० वृत्तम्। **विग्गहो** णाम कलहः, विग्गहसीलो **विग्रहिकः,** यद्यपि प्रत्युपेक्षणादिमेरामनु-पालयति, **नात्याभाषी** अस्थानभाषी गुर्वधिक्षेपी प्रतिकूलभाषी, **न सो समो भवति, समो** नाम मध्यस्थः, न रक्तो न द्विष्टः, झंझा णाम कलहः [तं] प्राप्तः। अथवा नासौ समो भवति अझञ्झाप्राप्तैः, [झञ्झाप्राप्तः] तु गृहिभिः समो भवति, तेन नैवंविधेन भाव्यं शिष्येण। पुनरपि **पठ्यते च—"जे कोहणे होतिउं णायभासी, एवं समे भवति अझंझपत्ते।"** किञ्च—**ओवातकारी य,** यथोद्दिष्टदोषरहितः **ओवातकारी,** चशब्दोऽत्र शिष्यदोषनिवृत्तये द्रष्टव्यः। **ओवातो** णाम आचार्य-निर्देशः, तद्धि एव कुरु मा चैवं कुरु तथा गच्छ आगच्छेति वा। अथवा सूत्रोपदेशः **उववायः। ह्रीः** लज्जा सयम इत्यनर्थान्तरम्, **ह्रीमान्** सयमवानित्यर्थः, लज्जते च आचार्यादीनां अनाचारं कुर्वन् लोकतश्च। **एगंतदिट्ठी य, एगंतदिट्ठी** नाम सम्मद्दिट्ठी असहायी। **अमायरूपी** नाम न छद्मना धर्मं गुर्वादींश्चोपचरति॥ ६॥

---

१ पावं काऊण सय अप्पाण सुद्धमेव वाहरइ। दुगुण करेति पावं वीय वालस्स मदत्त॥" इति॥ २ जगट्ठ° ख १। जयट्ठ° ख २ पु १ पु २ चूपा० वृपा०॥ ३ °सितं जो उ मुदीरइज्जा ख १। °सितं जे य उदीरएज्जा ख २ पु १ पु २॥ ४ अधे व से ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ५ °त्मा जय° चूसप्र०॥ ६ जे कोहणे होतिउं णायभासी, एवं समे भवति अझंझपत्ते चूपा०॥ ७ °हीए अन्नायभासी ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। °हिते अण्णाणभासी ख २॥ ८ हिरीमणे य ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ९ एगतसड्ढी य वृपा० दीपा०॥ १० अमाइरूवे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०॥ ११ प्रत्यापेक्षणादिमेरा नानुपा° चूसप्र०॥

५६२. से पेसले सुहुमे पुरिसजाते, जच्चण्णिते चेवं स उज्जुकारी ।
बहुं पि अणुसासिते जे तहच्ची[2], समे[3] हु से होइ अझंझपत्ते ॥ ७ ॥

५६२. से पेसले० वृत्तम् । **पेसलो** नाम पेसलवाक्यः, अथवा विनयादिभिः शिष्यगुणैः प्रीतिमुत्पादयति **पेशलः** । **सुहुमो** णाम सुहुमं भाषते अवहु च अविघुष्टं च नोच्चैः । **पुरुषजात** इति से पेशलः सूक्ष्मः स जात्याऽन्वितः । **स उज्जुओ, उज्जुगो** णाम संजमो, जं वा वुच्चति तं उज्जुगमेव करेति ण विलोमेति । सकारो दीपनार्थे द्रष्टव्यः, स पेशलः स सूक्ष्मः स अमोहः पुरुषो (? ष) जातः स जात्यादिगुणान्वितः **स उज्जुकारी** । **बहुं पि अणुसासिते,** यद्यपि कचित् प्रमादात् स्खलितो बह्वप्यनुशास्यते तथाप्यसौ **तथार्चिरेव** भवति, **अर्चिरिति** लेश्या, **तथेति** यथा पूर्वं लेश्या तथालेश्य एव भवति, पूर्वमसौ विशुद्धलेश्य आसीत् अनुशास्यमानोऽपि तथैव भवत्यतो । तथा च न क्रोधाद्वा मानाद्वा विशुद्धलेश्यो भवति । **समो** नाम तुल्यः, असौ हि समो भवत्यझञ्झप्राप्तैः, वीतरागैरित्यर्थः ॥ ७ ॥ इदाणिं माणदोसा सिस्सस्स वि आयरियस्स वि—

५६३. जे आ[4]वि अप्पं वुसिमं[5] ति मंता, संखाय वादं अपरिक्ख[6] कुज्जा ।
तवेण वा हं अहिते[7] त्ति णच्चा, अण्णं जणं पस्सति[8] बिंबभूतं[9] ॥ ८ ॥

५६३. जे आवि अप्पं वुसिमं ति णच्चा (मंता)० वृत्तम् । य इत्यनिर्दिष्टनिर्देशः । **वुसिमं** संय[म]मयमात्मानं **वुसिमं ति मत्वा,** अह सप्तदशप्रकारसंयमवान् **मत्वा** नाम ज्ञात्वा । **संखाए** ति एवं गणयित्वा, अथवा **संख्या** इति ज्ञानम्, ज्ञानवन्तमात्मानं मत्वा । वदनं **वादः,** किं वदति ?, कोऽन्यो मयाऽद्यकाले संयमे सदृशः सामाचारीए वा ? । **अपरिक्ख** णाम अपरीक्ष्य भणति रोस-पडिणिवेस-अकयण्णुताए वा, अथवा मानदोषादपरीक्ष्य वदति । **माणदोसो** णाम जं जं मदं करेति त त उवहणति । **तवेण वा हं अहिते त्ति णच्चा,** षष्ठादीनां तपसां कोऽन्यो मया सदृशो भवतामोदन-मुण्डानाम् ? । **बिंबभूतमिति** मनुष्याकृतिमात्रम्, द्रव्यमेव च केवलं पश्यति न तु विज्ञानादिमनुष्यगुणानन्यत्र प्रतिमन्यते । अथवा–"**चिंध[भूत]मिति**" लिङ्गमात्रमेवान्यत्र पश्यति, न तु श्रमणगुणान् **उदकचन्द्रकवत् कूटकार्षापणवच्चेत्यादि** ॥ ८ ॥

त एवंविधाः शिष्याः गुणहीनाः अशीले अशान्तौ च वर्तन्ते, सच्छीलाच्च प्रलीयन्ते । केण ?—

५६४. एगंतकूडेण तु[10] से पलेति, ण विज्जती मोणपदंसि[11] गोते ।
जे माणणऽट्ठेण विउक्कसेज्जा, वसु[12] पण्णऽण्णतरेण अवुज्झमाणे ॥ ९ ॥

५६४. एगंतकूडेण तु[13] से पलेति० वृत्तम् । सयमातो पलेऊण पुनर्जन्मकुटिले संसारे पुनः पुनर्लीयन्ते **प्रलीयन्ते** । यतश्चैवं तेण **ण विज्जती मोणपदंसि गोते, पदं** नाम स्थानम्, मुनेः पद **मौनपदम्,** संयमस्थानमित्यर्थः, **गोते** त्ति गारवः, संयमस्थानं प्राप्य स न कार्य इति, अथवा **गोत्रमिति** अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि तत्रासौ गोते ण विद्यते । किञ्च–**जे माणणऽट्ठेण विउक्कसेज्जा,** माननं एवार्थः माननार्थः, मानप्रयोजनः माननिमित्त इत्यर्थः, विविधं उत्कर्षं करोति, **वसु** त्ति संयमेण **विउक्कसति** अप्पाणं । **पण्णऽण्णतरेण** वा, प्रज्ञानेन अन्यतरेण वा, **प्रज्ञानं** ज्ञानं नाम सूत्रमर्थं उभयं वा, ममाहि (? मम हि) कंट्ठोट्ठविप्पमुक्कं विशुद्धं सुत्तं, अर्थग्रहणपाटवविस्तरतश्चैतान् कथयामि लोक-सिद्धान्तवेत्ताऽहम्[14], किमन्यैर्जनैः ? मृगास्त्वन्ये चरन्ति चन्द्राधस्ताद्वा भ्रमन्ति **अवुज्झमाणे** त्ति आत्मोत्कर्षदोषम् ॥ ९ ॥ किञ्च—

---

१ ०व सुउज्जुयारे ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । ०व सुउज्जुगारे ख १ । ०व सुउज्जुचारे चूपा० ॥ २ तहच्चा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ समेह से पु १ ॥ ४ यावि ख १ ख २ पु १ ॥ ५ वसुमं ति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ ०रिच्छ कु० ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ सहिते त्ति मता खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सधिते पु १ ॥ ८ पासति ख १ ॥ ९ चिंधभूतं चूपा० ॥ १० य ख २ पु १ पु २ ॥ ११ गुत्ते ख २ पु १ पु २ । णाते ख १ ॥ १२ वसुमण्णतरेण० खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ तु पेसले० वृत्तम् चूसप्र० ॥ १४ ०न्तावञ्भाहम् चूसप्र० ॥

५६५. जे माहणे[1] खत्तियजाइए[2] वा, तहुग्गपुत्ते[3] तह लेच्छवी[4] वा।
जे पव्वईए[5] परदत्तभोई[6], गोतेण जे थब्भति[7] माणबद्धे ॥ १० ॥

५६५. जे माहणे० वृत्तम्। माहण इति साधुरेव, जो वा पूर्वं ब्राह्मणजातिरासीत्। क्षत्रियो राजा तत्कुलीयोऽन्यतरो वा। उग्ग इति लेच्छवीति च क्षत्रियाणामेव गोत्रभावः। अन्ये च केचिद् द्विजाद्याः प्रव्रजिताः। एवमादिजातिविसुद्धा जे पव्वईए परदत्तभोई, चइत्ताणं रज्ज रट्ठं च पव्वइतो, अथवा अप्पं वा बहुं वा चइत्ता पव्वइतो, परतो पापबद्दत्तमेषणीयं च भुङ्क्ते, शेषैरन्यैः सर्वैरपि संयमगुणैः युक्तोऽसावपि तावद् जो गोतेण जात्यादिना स्तभ्यते, स्वरूपतो जो कोढ हरिएसबलत्थाणीयो मेतज्जत्थाणीयो वा। अन्यतरं वा एवंविधं द्रमकादिप्रव्रजित निन्दति। अथवा जे माहणा खत्तिया अदुवा उग्गपुत्ता अदु लेच्छवी वा जे पव्वइता, प्रव्रजिता अपि भूत्वा शिरस्तुण्डमुण्डनं कृत्वा परगृहाणि भिक्षार्थमटन्तः मानं कुर्वन्तीत्यतीव हास्यम्, कामं मानोऽपि क्रियते यद्यसौ श्रेयसे स्यात् ॥ १० ॥

५६६. ण तस्स जाती व कुलं व ताणं, णऽण्णत्थ विज्जा-चरणं सुचिण्णं।
णिक्खम्म से सेवतिऽगारिकम्मं[8], णं से पारके होति विमोक्खणाए[9] ॥ ११ ॥

५६६. ण तस्स जाती व कुलं व ताणं० वृत्तम्। जाति-कुलयोर्विभाषा मातृसमुत्थेत्यादि। त्राणमिति न संसारपरित्राणं, कर्मनिर्जरेत्यर्थः। नान्यत्रेति, विद्याग्रहणाद् ज्ञान-दर्शने गृहीते, चरणग्रहणात् संयम-तपसी। णिक्खम्म से सेवतिऽगारिकम्मं, स इति जाति-कुलविकत्थनः, अकारिणं कर्म अकारिकर्म, तद्यथा—अहं जात्यादिसुद्धो, न भवानिति, ममकारा-ऽहङ्कारौ वा इत्यादि अगारिकर्म। नासौ पारको भवति धर्म-समाधि-मार्गाणां विमोक्षस्य वा, अथवा नाऽऽत्मनः परेषां वा तारको भवति ॥ ११ ॥ किञ्च—

५६७. "णिगिणे वि या भिक्खु सुलूहजीवी[10], जे गारवं होति सिलोगगामी।
आजीवमेतं तु अबुज्झमाणे[11], पुणो पुणो विप्परियासुवेति[12] ॥ १२ ॥

५६७. णिगिणे उ० वृत्तम्। णिगिणे वि या भिक्खु सुलूहजीवी, णिगिणो नाम द्रव्याचेलः। लूहो सयमः, तेन जीवति अन्तप्रान्तेन, लूहेति वा तेनैव रूक्षजीवितेन गर्वितो भवति, न च समो भवति अरक्त-द्विष्टैरिति, न वा अझञ्झाग्रान्तैः समो भवति। आजीवमेतं तु अबुज्झमाणो, "जाती कुल गण कम्मे सिप्पे आजीवणा तु पचविधा।" [पिण्डनि० गा० ४३७] 'जात्या सम्पन्नोऽहम्' इति मान करोति, प्रकाशयति चाऽऽत्मानं स्वपक्षे परपक्षे, तथा चैनं कश्चित् पूजयति एषा हि आजीविका भवति मदद्दोषश्च, अबुज्झमाणे[13] पुणो पुणो चाउरते ससारकंतारे विपर्यासो नाम जाति-मरणे, किमङ्ग पुण जो सव्वसो चेव मुक्कधुरो लिङ्गमात्रावशेषः? सोऽनन्तकालमटति ॥ १२ ॥

जमेते दोसा समाधिमावातमर्मूसताण[14] आयरियपारिहावीणं तस्मादिमैः शिष्यगुणैर्भाव्यम्। तं जधा—

५६८. जे भासवं भिक्खु सुसाहुवादी, पणिधाणवं[15] होति विसारदे[16] य।
आगाढपण्णे सुयभावितप्पा[17], अण्णं जणं पण्णसा परिहवेज्जा ॥ १३ ॥

५६८. जे भासवं० वृत्तम्। सत्यभाषावान् धर्मकथालब्धियुक्तो वा भाषावान्। सुट्ठु साधु वदति सुसाधुवादी, मृष्टाभिधानो वा क्षीर-मध्वाश्रवादि। पणिधाणवं ति "से कालण्णे वलण्णे" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ५ सू० ३] तथा

---

१ °हणे जाइए खत्तिए वा पु १ पु २॥ २ °जायए ख २॥ ३ तह उग्ग° ख १ ख २ पु १॥ ४ लेच्छती ख १। लेच्छए ख २ पु १ पु २॥ ५ पव्वतिए ख १। पव्वइते ख २ पु १॥ ६ °त्तभोगी ख १॥ ७ वज्झति पु १॥ ८ लेच्छतीति वा०॥ ९ °गारिअगं ण वृ०। °गारिकम्मं ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा० दी०॥ १० ण से पारए होति विमोयणाए ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। ण से परे होति विमोयणाए ख २॥ ११ णिर्किचणे भिक्खु सु° ख १ पु १ पु २ वृ० दी०। णिगिणेह भिक्खू उ सु° ख २॥ १२ °रितासु° ख १॥ १३ अपुज्झमाणे चूसप्र०॥ १४ अमृपतामित्यर्थ॥ १५ पडिभाणवं चूपा० वृ० दी०। पडिहाणवं ख १ खं २ पु १ पु २॥ १६ °रते य ख १॥ १७ सुविभावितप्पा ख १ पु २ वृ० दी०। सुयभावियप्पा ख २ पु १॥

"केऽयं कं च णए पुरिसे" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ६ सू० ५]। अक्षिप्तः **पडिभणति** उत्तरं भाषते प्रतिभणतीति [**पडि**]**भाणवं**, औत्पत्तिक्यादिबुद्धियुक्तः सन् **प्रतिभानवान्** । अर्थग्रहणसमर्थो **विशारदः** प्रियकथनो वा, कश्चिद् धर्मकथी अपि वादी अप्य[त्य]र्थमागाढप्रज्ञः । [**श्रुतं**] वैशेषिकादिहेतुशास्त्राणि, तैरस्य भावितः आत्मा स भवति [**श्रुत**]**भावितात्मा** । **अण्णं जणं**, अण्णमिति यो न भाषावान् संस्कृतभाषी वा, असाधुवादी न मृष्टवाक्, [न] सम्प्रतिपत्तिकुशलः, न च लोक-लोकोत्तरशास्त्रेषु आगाढप्रज्ञेषु भावितात्मा, स एवंविधः कश्चित् **पण्णसा** णाम प्रज्ञया **परिभवति** ॥ १३ ॥

न वा भवान् (?), उच्यते—

५६९. एवं ण से होति समाधिपत्ते, जे पण्णसा[1] भिक्खु विउक्कसेति[2] ।
अधवा वि जे[3] लाभमदेण मत्ते, अण्णं जणं खिंसति बालपण्णे ॥ १४ ॥

५६९. **एवं**० वृत्तम् । **एवं ण से होति समाधिपत्ते**, एवमनेन प्रकारेण समाधिश्चतुर्विधः । समाधिप्राप्तो यः प्रज्ञया भिक्षुरात्मानं **विउक्कसेति** अह श्रेष्ठो नान्य इति । **अधवा वि जे लाभमदेण मत्ते**, अहं वत्थ-पडिग्गह-पीढ-फलग-सेज्जा-सथारगमादी अण्णस्स वि ताव दावेउं सत्तो, किमग पुण अप्पणो अप्पादितुं[4], तुमं सो[5] वा स[6]अण्ण-पाणगमवि ण लभसि, एवं सो **अण्णं जणं खिंसति बालपण्णे** । पुनरपि पठ्यते च—"अहवा वि जो जातिमदेण मत्तो, अण्णं जणं खिंसति बालपण्णे ।" एवं अण्णे वि मदा अवुत्ता वि भाणितव्वा ॥ १४ ॥ एतान् दोषान् मत्वा तेण—

५७०. पण्णामदं चेव तवोमतं च, णिण्णामए गोयमदं च भिक्खू ।
आजीवंतं[7] चेव चउत्थमाहु, से पंडिते उत्तमपोग्गले से ॥ १५ ॥

५७०. **पण्णा**० वृत्तम् । **पण्णामदं चेव तवोमतं च**, **प्रज्ञामदो** नाम अहं प्रज्ञासम्पन्नः, अहं तपस्वी नान्ये इत्यतः परं परिभवति, तदेतौ द्वावपि मदौ निचितं निश्चित वा नामयेत्, निनार्मत्वं नयेद्[8] **णिण्णामयेदित्यर्थः** । एवं **गोत्र**[**मद**]मपि चशब्दाद् अन्यान्यमपि **आजीवतं चेव चउत्थमाहु**, आजीवतेऽनेनेति **आजीवकः** मद इति वाक्यशेषः, मदेन वाऽऽजीवतीत्यर्थः । तद्यथा—जातिमदेनाजीवति, एवं कुलमदेनाप्याजीवति, नामनातीत्यनुवर्तत एवेति । **से** इति स पण्डितः, स्वकर्मभिः पूर्यते[9] गलति चेति पुद्गलः, **स पण्डितश्चोत्तमपुद्गलश्च**, उत्तमजीव इत्यर्थः । अथवा जो सोभणो **लाडाणं** सो पुद्गलो वुचति, जधा पुद्गलजम्मो पुग्गलजवत्ती ॥ १५ ॥

५७१. एताणि मदाणि विगिंच धीरे, ण[10] ताणि सेवेज्ज सुधीर[11]धम्मा ।
ते सव्वगोता[12]वगते महेसी, उच्चं अगोतं[13] च गतिं वयंति[14] ॥ १६ ॥

५७१. **एताणि मदाणि विगिंच धीरे**० वृत्तम् । **एतानि** यान्युद्दिष्टानि । **विगिंचेति** उज्झित्वा । अहमिदानीं जात्यादिमदस्थानानि हित्वा प्रव्रजितः । **धीः** बुद्धिः । **ण ताणि सेवेज्ज**, किमुक्तम् ? न जात्यादिभिरात्मानं उत्कर्षेत, यथा **पूर्वरतादीनि** न स्मर्यन्ते तथा तान्यपि, न वा पश्चाज्जातैर्बहुश्रुतादिभिरात्मानं उत्कर्षेत् । **सुष्ठु धीरधर्माणः** ज्ञानधर्मिणो गीतार्थाः । आसेवित्वा **ते सव्वगोतावगते महेसी**, **ते** इति धीरधर्माणः, सर्वगोत्राणि सर्वं वा कर्म गुप्यते येन तासु तासु गतिषु स्वकर्मोपगाः अतः कर्मैव गोत्र भवति । **उच्चं** नाम इहैव सर्वलोकोत्तमतां प्राप्य लोकाग्रं निर्वाणसञ्ज्ञकं **अगोत्रस्थानं** प्राप्नोति ॥ १६ ॥ स एवं सर्वमदस्थानरहितः—

---

१ **पण्णवं** खं १ वृ० दी० । **पण्णसा** ख २ पु १ पु २ ॥ २ °**क्कसेज्जा** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ **जे लाभमयावलित्ते**, खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । **जो जातिमदेण मत्तो** चूपा० ॥ ४ आपादितुमित्यर्थ ॥ ५ **सो व्वा स**° चूसप्र० ॥ ६ स्वान्नपानकमपि ॥ ७ °**वगं चेव** ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ °**मत्वान्नयेत्** चूसप्र० ॥ ९ **स्वर्यते** स० वा० मो० ॥ १० **णेताणि सेवंति सु**° ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ **सुवीर**° ख १ । १२ °**गोत्ताव**° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १३ **अगोत्तं** ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ १४ **उवेंति** खं १ ॥

५७२. भिक्खू मुंतच्चा[1] कइ दिट्ठधम्मे, गांमे[2] व णगरे व अणुप्पविस्सा।
से एसणं जाणमणेसणं चं[3], जो अण्ण-पाणे य अणाणुगिद्धे ॥ १७ ॥

५७२. भिक्खू मुतच्चा० वृत्तम्। अर्चयन्ति तां विविधैराहारैर्वस्त्राद्यलङ्कारैश्चेत्यर्चा, मृता इव यस्यार्चा स भवति **मृतार्चः,** मतो हि न शृणोति न पश्यतीत्यर्थः, एवं भिक्षुरपि शृण्वन्नपि न शृणोति, पश्यन्नपि न पश्यतीत्यादि इत्यतो **मुतच्चा।** संयमं वा मुतमुच्यते, अर्चेति लेश्या, सँ[4] मुतलेश्यो मुतच्चा, विसुद्धाओ सम्मत्ताओ अविसुद्धाओ असम्मत्ताओ। **क्वचित्** सूत्रे चार्थे च **दृष्टधर्मा,** दृष्टसारो दृष्टधर्मा इत्यर्थः। **क्वचिद् ग्रामे नगरे वा अनुप्रविश्य** गच्छवासी णिग्गतो वा **से एसणं जाणमणेसणं च,** स एसणा बातालीसदोसविसुद्धा, तव्विवरीता **अणेसणा।** अथवा **एसणा** जिणकप्पियाणं पंचविधा अलेवाडादि, हेट्ठिल्लगातो **अणेसणातो।** अथवा जा अभिग्गहिताणं सा **एसणा,** सेसा **अणेसणा। जो पुण अण्ण-पाणे य अणाणुगिद्धे** से णं सक्केति परिहरितुं, सो च्चेव य जाणगो ॥ १७ ॥ किञ्च—

५७३. अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू, बँहूजणे[5] वा तह एगचारी।
एगंतमोणेण विंयागरेज्जा[6], एगस्स जंतो गतिरागती य ॥ १८ ॥

५७३. अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू० वृत्तम्। **अरतिं** संयमे **रतिं** असंयमे त्ति, **अभिभूय** णामा अक्कमिऊणं। **बहुजणमज्झम्मि** गच्छवासी। **एगचारि** त्ति एगल्लविहारपडिवण्णगो। अरतिग्रहणाच्च परीसहग्गहणं। **एगंतमोणेण** तु एगंतसंयमेणं, एकान्तेनैव संजममवलम्बमानः पृष्टो वा किञ्चिद् वाकरोति, न तु यथा मौनोपरोधो भवति, संयमोपरोध इत्यर्थः। तद्यथा—"जा य भासा पाविका सावज्जा सकिरिया" [ ] किञ्च से वागरेति? उच्यते, **एगस्स जंतो गतिरागती य,** एक एव च परभवं यात्यात्मा, एक एव चाऽऽगच्छति। उक्तं हि—

एकः प्रकुरुते कर्म भुनक्त्येकश्च तत्फलम्। जायत्येको मृयत्येको एको याति भवान्तरम् ॥ १ ॥
[ ]

पत्तेयं जाति, पत्तेयं मरति ॥ १८ ॥ धर्मकथिकविशेषस्तु—

५७४. सयं समेच्चा अदु वा वि सोच्चा, भासेज्ज धम्मं हितँयं[7] पयाणं।
जे गरहिता सँणिदाणप्पयोगा[8], णं[9] ताणि सेवंति सुधीरधम्मा ॥ १९ ॥

५७४. सयं समेच्चा० वृत्तम्। स्वयं समेत्येति स्वयं ज्ञाता (ज्ञात्वा) तीर्थकरः, तच्छिष्यास्तु श्रुत्वा **भासेज्ज धम्मं हितयं पयाणं,** हितं इहलोक-परलोके य। किञ्च—**जे गरहिता सणिदाणप्पयोगा, गर्हिता** निन्दिता, "णिदाण बंधणे" सह णिदाणेण **सनिदानाः,** प्रयुज्जंत इति **प्रयोगाः** त्रिविधाः। अथवा कम्मकधा अधिकृता, तेन ये वाक्यंप्रयोगा[10] गर्हिताः, तद्यथा—सारम्भ-सपरिग्रहं कर्म प्रज्ञापयन्ति, कुतीर्थिनः प्रशंसन्ति—एतेऽपि हि कायक्लेशादीन् कुर्वते, सावद्यदानं वा प्रशंसन्ति, न वा तथाप्रकारं कधं कहेज्जा जेण परो अक्कोसेज्ज वा, त एवमादी वाग्दोषां धर्मजीवनोपरोधकत्वेन **न सेवन्ते सुधीरधर्माणः** कथकाः ॥ १९ ॥ किञ्च—

५७५. केसिंचँ[11] तक्काए अबुज्झभावं, खुंदं[12] पि गच्छेज्ज अंबुज्झमाणे[13]।
औंउस्स[14] कालातियारं वंघातं[15], लद्धाणुमाणे[16] तु परेसु अट्ठे ॥ २० ॥

५७५. केसिंच तक्काए अबुज्झभावं० वृत्तम्। केषाञ्चिदिति मिथ्यादृष्टीनां अबुद्धिभावं **अबुज्झभावं,** अबुध्यमानभावमित्यर्थः, नैनमपरियिच्छन्त खर-फरुसाइं भणेज्जा, मा भूत् क्षौद्रमपि गच्छन्ति, अबुध्यमानः क्षौद्रं च गतः **आउस्स**

१ मुयच्चा सुय-दिट्ठ° ख २ पु २। मुयच्चा तह दिट्ठ° पु १ वृ० दी० ॥ २ गामं व णगरं व ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ च, अण्णस्स पाणस्स अणा° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ सम्मुत° पु० स० ॥ ५ बहुंजणे वा अहवेग° ख १ ॥ ६ वितागं° ख १ ॥ ७ हितदं पदाण ख १ ॥ ८ सणिताणप्पतोगा ख १ ॥ ९ णेताणि पु २ ॥ १० °क्यशेपः प्र° वा० मो० ॥ ११ केसिंचि ख १ पु १ पु २ ॥ १२ खुड्ड पि ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १३ असद्दहाणे खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १४ आयुस्स ख १ ॥ १५ वघाते ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १६ °माणेण प° खं २ पु १। °माणे त प° खं १। °माणे य प° पु २ ॥

कालातियारं वघातं, यावद् येनाऽऽयुष्कालो निर्वर्तितः स तस्यायुःकालः, अतिचरणमतीचारः, आयुःकालस्य अतीचरणा वघातं देज्जा, पालक इव खन्दकस्य, येन चान्योपघातो भवति अथवा अप्फोसेज्ज वा । लद्धाणुमाणे तु अनुमीयतेऽनेनेत्यनुमानम्, लब्धं अनुमानं येन स भवति लब्धानुमानः । कथं लब्धम् ?, नेत्र-वक्त्रविकारेण हि अन्तर्गतं मनो गृह्यते । तं जधा—'केयि पुरिसे ? किं वा दरिसणं अभिप्पसण्णे ? किं वाऽस्य प्रियमप्रियं वा यदिदं कथ्यते ?' इत्येवं लब्धानुमानः परेसु कथयेत् येनाऽऽत्महितं भवति परहितं च इह परत्र च ॥ २० ॥ अथवाऽयमर्थः—

५७६. कम्मं च छंदं च विगिंच[1] धीरे, विणएज्ज तु सव्वतो[3] आतभावं[4] ।
रूवेहिं लुप्पंति भयावहेहिं[5], विज्जं गहाया तस-थावरेहिं ॥ २१ ॥

५७६. कम्मं च छंदं च विगिंच धीरे० वृत्तम् । येन कर्मणा जीवति न तेनैनं परिभाषेत्, यथा हे कोलिक !, न चैवैनं तेन कर्मणा निन्दयेदिति, यथा—चर्मकारो भवान् कोलिको वा, मा सो रुट्ठरुट्ठो णं गेण्हेज्ज । छन्दं चास्य जाणेज्ज, तद्यथा—दारुणो मृदुर्वा । अथवा छन्द इति येनाऽऽक्षिप्यते वैराग्येन शृङ्गारेण इतरेण वा, तथा—के अयं पुरिसे ? कं वा दरिसणमभिप्पसण्णे ? । स एवं ज्ञात्वा विणएज्ज तु सव्वतो आतभावं, आतभावो णाम मिथ्यात्वं अविरतिर्वा, ततो अप्रशस्तादात्मभावात् सर्वतो विनयेत्, एवं कालण्णे मातण्णे जे य खेअण्णे । त जधा रूवेहिं लुप्पंति, रूपं सर्वप्रधानं विषयाणाम्, तत्रापि स्त्रीरूपादि, तेष्वेव मुच्छमालुप्पते, इहापि तावत् जधा "सद्देसु उ०" [ज्ञाता० श्रु० १ अ० १७ सू० १३५ गा० १६ पत्र २३२] गाधा, किमु परलोए ? । एवमेतानिन्द्रियापायान् दृष्ट्वा विवज्जंति त्ति विद्यां गृहीत्वा ज्ञात्वेत्यर्थः, गृहीतविद्यः सन् त्रस-स्थावररक्षणं धर्मं कथयन्ति ॥ २१ ॥

तं पुण कधेन्ता न पूजा-सत्कारादीन्यालम्बनानि आलम्ब्य कथयेदित्यतो निवार्यते—

५७७. ण पूयणं चेव सिलोगकामी[6], पियमप्पियं[7] कस्सति णो करेज्जा[8] ।
सव्वे अणट्ठे परिवज्जयंते, अणाइले[9] या अकसाइ[10] भिक्खू ॥ २२ ॥

५७७. ण पूयणं चेव० वृत्तम् । ण पूया मे भविस्सती, सिलोगो णाम जसोकित्ती, यथा नानेन तुल्यः प्रज्ञप्तविस्तरो कथको मृष्टवाक्य इत्यादि । प्रियं च न कुर्यादसयतानां अन्यतरेण सावद्योपकारेण वा अप्रियम् । अथवा ममायं प्रियः अयं चाप्रिय इति, अथवा यो यस्य प्रियः स न तस्य पिशुनवचन-विद्वेषणादिभिः कुर्यात् कर्मकथाम् । किञ्च—सव्वे अणट्ठे अशोभना अर्थाः अनर्थाः, संयमोपरोधकृद् अर्थोऽनर्थः, अनर्थदण्ड इत्यर्थः । अणाइलो णाम अनातुरः क्षुधादिभिः परीषहैः । अकषायशीलः अकषायी ॥ २२ ॥

५७८. आहत्तधिज्जं[11] समुपेधमाणे, सव्वेहिं पाणेहिं[12] णिखिप्प दंडं ।
णो जीवितं णो मरणाभिकंखी, चरेज्ज[13] मेधावी वलयाविमुक्के ॥ २३ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ आहत्तहितं सम्मत्तं ॥ १३ ॥

५७८. आधत्तधिज्जं समुपेधमाणे० वृत्तम् । आधत्तधिज्जं धम्मं मग्गं समाधिं समोसरणाणि य यथावदुदितानि सम्यग् उदपेक्षमाणः । सव्वेहिं पाणेहिं णिखिप्प दंडं, दंडो नाम घातः । णो जीवितं णो मरणाभिकंखी असंजमजीवितं परीषहोदयाद्वा[14] मरणं । चरेज्ज मेधावी वलयाविमुक्के त्ति वलया माया, ताए विमुक्तः । एवं ब्रवीमि ॥ २३ ॥

॥ यथातथीयं त्रयोदशमध्ययनम् ॥ १३ ॥

---

१ विविंच ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ तो ख १ ॥ ३ सव्वहा वृ० दी० । सुव्वते ख २ पु १ ॥ ४ पावभावं वृ० । आयभावं ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा० दी० ॥ ५ भयारएहिं पु १ । भयावएहिं ख २ पु २ ॥ ६ °लोयगामी ख २ पु १ पु २ ॥ ७ पितमप्पितं ख २ पु १ ॥ ८ कहेज्जा ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ अणाउले ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । अणादिले ख १ ॥ १० °सादि भि° खं १ । °साय भि° ख २ पु १ पु २ ॥ ११ °त्तहीतं स° ख १ । °त्तहिज्जं ख २ पु १ पु २ ॥ १२ णिहाय डंडं ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १३ °कंखी, परिव्वदेज्जा वल° खं १ । परिव्वएज्जा वल° ख २ पु १ पु २ ॥ १४ °द्वा रमण पु० स० । °द्वा रमणं वा० मो० ॥ १५ मया तए वमुक्तः चूसप्र० ॥

१४

[चोद्दसमं गंथज्झयणं]

अज्झयणाभिसंबंधो–वलयाविमुक्को त्ति भावगंथविमुक्को त्ति अभिहितः, सो पुण ग्रन्थो इह वण्णिज्जति, एस संबंधो। तस्स चत्तारि अणुओगद्दाराणि। अत्थाहिगारो–गंथो जाणिऊण विप्पयहितव्वो, पसत्थभावगंथो य गच्छेतव्वो। णामणिप्फण्णे **ग्रन्थे**। तत्थ—

गंथो पुव्वुद्दिट्ठो दुविधो सिस्सो[1] य होति णायव्वो।
पव्वावण सिक्खावण पगयं सिक्खावणाए उ ॥ १ ॥ १२० ॥

गंथो पुव्वुद्दिट्ठो दुविधो॰ गाधा। गंथो दुविधो–दव्वे भावे य, जधा **खुड्डागणियंठिज्जे** [उत्तरा० अ० ६ नि० गा० २४०-४२]। भावगंथो पुव्वुद्दिट्ठो। तं पुण गंथं जो सिक्खइ सो सिक्खउ त्ति वा सेहो त्ति वा सीसो त्ति वा वुच्चति। सो पुण दुविधो–सहत्थपव्वाविता सिक्खविता। तत्थ सिक्खावणासिस्सेण अधियारो ॥ १ ॥ १२० ॥

*** सो सिक्खगो तु[2] दुविधो गहणे आसेवणे[3] य बोधव्वो।**
गहणम्मि होति तिविहो सुत्ते अत्थे तदुभये य ॥ २ ॥ १२१ ॥

*** आसेवणाए दुविधो मूलगुणे चेव उत्तरगुणे य।**
मूलगुणे पंचविधो उत्तरगुणे[4] बारसविधो तु ॥ ३ ॥ १२२ ॥

मूलगुणे पंचविधो पाणातिवायवेरमणादि। प्राणातिपातविरमणं ज्ञात्वा तमेव आसेवते, करोतीत्यर्थः। एवं **उत्तरगुणेसु** वि। ते य द्वादसविधमासेवंते ॥ २ ॥ ३ ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

एष हि शिष्यः आचार्यं प्रति भवति तेनाऽऽचार्योऽपि द्विविधः—

आयरिओ[5] पुण दुविधो पव्वावेंतो य सिक्खवेंतो य।
सिक्खावेंतो दुविधो गहणे आसेवणे चेव ॥ ४ ॥ १२३ ॥

आयरिओ पुण दुविधो॰ गाधा। पव्वावेंतो य सिक्खवेंतो य। पव्वावेंतो णाम जो दिक्खेति। **सिक्खावेंतो दुविधो–गहणे आसेवणे** [चे] व ॥ ४ ॥ १२३ ॥

गाधेंतो[6] वि य तिविधो सुत्ते अत्थे य तदुभये चेव।
आसेवणाए[7] दुविधो मूलगुणे उत्तरगुणे य ॥ ५ ॥ १२४ ॥

॥ गंथो सम्मत्तो ॥ १४ ॥

गाधेंतो वि य तिविधो॰ गाधा। गहणे तिविधो–सुत्तं गाहेति अत्थं गाहेति उभयं गाहेति। **आसेवणाए दुविधो मूलगुणे उत्तरगुणे य**, मूले पंच, त जधा–पाणातिवायवेरमण सेवावेति, कारयतीत्यर्थः। उत्तरगुणे तवं दुवालसविधं आसेवावेति ॥ ५ ॥ १२४ ॥ णामणिप्फण्णो गतो। सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं। स एवमाधत्तधिए धम्मे ट्ठितो—

५७९. गंथं विधाय इह सिक्खमाणो, उत्थाय सुबंभचेरं वसेज्जा।
ओवातकारी विणयं सुसिक्खे, जे छेगे विप्पमादं ण कुज्जा ॥ १ ॥

---

१ सीसो त ख १॥ २ य ख २ पु २॥ ३ °सेवणाए नायव्वो ख १ पु २ वृ०। °सेवणे य णायव्वो ख २॥ ४ °गुण ख २ पु २॥ ५ °ओ वि य दु° ख १ खं २ पु २ वृ०॥ ६ गाहावेंतो तिविहो ख १ ख २ वृ०॥ ७ मूलगुण उत्तरगुणे दुविहो आसेवणाए उ ख १ ख २ पु २ वृ०॥ ८ इति चूपा०॥

५७९. [1]गंथं विधाय इह सिक्खमाणो० वृत्तम् । सावद्यं द्रव्यग्रन्थः, प्राणातिपातादि मिथ्यात्वादि अप्पसत्थभावग्रन्थं च विसेसेणं हित्वा विधाय; पसत्थभावग्रन्थं तु णाण-दंसण-चरित्ताइं आदाय, खयोवसमियं णाणं कस्सइ पुव्वादत्तं भवति, किंचिदादाय पव्वयति आदानार्थम्, खाइगस्स तु णियमादाय । दर्शनं त्रिविधम्, तस्यापि कस्यचिदादानाय, केनचित् [2]पूर्वेनादत्तेन क्षायोपशमिकेन, पूर्वगृहीतस्य तु आदानार्थं वुद्ध्यपेक्षम् । चरित्रस्य तु त्रिविधस्याप्यादानाय, प्रशस्तभावग्रन्थे[3]नाये(? नोपेत इ)त्यर्थः तेनात्रात्मानं ग्रथयति । इहेति इह प्रवचने । इति च पठ्यते उपप्रदर्शनार्थः । एवं दुविधाए सिक्खाए सिक्खमाणो उत्थायेति प्रव्रज्य सोभणं वंभचेरं वसेज्जा सुचारित्रमित्यर्थः, गुप्तिपरिसुद्ध वा मैथुनं वंभचेरं वुच्चति, गुरुपादमूले जावज्जीवाए जाव अब्भुज्जतविहार ण पडिवज्जति ताव वसे । ओवातकारी णिद्देसकारी, जं जं वुच्चति तं तं सिक्खति गहणसिक्खाए, सुट्ठु वि सिक्खितं च आसेवणसिक्खाए अपडिकॆ[4]खल्लेंतो जे छेगे विप्पमादं ण कुज्जा, यश्छेकः स विप्रमादं प्रमादो नाम अनुद्यमः, [विप्रमादः] यथोक्तकरणम्, यथाऽऽतुरः सम्यग्वैद्योपपातकारी शान्तिं लभते एवं साधुरपि सावद्यग्रन्थपरिहारी पापकर्मभेषजस्[5]थानीयेन प्रशस्तभावग्रन्थेन कर्मामयशान्तिं लभते ॥ १ ॥

जो पुण एगल्लविहारपडिमाए अप्पज्जत्तो, गच्छम्मि केयि पुरिसे अविदिणि(?ण्णे) णिगच्छंति अवितीर्णश्रुतमहोदधी, यद्वा नासौ तीर्थकरादिभिर्विधत्तः तस्स दुज्जादादी दोसा भवंति, इमे चान्ये । सूत्रम्—

५८०. जधा दि[6]या पोतमपत्तजातं, [7]सवासगा पवितुं मण्णमाणं ।
तमचाइ[8]तं तरुणमपक्खगं वा, ढंकादि अवत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

५८०. जधा दिया० वृत्तम् । पोतमपत्तजातं सवासगा पवितुं मण्णमाणं, सवासगाद् गर्भादण्डाच्च द्विर्वा जातो द्विजः । पततीति पोतः । पतन्तं त्रायन्तीति पतत्राणि पिच्छानीत्यर्थः, नास्य पत्राणि जातानि अपत्रजातः । सवासगा पवितुं प्लातुं तमचाइ[तं] तरु[णम]पक्खगं वा सवासगातो उड्डी(?ड्डी)णं पुणो उड्डेतुमसक्केन्तं, ढङ्कः पंखी, ढङ्क आदिर्येषां ते भवन्ति ढंकादिणो अन्यतराः, अव्यक्तगम इति अपर्याप्त, हरेज्ज वा, पिवीलिकाओ व णं खाएज्ज, मारेज्ज वा णं चेडरूवाणि घाडेज्ज वा, अपि काकेनापि ह्रियते ॥ २ ॥ एष दृष्टान्तः । सूत्रेणैवोपसंहारः—

५८१. एवं [10]तु सिक्खे वि अपुट्ठधम्मे, णिस्सारं वुसिमं मणमाणो ।
दियस्स छावं व अपत्तजातं, हरिंसु णं पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥

५८१. एवं तु सिद्धे (सिक्खे) वि अपुट्ठधम्मे० वृत्तम् । न स्पृष्टो येन धर्मः स भवति अपुट्ठधम्मे, अगीतार्थ इत्यर्थः । णिस्सारमिति इहलोकसुहं, णिस्सारं वुसिमं णाम चारित्र णिस्सार मणमाणो, परलोअसुहं चाणिस्सारं मण्णमाणो, दियस्स छावं व स एव द्विजः—पक्षी चटिकादीनामन्यतमः, छावगं नाम पिल्लगं, अपत्रजातं अपक्षजातं हरिंसु हरिंति हरिस्सति वा, त्रैकाल्यदर्शनार्थं तीतकालग्रहणम् । पापो येषां धर्मः—मिथ्यादर्शनं अविरतिश्च ते पापधर्माः भिक्षुकादीनि तिण्णि तिसट्ठाणि पावादियसताणि विप्परिणामेऊण हरंति । तद्यथा—जीवाकुलत्वाद् दुःसाध्या अहिंसा, दुःखेन च वो धर्मः, इह तु सुखेन शुचिवादिनोऽपि द्विपन्ति आमघटवदित्येवं कुप्रवचनजलेन विनश्यन्ति । रायादिणो णियल्लगा वा णं विसएहिं णिमतेन्ति, इत्थी या इत्यादि । अनेक इति वहवः पापण्डिनो गृहिणश्च ॥ ३ ॥

यतश्चैते दोषाः अगृहीतग्रन्थस्य तेन तद्ग्रहणार्थं गुरुपादमूले—

५८२. ओसाणमिच्छे मणुए समाधिं, अणोसिते णंतकरे त्ति[11] णच्चा ।
ओभासमाणे दवियस्स वित्तं, ण णिक्कसे वहिता आसुपण्णे ॥ ४ ॥

---

१ गंधं वा० मो० ॥ २ पूर्वेन दत्तेन पूप्रप्र० ॥ ३ °ग्रन्थो आदानीयेत्यर्थः मु० ॥ ४ °डिकूलेन्ति जे स० वा० मो० ॥ ५ °स्थानीया । न प्रश° पूप्रप्र० ॥ ६ दिता पो° न १ ॥ ७ सावासगा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ °इउं त° ख २ ॥ ९ °पत्तजातं ढं° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० तु सेहं पि अपुट्ठधम्मं, णिस्सारियं वुसिमं मण्णमाणा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ इ खं २ पु १ पु २ । ति खं १ ॥

५८२. ओसाणमिच्छे० वृत्तम्। ओसाणमित्यवसानं जीवितावसानमित्यर्थः, अथवा ओसाणमिति स्थानमेव गुरुपादमूले। उक्तं हि—"आसवपदमोसाणं मल्लिस्स मणोरमे चेव।" [ ] मनुष्य इति यावन्मनुष्यत्वमस्य तावदिच्छति वसितुं अगिलाए समाधिं मण्णमाणोऽनवबुद्धोऽवग्रहवत्, समाधिरुक्ता, तमाचार्यसकाशादिच्छति। अन्यत्रापि हि वसन् जो गुरुणिद्देशं वहति स गुरुकुलवासमेव वसति, अनिर्देशवर्त्ती तु सन्निकृष्टोऽपि दूरस्थ एव, लोकेऽपि सिद्धा प्रत्यक्ष-परोक्षासेवा। आह च—"काम-क्रोधावनिर्जित्य, किमारण्य करिष्यसि ?।" [ ] कालगतेऽपि गुरौ असहायेन गीतार्थेन चान्यत्र गन्तव्यम्। स्यात्—को दोषोऽनधिकरणायितस्य ? अणोसिते णंतकरे त्ति णच्चा, ण उषितः गुरुकुलेहिं अनुषितः न भवस्यान्तकरो भवति, वालुङ्कवैद्यदृष्टान्तः [बृहत्क० भाष्य गा० ३७६ पत्र १११], गुरुसमीपे तु स्खलितोऽपि पुनर्विशोध्यते। कया मेरयाऽऽवासे ? ओभासमाणे दवियस्स वित्तं, ओभासितं णाम राग-द्वेषरहितत्वात् तीर्थकर एव भगवान्, 'ज्ञानधना हि साधवः' इति कृत्वा वित्तं ज्ञानमेव, ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि वा। अथवा तं दविगवित्तं प्रकाशयति—वादी वा धम्मकथी वा विसुद्धचरित्रो वा तपस्वी वा। तद् यावदाचार्यसमीपे विद्यते ताण ण णिक्कसे बहिता, असावपि तावद् वशको गुरुमुपजीवति, आचार्यवज्रवद् गुर्वनुज्ञातो णिक्कसे, मज्जातातो वा बहिता ण णिक्कसे, विषय-कषायाभ्यां वा ह्रीरमाणमात्मानं अवभासते अनुशासतीत्यर्थः, मा एवं कुरु यावदित्यर्थः। निवार्यमाणं चात्मानमिच्छति गुर्वादिभिः, आशुप्रज्ञ इति क्षिप्रप्रज्ञः क्षण-लव-मुहूर्तप्रतिबुध्यमानता ॥ ४ ॥ तथा "किं मे कडं किं व मे किच्च सेसं०" [ ] प्रमादं च गत्वा आशु प्रतिनिवर्त्तते किल, सप्रमाद वा तत्र विषय-प्रमादनिवृत्तये इत्यपदिश्यते—

५८३. सद्दाइ सोच्चा अदु भेरवाइ, अणासए तेसु परिव्वएज्जा।
णिद्दं च भिक्खू ण पमादएज्जा, कहं कहं वा वितिगिच्छतिण्णे ॥ ५ ॥

५८३. सद्दाइ सोच्चा अदु भेरवाइ० वृत्तम्। तद्यथा—वन्दन-स्तुत्याशीर्वाद-निमन्त्रणादीन् तथोपसेवनादीनि, येन आदिग्रहणं करोति तेन ज्ञायते यथैतानि स्तुत्यादीनि शब्दजातानीह सन्तीति। भयं कुर्वन्तीति भैरवाणि, तद्यथा—खर-फरुस-णिट्ठुर-भैरवादीनि सद्दाणि सोच्चा, वाक्यशेषादभैरवाणि, वाक्यशेषादिति न ज्ञाप्यते, वाशब्दादभैरवान्, अथवा अभैरवाणि। अनाश्रयो नाम अनाश्रवः तेषु भवेत्, अथवा आश्रय इति स्थानम्, न राग-द्वेषाश्रय इत्यर्थः। अनुभूतेषु वा। एवं जाव फरुसाणि फुसित्ता अदु भेरवाणि, अपि चोलपट्टए कप्पेसु वा सण्हेसु रागो ण कायव्वो, खर-फरुस-मइलेसु दोसो, जइ पंचहिं हवा सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेहिं एते इन्द्रियप्रमाददोषा इहैव। निद्राप्रमादनिवृत्तये तु णिद्दं च भिक्खू ण पमादएज्जा, दिवसतो ण णिद्दायति, रत्तिं पि दोण्हि जामे जिणकप्पी, एकान्तं पि तणुणिद्दो सरीरधारणार्थं स्वपिति, निद्रा हि परमं विश्रामणम्। चशब्दात् कषाय-[वि]कथा-मद्यप्रमादा अपि गृह्यन्ते। कथं कथमिति, किमहं पव्वज्जं ण णित्थरेज्ज ? समाधिमरणं ण लभेज्ज ?, अथवा कथं कथमिति सम्यगनुचीर्णस्यास्य किं फलमस्ति नास्ति ? इत्येवं वितिगिच्छां तरेज्ज, न कुर्यादित्यर्थः, धर्मकथां वा कथयन् वितिगिंछामप्पणा तरेज्ज, "तमेव सच्चं निस्सकं जं जिणेहिं पवेदितं।" [आचा० श्रु० १ अ० ५ उ० ५ सू० ३] अण्णेसिं च तधा कहेज्ज जधा वितिगिंछा ण भवति ॥ ५ ॥ उत्तरशिक्षाधिकारेऽनुवर्तमानो—

५८४. जे ठाणए या सयणा-ऽऽसणे या, परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते।
समितीसु गुत्तीसु अ आयपण्णे, वियागरेति य पुढो वदेज्जा ॥ ६ ॥

५८४. जे ठाणए या सयणा-ऽऽसणे या० वृत्तम्। स्थानेन साधुर्भवति पडिलेहित्ता पमज्जित्ता, जधा ठाणसत्तिक्काए [आचा० श्रु० २ चू० २-१]। सयणे सुवतो साधू साधुरेव भवति, सजग्गरो सुवति जधा ओहणिज्जुत्तीए। आसणे

१ पञ्चम-षष्ठसूत्रवृत्ते मूलसूत्रादर्शेषु वृत्ति-दीपिकयोश्च व्यत्यासेन वर्त्तते ॥ २ सद्दाणि सोच्चा अदु भेरवाणि, अणासवे ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ °द कुज्जा ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ कहची वि° पु १ पु २ ॥ ५ पी विइगिंछतिण्णे ख १ ख २ वृ० दी० ॥ ६ °तानिह चूसप्र० ॥ ७ °णओ या खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ आसुपण्णे ख २ पु १ पु २ ॥ ९ °गरेंते य खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

निसीयंतो पडिलेहणादि करेति पीढगादि च, जहिं काले आसणं गेण्हितव्वं जधा परिभुंजितव्वं, पलियंकादीओ य पंच णिसिज्जाओ आचरंतो साधुरेव भवति, परक्कमे रियासमितत्वात् साधुरेव भवति । **समितीसु गुत्तीसु अ** समितीओ रियासमितीमुक्का सेसाओ, गुत्तीओ वि कायगुत्तिं मोत्तुं, ठाण-सयणा-ऽऽसणग्गहणेणं कायगुत्तिरुक्ता । आगता प्रज्ञा यस्य स भवति **आगतप्रज्ञः**, समिति-गुप्तीश्च आसेवते । **वियागरेति** त्ति स एवं समितात्मा गुप्तश्च यदा तान् व्याकरोति धर्मं तदा सुखं प्रज्ञापयति, **पुढो** विस्तरशः कथयति, तस्य हि उद्यमानस्य ग्राह्यं वचो भवति विसुद्धं च वदति । स्थानादिषु वा योऽपि चिरं स्खलतीत्यर्थः, तं **पुढो वदेज्ज** पतिचोदिज्ज स्वयम्, यथा ते हि सुखं परान् वारयन्ति । अथवा **पुढो** त्ति परस्परं चोदयन्ति, न गारवेन मभैते वश्या अभियोज्या वा ॥ ६ ॥

सो पुण चोदंतो दुविधो—समानवयोऽसमानवयो वा, सर्वस्यापि सोढव्यमिति, तद्यथा—

५८५. डहरेण वुड्ढेणऽणुसासिते तुं, रातिणिएणावि समव्वएणं ।
सम्मं तगं थिरतो णाभिगच्छे, णिज्जंतए वा वि अपारए से ॥ ७ ॥

५८५. डहरेण० वृत्तम् । **डहरो** जन्म-पर्यायाभ्याम्, **वुड्ढो** वयसा, **अनुशासितः** कचित् चुक्क-स्खलिते पडिचोदितः, **रायणिओ** आयरिओ परियाएण वा पवत्तगाईण वा पञ्चानामन्यतमेन समवयो—परियाएण वयसा वा, एवमादीनां वचनं **सम्मं तगं थिरतो** तदिति चोदनावचनम्, **थिरं** नाम ज अपुणक्कारयाए अब्भुट्ठेति, **नाभिगच्छति** गृह्णामि, न मिच्छादुक्कडं करेति, कुंभारमिच्छादुक्कडं वा करेति, चोदितो वा पडिचोदति । **णिज्जंतए वा वि अपारए से,** यथा नदीपूरेण ह्रियमाणः केनचिदुक्तः—इदं तुरकाष्ठं अवलम्बस्व शरस्तम्बं वृक्षशाखां वा मुहूर्तमात्रं चाऽऽत्मानं धारय इत्युक्तो रुष्यति न वा करोति, यदुच्यते स हि **अपारगे** भवति, पारं गच्छतीति **पारगः**, एवं समिओ वि । अथवा निर्यत्रणामिवाऽऽतुरः न रागपारं गच्छति । अथवा **णिज्जंतग** इति णिज्जंततो, स हि आचार्यैर्मोक्षं प्रति नीयमानोऽपि सम्यगुपदेशैः पडिचोअणाहि य ण पारं गच्छति संसारस्य कषायवशात्, अहं पि चोइज्जामि डहरेहिं अप्पसुत्तेहि य ॥ ७ ॥

एस ताव सपक्खचोदणा । इदाणिं सपक्खे परपक्खे अ—

५८६. वियुट्ठितेणं समयाणुसट्ठे, डहरेण वुड्ढेणंऽणुसासिते तु ।
अब्भुट्ठिताए घडदासिए वा, अगारिणं वा समयाणुसिट्ठे ॥ ८ ॥

५८६. वियुट्ठितेणं समयाणुसट्ठे० वृत्तम् । **विउट्ठितो** णाम विग्गुतो, यथा व्युत्थितपरः—व्युत्थितोऽस्य विभवः सम्पत्, व्युत्थिताः संयमविप्रतिपन्ना इत्यर्थः । पार्श्वस्थादीनामन्यतमेन वा कचित् प्रमादाच्चातुर्येण वा त्वरितत्वरितं गच्छन् 'जधा तुब्भं ण वट्टति तुरितं गंतुं, कहं कीडगादीनि न हिंसध ? रुस्सिहित्तु वा । एवं मूलगुणेसु वा उत्तरगुणेसु वा विराधणाए अण्णतरेण वा समयेनाऽनुशास्तः—ण तुब्भं वट्टति एवं काउ, जुअंतरपलोअणेण होतव्वं । तं तु डहरेण वा महतेण वाऽनुशास्तः । **अब्भुट्ठिताए घडदासीए वा,** अतीव उत्थिता **अब्भुट्ठिता,** कुत्रोत्थिता ? दौःशील्ये, घटदासीग्रहणं तीसे वि ताव णोदिज्जंते ण रुस्सितव्वं, किं पुण जो तणुआणि वि सीलाणि धरेति ? । अथवा **अब्भुट्ठिता** सा दंडघट्टिता भुयंगीव धमधमेंती रुट्ठा णं भणेंती—तुब्भं वट्टति एवं कातुं ? । अधवा **अब्भुट्ठिते** त्ति पडिपक्खवयणेण गतं, चन्द्रगुप्तस्त्रीवत् पुरुषः, तद्यथा—दासदासी पतितेभ्योऽपि पतिता सा वि चोदंती ण वक्तव्या—सचा वि ताव तुमं का होसि ममं चोदेतुं ? । **अगारिणं** ति स्त्री-पुं-नपुंसकं वा । श्रावकेण अन्यतरेण वा एव चोदितो ण कुप्पेज्जा ॥ ८ ॥

५८७. ण तेसु कुप्पे ण त पव्वहेज्जा, ण यावि किंची फरुसं वदेज्जा ।
तधा करिस्सं ति पडिस्सुणेत्ता, सेयं खु मेयं ण पमाद कुज्जा ॥ ९ ॥

---

१ ऊ ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ °व्वदेणं ख १ ॥ ३ °सिट्ठे ख २ पु १ पु २ ॥ ४ °ण व चोतिते तु ख २ पु २ वृ० दी० । °ण व चोइतेसु खं २ पु १ ॥ ५ अचुट्टि° पु २ वृ० दी० । पचाट्टि° पु १ ॥ ६ कुज्झे ख १ खं २ पु २ वृ० दी० । कुप्पे वृपा० । कुट्ठे पु १ ॥ ७ °स्सुणेज्जा खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ पय खं १ ॥

५८७ [ण तेसु कुप्पे ण०] वृत्तम् । **कोपो** नाम मनःप्रद्वेषं पडुच । **ण त पव्वहेज्जा** कट्ठ-लोट्ठ-इट्टादीहिं[1] । **ण वा फरूसं वदेज्ज,** जधा स **मरु[ओ, र]त्तपडगो** नाम खोमडक्खाओ मुंडकुडुंवी, सो वि ताव छिण्णणासिगो ण किरि जाणति जेण तुब्भोवदिट्ठं, किमंग पुण तुमं ? । सपक्खेण वा ओसण्णेण चोदितो भणति–को तुमं ममट्ठे वा चोदेतुं भवति ? । **तधा करिस्सं** ति सपक्खे मिच्छामि दुक्कडं, परपक्खे **'ममैवैतच्छ्रेयः' एवं पडिसुणेत्ता न च प्रमादं कुर्यात्** ॥ ९ ॥

येन पुनश्चोद्यते यत्तुल्यगं तस्स पूया कातव्वा । तत्र दृष्टान्तः—

५८८. वणंसि मूढस्स जहा अमूढे[2], मग्गाणुसासंति हितं पयाणं[3] ।
तेणेव[4] मे इणमेव सेयं, जं मे वुधा सम्मऽणुसासयंति[5] ॥ १० ॥

५८८. **वणंसि मूढस्स०** वृत्तम् । **वनं** अरण्यं तत्र दिग्मूढस्य उत्पथप्रतिपन्नस्य वा अमूढः कश्चित् पुमान् अन्यो ग्रामो वा अदिसं गच्छतो मार्गं कथयति–यथा कथयामि तथा तथाऽयं मार्गः ईप्सितां भुवं गच्छति, अनुशासन्तो यदि उन्मार्गोपायान् दर्शयित्वा ब्रवीति–अयं ते मग्गो हितः क्षेमः, अकुटिलत्वादितः फलोवगादिवृक्ष-जलोपेतत्वाच्च । प्रजायन्ते इति प्रजाः मनुष्याः, प्रयान्ति वा येन तत् प्रयातं भवति मार्ग एव । **तेणेव मे इणमेव [6]सेयं,** तेण हि मूढेण मज्झं चेव एतं सेयं । **जं [मे] वुधा सम्मऽणुसासयंति,** जं मे एते वुधा मग्गविदू सम्मं उज्जुगं, न वा द्वेषेण, **अनुशासना** नाम मार्गोपदेशनैव । अथवा तेनैतत् तुल्यं तेनैव हि दिग्मूढेन ममैवैतच्छ्रेयो मार्गोपदेशनमजानतः, तस्य वचो गृह्येत । तथा शिष्येणापि ममैवैतच्छ्रेयः, किमिति ? उच्यते–**जं मे वुधा सम्मऽणुसासयंति, वुधाः** आचार्याः पुत्रस्येवोपदिशन्ति, न द्वेषेणापक्षरागेण वा । क्व ? स्खलितेषु अणुशासति ॥ १० ॥ एष दृष्टान्तः । उपसंहारः—

५८९. तेणावि[7] मूढेण अमूढयस्स, कायव पूया[8] सविसेसजुत्ता ।
एतोवमं[9] तत्थ उदाहु [10]धीरे, अणुगम्म अट्ठं[11] उवणेंति सम्मं ॥ ११ ॥

५८९. [**तेणावि मूढेण अमूढयस्स०** वृत्तम् ।] ततः **तेन** मूढेनेश्वरेण वा **अमूढस्येति** देशिकस्य, यद्यपि चण्डाल-पुलिन्द-गन्द-गोपालादि च तस्यापि तेन निस्तीर्णकान्तारेण सता शक्त्यनुरूपा **कायवा पूया सविसेसजुत्ता,** अहमनेन दुर्गात् श्वापदभयादिदोषेभ्यो मोक्षित इत्यतोऽस्य कृतज्ञत्वात् प्रतिपूजां करोमि । **विशेषयुक्ता** नाम यावती मे तेन पूजा कृता अतो अस्याधिक करोमि, तद्यथा–वस्त्रा-ऽन्न-पान-भोगप्रदान च राजा दद्यात् । उक्तो दृष्टान्तः । **एतोवमं तत्थ उदाहु धीरे, तस्मिन्निति** तस्मिन् मार्गोपदेशके । उदाहरति स्म **उदाहु धीराः** । **अणुगम्म अट्ठं** ति अणुगमेतूण अनुगम्य **उपनयन्ति,** तेनापि मिथ्यात्ववनाद् उत्तरन्तेन अभ्युत्थानादि सविशेषा पूजा कर्तव्या, यद्यप्यसौ चक्रवर्ती निष्क्रान्तः आचार्यश्चन्द्रमः-कुलादिजातः । द्रव्यपूजा आहारादि, [12]भावे भक्तिः वर्णवादश्च । वार्त्तास्त्वन्येऽपि दृष्टान्ताः । तद्यथा—

गेहे वि अग्गिजालाउलम्मि [13]जलमाण-डज्झमाणम्मि । जो बोधेति [14]सुवधुं सो तस्स जणो परमवंधू ॥ १ ॥
जध वा विससजुत्तं भत्तं [15]मिट्ठमिह भोत्तुकामस्स । जो विसदोसं साहति सो तस्स जणो परमवधू ॥ २ ॥

[ ] ॥ ११ ॥

---

१ °ट्ठ-हट्टादीहिं चूसप्र० । °ट्ठ-हत्थादीहिं मु० ॥ २ अमूढा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ पदाणं ख १ । पताणं ख २ पु १ ॥ ४ तेणावि मज्झं इण° ख १ वृ० दी० । तेणेव मज्झं इण° ख २ पु १ पु २ ॥ ५ समणुसा° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ सेय तेण विमूढेण अमूढयस्स तेण हि चूसप्र० । अग्रेतनसूत्रवृत्तप्रतीकरूपोऽय पाठोऽत्र लेखकप्रमादेन प्रविष्टोऽस्ति ॥ ७ अह तेण मू° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । ८ पूता ख १ ॥ ९ एवोवमं ख २ पु १ पु २ ॥ १० वीरे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ अत्थं उवणेति ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ भावभक्तिवर्णवादश्च । धार्तास्त्वन्ये° चूसप्र० ॥ १३ जह णाम डज्झ° वृत्तौ ॥ १४ सुयंतं सो वृत्तौ ॥ १५ निद्दमिह वृत्तौ ॥

अयमन्यः सौत्रः—

५९०. णेता जधा अंधकारंसि रातो, मग्गं ण जाणाति अपासमाणे।
सो सूरियस्स अब्भुग्गमेणं, मग्गं वियाणाति पगासितम्मि ॥ १२ ॥

५९०. णेता जधा अंधकारंसि रातो० वृत्तम्। नयतीति नीयते वा नेता। अन्धं करोतीति अन्धकारः मेघान्धकारं अचन्द्रा वा रात्रिः, अडवी या गर्त्ता-पाषाण-दरी-वृक्षदुर्गमा, से तस्यां पूर्वदृष्टमपि दण्डकपथं न पश्यति, कु[तोऽ]-सौरमार्गम्? । सो सूरियस्स अब्भुग्गमेणं स एव सूर्यप्रकाशाभिव्यक्तचक्षुर्जानकः मग्गं वियाणाति पगासितम्मि, प्रकाशितमिति जगति चक्षुषि वा ॥ १२ ॥

५९१. एवं तु सेहे वि अपुट्ठधम्मे, धम्मं ण जाणाति अबुज्झमाणे।
से कोवितो जिणवयणेण पच्छा, सूरोदये पासति चक्खुणा वा ॥ १३ ॥

५९१. एवं तु सेहे० वृत्तम्। सेहो पुव्वुत्तो दुविधो—गहणे आसेवणे य। अपुट्ठधम्मो णाम अदृष्टधर्मा, धम्मं ण जाणाति प्रवृत्ति-निवृत्तिलक्षणं धर्मं ज्ञानादि-प्राणातिपातादिषु यथासंख्यं, अथवा चारित्रधर्मं अप्रमादधर्मं वा। से कोवितो जिणवयणेण पच्छा, कोवितो णाम विपश्चित्कृतः गहणसिक्खाए कोवितो, आसेवितव्वं च ग्रहणशिक्षया ज्ञायते। सूरोदये पासति चक्खुणा वा देशिकोऽपि च पथं। अकृत्यान्निवर्त्य कृत्ये प्रवर्तते ॥ १३ ॥

गुरुकुलवासगुणात् प्रमादा-ऽप्रमादौ मूलोत्तरगुणौ च पश्यति। मूलगुणेसु तावदहिंसापथमपदिश्यते—

५९२. उड्ढं अधेयं तिरियं दिसासु, जे थावरा जे य तसा य पाणा।
सदा जतो तंसि परक्कमंतो, मणप्पयोसं अविकंपमाणो ॥ १४ ॥

५९२. उड्ढं अधेयं तिरिया दिसासु० वृत्तम्। उड्ढं अधेयं ति खेत्तपाणातिवातो। जे थावरा जे य तसा दव्वपाणादिवादो। सदा जतो त्ति कालप्राणातिपातः। तंसि परक्कमंतो मणप्पयोसं अविकंपमाणो त्ति भावपाणातिवातो। योगत्रय-करणत्रयेण एवं सीतालं भंगसतं पंचसु महव्वतेसु। दव्वादिचतुक्कं च सामान्येन सव्वासु जोएतव्वा। मणप्पदोसं पदोसेण वा विविधं कप्पयति विकप्पमाणो। एवं उत्तरगुणेसु वि दुविधा सिक्खा जोएतव्वा ॥ १४ ॥ यस्माच्चैते गुरुकुल-वासगुणाः—तत्राऽऽवसन् ज्ञानमधीत्य करतलामलकवद् लोकं पश्यति, व्रतेषु च स्थिरो भवति, ज्ञानगुणात्, तेन तज्जातम्—

५९३. कालेण पुच्छे समियं पयासु, आइक्खमाणो दविर्यस्स वित्तं।
तं सोयकारी य पुढो पवेसे, संखाणिमं केवलियं समाहिं ॥ १५ ॥

५९३. कालेण पुच्छे समियं पयासु० वृत्तम्। कालेनेति "काले विणए बहुमाणे०" [दशवै० नि० गा० १८६] णाणायारो सूयितो ति। सम्यगिति तिविधाए पज्जुवासणताए। प्रजायन्त इति प्रजाः, सम्यग्प्रजाभ्यः आइक्खमाणं (णो) "जधा पुण्णस्स कच्छइ तधा तुच्छस्स कच्छई" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ६ सू० ५] यथा ईश्वरनिष्क्रान्तस्य तथा पेलवनिष्क्रान्तस्यापि कथ्यते। दविओ णाम दोहि वि राग-दोसेहिं रहितो, भवान्तस्य तज्ज्ञानम्, ज्ञानधनानां हि साधूनां किमन्यद् वित्तं स्यात्? । स तु गीतत्थो पुच्छितव्वो, इतरो उप्पध पि देसेज्ज। तं सोयकारी य, तमिति यत् कथ्यते, श्रोतसि करोतीति श्रोतःकारी ग्रहीतेत्यर्थः, गृह्णाति। अथवा श्रोत्रेण गृहीत्वा हृदि करोतीति श्रोतःकारी, श्रुत्वा वा करोतीति श्रोतःकारी। पुढो पवेसे त्ति पृथक् पृथक् पुणो पुणो वा पवेसे हृदयं पुढो पवेसे, "सहस्रगुणिता विद्याः शतशः परिवर्तिताः।" [ ] पत्तेयं वा पत्तेय पवेसे पुढो पवेसे, त जधा—उस्सग्गे उस्सग्गं अववाते अववातं,

---

१ अपस्समाणे ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ सूरितस्सा खं २ पु २। सूरितस्स ख १ पु १ ॥ ३ °सियंसि ख १ ख २ पु २ ॥ ४ °यणे वि प° ख १ ॥ ५ चक्खुणेव ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ७ जते तेसु परिव्वएज्जा, मण° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ समतं ख २ ॥ ९ पदासु ख १। पतासु ख २ पु १ ॥ १० दवियस्स ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ संखाइमं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

एवं ससमये ससमयं परसमये परसमयं वा, अतिक्रान्ते अतिक्रान्तकालम् । सङ्ख्यायते येन तत् सङ्ख्यानम् । केवलिन इदं कैवलिकम् । समाधिरुक्तः ॥ १५ ॥

५९४. अस्सिं सुठिच्चा तिविधेण तायी[1], एतेसु या संति-निरोधमाहु ।
ते एवमक्खंति तिलोगदंसी, ण भूय[2] एतं ति पमादसंगं ॥ १६ ॥

५९४. **अस्सिं सुठिच्चा०** वृत्तम् । अस्मिन्निति यद् गुरुकुलवासे वसता श्रुतं गुणितं च, सुट्ठु स्थित्वा **सुठिच्चा,** दुविधाए सिक्खाए अप्पमादे समिति-गुत्तीसु अ एसकालं यथा साम्प्रतं तथैष्यकालमपि यावदायुः **एतेसु** त्ति एतेष्वेव समिति-गुप्त्यप्रमादेषु **धर्म्म-समाधि-मार्गेषु** च वर्त्तमानस्य **शान्तिर्भवति,** इहान्यत्र च सौख्यमित्यर्थः, सर्वकर्मशान्तिर्वा, शान्तस्य च सतः सर्वकर्म**निरोधो** भवति, अनाश्रव इत्यर्थः । अथवा समित्यादिषु अप्रमादस्थानेषु यान-चिट्ठोक्तानि तेसु वर्तमानस्य कर्मौघनिरोधो भवति । क एवमाख्याति ?, उच्यते, **ते एवमक्खंति, ते** इति ते तीर्थकराः, ज्ञान-दर्शन-चारित्रा-स्त्रयांस्त्रीन् लोकान् पश्यन्तीति **त्रिलोकदर्शिनः,** ऊर्ध्वादि वा त्रिलोकं पश्यति । तस्माद् गुरुकुलवासे वसतः समित-गुप्तस्य प्रमादरहितस्य **शान्तिर्भवति** कर्म**निरोधश्च** । तेन **ण भूय एतं ति पमादसंगं,** एतदिति यदुक्तं असमितित्वमगुप्तत्वं च । प्रमाद एव सङ्गः, संगो वा रथावक्खोरो मोक्खमग्गस्स । एवं गुरुकुलवासी **दवियस्स वित्तं** [सूत्र ५९३] ॥ १६ ॥

५९५. णिसम्म से भिक्खु समीहमट्ठं[3], पडिभाणवं होति विसारदे[4] य ।
आदाणमट्ठी वोदाण मोणं, उवेच्च सुद्धे[5] ण उवेति मारं ॥ १७ ॥

५९५. **णिसम्म से भिक्खु समीहमट्ठं०** वृत्तम् । **निशम्येति** गृहीत्वा गुणयित्वा, **निशम्य** वा सम्यक् पौर्वापर्येण **समीक्ष्य, अर्थमिति** श्रुतार्थं बन्ध-मोक्षार्थं वा । तास्तान् प्रति अर्थान् भातीति **प्रतिभा,** पभणति वा **पतिभा** श्रोतॄणा संशयोच्छेत्ता । **विशारदः** स्वसिद्धान्तजानकः । **आदाणमट्ठी** आदीयत इत्यादानम्, ज्ञानादीनि आदानानि, आदानेन यस्यार्थः स **आदानार्थी** । **वोदानं** विदारणं तपः । **मौनं** संयमः । **आदानार्थी वोदानं मौनं च उपेत्येति** प्राप्य दुविधाए सिक्खाए गुरुकुलवासी प्रमादरहितः **सुद्धे** त्ति निरुपधेन सम्यग्दर्शनाधिष्ठितेन वोदानेन मौनेन उपेत्य शुद्धेन, **न** प्रतिषेधे, **न उवेति** त्ति, **मारं** मरंत्यस्मिन्निति मारः–संसारः, उक्कोसेणं वा सत्तऽट्ठ भवग्गहणाइं मरेज्ज ॥ १७ ॥ एव सो **बहुस्सुतो** जातो जो वुत्तो **"अस्सिं सुट्ठिच्चा"** [सूत्र ५९४] यच्च पठितं–**"णिसम्म से भिक्खु समीहमट्ठं"** [सूत्र ५९५] देशदर्शनं कुर्वन्नभ्युद्यतमेगतरं प्रतिपत्तुकामेण वा गुरुणा आचार्यत्वे स्थापितः समीक्षितो वा, एके अनेकादेशात् अभिधीयते—

५९६. [6]संखाय धम्मं च वियागरेंति, बुद्धा हु ते अंतकरा भवंति ।
ते पारगा दोण्ह विमोयणाए, संसोधिगा[7] पण्हमुदाहरंति ॥ १८ ॥

५९६. **संखाय धम्मं च वियागरेंति०** वृत्तम् । **संखाए** त्ति धर्म ज्ञात्वा श्रुतं धर्मं वा कथयति, सिस्स-पडिच्छगाणं धर्मकथां च कथयति । अथवा **संख्यायेति** खेत्तं कालं परिसं सामत्थं चऽप्पणो वियाणित्ता परिकथयति । अथवा "के अयं पुरिसे ? कं च णये ?" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ६ सू० ५], अथवा **संख्यायेति** एतन्मात्रस्यायं श्रुतस्य योग्यः, अतः परं शक्तिर्नास्ति, सत्यां वा शक्तौ जत्तिय प्रचरति तत्तियं गहिय एवं **संख्याय** । अव्वोच्छित्तिकरे त्ति एवमादिभिः प्रकारैः सख्याय धम्मं वागरयंता [**बुद्धा**] बुद्धबोधितास्ते आचार्याः कम्माणं अंतं करेंतीति **अंतकराः,** अन्यांश्च कारयन्ति, यतः पारगाः । **ते पारगा दोण्ह विमोयणाए, ते** इति सख्याय धर्मं व्याकरयन्तः पारं गच्छतीति **पारगाः,** आत्मनः परस्य च दोण्ह वि विमोयणाए पारं गच्छति । **मोचनाः** ससारमोचनाः । कतरे ते ?, जं **संसोधिगा पण्हमुदाहरंति** सम्यक् समस्तं

---

१ ताती ख १ ख २ पु १ । ताई पु २ ॥ २ भुज्जमेतं ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ३ समीहियट्ठं वृ० दी० । समीहमट्ठं ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ४ °रते या ख १ । °रए या पु २ । °रते ता ख २ पु १ ॥ ५ सुद्धे ण उवेति मोक्खं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सुद्धे ण उवेति मारं वृपा० दीपा० ॥ ६ संखाए ख १ ॥ ७ °धियं प° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

वा सोधिया संसोधिया, पृच्छंति तमिति प्रश्नः, पूर्वापरेण समीक्षितुं आत्म-परशक्तिं च ज्ञात्वा द्रव्यादीनि च तथा "केऽयं पुरिसे" [आचा० श्रु० १ अ० २ उ० ६ सू० ५] त्ति परिचितं च सुत्तं कातूण—

आयरियादेसा धारितेण अत्थेण [[1]गुणिय]सरितेणं। तो संघमज्झयारे [2]ववहरितुं जे सुहं होति ॥ १ ॥
[व्यव० उ० ३ भा० गा० ३५९ पत्र ७१]

अच्छिद्दपसिण-वागरणा अकेवली केवली वा, रयणकरंडगसमाणा कुत्तियावणभूता कधा चोद्दस-दस-णवपुव्वी जाव दसकालियं ति ससाधितुं अवोच्छिन्नं करेति ॥ १८ ॥ तं पुण कधेतो—

५९७. णो [3]छादएज्जा ण य लूसिता वा, माणं ण सेवंति पगासए वा।
ण यावि पण्णे परिहास कुज्जा, [4]ण याऽऽसिसावाय [5]वियाकरेज्जा ॥ १९ ॥

५९७. **णो छादएज्जा०** वृत्तम्। मत्सरित्वेनार्थं **नो छादयेत्**, पात्रस्य धर्मस्य कथां कथयन् न सद्भूतगुणान् छादयेत्, न वा वायणायरियं छादयेत्। **लूसितं** भग्नमित्यर्थः। **लूसिता** णाम अवसिद्धान्तं कथयति सिद्धान्तविरुद्धं वा। **माणं ण सेवंति** प्रज्ञामानमाचार्यमानं वा सशयान् वाऽऽत्मनः परस्य वा छेत्तुं न मदं कुर्यात्, न वा **प्रकाशयेदात्मानम्** यथाऽहमाचार्यः कथको वहुश्रुतो वा। **ण यावि पण्णे परिहास कुज्ज** त्ति प्रज्ञावान् प्राज्ञः न चेदृशीं कथां कथयेद् येन श्रोतुरात्मनो वा हास्यमुत्पद्यते, अपरियच्छते वा परे अण्णधा वा वुज्झमाणे न प्रज्ञामदेन परिहास कुर्यात्, "यथा राजा तथा प्रजा" [ ] इति कृत्वा न सर्वत्रैव परिहास। **ण याऽऽसिंसावाय** त्ति "[6]शंसु स्तुतौ" तस्य आशीर्भवति, स्तुतिवादमित्यर्थः, न तद्दान-वन्दनादिभिस्तोपितो ब्रूयात्—आरोग्यमस्तु ते दीर्घं चाऽऽयुः, तथा सुभगा भवाष्टपुत्रा, इत्येवमादीनि न **व्याकरेत्**। एवं वाक्समितः स्यात् ॥ १९ ॥ किंनिमित्तमाशीर्वादो न वक्तव्यः? उच्यते—

५९८. भूताभिसंकाए दुगुंछमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं।
ण किंचिमिच्छे [7]मणुए पयासुं, असाहुधम्माणि ण [8]संठवेज्जा ॥ २० ॥

५९८. **भूताभिसंकाए दुगुंछमाणे०** वृत्तम्। मा भूद् भूतानि अभिसङ्केयुः सावद्याभिधायिनः अत इदमपदिश्यते—भूतानि यस्य सावद्यवचनस्य शङ्कन्ते न तेन वचनेन **णिव्वहे**, संयमे निर्गच्छेदित्यर्थः, न वाऽनेन वचनेन **णिव्वहे**, संयमं निर्गालयेदित्यर्थः। मन्त्र्यत इति **मन्त्रः** वचनम्, मन्त्र एव पद **मन्त्रपदम्**, अथवा मन्त्रा इति विद्या-मन्त्रादयो गृह्यन्ते, तेन **मन्त्रपदेन [न] निव्वहे**। गुप्यत इति **गोत्रं** संयमः सप्तदशविध अष्टादश च शीलाङ्गसहस्राणि इति, अस्माद् गोत्रान्न तद्विधं वचो ब्रूयाद् यत्र निर्वहेत्, षड् काया वा **गोत्रम्**, यत्र गुप्यते तान् न निर्वहेत्, **गोत्राद्** जीवितादित्यर्थः। तच्च गोत्रमाचरन् कथेन्तो वा **ण किंचिमिच्छे** ण कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगट्ठताए कधिज्ज धम्मं। **मनुष्य** इति स एव कथकः। प्रजा[यन्त] इति **प्रजाः**, यासां कथ्यते तासु **प्रजासु**, स्त्रियो वा प्रजाः, न कीर्त्तिमिच्छेत्। असाधूनां धर्माः तान् असाधुधर्मान् **ण संठवेज्जा**, ते च दर्प्प-मदा-ऽहङ्कारादय, अथवा न तत् कथयेद् येन असाधुधर्माणां "सन्धानं" भवति पचन-पाचनादीनाम्, असयतदानादि वा कुतीर्थिकान् वा प्रशंसति ॥ २० ॥ किञ्च—

५९९. हासं पि णो [9]संधए पाव[10]धम्मं, ओये [11]तहीयं [12]फरुसंऽभिजाणे।
णो तुच्छए [13]णो य पकंथएज्जा, अणाइले या अविरुद्धसेवी ॥ २१ ॥

---

१ गुणियऽखरिएण व्यवहारभाष्ये पाठ ॥ २ ववहरियव्वं अणिस्साए व्यवहारभाष्ये पाठ. ॥ ३ छादते णो वि य लूसतेज्जा, माणं ण सेवेज्ज पगासणं च ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ न याऽऽसियावाद ख २ पु २ वृ० दी०। ण आसिसावाद ख १ ॥ ५ °यागरे° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ °सिसा वयंति "शंसु चूसप्र० ॥ ७ मणुते ख २ पु १ पु २। मणुओ ख १ ॥ ८ संवदेज्जा ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। संधएज्जा चूपा० ॥ ९ संधये ख १। संधति खं २। संधते पु १ ॥ १० °धम्मे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ११ तहत्तं खं १। तहिंतं ख २ पु १ ॥ १२ फरुसं वियाणे ख १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ १३ णो च विकंथतिज्जा, अणाइले या अकसाइ भिक्खू खं २ पु १ पु २ वृ० दी०। णो वि पकंथदेज्जा, अणातिले या अकसादि भिक्खू ख १ ॥

५९९. **हासं पि णो संधए०** वृत्तम् । हास्येनापि न पापधर्मं सन्धयेत्—यथेदं छिन्दत भिन्दत वा खाद मोद वा, अथवा हास्येनापि न प्रशंसयेत् कुप्रवचनानि । शाक्यं ब्रुवते—अहो ! तुब्भं सुदिट्ठं जं वरचोज्जा वट्टंति, सुट्टु चेव धम्मं तुब्भे करेह । यद्यपि सोल्लुण्ठ तथापि न वक्तव्यम्, मा भूदन्येषां पात्रबुद्धिः स्यात्, गोमडं खज्जति गोचम्मेसु वधं । **ओये** त्ति राग-द्वेषरहितः, न विगंतव्वं सद्भूतम् । **फरुसं अभिजाणे** त्ति, राग-द्वेषबन्धनाभावात् **फरुषः** संयमः, कर्मणामनाश्रय इत्यर्थः, तथ्यं संयमम्, **अभिमुखं जानाति** यथा सो त्राग्दोपान्न विराध्यते, यथा वा वार्यते तथा च कथयति, अथवा कथयन् कथां लब्धिगर्वितो न भवति, नैवार्थपदं किञ्चिल्लब्ध्वा गर्वितो भवति, जधा तुच्छस्स कधेति तगहारगस्स वि तधा राज्ञोऽपि **प्रकथनो** नाम न धर्मकथित्वेनान्येन वा आत्मानं **कत्थयति** श्लाघयतीत्यर्थः, अपरिच्छंतं वा **नावकंथेति,** चमढयतीत्यर्थः, तथाऽन्येषामपि सयतानामुड्डुरुस्सती । अथवा **न तुच्छेना**ऽऽत्मानं पदेन प्रकन्थयति—यथाऽहमीदृशो अनन्यसदृशो वा । **अणाइले** त्ति न धर्मं देशमानो आतुरो भवति, चोदितो वा आकुलव्याकुलीभवति, अपरियच्छन्ते वा परे सिद्धान्ताविरुद्धानि सेवते इति **अविरुद्धसेवी,** न च विरुद्ध्यते तेन सह यस्य कथयति ॥ २१ ॥ किञ्च—

६००. संकेज्ज[1] **वा संकितभाव भिक्खू, विभज्जवायं च वियाकरेज्जा**[2] **।**
भासादुगं[3] **सम्मसमुट्ठिते**[4] **हि, वियागरेज्जा समयाऽऽसुपण्णे**[5] **॥ २२ ॥**

६००. **संकेज्ज वा किं पुण (वा संकित)भाव भिक्खू०** वृत्तम् । यच्छङ्कितमस्य ज्ञानादिषु तन्न कथयति, अपृष्टः पृष्टो वा शङ्केव **शङ्कितभावः**—एवं तावद् ज्ञायते, अतः परं जिना जानन्ति । **भावो** नाम ज्ञानम्, शङ्कितज्ञानमित्यर्थः, न च तद् भाषते कथयति वा येनान्यस्य शङ्का भवति । **विभज्यवादो** नाम भजनीयवादः । तत्र शङ्किते भजनीयवाद एव वक्तव्यः—अहं तावदेवं मन्ये, अतः परमन्यत्रापि पुच्छेज्जासि । अथवा **विभज्यवादो** नाम अनेकान्तवादः, स यत्र यत्र यथा युज्यते तथा तथा वक्तव्यः, तद्यथा—नित्या-ऽनित्यत्वमस्तित्वं वा प्रतीत्यादि । किं कथयति ? केन वा कथयति ?—सत्या असत्यामृषा च **भासादुगं सम्मसमुट्ठिते हि** पढम-चरिमाओ दुवे भासाओ **सम्मं समुट्ठिते,** ण मिच्छोवट्ठिते, जधा **उदाइमारगो,** चोदकबुद्ध्या वा वैतण्डिकाः, **वाकरेज्जा समये** त्ति सम्यग्, **आशुप्रज्ञः** उक्तः ॥ २२ ॥ किञ्च—

६०१. अणुगच्छमाणे वितधंऽभिजाणे, तहा तहा साहु अकक्कसेणं ।
ण कत्थई[6] **भास विहिंसइज्जा, णिरुद्धगं वा वि ण दीहइज्जा**[7] **॥ २३ ॥**

६०१. **अणुगच्छमाणे वितधंऽभिजाणे०** वृत्तम् । तस्यैवं कथयतः कश्चिद् ग्रहण-धारणासम्पन्नः यथोक्तमेवावितथं गृह्णाति, कश्चित्तु मन्दमेधावी **वितथंऽहिजाणति,** तकं मन्दमेधसं **तथा तथा** तेन प्रकारेण हेतु-दृष्टान्तोपसंहारैः यथा यथा प्रतिबुध्यते तथा तथा **साधु** सुष्ठु प्रतिबोधयेत् । न चैनं कर्कशाभिर्गिराभिरभिहन्यात्—धिग् मूर्ख ! किं किं तवार्थेन स्थूरबुद्धेः ?, एवं वाचाए कक्कसं, कायेनापि न क्रुद्धमुखः हस्त-वक्त्रौष्ठविकारैर्वा, मनस्तु नेत्र-वक्त्रविकारेण अनादरेण गृह्यते, सर्वथा **अकर्कशो** । किञ्च—**न** क्रुद्धवद् वाचं **क्वचित्** स्वसमये परसमये वा तथोत्सर्गा-ऽपवादयोः ज्ञानादिषु द्रव्यादिप्रज्ञापनायां वा **न कुत्रचिद् भाषां विहन्सेत्,** कर्कशः परुष-मृषावादादिदोषः । तस्य वाऽबुद्ध्यमानस्य श्रोतुर्न **कुत्रचिद् भाषां विहन्सेत्**—अहो ! भङ्गा लक्ष्यन्ते, न निन्देदित्यर्थः । **निरुद्धं** वाऽर्थमर्थाख्यानं वा न दीर्घं कुर्यात् अधिकार्थैः, "सो अत्थो वत्तव्वो जो अत्थो अक्खरेहिं आरूढो ।" [ ] । किञ्चित् सूत्रम्—

अप्पक्खरं महत्थ एक [चतु]भंगो जो जधा परूवेज्जा । हंदि ! महता चडगरत्तणेण अत्थं कधा हणति ॥ १ ॥

[ ] ॥ २३ ॥ किञ्च—

---

१ °ज्ज याऽसंकितभाव खं १ पु १ पु २ वृ० दी० । °ज्ज वा संकितभाव खं २ ॥ २ वितागरेज्जा ख १ ख २ पु १ ॥ ३ भासं दुयं ख २ ॥ ४ धम्मसमु° खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ५ समतासुपण्णे ख १ ख २ वृ० दी० । समताए पण्णे पु १ ॥ ६ कच्छई ख २ ॥ ७ दीहतिज्जा ख १ । दीहएज्जा ख २ पु १ ॥

६०२. समालवेज्जा पडिपुण्णभासी, णिसा[1]मियं समियाअट्ठदंसी ।
आणाए सि[2]द्धं वयणंऽभि[3]जुंजे, [4]कंखेज्ज या पावविवेग भिक्खू ॥ २४ ॥

६०२. **समालवेज्जा०** वृत्तम् । सोभणं संगयं वा **लवेज्जा । पडिपुण्णभासी** अट्ठ-अक्खरेहिं अहीनं अक्खलितं अमिलितं । **निसामियं** जधा गुरुसगासे निशान्तं समीक्षितं वा बहुशः तथा सम्यगर्थदर्शी कथयति । **समिया** नाम सम्यग् यथा गुरुसकाशादुपधारितम्, सम्यग् अर्थं पश्यन्ति **समियाअट्ठदंसी,** नाहमाचार्य इति कृत्वा । सन्ति वा श्रोतारः यत् किञ्चित् कथयितव्यं तेण हि **आणाए सिद्धं वयणं,** आज्ञा यथा गुरुणोपदिष्टं तथैवोपदेष्टव्यम्, **आज्ञासिद्धं** नाम यथोपधारितम् न स्वेच्छाविकल्पितम्, **वचन**मिति सुत्तमत्थो वा, विविधं **जुंजेज्ज ।** कधं ? उस्सग्गे उस्सग्गं अववाते अववातं, एवं ससमये ससमयं परसमये परसमयं । तदेवं युज्यमानः **कंखेज्ज या पावविवेग भिक्खू,** कथं मम वाचयतः पापविवेक. स्यात् ? न च पूजा-सत्कार-गौरवादिकारणाद् वाचयति ॥ २४ ॥ किञ्च—

६०३. [5]अधावुइताइं सुसिक्खएज्जा, [6]जएज्जसु णातिवेलं वुएज्जा ।
से दिट्ठिमं दिट्ठि ण [7]लूसएज्जा, से जाणई भासितुं तं समाधिं ॥ २५ ॥

६०३. **अधावुइताइं सुसिक्खएज्जा०** वृत्तम् । यथोक्तानि **अधावुइताणि, सुट्ठु सिक्खमाणे** सूत्रा-ऽर्थपदानि दुविधाए सिक्खाए । **जएज्जसु** त्ति घडेज्जसु परक्कमिज्जसु आसेवणासिक्खाए । अतिप्रसक्तलक्षणनिवृत्तये व्यपदिश्यते—**णातिवेलं वुएज्जा, वेला** नाम यो यस्य सूत्रस्यार्थस्य धर्मदेशनाया वा कालः, **वेला** मेरा, तां वेलां नातीत्य ब्रूयादित्यर्थः । एवंगुणजातीयः **से दिट्ठिमं स** इति स यथाकालवादी यथाकालचारी च **दृष्टिमानिति** सम्यग्दृष्टिः सपक्खे परपक्खे वा कथां कथयन् तत् कथयेत् जेण दरिसणं **ण लूसिज्जइ,** कुतीर्थप्रशंसाभिः अपसिद्धान्तदेशनाभिर्वा न श्रोतुरपि दृष्टिं दूषयेत्, तथा तथा तु कथयेत् यथा यथाऽस्य सम्यग्दर्शनं भवति स्थिरं वा भवति । यश्चैवंविधः **स जानीते उपदेष्टुं** ज्ञानादिसमाधि-धर्म-मार्गं चारित्रं जानीते ॥ २५ ॥ स एवम्—

६०४. अलूस[8]ए [9]ण य पच्छण्णभासी, णो सुत्त[10]मंत्थं च करेज्ज अण्णं ।
सत्थारभत्ती अ[11]णुवीचि वादं, [12]सोउं च सम्मं पडिवादएज्जा ॥ २६ ॥

६०४. **अलूसए ण य पच्छण्णभासी०** वृत्तम् । **अलूसकः** सिद्धान्ता-ऽऽचारयोः प्रकटमेव कथयति, न तु प्रच्छन्नवचनैस्तमर्थं गोपयति, अपरिणतं वा श्रोतारं प्राप्य न प्रच्छन्नमुद्घाटयति, अपवादमित्यर्थः, मा भूत् "आमे घडे णिहित्तं०" [ ], किञ्च—अणुकंपाए दिज्जति । **न सूत्रमन्यत्** प्रद्वेषेण करोति अन्यथा वा, जधा "रण्णो भत्तंसिणो जत्थ" [ ] । प्रश्नो नाम **अर्थः,** तमपि नान्यथा कुर्यात्, जधा—"आवंती केआवंती" [आचा० श्रु० १ अ० ५ उ० १ सू० १] एके यावंता तं लोगा विप्परामसंति । सूत्रं सर्वथैवान्यथा न कर्त्तव्यम्, अर्थविकल्पस्तु स्वसिद्धान्ताविरुद्धो अविरुद्धः स्यात् । किमन्यथा क्रियते ?, उच्यते, **सत्थारभत्तीए** शासतीति शास्ता, शास्तरि भक्तिः **सत्थारभक्तिः,** स भवति सत्थारभक्तिः । अणुविचिणंतु अणुविचिंतेऊण, वदनं **वादः,** तदनुविचिन्त्य वदेत् । तच्च श्रुत्वा सम्यग् अन्येभ्यः रिणपरिमोक्खी [13]**पडिवादएज्जा** तदिदं **पडिवादयेत्** पडिवादेज्जा सूत्रमर्थं धर्मकथां वा ॥ २६ ॥

---

१ णिसामिया ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ २ सुद्धं खं १ ख २ पु १ वृ० दी० ॥ ३ °भिउंजे ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ संधेज्ज या पाव° ख १ । अभिसंधए पाव° ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ अहावुतिताइ ख १ । अहाउइयाइं पु २ वृ० दी० ॥ ६ जएज्जया णातिवेलं वदेज्जा ख १ ख २ वृ० दी० । जयेज्जया णाइवेलं वतेज्जा पु १ । जयज्जया नाइवेलं वइज्जा पु २ ॥ ७ लूसतेज्जा ख २ पु १ ॥ ८ °सते ख २ पु १ ॥ ९ णो पच्छ° ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ १० °मण्ण च करेज्ज ताई ख १ पु २ वृ० दी० । °मत्थं च करेज्ज अण्णं वृपा० ॥ ११ अणुवीति ख १ ख २ पु १ ॥ १२ सुयं च सम्मं पडिवातएज्जा ख २ पु १ पु २ । सुयं च सम्मं पडिवाययंति ख १ ॥ १३ पवाएज्जा चूसप्र० ॥

स एवं गुर्वाराधनायां वर्त्तमानः—

६०५. से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च, धम्मं च जे विंदति तत्थ तत्थ ।
आदेज्जवक्के कुसले [य] पंडिते, से अरिहति भासितुं तं समाधिं ॥ २७ ॥
ति बेमि ॥

॥ चउद्दसमं गंथज्झयणं सम्मत्तं ॥ १४ ॥

६०५. से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च० वृत्तम् । स इति स ग्रन्थवान्, सुद्धं परिचितं अविच्चामेलितं च, उपधानवानिति तपोपधानवान् । धम्मं च जे विंदति तत्थ तत्थ, आज्ञाग्राह्या आगमेनैव प्रज्ञापयितव्याः, दार्ष्टान्तिकोऽपि हेतूदाहरणोप संहारैः । अथवा तत्र तत्र इति स्वसमये परसमये वा, तथा ज्ञानादिषु द्रव्यादिषु वा, उत्सर्गा-ऽपवादयोर्वा यत्र यत्र तत् तथा द्योतयितव्यम् । आदेज्जवक्के आदेयवाक्य इति ग्राह्यवाक्यः । प्रत्यक्षः परोक्षज्ञानी वा खेदण्णे कुसले पंडिते, स एव अर्हति भाषितुं समाधिम्, समाधिरुक्ता धर्मो मार्गश्चेति ॥ २७ ॥

॥ ग्रन्थाध्ययनं चतुर्दशमं समाप्तम् ॥ १४ ॥

---

१ कुसले वियत्ते, से ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

१५

[पण्णरसमं जमतीतज्झयणं]

आयाणिज्जज्झयणस्स चत्तारि अणुओगद्दारा। अधियारो आयाणचरित्ते। णामणिप्फण्णे दुविधं णाम—आदाणिज्जं ति वा संकलितज्झयणं ति वा वुच्चति। तत्थ गाधा—

आदाणे गहणम्मि य णिक्खेवो होति दोण्ह वि चउक्को।
एगट्ठं णाणट्ठं च होज्ज पगतं तु आदाणे ॥ १ ॥ १२५ ॥

आदाणे० गाधा। एते तु आदाण-गहणे किमेकार्थे स्यातां उत नानार्थे?, उच्यते—अभिधानं प्रति नानार्थे शक्रेन्द्रवत्, अर्थं तु प्रति एकोऽर्थः, तदेवाऽऽदान तदेव च ग्रहणम्, यथा पुत्रमादाय गच्छति पुत्रं गृहीत्वा गच्छतीति नार्थो व्यतिरिच्यते। आदान-ग्रहणयोः एक्केक्कं चतुव्विधं—नामादान ण्क। उच्यते तावद् वित्तमेवादानम्, तेन भृत्या गृह्यन्ते तदेव चाऽऽदीयते। प्रशस्तभावादान[मिद]मेवाध्ययनम्। द्रव्यग्रहणेऽपि गलो हि मत्स्यस्य ग्रहणम्, पाशकूटो मृगस्येति। भावग्रहणं तु यो येन भावेन गृह्यते प्रशस्तेनाप्रशस्तेन वा, [अप्रशस्तेन] सिंहो मृगान् गृह्णाति, प्रशस्तेन साधुः शिष्यान् गृह्णाति। यो वा येन भावेन गृह्यते, यथा दस्युः परस्वं चौरभावेन, उपशमभावेन शिष्यो गृह्यते। आदानमुक्तम्। इदाणिं संकलिका—सा वि णामादि चतुव्विधा। द्रव्ये संकला कुंडलगमादीया वद्धा वद्धा सकलिता वुच्चंति। भावसंकला इणमेव अज्झयणं ॥ १ ॥ १२५ ॥

*** जं पढमस्संतिमए वितियस्स तु तं भवेज्ज आदिम्मि।**
एतेणाऽऽदाणिज्जं एसो अण्णो वि पज्जाओ ॥ २ ॥ १२६ ॥

॥ २ ॥ १२६ ॥ कहिंचि सुत्तेण संकला भवति, कहिंचि अत्थेण, कहिंचि उभयेण वि। यतश्चैवं तेण आदिरेव णिक्खिवितव्वा। स च—

णामादी ठवणादी दव्वादी चेव होति भावादी।
दव्वादी पुण दव्वस्स जो सभावो सए ठाणे ॥ ३ ॥ १२७ ॥

णामादी ठवणादी० गाधा। दव्वादी णाम जो जस्स दव्वस्स सभावो होति, उत्पाद इत्यर्थः, क्षीरं हि क्षीरभावात् परिणमद् दधित्वेनोत्पद्यते, य एव क्षीरनाशः स एव दधिद्रव्यादिकालः। एवं यद् यद् द्रव्यं यस्मिन् यस्मिन् काले आत्मभाव प्रतिपद्यते तस्य द्रव्यस्याऽऽदिर्भवति ॥ ३ ॥ १२७ ॥ उक्ता द्रव्यादिः। भावादिस्तु—

आगम-णोआगमतो भावातीतं दुहा उवदिसंति।
णोआगमतो भावे पंचविहो होइ णायव्वो ॥ ४ ॥ १२८ ॥

आगमणोआगमतो० गाधा। णोआगमतो भावादी पंचण्ह महव्वयाणं जो पढमताए पडिवज्जणकालो ॥ ४ ॥ १२८ ॥

आगमतो पुण आदी गणिपिडगं होति वारसंगं तु।
गंध सिलोगो पाद पद अक्खराइं च तत्थाऽऽदी ॥ ५ ॥ १२९ ॥

॥ जमईयं सम्मत्तं ॥ १५ ॥

---

१ होति प° खं १ ॥ २ °ए वीय° ख १ ॥ ३ °गमियं भावाईयं खं १ ॥ ४ वुहा ववइसंति ख १ वृ० ॥ ५ °गमिओ भा° खं १ ॥ ६ °गो य पया य अक्ख° ख १ वृ०। °गो पद पाद अक्ख° ख २ पु २ ॥

आगमतो पुण आदी गणिपिडगं० गाधा । सव्वस्स सुअणाणस्स आदी **सामाइयं,** तस्स च "करेमि" त्ति पदमादी, तस्स वि ककारो आदी । दुवालसंगस्स य **आयारो,** तस्स वि **सत्थपरिण्णा,** तीए वि पढमुद्देसओ, तस्स वि "सुतं मे आउसं ! तेणं" [आचा० श्रु० १ अ० १ उ० १ सू० १] तस्स वि सुकारो । इमस्स वि सुअक्खंधस्स **समयो,** तस्स वि पढमुद्देसतो, तस्स वि सिलोगो पादो पदं अक्खरं ति ॥ १२९ ॥ णामणिप्फण्णो गतो । सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं । स एवं गुरुकुलवासी गंधं ति सिक्खमाणो शिक्षापद केवलज्ञानमुत्पाद्य—

६०६. जमतीतं पडुप्पण्णं आगमिस्सं च[1] जाणति ।
सव्वं मण्णति[2] मेधावी दंसणावरणंतए ॥ १ ॥

६०६. **जमतीतं पडुप्पण्णं०** सिलोगो । यदिति द्रव्यादीनि चत्वारि, त अतीतद्धाए दव्वादिचतुष्कं सव्वं जाणति केवलं जाव सव्वभावे पासति केवली, एवं **पडुप्पण्णं,** अणागते वि भावे ज्ञानम्, तस्माद् भावतो जानीते । **सव्वं मण्णति मेधावी,** सर्व्वमिति सर्वं द्रव्यादिचतुष्कं युगपत्काले वा सर्वम्, मेराए धावति **मेधावी** । कस्माद्धेतोः जानीते ?, उच्यते, **दंसणावरणंतए** चउण्ह घातिकम्माणं, दर्शनग्रहणाद् ज्ञानस्य ग्रहणम् ॥ १ ॥ स एवम्—

६०७. अंतए वितिगिंछाए[3] संजाणति अणेलिसं[4] ।
अणेलिसस्स अक्खाया ण से होति तहिं तहिं ॥ २ ॥

६०७. **अंतए वितिगिंछाए०** सिलोगो । अत्रोभयेनापि सङ्कलिका, **वितिगिंछा** नाम सन्देहज्ञानम्, तेसु तेसु णाणंतरेसु त्ति तस्य **अंतए वितिगिंछाए,** समस्तं जानाति **संजाणति,** न ईदृशं **अणेलिसं,** अतुल्यमित्यर्थः । तस्यैवंविधस्य **अणेलिसस्स** अतुल्यस्याऽऽख्याता दुर्लभः ॥ २ ॥

६०८. तहिं तहिं सुअक्खातं से अ सच्चे[5] अणेलिसो ।
सदा[6] सच्चेण संपण्णो मेत्तिं भूतेसु[7] कप्पए ॥ ३ ॥

६०८. **तहिं तहिं सुअक्खातं०** सिलोगो । तासु तासु णरगादिगतिसु, तत्र तत्रेति सूत्रा-ऽर्थ-स्वसमयोत्सर्ग-द्रव्यादिषु वा, अथवा **तहिं तहिं** ति न तस्य तासु णरगादिगतिसु सुलभो भवति यथासावाख्याति । **से अ सच्चे अणेलिसो** अवितथो । सच्चे कथम् ?—

वीतरागा हि सर्वज्ञा मिथ्या न ब्रुवते वचः ।
यस्मात् तस्माद् वचस्तेषां तथ्यं भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥
[ ]

संयमो वा सत्यः । **सदा सच्चेण संपण्णो** वचनेन तपः-संयम-ज्ञानसत्येन वा । कस्मात् सत्यं संयमः ? येन यथावादिनः तथाकारिणो भवन्ति यथोद्दिष्टं चास्य सत्य भवति । स एव सत्यवान् **मेत्तिं भूतेसु कप्पए** करोतीत्यर्थः, आत्मवत् सर्वभूतेषु यतते ॥ ३ ॥ सा चैवं भवति—

६०९. भूतेसु[8] ण विरुज्झेज्ज एस धम्मे वुसीमतो ।
वुसीमं जगं परिण्णाए[9] अस्सिं जीवितभावणा ॥ ४ ॥

६०९. **भूतेसु ण विरुज्झेज्ज०** सिलोगो । भूतानि तस-थावराणि, तैर्न **विरुध्येत** । **विरोधो** विग्रहः तदुपघातो वा । **एस धम्मे वुसीमतो,** वुसीमांश्च भगवान्, तस्य अयं धर्मः । साधुर्वा वुसीमान् । **जगं परिण्णाए** दुविधाए परिण्णाए । कस्मिन्निति ? **अस्सिं** धर्मे आजीवितादात्मानं भावयति पणवीसाए भावणाहिं वारसहिं वा ॥ ४ ॥ किञ्च—

---

१ च णायगो ख १ वृ० दी० । च नातओ ख २ पु १ पु २ ॥ २ मण्णति तं ताती ठं° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ विदिगिं° पु १ ॥ ४ °ए से जा° खं २ पु १ पु २ वृ० दी० । °ए स जा° ख १ ॥ ५ सच्चे सुयाहिए ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ६ सता ख १ ॥ ७ भूतेहिं कप्पते ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ८ भूतेहिं ण ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ °ण्णात ख १ खं २ ॥

६१०. भावणा-जोगसुद्धप्पा जले णावा व आहिया।
णावा व तीर[1]संपत्ता स[2]व्वकम्मा तिउट्टति ॥ ५ ॥

६१०. **भावणा-जोगसुद्धप्पा०** सिलोगो। भावनाभिर्योगेन शुद्ध आत्मा यस्य स भवति **भावणा-जोगसुद्धप्पा**। अथवा भावनासु योगेषु च यस्य शुद्धात्मा। यथा जलेऽन्तर्नौर्गच्छन्ती तिष्ठन्ती वा न निमज्जति, स एवं हि **णावा व तीरसंपत्ता** यथाऽसौ निर्यामिकाधिष्ठिता मारुतवशात् तीरं प्राप्नोति उपायाद् यथा, तथाऽऽयतचारित्रवान् जीवपोतः तपः-सयममारुतवशात् सज्ज्ञानकर्णधाराधिष्ठितः ससारतीरमवाप्य सर्वकर्मभ्यो तिउट्टति छिद्यते इत्यर्थः ॥ ५ ॥ किञ्च—

६११. [3]अतिउट्टती त मेधावी जाणं लो[4]गस्स पावगं।
खि[5]ज्जंति पावकम्माणि णवं कम्ममकुव्वओ ॥ ६ ॥

६११. **अतिउट्टती त मेधावी०** सिलोगो। अतीव त्रुट्यत अइउट्टइ अतीत्य वा वट्टति **अतिउट्टति, जाणमाणो** असंजम**लोगस्स पावगं** यथा पच्यते कर्म, तस्य पापानि जानानस्य तपःस्थितस्य **खिज्जंति पावकम्माणि** पूर्वबद्धानि संयमेन निरुद्धाश्रवस्य सतः **नवानि कर्माणि अकुर्वतः** ॥ ६ ॥ तस्यैवोपरतस्य—

६१२. अकुव्वतो णवं ण[6]त्थि कम्मं णाम विजा[7]णतो।
ण[8]च्चाण से महावीरे जे ण जाइ[9] ण मं[10]ज्जती ॥ ७ ॥

६१२. **अकुव्वतो णवं णत्थि०** सिलोगो। **अकुर्वतो णवं कर्म,** निरुद्धेसु आसवदारेसु **नाम** परोक्षस्तवा(सूचा)दिषु, कर्म णाम कुतः? अकुर्वतः कर्मणां नामापि नास्ति, विजानतो हि कर्म कर्मनिर्जरणोपायांश्च कुतो बन्धः स्यात्? । एवं कर्म तत्फलं संवरं निर्जरोपायांश्च **णच्चाण से महावीरे** इति आयतचारित्री महावीर्यवान् सर्वकर्मक्षये सति न पुनरायाति न वा मज्जते संसारोदधौ, न वा कर्म निर्णीयते ॥ ७ ॥ आश्रवद्वारैर्वा स्यात् कातरो सो—

६१३. ण मंज्जते महावीरे जस्स णत्थि पुरे[11]रयो।
वा[12]यू व जा[13]लमंचेति पियो लोगस्स इत्थितो ॥ ८ ॥

६१३. **ण मज्जते०** सिलोगो। **महावीरे जस्स णत्थि पुरेरयो,** पूर्वबद्धं कर्मेत्यर्थः, पावाइं कम्माइं जस्सऽत्थि पुरेकताइं। स्यात्—कतरे आश्रवा ये निरोध्याः? उच्यते– अब्रह्माद्याः। तदेव दुश्चरत्वादपदिश्यते—**वायू [व] जालं अंचेति,** यथा वायुः दीपज्वालां **अंचेति** कंपेति णोल्लसतीत्यर्थः, एव स भगवान् **प्रियः, [यथा] लोकस्य स्त्रियः,** अंचेति त्ति वा णामेवि त्ति वा एगट्ठं, न ताभिरल्पते, एताश्च स्त्रियो नाऽऽसेव्याः ॥ ८ ॥ किञ्च—

६१४. इत्थीओ जे ण सेवंति आ[14]दिमोक्खा हु ते जणा।
तेजणा वंधणुम्मुक्का णावकंखंति जीवितं ॥ ९ ॥

६१४. **इत्थीओ जे ण सेवंति०** सिलोगो। स्त्रियोऽपि त्रिविधकरणयोगेनापि ण सेवन्ते, आदि-मध्याऽवसानेषु आयतचारित्तभावपरिणताः **[तेजनाः] ते जणा वंधणुम्मुक्का, ते जना** इति ते साधवो महावीरा कामादिवंधणातो **मुक्का णावकंखंति जीवितं** असंजम-कसायादिजीवितं ॥ ९ ॥

---

१ °संपण्णा ख २ पु १ पु २ ॥ २ सव्वदुक्खा ति° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ तिउट्टती उ मे° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ४ लोगंसि ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ तिउट्टंति ख १ ख २ पु २ वृ० दी०। तुट्टंति पु १ ॥ ६ णत्थी ख १ ॥ ७ विजाणति ख १ पु १ वृ० दी० ॥ ८ विण्णाय से ख २ वृ० दी० ॥ ९ मिज्जइ ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० मिज्जती ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। भिज्जती वृपा० ॥ ११ पुरेकडं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १२ वाऊ व ख २ पु १ पु २। वाउ व्व ख १ ॥ १३ जालमच्चेति पिया लोगंसि इ° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १४ आतीमो° खं १ ॥

६१५. अंतीतं[1] पिच्छतो किच्चा अंतं पावंति कम्मुणं[2]।
कम्मुणा [3]सम्मुहब्भूतो जे मग्गमणुसासति ॥ १० ॥

६१५. [अतीतं पिच्छतो किच्चा० सिलोगो ।] अणवकंखमाणा अणागतमसंयमजीवितं, वट्टमाणं णिरुंभित्ता, शेषमतीत, तं अतीतं पिच्छतो किच्चा असयमजीवितं, अंतं पावंति सर्वकर्मणाम् । कहं ? जेण कम्मुणा सम्मुहब्भूतो येनासौ कर्मानीकस्य क्षपणाय सम्मुखीभूतः, न पराङ्मुखः, जेणिमं णाण-दंसण-चरित्त-तवसजुत्तं मग्गमणुसासति अण्णेसिं च कथयति, आत्मानं चानुशासते ॥ १० ॥

६१६. [4]अणुसासति पुढो पाणे वुसिमं पूय णाऽऽसंसति ।
अणासते सदा दंते दढे आरतमेहुणे ॥ ११ ॥

६१६. अणुसासति पुढो पाणे० सिलोगो । अनुशासन्तो कधेंतो "पृथु विस्तारे" पुढइ ति पुढो विस्तरेण पुनः पुनर्वा पाणे अणुशासति आयतचरित्तभावो, वुसिमं पूयं णाऽऽसंसति ण पत्थेति । किञ्च–अणा[सते] सदा दंते अनाश्रवो अनाश्रयो वा, पुनरपि पठ्यते–"अणासवे सदा दंते" सदा नित्यकाले दंते इंदिय-णोइंदिएहि दंते । मूलुत्तरगुणेसु मूलगुणधारी [गरी]यस्त्वाद् गृह्यते–आरतमेहुणे उपरतमैथुन इत्यर्थः ॥ ११ ॥

६१७. [5]णीयारे व ण लिज्जेज्जा छिण्णसोते[6] अणाइले ।
अणाइले सदा दंते [7]संधिं पत्ते अणेलिसं ॥ १२ ॥

६१७. णीयारे व ण लिज्जेज्जा० सिलोगो । णिकरणं दण्डः, दण्डस्थानमेतद् व्यवसानं वन्धनस्थान च इत्यतः तत् स्थानं न लीयते निकारतं न लिज्जेज्ज । छिण्णसोते, सोतं प्राणातिपातादि [इ]न्द्रियाणि वा रागादयश्च अणाइले त्ति अणातुरेण छिंदितव्वं । पुनरपि पठ्यते च–"अणाइ(? उ)ले" स एवमनाकुलः सदा दान्तः । सन्धानः सन्धिः, भावसन्धिर्मानुष्यम्, कर्मसन्धिः कर्मविवरः, ज्ञानादीनि च भावसन्धिः । प्राप्तः अणेलिसं अतुल्यमित्यर्थः ॥ १२ ॥ तस्स य—

६१८. अणेलिसस्स खेतण्णे ण विरुज्झेज्ज केणयि ।
मणसा वयसा चेव कायसा चेवं[8] अंतए ॥ १३ ॥

६१८. अणेलिसस्स खेतण्णे० सिलोगो। तस्य [? अ]सदृशस्य अधर्मस्य खेतण्णे जाणगे ण विरुज्झेज्ज केणयि सपक्खपरपक्खेण वा। तं तु मणसा वयसा चेव योगत्रितय-करणत्रयेण अंतए इति यावत्कर्मान्तो वा भवान्तो वा॥१३॥ एवंविधो वा—

६१९. [9]से चक्खु लोगस्सिध जं कंखाय करेंति अंतगं ।
अंतेण खुरो वहती चक्कं अंतेण लोट्टती ॥ १४ ॥

६१९. से चक्खु लोगस्सिध० सिलोगो । स भव्यमनुष्याणा चक्षुर्भूतः । यः किं करोति ? जे कंखाय करेति अंतगं, काङ्क्षा नाम प्रार्थना कामभोगाशा, अंताणि च सेवति । स्यात् को गुणः ? इत्यतः पुनः पठ्यते–अंतेण खुरो वहती, अन्तेनेति धारया, नान्यतः । चक्कं अंतेण लोट्टती चक्रमप्यन्तेन लोट्टति ॥ १४ ॥ इयमर्थसङ्कलिका—

६२०. अंताणि धीरा सेवंति तेण अंतकरा इहं ।
इह माणुस्सए ठाणे धम्ममारा[10]हिगा णरा ॥ १५ ॥

---

१ जीवित पिट्ठतो खं १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ २ कम्मुणा ख १ ख २ पु १ पु २ वृपा० ॥ ३ सम्मुहीभूता जे ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । सम्मुहब्भूता जे ख १ ॥ ४ अणुसासणं पुढो पाणी वसुमं पूयणासए । अणासते जते दंते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । पाणे ख १ ख २ पु १ पु २ । अणासवे चूपा० ॥ ५ °णीवारे य ण लीएज्जा ख २ पु १ पु २ । णीयारे व ण लीएज्जा ख १ ॥ ६ °सोयमणा° ख १ ॥ ७ संधिं पत्ते मणे° ख २ । संधीपत्तमणे ख १ ॥ ८ चेव चक्खुमं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ९ से हु चक्खू मणुस्साणं जे कंखाए तु अतए । खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० °राहिउं णरा ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥

६२०. [अंताणि धीरा० सिलोगो] । अंताइं आरामोद्यानानि वसत्यर्थम्, अन्तप्रान्त-भूतानि आहारार्थम्, कर्माश्रवांश्च न सेवन्ते, न तेषु वर्तन्ते इत्यर्थः । तेनैव प्रान्तसेवित्वेनाऽऽयतचारित्रकर्मोऽन्तकरा भवन्ति इह धर्मे । स्यादिदम्—धर्मान्तमासाद्य कुत्रान्तकरा भवन्ति ? उच्यते—इह माणुस्सए ठाणे मनुष्यभवे, अथवा स्थानेग्रहणात् कर्मभूमिः गब्भवक्कंतिय-संखेज्जवासाउयत्तं च गृह्यते । धर्ममाराधका नाम अंत(?अन्त)धर्मं चारित्रधर्मं च आराधयन्ति ॥ १५ ॥ तमाराध्य—

६२१. णिट्ठितट्ठा व देवा वा उत्तरीए इमं सुतं ।
सुतं च मेयमेगेसिं अमणुस्सेसु णो तधा ॥ १६ ॥

६२१. णिट्ठितट्ठा व देवा वा० सिलोगो । "ऋ गतौ" इत्यस्यार्थो भवति, संसारार्थः कर्मार्थः विषयार्थ इत्यादि, णिट्ठितट्ठा निष्ठानं च येषां ज्ञानादयोऽर्थाः गतास्ते भवन्ति णिट्ठितट्ठा, सिद्ध्यन्त इति । तदभावे देवा उत्तरीयं ति अणुत्तरोववादिया[दि]कप्पेसु वा उववज्जमाणा इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंशकादिषूत्तरीकेषु स्थानेषूपपद्यन्ते, नाऽऽभियोग्या इत्यर्थः । अज्जसुहम्मो जंबुं भणति—इति मया सुयं तित्थगरसगासातो, न स्वेच्छयोच्यते । इदं चान्यत्—सुतं च मेयमेगेसिं, च अनुकर्षणे, एवं मया श्रुतं यदुक्तं 'साधवः सिध्यन्ति अणुत्तरा वा भवन्ति' । इदं च श्रुतम्—अमणुस्सेसु णो तधा, अमनुष्याः तिस्रो गतयः, न तास्वन्तं कुर्वन्ति यथा मनुष्येषु । शाक्या वा ब्रुवन्ति—'अनागामिनो देवा भवन्ति, ते हि देवा नान्तं (?देवा अनागत्यान्तं) कुर्वन्ति' । अस्माकं तु—'नो अनागत्यान्तं कुर्वन्ति' इत्यतस्तद्व्युदासार्थं अमणुस्सेसु नो तधा, यथा अन्येषामिति वाक्यशेषः ॥ १६ ॥

अथ न यथाऽमनुष्येषु सर्वनिर्जरा भवति नो तहा अमणुस्सेसु तेसु देसणिज्जरा [ण] भवति । उक्तं हि—"सर्वोऽपि संसारान्तः स्यात्" [ ] किं तद् ज अमणुस्सेसु णो तधा भवति ? उच्यते—

६२२. अंतं करंति दुक्खाणं इहमेगेसि आहितं ।
आघातं पुण एगेसिं दुल्लभेऽयं समुस्सए ॥ १७ ॥

६२२. अंतं करंति दुक्खाणं० सिलोगो । अमनम् अन्तः । दुःखानि कर्माणि । इहेति इह प्रवचने । एकेषां न सर्वेषाम्, अस्माकमेवं आहितं आख्यातम् । किञ्च—आघातं पुण एगेसिं, आघातं आख्यातम्, पुनः विशेषणे, नान्येषाम्, एके वयमेव । किमाख्यातम् ? दुल्लभेऽयं समुस्सए, समुच्छ्रीयते इति समुच्छ्रयः शरीरम्, समुच्छ्रितानि वा ज्ञानादीनि ॥ १७ ॥ किंच—

६२३. इतो विद्धंसमाणस्स पुणो संबोधि दुल्लभा ।
दुल्लभा य तधच्चा जे धम्मट्ठीविदितपरा-ऽपरा ॥ १८ ॥

६२३. इतो विद्धंसमाणस्स० सिलोगो । इत इति इतो मनुष्यात् । विद्धंसमाणे विध्वस्ये । धर्माद्धि विद्धंसमाणस्स उक्कोसेण अवड्ढेण पोग्गलपरियट्टेणं बोधी लब्भति, माणुस्सं पि उक्कोसेणं असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जतिभागेणं । किञ्च दुल्लभा य तहच्चा जे, अर्चा लेश्या, तथेति तेन प्रकारेण, तथा अर्चा येषां ते इमे तधच्चा, यथा तीर्थकरा विसुद्धार्चाः, अथवा यथा प्रतिपत्तौ लेश्या तथा चात्यन्तं भवति दुल्लभा, वड्ढमाणपरिणामा अवट्ठितपरिणामा वा इत्यर्थः । धर्म एवार्थः, परं शोभनम्, तद्यथा—मोक्षो मोक्षसाधनानि च, अपरं अशोभनं मिथ्यादर्शना-ऽविरत्यज्ञानादि, धर्मार्थस्य विदितं परा-ऽपर यैस्ते दुर्लभा. धम्मट्ठीविदितपरा-ऽपराः ॥ १८ ॥ के ते ?—

---

१ °ए त्ति मे सुतं पु १ वृ० दी० ॥ २ °णमेगेसिं ख १ ॥ ३ दुल्लभाउ तहच्चाओ जे धम्मट्ठ वितागरे खं १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० । तहच्चाणं ख १ । धम्मट्ठि खं २ पु २ ॥

६२४. जे धम्मं सुद्धमक्खंति पडिपुण्णमणेलिसं।
अणेलिसस्स जं ठाणं तस्स जम्मकहा कुतो ? ॥ १९ ॥

६२४. **जे धम्मं सुद्धमक्खंति०** सिलोगो। सुद्धं निरुपहं। आख्यान्ति चानुचरन्ति च। पडिपुण्णं नाम सर्वतो विरतं पडिपुण्णं अहाख्यातं चारित्रम्। अणेलिसं अतुल्यम्, न कुधर्मज्ञानादिभिस्तुल्यम् तमनेलिसं आख्यान्ति चानुचरन्ति च। तस्य अतुल्याचारस्य कुतो जन्मकथा भवति ? ज्ञातो वा ? इति। अथवा कथास्वपि तस्य जन्मकथा नास्ति ॥ १९ ॥

अत एवोच्यते—

६२५. कुतो कदायि[1] मेधावी उप्पज्जंति तथागता ?।
तथागता य अपडिण्णा चक्खू अत्तस्सऽणुत्तरा[2] ॥ २० ॥

६२५. **कुतो कदायि मेधावी०** सिलोगो। कुत इति कुतस्तस्य अनन्धनस्य बीजाङ्कुरवत् कदाचिदिति सव्वमणागत-कालं उप्पज्जति ? त्ति, न पुनरुत्पद्यते मनुष्यत्वेनान्यतरेण वा जन्मना, तथागता अथाख्यातीभूता मोक्षगता वा। के तथागता ?, उच्यते—तथागता य [ग्रन्थाग्र ६४००] अपडिण्णा तीर्थकराः, चग्रहणात् केवलिनो गणधराश्च, अपडिण्णा अप्रतिज्ञाः, अनाशंसिन इत्यर्थः, परं आत्मनश्चक्षुर्भूता देशकाः नायकाः, अनुत्तरा ज्ञानादिना ॥ २० ॥ स्यात् केनैतदुक्तम् ? उच्यते—

६२६. अणुत्तरे य[3] ठाणे से कासवेण पवेदिते[4]।
जं किच्चा णिव्वुता[5] एगे णिट्ठं पावंति पंडिए[6] ॥ २१ ॥

६२६. **अणुत्तरे य ठाणे से०** सिलोगो। **ठाणं** आयतनं चरित्तट्ठाणं। काश्यपसगोत्रेण वर्द्धमानेन। तस्य किं फलम् ? उच्यते—**जं किच्चा णिव्वुता एगे, णिव्वुता** उवसंता। निष्ठानं **निष्ठा** तं णिट्ठाणं। **पण्डितः** पापाड्डीनः पण्डितः, अनेके एकादेशः ॥ २१ ॥

६२७. पंडितो वीरियं लद्धुं णिग्घायाय पवत्तए[7]।
धुणे पुव्वकडं[8] कम्मं णवं चावि ण कुव्वति ॥ २२ ॥

६२७. **पंडितो वीरियं लद्धुं०** सिलोगो। पंडियं वीरियं संजमवीरियं तपोवीरियं च, तं लब्ध्वा कर्मनिर्घातनाय प्रवर्त्तते। केन ? आयतचारित्रेण। **धुणे पुव्वकतं कम्मं** तपसा धुनाति पूर्वकृतं कर्म, संयमेन च **न नवं कुरुते ॥ २२ ॥**

संयतात्मा तु सन्—

६२८. ण कुव्वति महावीरे अणुपुव्वकडं रयं।
रयसा सम्मुहीभूता[9] कम्मं हेच्चाण[10] जं मतं ॥ २३ ॥

६२८. **ण कुव्वति महावीरे०** सिलोगो। णाणवीरियसंपण्णो अणुपुव्वकडं णाम मिच्छत्तादीहिं कम्महेतूहिं वट्टंतेण अनुसमयकृतं रीयते इति रजः। किञ्च—**रयसा सम्मुहीभूता**, तस्यानुपूर्वकृतस्य रजसः क्षपणाय परीषहाणां च परानीकस्येव सम्मुखीभूताः। अथवा "सम्मुहा उद्धृताः" उत्तीर्णा इत्यर्थः। **कम्मं हेच्चाण जं मतं** कर्म हित्वा क्षपयित्वेत्यर्थः, जं मतं ति यन्मतं यदिच्छितं सर्वसाधुप्रार्थितं स्यात् ॥ २३ ॥ किं तत् ? उच्यते—

६२९. जं मतं सव्वसाधूणं तं मतं सल्लगत्तणं।
साधइत्ताण तं तिण्णा देवा वा अभविंसु ते ॥ २४ ॥

---

१ कताइ ख २ पु १ पु २। कयाति ख १॥ २ °क्खू लोगस्सऽणु° ख १ खं २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ य खं २ पु २॥ ४ पवेइते ख २ पु १ पु २ ॥ ५ णिव्वुडा खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ६ पंडिया ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ७ पवत्तगं ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ८ °कडं ख १ ख २ पु १ पु २ ॥ ९ सम्मुहुब्भूता चूपा० ॥ १० साहत्तिचाण खं १ ॥

६२९. जं मतं सव्वसाधूणं० सिलोगो । यत् सर्वसाधुमतं तदिदमेव णिग्गंथं पावयणं सर्वकर्मशल्यं कृन्ततीति छिनत्तीत्यर्थः । साधइत्ताण तं तिण्णा आराधयित्वेत्यर्थः, णवविधाए आराधणाए तिण्णा संसारकंतारं । सावसेसकम्माणो वा देवा वा अभविंसु ते, तीर्णा इत्यतिक्रान्तका निर्वृता देवाश्च अभविष्यन्नित्यतिक्रान्त एवमभविष्यन् उच्यते ।। २४ ।।

६३०. अभविंसु पुरा [1]वीरा आगमिस्सावि सुव्वता ।
दुण्णिबोधस्स मग्गस्स अंतं पादुकरा तिण्ण ।। २५ ।। त्ति बेमि ।।

।। जमतीतं सम्मत्तं ।। १५ ।।

६३०. अभविंसु पुरा वीरा० सिलोगो । विराजन्त इति वीराः । साम्प्रतं तरन्ति देवा वा भवन्ति । अनागते व्यपदिश्यते–आगमिस्सा वि सुव्वता तरिष्यन्ति देवा वा भविष्यन्ति । के ते ? उच्यते–दुण्णिबोधस्स मग्गस्स, नियतं निश्चितं वा दुःखं निबोध्यते दुर्णिबोधः ज्ञानादिमार्गः । अंतं पादुकरा अमनमन्तः, प्रादुष्कुर्वन्तीति । तरमाणा तीर्णा इति ।।२५।।

।। आदानीयं पंचदसमध्ययनं जमतीतं पि वुच्चति ।। १५ ।।

---

१ धीरा खं १ पु १ पु २ ।।

१६

[सोलसमं गाहासोलसगज्झयणं]

गाहज्झयणस्स चत्तारि अणुओगदारा, अधिकारो अप्पगंथेण पिंडगवयणेणं—जं पण्णरससु वि य अज्झयणेसु भणितं [तं] सव्वं इधं सूइज्जइ। णामणिप्फण्णे एगपदं गाह त्ति ॥

णामं ठवणागाधा दव्वगाधा य भावगाधा य।
पत्तय[1]-पोत्थयलिहिता होति इमा दव्वगाधा तु ॥ १ ॥ १३० ॥

णामं ठवणा० गाया। पत्तय० गाधद्धं। वतिरित्ता दव्वगाहा पत्तय-पोत्थयलिहिता। जधा—

वीर-वसभ-माराणं कमलदलाणं चतुण्ह णयणाणं।
मुणिवइ ! मुणियविसेसा अच्छीसु तुमं रमइ लच्छी ॥ १ ॥

[ ]

अथवा इमा चेव गाथा यस्मिन्नेव [पत्रे] पुस्तके वा लिखिता ॥ १ ॥ १३० ॥

होति पुण भावगाधा सागारुवयोगभावणिप्फण्णा[2]।
मधुराभिधाणजुत्ता तेणं[3] य गाहं ति णं बेंति ॥ २ ॥ १३१ ॥

होति पुण भावगाधा० गाहा। सुओवओगो सागारोवयोगो त्ति काऊण खयोवसमियं सव्वं सुतं ति कातूण खयोवसमियणिप्फण्णा। सा पुण मधुराभिधाणजुत्ता, चोयंतो वा पुच्छंतो वा परियट्टंतो वा गायतीति गीयते वा गाधा ॥ २ ॥ १३१ ॥ अस्या निरुक्तम्—

गाधीकता य[4] अत्था अधवा[5] सामुद्दएण छंदेणं[6]।
एएण होती गाधा एसो अण्णो वि पज्जाओ ॥ ३ ॥ १३२ ॥

गाधीकता य अत्था० गाधा। ग्रथ्नता इत्यर्थः। अधवा सामुद्दएण छंदेण [एएण] होति गाधा एसो अण्णो वि पज्जाओ ॥ ३ ॥ १३२ ॥

पण्णरससु अज्झयणेसु पिंडितत्थेसु जे अवितहं ति।
पिंडितवयणेणऽत्थं गहेति जम्हा ततो गाधा ॥ ४ ॥ १३३ ॥

पण्णरससु अज्झयणेसु पिंडित० गाधा। गाथालक्खणवद् इति तो गाधा, पण्णरससु वि अज्झयणेसु पिंडितत्था अवितथं इहं सूयिता। तम्मि एवं पिंडितवयणेण गाधीकते अत्थे जतितव्वं घडियव्वं गंतव्वं च तेण पंथोवदेसणा ततो गाधा ॥ ४ ॥ १३३ ॥

सोलसमे अज्झयणे अणगारगुणाण वण्णणा भणिया।
गाधासोलसणामं अज्झयणमिणं ववदिसंति ॥ ५ ॥ १३४ ॥

॥ गाहासोलसमं अज्झयणं समत्तं ॥ १६ ॥ समत्तो सूयगडस्स पढमो सुयक्खंधो ॥ १ ॥

---

१ पोत्थग-पत्तगलिहिता सा होई दव्व° ख २ पु २ २ °णिप्पण्णा ख १ ॥ ३ तेणं गा° पु २ वृ० ॥ ४ व ख १ ख २ पु २ वृ० ॥ ५ अहवण सा° ख २ पु २ ॥ ६ छंदेणं ख २ पु २ ॥

सोलसमे अज्झयणे० गाधा । एवमेतेसु वि सोलससु वि गाधासोलसएसु यथोक्ताधिकारिकेषु अणगारगुणा वर्ण्यन्ते, अगुणांश्च दर्शयित्वा प्रतिषिध्यन्ते । येन तेषां षोडशानामध्ययनानां गाधा सोलसमीति तेनोच्यते गाथाषोडशानि ॥ ५ ॥ १३४ ॥ णामणिप्फण्णो गतो । सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं—

६३१. अहाह भगवं[1]—एवं से दंते दविये वोसट्ठकाये त्ति वच्चे[2]। माहणे त्ति[3] वा १ समणे त्ति वा २ भिक्खु त्ति वा ३ णिग्गंथे त्ति वा ४ ॥ १ ॥

६३१. अहाह भगवं० सूत्रम् । अथेत्ययं मङ्गलवाची आनन्तर्ये च द्रष्टव्यः । यदिदमुदितं पञ्चदशानामध्ययनानामन्तरे वर्तते, आदौ मंगलं "बुज्झेज्ज" [सूत्र १] त्ति, इहाप्यथशब्दः अन्ते, तेन सर्वमङ्गल एवायं श्रुतस्कन्धः । भगवानिति तीर्थकरः एवमाह, जे एतेसु पण्णरससु य अज्झयणेसु साधुगुणा वुत्ता तेसु वि जधावत्थितो । तत्थ पढमज्झयणे ससमय-परसमयविदू सम्मत्तावत्थितो १ वितियज्झयणे णाणादीहिं विदालणीएहिं कम्मं विदालंतो २ ततिए जहाभणिते उवसग्गे सहमाणो ३ तत्थ वि अत्थीपरीसहो गरुओ त्ति तज्जयकारी चउत्थे ४ पंचमे णरए णरगवेदणाहिंतो उव्वियमाणो तप्पायोगकम्मविरत्तो[4] ५ छट्ठे जधा भट्टारएण जतितं एव जतमाणो, अवि य—

तित्थयरो[5] सुरमहिओ चउणाणी सिज्झितव्वयधुवम्मि । अणिगूहितवल-विरिओ तवोवधाणेसु[6] उज्जमति ॥ १ ॥
किं पुण अवसेसेहिं दुक्खक्खयकारणा[7] सुवितघेहिं । होइ ण उज्जमितव्वं सपच्चवायम्मि माणुस्से ? ॥ २ ॥
[आचा० नि० गा० २७८-७९] ६,

सत्तमे कुसीलदोसे जाणंतो ते परिहरितो सुसीलावत्थिओ ७ अट्ठमे पंडितविरियसंपण्णो ८ णवमे धम्मभणितं धम्ममणुचरंतो ९ दसमे संपुण्णसमाधिजुत्तो १० एक्कारसमे सम्मं भावमग्गपवण्णो ११ वारसमे कुतित्थियदरिसणाणि जाणमाणो असद्दहंतो १२ तेरसमे सिस्सगुण-दोसविदू सिस्सगुणे णिसेवमाणो १३ चोद्दसमे पसत्थभावगंथभावितप्पा १४ पण्णरसमे आयतचरित्तावत्थितो १५, एवंविधो भवति दंते दविए वोसट्ठकाये त्ति वच्चे, तत्थ दंते इंदिय-णोइंदियदमेणं, इंदियदमो सोइंदियदमादि पंचविधो, णोइंदियदमो कोधणिग्गहादि चतुव्विधो । दविए राग दोसरहितो । वोसट्ठकाए त्ति अपडिकम्मसरीरो, उच्छूढसरीरे त्ति वुत्तं होति, [इति] एवंविधो वाच्यः । माहणे त्ति वा समणे त्ति वा भिक्खु त्ति वा [णिग्गंथे त्ति वा] मा हणह सव्वसत्तेहिं भणमाणो अहणमाणो य माहणो भवति १ । मित्ता-ऽरिसु समो मणो जस्स सो भवति समणो, अथवा "णत्थि य से कोइ वेसो पिओ व०" । [अनु० पत्र २५६ तथा आव० नि० गा० ८६८] २ । "भिदिर् विदारणे" क्षु इति कर्मण आख्या, तं भिंदंतो भिक्खू भवति ३ । वज्झ-ऽब्भंतरातो गंथातो णिग्गतो णिग्गंथो ४ । एवमेतेगट्ठिया माहणणामा चत्तारि, वंजणपरियाएण वा किंचि णाणत्तं, अत्थो पुण सो च्चेव ॥ १ ॥

६३२. पडियाहु[8]—भंते! कधं दंते दविए वोसट्ठकाए त्ति वच्चे? माहणे त्ति वा समणे त्ति वा भिक्खु त्ति वा णिग्गंथे त्ति वा?, तं णो ब्रूहि महामुणी! । इति विरतसव्वपाव[9]-कम्मे[10] पिज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुण्ण-परपरिवाद-अरति-रति-मायामोस-मिच्छा-दंसणसल्ले विरते समिते सहिते सदा जते णो कुज्झे णो माणी माहणे त्ति वच्चे १ ॥ २ ॥

६३२. पडियाहु भंते! ० सिलोगो (सूत्रम्) । सिस्सो पडिभणति, आयरियं पुच्छति त्ति यं होति । अथवा आहुः गणधराः—भंते! त्ति भगवतो तित्थगरस्स आमंतणं । कधं दंते दविए?, कथमिति परिप्रश्ने, कथमसौ पण्णरसज्झयणेसु वि दंते दविए वोसट्ठकाए स वाच्यः, माहणे त्ति वा ण्क[11]? तं णो ब्रूहि महामुणी!, तदिति तत्कारणं ब्रूहि मे महामुने! ।

१ भगवं-दंते खं १ पु १ पु २ ॥ २ वुच्चे ख २ पु १ पु २ ॥ ३ अत्र सूत्रे त्ति स्थाने सर्वत्र इ वर्तते खं १ ख २ पु १ पु २ ॥ ४ °विरित्तो वा० मो० ॥ ५ °यरो चउणाणी सुरमहिओ सि° आचा० नि० पाठ ॥ ६ °धाणम्मि उ° आचा० नि० पाठ ॥ ७ °णा सुविहिएहिं आचा० नि० पाठ ॥ ८ पडिआह खं १ खं २ पु १ पु २ ॥ ९ इति विरते सव्व° ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ १० °कम्मेहिं पि° वृ० दी० ॥ ११ ण्क इति चतु सङ्ख्याद्योतकोऽक्षराङ्कः ॥

एवं पुच्छितो भगवं पडिभणति–इति **विरतसव्वपावकम्मे,** इति एवंविधेण पकारेण जे एते अज्झयणेसु गुणा वुत्ता तहिं वुत्तो **विरतसव्वपावकम्मो,** सव्वसावज्जजोगविरतो त्ति भणितं होति। अथवा विरतसव्वपावकम्मो त्ति सुत्तेण चेव भणितं, तं जधा–**पिज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुण्ण-परपरिवाद-अरति-रति-मायामोस-मिच्छादंसणसल्ले**। तत्थ **पेज्जं** पेम्मं, रागो त्ति भणितं होति। **दोसो** अप्रीतिः। **कलहो** विग्गहो सपक्ख-परपक्खे वा। **अब्भक्खाणं** असब्भूताभिनिवेसो यथा–त्वमिदमकार्षीः। पइसुण्णं करेति **पिसुणो**। परं परिवदति दुस्सीलादीहिं **[परपरिवादो],**। **अरती** धम्मे। अधम्मे **रती**। **मायामोसं** मायासहितं यदनृतम्। **मिच्छादंसणं**—

णत्थि ण णिच्चो ण कुणति कतं ण वेदेति णत्थि णेव्वाणं। णत्थि य मोक्खोवायो छ म्मिच्छत्तस्स ठाणाइं॥ १॥

[सन्मतितर्क का० ३ गा० ५४]

एतं सल्लं **मिच्छादंसणसल्लं**। एवमादीसु पावकम्मेसु जो **विरतो** सो विरतसव्वपावकम्मे। ईरियादीहिं **समितो**। णाणादीहिं **सहितो**। **सदा** सव्वकालं, "यती प्रयत्ने" सर्वकालं प्रयत्नवानिति। **णो कुज्झेज्ज, ण माणं** करेज्ज। एवंविध-गुणजुत्तो वीसत्थेहिं सत्थमुग्घाडेहिं ववदिस्सति **माहणे त्ति वच्चो** भण(ण्ण)ति १॥ २॥ श्रमणगुणप्रसिद्धयेऽपदिश्यते—

६३३. एत्थ वि समणे अणिस्सिते अणिदाणे आदाणं च अतिवातं[1] च वहिद्धं च कोधं च माणं च मायं च लोभं च पेज्जं च दोसं च, इच्चेवं जातो जातो आदाणातो अप्पणो पदोसहेतू तातो तातो आदाणातो पुव्वं पडिविरते भवति दंते दविए वोसट्ठ-काए समणे त्ति वच्चे २॥ ३॥

६३३. एत्थ वि समणे० [सूत्रम्]। य एते पापकर्मविरताद्याः माहणगुणा वुत्ता जाव **माहणे** त्ति, एत्थं गुणगणे समणो त्ति वच्चो। अनेन सूत्रेण इमे चान्ये, तं जधा–**अणिस्सिते अणिदाणे, अणिस्सिते** त्ति सरीरे काम-भोगेसु य। **अणिदाणे** त्ति ण णिदाणं करेति। **आदाणं च** येनाऽऽदीयते तदादानम्, राग-द्वेषौ हि कर्मादानं भवति। **अतिवातं च** वायुः प्राणा बलं प्राणा इंदियपाणा एभ्यः जो अतिपातः प्राणातिपात इत्यर्थः। **वहिद्धं** मैथुन-परिग्रहौ, एगग्गहणे सेसाण वि मुसावादा-ऽदत्तादाणाणं गहणं कतं भवति। उक्ता मूलगुणाः। उत्तरगुणास्तु–**कोधं च माणं च मायं च लोभं च पेज्जं च दोसं च, इच्चेवं जातो जातो आदाणातो,** इति एव इच्चेवं, जतो जतो प्राणातिपाततः मृषावादाद्वा आत्मनः **प्रद्वेषहेतून्** पश्यति तस्माद् **आदानम्**, कर्महेतुरित्यर्थः, **पुव्वं पडिविरते** त्ति **पूर्वम्** आदावेव ततो विरतो भावप्राणातिपातवेरमणमनु-वर्त्तते, एकग्रहणाच्च मृषावादादिविरतोऽपि। स एवं **भवति दंते** इंदियदमेणं, **दविओ** राग-दोसरहितो, **वोसट्ठकाए** गच्छवासी गच्छनिर्गतः, **समणे** इति वाच्यः २॥ ३॥ भिक्षुरिदानीम्—

६३४. एत्थं पि भिक्खू अणुण्णते णावणते दंते दविए वोसट्ठकाए संविधुणीय विरूवरूवे परीसहोवसग्गे अज्झप्पजोगसुद्धादाणे उवट्ठिते ठितप्पा संखाए परदत्त-भोई भिक्खु त्ति वच्चे ३॥ ४॥

६३४. एत्थं पि भिक्खू० [सूत्रम्]। जतो पावकम्मविरतादिणो माहणगुणा वुत्ता, **एत्थ वि भिक्खू**। इमे चान्ये, तं जहा–**अणुण्णते णावणते,** ण उण्णते अणुण्णते। उण्णओ णामादि चतुव्विधो, दव्वुण्णतो जो सरीरेण उण्णतो, सो भयितो, भावुण्णतो जात्यादिमदस्तब्धो एव स्यात्। अवनतोऽपि शरीरे भजितः, भावे तु दीनमना न स्यात्, अलाभेन वा 'ण मे कोइ पूयेति' त्ति ण दुम्मणो होज्ज। **दंते दविए वोसट्ठकाए** पूर्ववत्। **संविधुणीय विरूवरूवे परीसहोवसग्गे**

---

१ **च मुसावायं च वहिद्धं** ख १ ख २ पु १ वृ० दी०॥ २ **कोहं च लोभं च** पु २। अत्र पाठभेदे "आद्यन्तग्रहणे मध्यस्यापि ग्रहणम्" इति क्रोध-लोभग्रहणे मान-माययोरपि ग्रहण बोद्धव्यम्॥ ३ **जतो जतो** ख १ ख २ पु १॥ ४ °**सहेतुं ततो ततो** ख १ ख २ पु १ पु २॥ ५ °**विरते विरते पाणाइवायाओ दंते** ख २ पु १ पु २। °**विरते पाणाइवाया सिआ दंते** सा०। °**विरते सिया दंते** वृ० दी०॥ ६ **पुणगणे** चूसप्र०॥ ७ **वातुः** पु०॥ ८ °**णते विणीए णामए दंते** ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी०। "अणुण्णए णावणए महेसी" **उत्तरा०** अ० २१ गा० २०। "अणुन्नए नावणए अप्पहिट्ठे अणाउले।" **दशवै०** अ० ५ उ० १ गा० १३॥

त्ति, एगीभावेण विधुणीय **संविहुणीय** । **विरूवरूवे** त्ति अणेगप्पगारे बावीसं परीसहे दिव्वा सउवसग्गे । **अज्झप्पजोगसुद्धादाणे** अध्यात्मैव योगः अध्यात्मयोगः, अध्यात्मयोगेन शुद्धमादत्त इति अज्झत्थजोगसुद्धादाणे । **उवट्ठिते** संजमुट्ठाणेणं । **ठितप्पा** णाण-दंसण-चरित्तेहिं । **संखाए** परिगणेत्ता गुण-दोसे । **परदत्तभोइ** त्ति परकड-परणिट्ठित फासुएसणिज्जं भुंजति त्ति । एवंविधो अट्ठविधकम्मभेत्ता **भिक्खु त्ति वच्चे** ३ ॥ ४ ॥ इदाणिं णिग्गंथो—

६३५. एत्थ वि णिग्गंथे एगे [1]एगविदू बुद्धे [2]छिण्णसोते सुसंजते सुसमिए सुसामाइए [3]आतप्पवादपत्ते विदू दुहतो वि सोतपलि[4]च्छण्णे णो [5]पूयणट्ठी धम्मट्ठी धम्मविदू णियागपडिवण्णे [6]समियं चरे दंते दविए वोसट्ठकाए णिग्गंथे [7]त्ति विज्जं । सेवमायाणध भयंतारो ॥ ५ ॥ त्ति बेमि ॥

॥ गाहासोलसगज्झयणं ॥ १६ ॥ [8]पढमो सुयक्खंधो सम्मत्तो ॥ १ ॥

६३५. एत्थ वि णिग्गंथे० [सूत्रम्] । जहद्दिट्ठेसु ठाणेसु वट्टति, ते वि य समण-माहण-भिक्खुणो । णिग्गंथे किंचि णाणत्तं, तं जधा—**एगे एगविदू**, एगे दव्वतो भावतो य, जिणकप्पिओ दव्वेगो वि भावेगो वि, थेरा भावतो एगो, दव्वतो कारणं प्रति भइवा । **एगविदू** एकोऽहं न च मे कश्चित्, अथवा **"एगंतिए विदू"** एगंतदिट्ठी ओए, "इणमेव णिग्गंथं पावयणं०" [श्रमणप्रति०] नान्यत् । **बुद्धि** त्ति धम्मो बुद्धो । **सोताइं** कम्मासवदाराइं, ताइं छिण्णाइं जस्स सो **छिण्णसोतो** । **लोगे** वि भण्णइ—"छिण्णसोत्ता णदि" त्ति । सुट्ठु संजते **सुसंजते** । सुट्ठु समिए **सुसमिए** । समभावः सामायिकम्, सोभणसामाइए **सुसामाइए** । **आतप्पवादप्पत्ते विदु** त्ति, अप्पणो पवादो अत्तप्पवातो, यथा—अस्त्यात्मा नित्यः अमूर्तः कर्ता भोक्ता उपयोगलक्षणः, य एवमादि आतप्पवादो सो य पत्तेयं जीवेसु अत्थि त्ति, न एक एव जीवः सर्वव्यापी, एवं जानानो **विदु** विद्वान् । **दुहतो** त्ति दव्वतो भावतो य, सोताणि इंदियाणि, दव्वतो सकुचितपाणि-पादो । लास्सुत्तिकारणाणि—

सुणमाणो वि ण सुणति पेच्छमाणो वि ण पेच्छति । भावतो इंदियत्थेसु राग-दोसं ण गच्छति ॥ १ ॥

[ ]

अतो **दुहतो वि सोतपलिच्छण्णे** । **णो पूयणट्ठी** णाम ण पूया-सक्कारादि पत्थेति, पूएज्जमाणो वि ण सादिज्जइ पंचसमितो । **धम्मट्ठी** णाम धर्ममेव चेष्टते भाषते वा, भुङ्क्ते सेवते, नान्यत् प्रयोजनम् । **धम्मविदु** त्ति सर्वधर्माभिज्ञः । **नियागं** णाम चरित्त तं **पडिवण्णो** । **समियं चरे** सम्यक् चरेत् । **दंते दविए वोसट्ठकाए** एवंगुणजातीए **णिग्गंथे त्ति विज्जं** ति, विज्जं ति विद्वान् । **सेवमायाणध भयंतारो** त्ति, स इति निर्देशः, स माहणः समणः भिक्खू णिग्गंथे त्ति वा **एवं** अनेन प्रकारेण प्रयुक्तः **आयाणध**, भए गेण्हधि, **भयंतारो** भए इहलोगादिभयात् त्रातारो ॥ ५ ॥

बेमि त्ति अज्जसुहम्मो जंबुणामं भणति । भगवतो वद्धमाणसामिस्साऽऽदेसेण ब्रवीति, न स्वेच्छयेति ॥

॥ गाथाषोडशकचूर्णिः ॥ १६ ॥

॥ पढमो सुयक्खंधो सम्मत्तो ॥

---

१ एगंतिए विदू चूपा० । एगंतविदू वृपा० ॥ २ संछिण्णसोते ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ३ आयवाद° ख १ पु १ वृ० दी० ॥ ४ °लिच्छिण्णे ख १ ख २ पु १ पु २ वृ० दी० ॥ ५ पूया-सक्कार-लाभट्ठी धम्मट्ठी पु २ वृ० दी० ॥ ६ ससिय ख १ खं २ पु १ पु २ ॥ ७ त्ति वच्चे । से एवमेव जाणह जमहं भयं° ख २ पु १ पु २ वृ० दी० । त्ति वच्चे । से एवमायाणह जमहं भयं° खं १ ॥ ८ गाहा सत्त सयाणि ।- पढमो सुयक्खंधो वीयमागमस्स ख १ ॥